सिन्धु-सौवीर



गंगाराम सम्राट

[illegible] [illegible]

[illegible]

13/1/85

सिन्धु सौवीर

(सिन्ध का प्राचीन इतिहास)



नवंबर १९८०

मूल्य: रु. ११० (एक सौ दस रूपये)

लेखक व प्रकाशक

गंगाराम सम्राट्

सहीजपुर बोघा-३८२३४५ (अहमदाबाद)

विषय सूची!

OM ।। ओ३म ।।

India was the Motherland of our race, and Sanskrit the Mother of European languages, she was the Mother of our philosophy, Mother through the Arabs, of much of our mathematics, Mother through the Buddha of the ideals embodied in Christianity, Mother through the village community of Self Government and democracy. Mother India is in many ways the mother of us all" William Durrant

भूमिका – Preface

आर्यावर्त (भारतवर्ष-हिन्दुस्थान) हिन्दूदेश महान है। सिंध उसका एक भाग है। किन्तु जहां तक भारतीय संस्कृति के संसार में फैलाव का सम्बंध है, सिंध का स्थान उस में महान है। शताब्दियों के अनेक आक्रमणों ने सिन्धी जाति (Community) का रूप रंग बदल डाला। किन्तु जब आज हम देखते हैं कि निकट समय में भी उसी सिन्ध के ऊपरी भाग से सिन्धियों ने तुर्किस्तान और रूस तका तथा आफ्रीका तक अपने को फैलाया है, तब सिन्ध के लिये श्रद्धा का समुद्र उमड़ पड़ता है।

परन्तु जान बूझ कर अथवा अनजाने में, किसी ने भी इस विषय पर लेखनी नहीं चलाई है। प्रान्तिक भावना भी प्रबल है। कोई सिन्धी ही सिन्ध के लिए नहीं लिख सकता तो दूसरा क्यों लिखे ? मोहनजो-दड़ो के अवशेष सिन्ध के मध्य भाग से मिलने से यह स्पष्ट था कि सिन्ध का इतिहास में स्थान उच्चित और महान है, इसलिये उसके बाकी दूसरे इतिहास की भी खोज होनी चाहिये थी। क्यों कि जो प्रान्त संसार में महान समझी जाने वाली मोहनजो-दरो जैसी संस्कृति अपनी छाती चीर कर दिखाता है तो उसके सारे शरीर की जांच होनी चाहिये थी। लेकन रहस्य सब छाती (सीने) में रहता है, जब भगत हनुमान रूपी सिन्ध की छाती में से भगवान राम रूपी भारत की महान संस्कृति का अवशेष मिला तो बाकी शरीर रूपी रामायण की किसी ने चिन्ता ही नहीं की। रामायण के सिवाय राम की महिमा कैसी ? यदि रामायण न होता तो राम महिमा की बूझ ही कैसे होती। परन्तु आज सब इसी प्रकार हो रहा है। हर हिन्दू मुख से राम राम तो जपता है परन्तु राम रूपी रामायण को हर एक भूल चुका है। उस में से राम के जाप समान राम की महिमा भी हरएक भूल चुका है। जिस कारण जीवन से जीवन और आदर्श अज्ञात हो गया है, ठीक इसी प्रकार सिन्ध के सीने से मोहनजो-दड़ो निकाल कर उसके जाप में हर एक मग्न हो गया परन्तु जिस शरीर रूपी सिन्ध ने यह महान

अवशेष दिया उस के रामायण की सब ने उपेक्ष कर दी। यह भी है कि भगवान राम को महर्षि वालमीक मिला जिस ने राम रूपी महान आत्मा को भगवान बना दिया, किन्तु सिन्ध को कोई वालमीक रूपी महर्षि तो क्या कोई साधारण संत भी नहीं मिला जो उसका रामायण रच डाले। मैं ने सिन्ध के महान इतिहास की यह केवल 'रूपरेखा' लिखी है। इस से प्रेरणा पाकर यदि कोई सिंधी सिन्ध के इतिहास रूपी रामायण का निर्माण कर सका तो मैं धन्य समझूंगा। यद्यपि है असंभव।

इतिहास जाति के जीवन का आधार है। यदि किसी जाति का सच्चा इतिहास नहीं है तो वह दीर्घ काल तक जीवित नहीं रह सकती। आज यदि रामायण, महाभारत और पुराण न होते तो हिन्दू हजारों वर्षों के आक्रमणों के पश्चात भी आज एक महान आर्य जाति और देश के रूपमें जीवित नहीं होते। महाराणा प्रताप, हिन्दूपति शिवाजी, महर्षि दयानन्द, वीर सावरकर, स्वामी श्रद्धानन्द, लोकमान्य तिलक, सुबाश चन्द्र बोस, लाला लाजपतराय, सरदार वलभ भाई पटेल, मोरारजी भाई देसाई जैसे सच्चे धर्म और देश भगत सब उस हिन्दू इतिहास की उपज हैं। श्री मिचलेट (Michelet) के शब्दों में "कोई भी जाति मर नहीं सकती जब तक उसके इतिहास का निर्माण होता रहे"।

"History is the story of a nation pulsating with life and telling in clear words that it cannot die which it makes history."

और श्री मैकाले के शब्दों में "जो जाति अपने पूर्वजों के उत्तम कार्यों का अभिमान नहीं करती, वह कोई भी ऐसी बात ग्रहण न कर सकेगी, जो अनेक वंशों तक आगे चलकर अपनी सन्तान के लिये बड़े सम्मान और अभिमान से स्मरण करने योग्य हो।"

"A people which take no pride in the noble achievements of remote ancestors, will never achieve anything worthy to be remembered with pride by remote descendants".

और जब तक पूर्वजों के उत्तम कार्यों का अभिमान रहता है, तब तक उस जाति का अस्तित्व मिट नहीं सकता। यदि स्पष्ट शब्दों में ऐसा कहा जाय कि "जिस मनुष्य को अपने धर्म, जाति और संस्कृति के लिये सम्मान और इतिहास के लिये अभिमान नहीं है वह केवल देश भक्त भी नहीं हो सकता। जिसका कोई धर्म-ईमान ही नहीं है ऐसे बे-धर्म की देश भक्ति कैसी? ऐसे मनुष को केवल देश भक्त कहना अथवा समझना देश से धोखा करने के समान है। इसलिये यदि कोई अपने को हिन्दू कहलाने में शर्म अनुभव करता है बाकी देश भक्त और समाज सेवक कहलाता है तो हमारी दृष्टि में वह केवल देश का छुपा हुआ शत्रु समझा जाना चाहिये।

विदेशी विधर्मी और सदियों के इसलामी वहशियानी आक्रमणों ने हिन्दू जाति के सारे

डील-डौल को बेडोल कर दिया। हिन्दू विवश था। वहिशानियत और शैतानियत नामी शब्द हिन्दू के कोष में ही नहीं हैं। इस आदर्शों 'अज्ञान' का हिन्दू शिकार हो गया। जिस भारत देश के लिये निकट समय के अरब विद्वान अब्दुल्लाह वसाफ ने लिखा है "कि कहा जाता है कि भारत स्वर्ग का देश है। इस पर आश्चर्य मत करो क्यों कि स्वयं स्वर्ग की भी भारत देश से तुलना नहीं की जा सकती":-

"India according to the concurrent opinion of all writers, is the most agreeable abode on earth and the most pleasant quarter of the world. Its dust is purer than air and its air is purer than purity itself. Its delightful plains resemble the garden of paradise. If it is asserted that paradise is in India, be not surprised because paradise itself is not comparable of it."

ऐसा देश, आदर्श और मनुष्यता के सिवाय और क्या जानता होगा! इस विश्वास की मार भारत और हिन्दू जाति पर पड़ी। परन्तु! जिस प्रकार वृक्ष जितना बड़ा होता है उतनी ही उसकी जड़ें जमीन में अंदर बहुत फैली और दृढ होती हैं। बरगद का वृक्ष सब वृक्षों में बड़ा और चौड़ा होता है इसलिये उसकी जड़ें भी बहुत गहरी तथा दूर दूर तक फैली हुई होती हैं। इसलिये उसकी आयु भी लंबी होती है, और अनेक लोगों को ठडक तथा छाया भी देता है। ठीक इसी प्रकार हिन्दू धर्म की जड़ें भी बहुत गहरी और दृढ थीं। इस फैलाव के कारण उसने अनेक विदेशी कौमों को छाया प्रदान की। मगर वे इसी ठंडी छाया में बैठकर आराम पाकर उसे बे-आराम करने लगीं। क्यों कि शान्ति उनके स्वभाव, संस्कृति और मजहब में ही नहीं थी, कुछ न कुछ बुरा करते रहना ही एक आदर्श था। इस लिये वे हिन्दू रूपी महान वृक्ष की छाया पाकर उसकी जड़ों को उखोड़ने लगे। थक कर, टूट कर स्वयं निःशक्त हो गए किन्तु हिन्दू बरगद रूपी वृक्ष की जड़े उखाड़ न सके यद्यपि दूसरी तरह वृक्ष पूरे का पूरा खोखला कर दिया। अंत में अंग्रेज़ी औज़ारों ने इस खोखले वृक्ष पर सफल प्रहार किया, क्यों कि उनके औज़ार (साधन) अधिक अच्छे थे। और आज का भारतवासी तथा हिन्दू कहलाने में शर्माने वाली नस्ल उस गोरें अंग्रेज की Black Edition है।

इंगलैंड की ईस्ट इंडिया कम्पनी का मुख्य उदेश्य तो व्यापार करना था परन्तु ऐसा करते करते शासन भी करने लग गये। सन् १७८० में कम्पनी ने अंग्रेज़ी कानून के स्थान पर भारती कानून जारी करने का सोचा जिस के लिये पडितों और मौलवियों की आवश्यक्ता थी, क्यों कि प्रजा हिन्दू और मुसलमान थी। इस के लिये सन् १७८१ में वार्न हेस्टिंग्स ने मौलवी पैदा करने के लिये "कलकता मदर्सः" तथा १७९१ में वाराणसी के रेज़ीडन्ट जोनाथन डंकन ने पंडित पैदा करने के लिये "बनारस संस्कृत कालेज" स्थापन किये।

१८१३ में ईस्ट इंडिया कंपनी का भारत में व्यापार चार्टर, ब्रिटिश पार्लयामेंट ने बदल

डाला। परन्तु सर चार्लस ग्रांट, जो कम्पनी के डाइरेक्टरों में से था, के प्रयत्न से उस चार्टर में यह clause जोड़ा गया कि दूसरे सब खर्च काटने के पश्चात बाकी धनराशि में से एक लाख रुपये भारतीय साहित्य की उन्नति, भारती विद्वानों को प्रोत्साहन और विज्ञान के फैलाव के लिये खर्च किये जाएं। दस वर्ष तक इस धन का कोई उपयोग नहीं हो सका। १८२३ में एक समिति बनी जिस ने संस्कृत और अरबी पुस्तकें छपवानी आरंभ कीं। संस्कृत और अरबी के प्रोत्साहन के लिये "कलकता संस्कृत कालेज", "आग्रा कालेज" और "दिल्ली कालेज" स्थापित किए गये। परन्तु इस समिति में यह झगड़ा खड़ा हो गया कि संस्कृत और अरबी पुस्तकें छपवानी ठीक है अथवा नहीं। दो दल हो गये। एक संस्कृत-अरबी के पक्ष में थे दूसरे अंग्रेज़ी के। यह झगड़ा चल ही रहा था कि १८३४ में लार्ड मैकाले, गवर्नर जनरल बेन्टिक की काऊंसिल का सभ्य नियुक्त होकर इंगलैंड से आया। उसने २, फेबरवरी १८३५ को अपनी रिपोर्ट लिखकर इस झगड़े का निपटारा कर दिया अर्थात 'हडियां मांस हिन्दी अक्ल आदि ईसाई'। उस ने स्पष्ट लिखा कि हम अपने लाभ-स्वार्थ के लिये अच्छा है कि, एक ऐसा टोला तयार करें जो हम और उन लाखों लोगों के बीच में Interpreter का काम दें, जिन पर हम शासन कर रहे हैं। इस टोले वालों का रक्त-मांस, रूप-रंग भले भारतीय हो परन्तु आचार-विचार, बात-चीत तथा बुद्धि अंग्रेज़ी सांचे में ढले हुए हों"। :-

"We must do our best to form a class, who may be interpreters between us and the millions whom we govern; a class of persons Indian in blood and colour, but English in taste, opinion, words and intellect."

और इस का फल क्या निकला, यह मैकाले ने स्वयं अपने पिता को पत्र में लिख भेजा था कि "जो भी हिन्दू अंग्रेज़ी विद्या प्राप्त करता है वह अपने धर्म-विश्वास को खो बैठता है। कुछ यदि मानते भी हैं तो केवल दिखावे के तौर पर। बहुत से अद्वैतवादि बन जाते हैं और उन में से अनेक ईसाई बन जाते हैं। मेरा यह दृढ विश्वास है कि यदि हमारे कार्यक्रम के अनुसार अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति पर पूरी तरह आचरण किया गया तो तीस वर्ष के बाद बंगाल के किसी भी अच्छे परिवार में एक भी हिन्दू नहीं रहेगा"। :-

"No Hindu who has received an English education ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, but many profess themselves pure Deists and some embrace Christianity. It is my firm belief that if our plans of education are followed up there will not be a single idolator among respectable class in Bengal thirty years hence."

और १८४४ में लार्ड हार्डिन्ज ने यह निर्णय किया कि सरकारी नौकरियां केवल अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों को ही मिलेंगी। यह निर्णय उन के लिये आवश्यक भी था; नहीं तो शासक अंग्रेज़ और प्रजा हिन्दी तो शासक की भाषा समझने के सिवाय राज-कारोबार कैसे चलेगा। इस में अंग्रेज़ों की दूर दर्शिता भी थी। इसलिये नौकरियों के लोभ में अंग्रेज़ी पढ़ने की प्रतिद्वंद्विता आरंभ हो गई। तुर्क-मुग़ल काल में यह आवश्यक नहीं था। क्यों कि वे विदेशी यहां आने के पश्चात, जैसे कि लावारिस थे, उन्हें किसी भी प्रकार यहां टिक कर बसना ही था। वे यहां रह कर यहां के हो गये, कुछ दिया कुछ लिया। इसके सिवाय वे किसी विशेष संस्कृति वाले नहीं थे। लूटमार, कत्ल, बलात्कार, आतशजनी, तोड़-फोड़, डाकाज़नी, यही उनका मुख्य पेशा था। इसलिये उनका भारती संस्कृति पर विशेष प्रभाव भी नहीं पड़ा। किन्तु ये अंग्रेज़ एक विशेष संस्कृति और मज़हब वाले थे और खास देश से खास उद्देश्य से आये हुए थे। वे यहां टिकने वाले नहीं थे। व्यापार के बाद देश अधिकार करना उनका उद्देश्य था। इसलिये उनकी अंग्रेज़ी शिक्षा, उसमें अपना ईसाईपन, यह सब तेज़ी से भारत के पूरे जीवन पर छा गए। नौकरी के लिये अंग्रेजी पढ़ने के पश्चात उच्च शिक्षा प्राप्त भारतीयों में अंग्रेजी साहित्य पढ़ने की भी लहर चली। यहां की शिक्षा में उन्हें यह बताया-पढ़ाया जाता था कि हिन्दू जंगली हैं, गुलाम हैं, उनका धर्म और धर्म ग्रन्थ गवारों के गीत और गपोड़ हैं। इधर भारतीय पंडित समाज ने भी मूर्खता वश अपने धर्म का सच्चा तो किया अच्छा रूप भी पेश नहीं किया। अज्ञानता वश अधर्म ने धर्म का स्थान ग्रहण किया हुआ था। उधर अंग्रेजी साहित्य पढ़ने से नवशिक्षित युवकों को विदेशी संस्कृति और विज्ञान की उन्नति का ज्ञान होता गया। क्यों कि जो भी यूरोपीय कौमें यहां आईं उन्हों ने यहां का सस्कृत साहित्य भी हस्तगत किया तो संस्कृत सीख कर वह साहित्य अपने साथ ले गये। उसका यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद किया, पढ़ा, औरों ने भी पढ़ा। उस काल से पूर्व वहां की यह स्थति थी कि इंगलैंड के अनेक पार्लियामेन्ट के सदस्यों को अपने हस्ताक्षर करने भी नहीं आते थे। ऐसे अंधकार वाले युग में उनके लिये संस्कृत साहित्य द्वारा ज्ञान-विज्ञान के द्वार खुल गये। वे अपनी धोखे भरी अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतवासियों को अंधकार में रखते आये, उन्हें ग़लत-झूठा साहित्य और इतिहास पढ़ाते रहे। क्यों कि हिन्दू उस काल में प्रायः इसलामी आक्रमणों और अत्याचारों से परेशान और शिकस्ता हो चुके थे। यद्यपि भारत में छोटा बच्चा भी किसी पाठशाला में विद्या अवश्य ग्रहण करता था। परन्तु प्राचीन साहित्य हिन्दुओं से बिछड़ कर केवल पोथे-पोथियों और ग्रन्थों का रूप धारण कर चुका था। वह भी यूरोपीय लोक यहां से उठा उठा कर अपने देश को ले गये और उसी के सहारे राज्य-व्यवहार (Administration) तथा ज्ञान-विज्ञान के मूल तत्व ग्रहण कर उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे थे। ऐसी उन्नति यहां न देखकर जब हिन्दू विद्यार्थी अंग्रेजी में देखते थे तो आश्चर्य में पड़

जाते थे। यहां यह ध्यान रहे कि यूरोप में हवाई जहाज के आविशकार के पूर्व यहीं एक आर्य पंडित ने हवाई जहाज बनाया था जिस के अवशेष अभी तक मुम्बई में विद्यमान हैं। ऐसे अनेक ग्रन्थ यूरोपी लोग यहां से ले गये और उनके आधार पर आज का विज्ञान संसार को दिया। इसके सिवाय ईसाई मजहब के फैलाने के लिये ईसाई पादरियों को "ग़रीबों की सेवा करना" वाली लेबलों से सुशोभित टीले यहां आकर घुन की तरह हिन्दू समाज में घुसने लगे, उसने हिन्दू समाज को खोखला बना कर रख दिया। ठीक उसी जमाने में आर्य समाज जैसी महान संस्था तथा ब्रह्मो समाज जैसी समाज सुधारक संस्थाओं ने जन्म लिया। जिन में से ब्रह्मो समाज ने तो बंगाल को बचा लिया बाकी आर्य समाज ने सारे भारत में एक ऐसा आंदोलन खड़ा कर दिया, एक एसी अग्नि भड़क उठी कि ये ईसाई फादर और मदरियां ही मुरझा गईं। मगर अंग्रेज़ी घातक शिक्षा की जड़ें हिन्दुओं में बहुत गहरी जा चुकी थीं जिन के प्रभाव से भारत के नेता भी मुक्त नहीं थे।

सौ वर्षों की घातक शिक्षा जो पीढ़ियां पार कर चुकी थी, हिन्दू अपने धर्म और संस्कृति से खाली होता गया। देसी भेजे में विदेशी बुद्धि ने दखल कर लिया।

अंग्रेज़ी में शिक्षा देने के पश्चात लार्ड मेकाले का दूसरा घातक शस्त्र था, हिन्दुओं को अपने धर्म मार्ग से हटाकर आधे रास्ते में अंधा बना कर भटकाना, जसा ऊपर लिखा गया है, जैसे कि वे सलता से अंग्रेजी की गुलामी तथा ईसाइयत स्वीकार करने में सहायक बनें। प्रो० मेक्समूलर उस काल में बड़ा विद्वान तथा सस्कृत जानने वाला था। मेकाले ने उसे भड़का-लालचा कर इस धूर्त कार्य के लिये तैयार किया। इस बात से इनकार नहीं कि स्वयं हिन्दू अथवा उनके पंडितों के किये गये वेदार्थ निम्न कोटि के थे और हैं। यूरोपी ईसाइयों को भी प्रायः इनहीं वेदार्थों का सहारा लेकर हिन्दुओं पर घात करना पड़ा। सो जा मेक्समूलर वेदों के गीत गाया करता था वह इस राजनैतिक षड्यंत्र में समिलित होकर अपना आत्मिक घात कर हिन्दुओं का "सांस्कृतिक हत्याकाण्ड" करना प्रारंभ कर दिया, जो वास्तव में 'इसलामी 'क़त्ले आम' से भी अधिक भयानक था। यद्यपि मेक्समूलर वेदों को शुद्ध रूप में भी जानता था, दयानन्द सरस्वती का वेद भाष्य अथवा "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" वह पढ़ चुका था। उसके और दयानन्द के बीच पत्रव्यवहार भी हुआ था, मगर स्वार्थ खतरनाक कीड़ा है, काट कर काम कर गया।

मेक्समूलर ने सन् १८६६ में अपना वेदार्थ करने के पश्चात एक पत्र अपनी पत्नी को लिखा जिस में उसने स्पष्ट लिखा कि "मेरे इस वेदार्थ का अभिप्राय केवल हिन्दुओं की धार्मिक जड़ों को छूकर वे जड़ें उखाड़ना है, जो हजारों वर्षों से उन (हिन्दुओं) में दृढ गड़ी हुई हैं।":-

"I hope I shall finish that work and I feel convinced that though I shall not have to see it, this edition of mine and the translation of the

Vedas will, hereafter tell to a great extent on the fate of India on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that was sprang from it during the last 3000 years"

दूसरे जर्मन विद्वान श्री मोनीग्रर (Sir Monier William) ने संस्कृत-इंगलिश का एक बड़ा सुंदर कोश तैयार किया। ग्राक्सफोर्ड (इंगलेंड) में संस्कृत के ग्रध्ययन के लिये कर्नल बोडेन ने एक विभाग "Boden Chair of Sanskrit" स्थापित किया। यह मोनीग्रर महाशय उस चेग्रर का दूसरा उतराधिकारी था। उस कोश की भूमिका में ही उसने इस 'संस्कृत ग्रध्ययन' का उद्देश समझाते हुए स्पष्ट लिखा है कि "इस संस्कृत साहित्य के विशेष ग्रध्ययन का उद्देश्य केवल भारतीय हिन्दुग्रों को ईसाई बनाना है"। :-

"I must draw attention to the fact that I am only the second occupant of the Boden Chair, and that its founder, Colonel Boden, stated most explicitly in his will (15, August, 1811) that the 'special object' of this munificent bequest was to promote translation of Scriptures into Sanskrit so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the nations of India to the Christian religion."

यह बिलकुल खुली हकीकत है कोई भी उपरोक्त कोश में यह देख सकता है। इसी Chair का प्रथम ग्रधिकारी श्री होरेस हेमन विल्सन था (जो प्राय: H.H. Wilson के नाम से प्रसिद्ध है)। यह एक विद्वान तथा नेक भी था, मगर इस Chair के दाता के प्रति भी उसके स्वार्थ के कारण कुछ कर्तव्य था। बावजूद नेक होने के यह विवश होते हुई भी सत्य को खोल बैठा। उसने एक पुस्तक "The religious and Philosophical System of the Hindus" नामक लिखी। वह क्यों लिखी गई, यह उद्देश्य जताते हुए लिखा है कि "ये व्याख्यान जान मूर के २००० पाऊंड वाले पुरस्कार तौर उमेदार को सहायता तौर देने के लिये, लिखे गये थे। पुरस्कार का उद्देश्य था "हिन्दू धार्मिक पद्धति का उत्तम ढंग से खंडन करना"। :-

"These lectures were written to help candidates for a prize of £ 200 given by John Muir, a well known old Haileybury man and great Sanskrit scholar, for the best refutation of the Hindu Religious system."

मेक्समूलर के जो पत्र (जीवन के साथ) प्रकाशित हुए हैं उनमें से छठे पत्र में उसने लिखा है कि भारत को ईसाई बनाने के लिये हमारा ग्रन्थ नए युग का निर्माण करेगा। हमें ग्राक्सफोर्ड यूनीवरसिटी ने सहयोग देकर ग्रपने को धन्य किया है। क्यों कि भारत को ईसा का ग्रनुयायी

बनाने के लिये हमारा ग्रन्थ रूपी कार्य-आधार शुद्ध और सुदृढ है। पुराने ग़लत (धर्म) की नए सत्य मजहब के साथ तुलना करते यह बड़ा उपयोगी होगा"। उसने एक पत्र १६ दिसम्बर १८३८ को ड्यूक आफ आर्गाईल (इन्डिया सेक्रेटरी) को लिखा, जिस में मैक्समूलर ने लिखा "कि प्राचीढ हिन्दू धर्म मर रहा है, ऐसे समय में यदि ईसाई मजहब वहां न घुस सके तो फिर किसका दोष?

"The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be?"

मैक्समूलर ने इंगलैंड से एक पत्र यहां मुम्बई के श्री बेरामजी मलबारी को २६, जनवरी, १८८२ में लिखा था। यह पत्र वेद सम्बंधी था कि किस प्रकार उसने "हिन्दुओं को अपने मूल धर्म से विमुख करने के लिये वेदों का ग़लत अर्थ किया है जो वास्तव में नहीं होना है, शुद्ध वेदार्थ तो केवल दयानन्द सरस्वती का है"। और यह सब उसके मुख से सुनिये, जो उस पत्र में लिखा है।:-

"...... I wish to warn against two dangers that of undervaluing and despising the ancient national religion (of Vedas), as is done often by your half-Europeanised youths and that of overvaluing it and interpreting it as was never meant to be interpreted, of which you may see a painful instance in Dayanand Sarasvati's labour on Vedas."

इस प्रकार ये ईसाई लेखक और विद्वान अपनी गढ़ी हुई शिक्षा प्रणाली से हिन्दुओं को Non-Hindu बना रहे थे तो उसी शिक्षा में बने हिन्दू विद्वान स्वयं अपने धर्म की कमजोरियां ढूंढ-ढूंढ अपने ही धर्म के विरुद्ध लेखनी चलाते रहे। वे अध्यापक-प्रोफेसर बने, उन्हों ने भी विद्यार्थियों को वही सब पढ़ाया। शताब्दी पूरी हो गई, २-३ पीढ़ियों तक यही शिक्षा मिलती रही। हिन्दुओं को अपनी महानता का कुछ ज्ञान ही न रहा। नहीं तो यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जिस समय मैक्समूलर और मैकाले यह षड्यत्र कर जो शिक्षा हिन्दुओं को दे रहे थे, उसी जमाने के कुछ यूरोपीय विद्वान भारत की महानता देख-जानकर स्वतः कह रहे थे कि "फ़िलासाफी में हिन्दू ग्रीस और राम से महान है। ईजिप्ट वालों ने अपना धर्म, दंत-कथाए तथा फिलासाफी हिन्दुओं से ग्रहण की। यूनानियों ने भी अपनी सब फिलासाफ़ी हिन्दुओं से प्राप्त की, जो बात यूरोप के बड़ें विद्वानों ने सिद्ध कर दिखाई है। इस लिये हिन्दू गुरु है और यूनान शिष्य"। :-

"Hindus being the far more advanced must have been the teachers and the Greeks the disciples." (Theogony of the Hindus, P. 27)

"संसार में कोई भी जाति प्राचीनता और धर्म के विषय में आर्यों से मुकाबला नहीं कर

सकती। संसार की सब सभ्यताएं एथ्योप्या, ईजिप्ट, फिनीश्या, चीन, जापान, ईरान, चाल्डिया, ग्रीस और रोम सब प्राचीन काल से ही महान आर्य सभ्यता के फैलाव से फले-फूले हैं"। :-

"No nation on earth can vie with the Hindus in respect of the antiquity, of their religion, it is there (Aryavarta) we must seek not only for the cradle of the Brahmin religion but for the cradle of high civilization of the Hindus which garadually extended itself in the West to Ethiopia, to Egypt, to Phoenicia, in the East to Siam, to China, and to Japan, In the South of Ceylon, to Java and to Sumatra, in the North of Persia, to Chaldea, and to Colchis, whence it came to Greece and to Rome and at length to the remote abode of the Hyperboreans." (Ibid, P. 168)

न केवल यह, परन्तु जिस समय ये ईसाई हिन्दुओं के विरुद्ध ये शस्त्र चला रहे थे, उसी समय यूरोप में संस्कृत साहित्य का ही अध्ययन बढ़ रहा था। प्रसिद्ध जर्मन चिन्तक आर्थर शोपेन हाइर ने, दारा शिकोह के उपनिषदों के फारसी अनुवाद का लैटिन अनुवाद पढ़ा, जिस ने उसपर गहरा प्रभाव डाला। उस ने लिखा है कि उपनिषद मनुष्य के अति उत्तम बुद्धि की उपज 'The production of the highest human wisdom' हैं। ये मेरे जीवन के लिये संतोष हैं और मेरे मृत्यु के लिए भी रहेंगे"।:

"It (Upanishad) is the most satisfying and elevating reading which is possible in the world; it has been the solace of my life and will be the solace of my death."

इसके पश्चात अनेक जर्मन विद्वानों की श्रद्धा संस्कृत की ओर बढ़ी और उन्हों ने भारतीय आर्य संस्कृति को महत्व देना प्रारंभ किया। श्री विन्टर्निज ने इसका वर्णन करते लिखा है कि "जब भारतीय संस्कृत साहित्य पहले पहले पश्चिम में पहुंचा तो लोगों की उत्कंठा भारत से आने वाले हर पुस्तक को अति प्राचीन युग का समझने की हुई। वह भारत को इस दृष्टि से देखते थे जैसे कि भारत मनुष्य जाति का, कम से कम मनुष्य सभ्यता का आदि केंद्र अथवा उत्पति स्थान है"।

"When Indian literature became first known in the West, people were inclined to ascribe a hoary age to every literary work hailing from India. They used to look upon India as something like the cradle of mankind, or at least of human civilization."

और यूरोप में पादरी घबड़ा गये कि इस से तो ईसाइयत का मीनार गिड़ कर बरबाद हो जायेगा। श्री बाडमर (Frederick Bodmer) ने थोड़े शब्दों में यह मज़ेदार बात कही है कि :

"Custodians of the Pentateuch were alarmed by the prospect that Sanskrit would bring down the Tower of Babel."[1]

इस अवस्था में वे किस प्रकार संस्कृत आर्य साहित्य का प्रभाव सहन कर सकते। ईसाइयत खतरे में आ जाती, जिस प्रकार किसी जमाने में आर्य समाज के जोभन के समय इसलाम खतरे में आ गया था। इसलिये वे हिन्दुओं को धर्म-ईमान से विमुख करने के लिये यत्नशील हो गये, और हिन्दू बे खबर रहा।

यद्यपि हिन्दुओं को यह भी मालूम नहीं रहा कि जिस समय ईसाइयत का जाल भारत में फैलाया जा रहा था, तो स्वयं यूरोप में इस ईसाइयत की क्या दुर्गति थी और वहां के विचारक उसको किस दृष्टि से देखते थे। श्री इंगरसाल उस का प्रमाण है। उस ने एक ही फक्रे में स्पष्ट कह दिया कि "यदि चर्च (ईसाइयत) में सचमुच सुधार लाना है तो उसे बरबाद कर डालो"। :-

"To really reform the church is to destroy it"

दूसरे स्थान पर कहता है "कि जब तक बाईबल को 'खुदा की किताब' समझ कर माना जायेगा, हमारा साहित्य साफ और अनुकरणीय नहीं रहेगा...... किसी जमाने में 'बाईबल का एक एक शब्द सत्य है ऐसा माना जाता था, किन्तु अब पूरी तरह से यह सब झूठ सिद्ध हो रहा है...... संसार की भ्रष्ट पुस्तक बाईबल है...... इसलिये यह कहना ठीक होगा कि बाईबल मनुष्य की बनाई हुई पुस्तक है जिस में सच्च-झूठ, ग़लतियां आदि सब भरा हुआ है"।:-

"But as long as the Bible is considered as the work of God, it will be hard to make all men too good and pure to imitate; and as long as it is imitated there will be vile and filthy books. The literature of our country will not be sweet and clean until the Bible ceases to be regarded as the production of a god.

"In the days of Thomas Paine the Church believed and taught that every word in the Bible was absolutely true. Since his day it has been proved false in its cosmogony, false in its astronomy, false in its chronology, false in its history, and so far as the Old Testament is concerned, false in almost every thing ......

(1) The Loom of Language, P. 171

"The real oppressor, enslaver and corrupter of the people is the Bible..."

"Is it not infinitely more reasonable to say that this book is the work of man, that it is filled with mingled truth and error, with mistakes and facts..."

फिर एक स्थान पर श्री पेनी के बिचार से सहमत होकर लिखता है कि "बाईब्ल बच्चों की पुस्तक, अनावश्यक तथा मूर्खता भरी पुस्तक है"। :-

"He (Paine) regarded much of the Bible as childish, unimportant and foolish The scientific world entertains the same opinion..."[1]

यही नहीं, परन्तु ईसाई स्वयं यह मान रहे थे कि "ईसाइयत निर्यात (export) करने के लिये ही है।" फ्रेंच पार्लयामेंट में बजेट पर विवाद चलते समय जब ईसाई मत के फैलाव के व्यय पर आक्षेप किया गया तो उस का उत्तर देते मंत्री ने कहा था :-

"Christianity is not for home consumption, it is for colonial export."

हिन्दू, धर्म का ऐसा अंधा (अनभिज्ञ) है कि उसे यह भी सुध न रही कि उपरोक्त इसाई पादरियों ने न केवल हिन्दूओं के ग्रन्थों के गलत अर्थ कर तथा गलत शिक्षा हम पर ठोंसी अपितु हिन्दुओं के ग्रन्थों में मिलावट (प्रक्षेप) भी कर डाला और अपनी झूठी पुस्तकें हिन्दू नामों से तैयार कर अनपढ़ हिन्दुओं में प्रचार किया।

१७वीं शती के प्रारंभ में एक ईसाई बाबा स्टीफन्स (Father Stephenes) भारत में था और उसका साथी नोबेली (Roberto de Nobili) था। नोबेली तो "रोमन ब्राह्मन" नाम से भी प्रसिद्ध था। उसने ईसाई मत के प्रचारार्थ एक पुस्तक तैयार की जिस का नाम उसने 'पांचवां वेद' रखा। इधर स्टीफन्स ने "क्रिस्चियन पुराण" तैयार किया जिस में ईसाई पुस्तकों का कोंकणी और मराठी भाषा में अनुवाद कर के प्रचार करता रहा। ये हिन्दू ढंग से रहते थे। गांव में चमड़े का जूता न पहन कर हिन्दू ढंग की खड़ाऊं पहनते थे। यह सब पाखण्ड करने के पश्चात परिणाम यह निकला कि स्टीफन्स के आने के समय जहां केवल ८००० हिन्दू ईसाई थे, वे इसके १४ वर्ष के पाखण्ड, धोखे और गुमराह करने से ३५००० हिन्दू ईसाई बन गये।

जैसा ऊपर लिखा है ईसाइयत के प्रचार के लिये जो भी ईसाई फादर और मदरियां यहां आए वे केवल गरीब और अनपढ़ हिन्दुओं को गुमराह कर धोखे से गलत बातें बता कर ईसाई बनने के लिये उत्साहित करते थे। पढ़े लिखों को ईसाई बनाना सरकार का काम था जिन को यहां के 'ब्लैक एडीशन' भारती 'देश भक्त' सहायता करते थे। सब बड़े बड़े पादरी और मदरियां, ऐनी बेसन्त और मदर टेरीसा आदि सब इस जाल की कड़ियां हैं। हालांकि इस पाप के भगी स्वयं धनी-मानी हिन्दू हैं जो इन गरीबों की सहायता तो क्या, खून चूस कर सांप की तरह

(1) Ingersollia, Memorial Edition, Pp. 69, 136, 139, 141

इस कर इन ईसाइयों के रहम (दया) पर छोड़ देते हैं। सो ऐनी बेसन्ट की पुस्तक Immediate Future and Other Lectures में भारती आचार्यों का सिलसिला महर्षि व्यास से आरंभ कर महात्मा बुद्ध तक लाया गया है। इसके पश्चात लिखा है कि "जब बुद्ध का निर्वाण होने लगा तब उसने जाते समय अपना कार्यभार अपने भाई मैत्रेय ऋषि को सौंप दिया और वह मैत्रेय ईसा बन गया; और इस समय स्वयं संसार का धर्म गुरु ईसामसीह है"। :—

"And then he passed away, never again to take a moral form and handed on the duty of the World-Teaching to his brother, who has come side by side with him through many ages, to him who is the world teacher of today, the great lord Maitreya, whom Christendum calls the Christ......".

मौके से यहां यह भी दिखा दें कि यह तरीका केवल ईसाई पादरियों ने नहीं अपनाया परन्तु मुसलमानों ने भी बहुत अनाचार फैलाया। मुसलमानों ने एक "उल (उल्लू) उपनिषद" तैयार किया। उस का एक श्लोक इस प्रकार है :-

ओम अल्लाहइल्लल्ला अनादि स्वरूपाय अथर्वणा श्यामा ह्रही जनान।
असुरसंहारिणी हूं ह्रीं अलहो रसूल महमदरकबरस्य।

यूनानी तिब (इलाज) के प्रचार के लिये संस्कृत पुस्तकों में भी मिलावट की गई। आयुर्वेद की एक पुस्तक 'अभिनव निघण्टु' है, जो मुबई की "तत्व विवेक प्रेस" में छपी थी। उस में है कि:-

दोष खिल्त इति प्रोक्तः स चतुर्द्धा।
सौदा सफरा तथा बलग़म तुरीयं खून उच्यते।।

फलित ज्योतिष् भारत की विद्या नहीं परन्तु विदेशी धोखा है। नवाब खान खानां की एक छोटी चोपड़ी "खेट कौतुक" है। उसका नमूना देखें :-

यदा माहताबो भवेत्मालखाने मिरीखोथवा मुश्तरी बख्तखाने।
अतारिद्विलग्ने भवेद्वख्श पूर्णं भवेद्दीनदारोथवा बादशाहः॥

एक और मिलावट का इसलामी नमूना देखें :-

हेच फिक्रंमं तकर्तव्यं कर्तव्यं जिकरे खुदा।
खुदाताला प्रसादेन सर्वकार्यं फतह भवेत।

इस प्रकार हिन्दुओं को "बड़ी ईमानदारी" की शिक्षा दी गई, "महान ईमानदारी" से "महा मूर्ख" बनाया गया तथा "बे-ईमान ईमानदारी" से हिन्दुओं में मिल जुल कर खुले आम उन्हें "गैर-हिन्दू" बनाया गया है। हिन्दुओं को इस खुली हकीकत का भी ज्ञान नहीं है। वे अक्सिर धोखे और अंधेरे में रहे। शायद अब उसी से समझौता भी कर लिया है।

सो जिन को अपने सच्चे धर्म का भी ज्ञान नहीं हैं, उन्हें सच्चे इतिहास से क्या प्रयोजन? और आज परिस्थति यह है कि आज़ादी से पूर्व जो इतिहास पढ़ाया जाता था वह आर्य-अनार्य की बकवास को लेकर चलता था जो पढ़ाकर हिन्दुओं को बताया गया कि तुम्हारे कोई पूर्वज ही नहीं हैं। यदि कोई थे तो वे सब जंगली और असभ्य थे। वे जंगली आर्य हैं अथवा द्राविड़। तात्पर्य यह कि हिन्दू हैं ही जंगली लोगों की सन्तान। लेकिन वे तो थे विदेशी जिनको हम पर शासन करने आदि के स्वार्थ से, हिन्दुओं को अपनी ओर से बनाया हुआ इतिहास पढ़ाकर हमारी जातीयता की जड़ें खोखली कर गये। अंग्रेज़ गए तो आशा थी कि आज़ादी के बाद यह रंग बदल जाएगा। मगर ऐसा नहीं हुआ। गांधी-नेहरू की सेक्यूलर्ज़िम ने इन आशाओं पर पानी फेर दिया। और आज हिन्दू की पीढ़ी भी ऐसी जाकर बची है जो स्वयं भी अपने धर्म और संस्कृति को दफन करने के लिये तत्पर बैठा है। इस से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हिन्दू धर्म का रूप भी बहुत बिगाड़ा गया है और स्वयं हिन्दुओं ने ही बिगाड़ा है। आज हिन्दुओं के संस्कार, रीत-रिवाज, धर्म-कर्म, व्यवहार, मान्यताएं आदि अनेक बातें अवैदिक हैं। वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा व्याकरण ग्रन्थों को छोड़, अधिक प्रचलित ग्रन्थों में मिलावट है, वह भी स्वयं हिन्दू कहलाने वाले पंडितों ने की है। ८-२० हज़ार श्लोक का महाभारत आज एक लाख से भी अधिक श्लोकों का ढेर बन गया है। रामायण के प्रथम और अंतिम काण्ड तो हैं हीं बाद के। इसके सिवाय बाकी काण्डों में जो मिलावट है वह अलग। मनुस्मृति में इस समय अढाई हज़ार से अधिक श्लोक हैं, जब एक हज़ार वर्ष पूर्व की हस्तलिखित मनुस्मृति में केवल डेढ़ हज़ार श्लोक मिलते हैं। यही हाल गीता का है। उपनिषदों की तो गिनती ही नहीं। एक उपनिषद में इसलाम के समान मरने के पश्चात स्वग (बहिश्त) में हज़ारों हूरें (परियां) मिलेंगी लिखा है।[1] पुराणों में मिलावट का तो कोई हिसाब ही नहीं है। भविष्य पुराण में इसलाम, मुहमद तथा मदीना का वर्णन है। इन्हीं मिलावटी और झूठी-कल्पित बातों को लेकर विधर्मी तथा अंग्रेजी और विदेशी शिक्षा प्राप्त हिन्दू उस के सहारे स्वयं हिन्दू धर्म पर आघात करते हैं।

किसी को यह दया नहीं आती कि अपने धर्म में से यह कूडा कर्कट निकाल फेंके तथा अपने धर्म का सत्य रूप निखार कर आक्रमणों के प्रहारों से रक्षा करें, तो हमारी भी रक्षा होगी। क्यों कि "धर्मो रक्षति रक्षितः"। दयानन्द सरस्वती ने इन सब झूठी मिलावटी बातों का भाण्डा फोड़ कर हिन्दुओं को सचेत किया। केवल वेद की रक्षा करने तथा महता जताने के हेतु उसने "ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका" नामक एक महान ग्रन्थ की रचना की। परन्तु हुआ यह कि स्वयं उसके अनुयाइयों ने उस ग्रन्थ रत्न को पीछे की गेलरी में धकेल दिया। अब मज़ा यह हुआ है कि इस ग्रन्थ, जिस से यूरोप के अनेक विद्वान भी प्रभावित हुए, उस पर स्वयं हिन्दू भयंकर

(1) कल्याण, मासिक, [गोरखपुर] का उपनिषद अंक

प्रहार कर रहे हैं। बड़े बड़े लेखक (विद्वान) वेद, महाभारत, रामायण आदि अन्य हिन्दू साहित्य के लिये गलत और गलीज लिखते हैं, इसलिये कि यह खोज है। अमदावाद से प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक 'साधना' के दीपवली अंक में एक लेख छपा था "ऋग्वेद में बलात्कार", यह खोज है, जो वास्तव में है ही नहीं।

धार्मिम हिन्दू धन कमाने में अंधा है तो कौमी हिन्दू धर्म से अंधा हो चुका है। हिन्दू के लाखों रूपये सरकारी टैक्स वाले एक ही थप्पर से सर झुकवा कर ले लें, परवाह नहीं, परन्तु धर्म के उत्थान, गरीबों के भूखे पेट को सांत्वना देने के लिये वे ऐसा दिखाई देगा जैसे कि वह तीन दिन से भूख हड़ताल पर है। फिर ऐसे भूखे गरीब अथवा धर्म के नाम से पीड़ित विधवाएं ईसाई और मुसलमान न बनेंगे तो और क्या होगा, सिवाय आत्म हत्या के? शायद आज का युवक इस प्रकार के अपने मुरबी लोगों की करतूतें आखों से देखकर भी अपने धर्म पर से विश्वास खो चुका है और उससे विद्रोही होता जा रहा है। हिन्दू पैसे के बाद दूसरे स्थान पर परमात्मा को मानता है, वह भी किसी दलाल (संत फकीर आदि) के द्वारा। सच्चे धर्मका तो उसके सामने कोई प्रश्न ही नहीं है, क्यों कि हिन्दू का धर्म क्या है वह तो उसे स्वयं भी मालूम नहीं है। इसलिये वह धन के धमाल (धमार) पर धर्मात्मा भी बन जाता है। परमात्मा तो उसे वैसे ही Fair Price पर मिल जाता है। मनु महाराज ने सत्य लिखा है कि "धर्मो हन्ति हन्त:" अर्थात जो सच्चे धर्म की हानि करता है धर्म उसे बरबाद कर देता है; और धर्मो रक्षति रक्षित:" अर्थात जो सच्चे धर्म (वेद धर्म) की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है। आज भारत में रह रहा मुसलमान हिन्दुस्तान से अपना भाग पाकिस्तान छीन लेने के बाद भी हिन्दुओं से अधिक सुखी क्यों है? इसलिये कि उसे अपना मजहब (चाहे वह कैसा भी है) धन से अधिक प्रिय है। हिन्दुस्तान बरबाद हो जाये उस से उसे कोई मतलब नहीं। उसका मजहब जिन्द: है तो वह अपने को बहिश्त में समझता है। किन्तु हिन्दू के लिये ऐसी बात नहीं है।

यह आजादी के बाद का तीस वर्षों का इतिहास बड़ा गंभीर रूप धारण कर चुका है। जो कुछ तुर्क-मुगुल काल में न हो सका तथा सौ वर्षों के अंग्रेजी शासन में नहीं हुआ उस से बहुत अधिक इन तीस वर्षों में हो चुका है। इतिहास का निर्णय इस विषय में क्या है, वह हम जानते हैं, और वह बराबर हो भी रहा है, लिख नहीं सकते। इतिहास ने किसी को क्षमा नहीं किया है, हिन्दुओं को भी नहीं करेगा। इतिहास को हिन्दुओं से निर्णय करना ही है। यदि हिन्दू सचेत न हुआ तो वह इस बेखबरी में ऐसी लात मार देगा कि हिन्दू को शान्ति से बैठना भी कठिन हो जाएगा।

ईश्वर की माया निराली है, कभी असाधारण भी हो सकता है, ऋषियों की भूमि है, हिन्दुओं के न सही उन ऋषियों के महान और शुभ कर्म इस भरत भूमि को बचा सकें तो कोई आश्चर्य

नहीं। निराशा की भी बात नहीं है। इसलिये हिन्दू जब तक सच्चा हिन्दू है तो वह सच्चा धर्म निर्पेक्ष (सेक्यूलर्सिट) भी है और यदि धर्म का कच्चा है तो सेक्यूलर तो:क्या सच्चा देश भक्त भी नहीं हो सकता। हिन्दुओं को सेक्यूलर नादान नहीं परन्तु सच्चा धर्मी दानिशमंद बनना पड़ेगा, जो बात वह सदियों के अमानुष आक्रमणों में खो चुका है। क्यों कि इस सेक्यूलजिंम ने एक ओर हिन्दू-मुस्लिम एकता को बड़ी हानी पहुंचाई है तो दूसरी ओर भारतीय उन्नति सेोर संस्कृति के सामने आड़े खड़ी है। इसलिये जब तक इस सेक्यूलजिंम का नाजायज पूजा पाठ बंद न होगा तब तक न तो देश में शांति स्थापित होगी न ही सच्ची उन्नति होगी। Communal लेबल से बग़ावतें होती रहेंगी और देश की अखण्डता भी खतरे में रहेगी। सच्च तो यह है कि भारत जैसी जातीवाद शांति (Communal Harmony) संसार में कहीं नहीं मिलेगी, यह तो केवल चंद राजनैतिक गुंडों की कृपा है जो विदेशी 'दान' पर पलते हैं अथवा कुरसी-भक्तों की दया पर।

सिन्ध का इतिहास!

हर जाति अथवा देश को अपना इतिहास है, भारत का तो है ही महान इतिहास। बावजूद इसके भारत का सच्चा, सुन्दर और शुद्ध आर्य इतिहास संपूर्ण नहीं लिखा गया है। हिन्दुओं की कमज़ोरी यह है कि उन्हों ने अपना एक धर्म ग्रन्थ, एक ईश्वर, तथा एक जाति अथवा भाषा भी निश्चित नहीं की है। यद्यपि हर हिन्दू वेद को महान ग्रन्थ स्वीकार करता है वह भी शुद्ध रूप में नहीं। आज के हिन्दू का भी दोष नहीं है। क्यों? भारत में अनेक विदेशी और विधर्मी हजारों वर्षों से आते रहे, आश्रय पाकर, यहीं आर्यों में मिलकर हिन्दू बन गये। उनके अपने संस्कार जहां से वे आए थे वहां की रस्में रिवाज़, विचार जो सब साथ लाए वे ऐसे शीघ्र मिटने वाले तो नहीं थे। वे यहां के मूल आर्य-वैदिक धर्म में मिलाते गए। न केवल यह परन्तु भारत के महान संस्कृत ग्रन्थों को न समझ कर उसके उल्टे अर्थ भी करने लग गए। यहां रह कर अंत में वे पंडित भी बने तो महा पंडित भी बन गए तो संस्कृत के आचार्य भी। किन्तु मूल आर्य वैदिक गहराई को वे पा न सके। उन्हों ने भी वेदार्थ किया और ऐसे अशुद्ध गलत तथा घृणित जैसा यूरोप वालों ने भी किया है। क्यों कि वे वेदज्ञ होने की कोटि के योग्य ही नहीं बने थे तो लगे वेदार्थ करने। मेट्रिक पास विद्यार्थी Ph. D. की पुस्तक को क्या समझेगा और कैसे उसको समझा सकेगा? आर्य-हिन्दू स्वयं भी इतने शास्त्र अभ्यासी नहीं रहे। उसे जो भी संस्कृत तथा धर्म के नाम से मिला वह आखों पर रखते गये। फल स्वरूप वेद की महिमा घट गई। किसी दूसरी पुस्तक को भी 'पांचवां वेद' कहा गया जो वेदों के लिये अपमान का शब्द हैं, तो वह भी स्वीकार करते गये। वे ही अनुवाद यूरोप वालों को भी प्राप्त हुए, जिन्होंने उनका और उल्टा अर्थ कर अपना स्वार्थ सिद्ध किया। इसी दौर में महाभारत को भी मूर्खता वश 'पांचवां वेद' कहा गया, यही नहीं महर्षि वेद व्यास को ही वेदों का बनाने वाला माना

गया। इस धर्मज्ञान-अज्ञान के दौर में भी हजारों वर्ष बीत गए। अनाचार शीघ्र और सरलता से फैलता है, यहां भी ऐसा ही हुआ। वेद क्या हुआ, हिन्दुओं ने ही उसे कुछ का कुछ बना दिया। पुराणों में अश्लील, गंदी, बेहूदी, जलील बातें भरी गईं, भगवान कृष्ण को तो बिलकुल एक पूरे व्यभिचारी के रूप में प्रस्तुत किया गया। अज्ञान के दौर का भक्ति-मार्ग गलत नमूने से गालिब पड़ गया। वीचार धारा, प्राचीन शास्त्रों की शुद्ध बातें सब अशुद्ध होते गये। प्राचीन शास्त्रों में कहीं भी शूद्रों का नीचा स्थान अथवा अनादर नहीं लिखा है। गृहस्थ को आदेश है कि पहले अपने सेवक को पेट भर खाने को दें पीछे वे स्वयं खाएं। अपराध में भी यदि वही अपराध शूद्र और ब्राह्मण करें तो ब्राह्मण को अधिक दण्ड मिलना चाहिये, यह मनु महाराज का विधान है। धन का संग्रह करना पाप परन्तु कमाने को शुभ कार्य कहा गया है, बशर्ते कि उसका बटवारा अदर्शी ढंग से होना चाहिये। रूसकी कम्यून्जिम इसी आर्य धर्म शास्त्रों की शिक्षा पर आधारित है। लेनिन के लिखितों और आर्य उपदेशों को देखें तो यह सब स्पष्ट दीखेगा। अच्छी बात यदि निरन्तर नियंत्रण में है तो ठीक है नहीं तो शीघ्र बिगड़ जाती है। आजादी और निरंकुशता आदि मनुष के बिगाड़ने के बड़े कारण हैं। पाबन्दी-बंधन हर बात और हर स्तर पर आवश्यक है। इस लिये यदि शूद्रों से बुरा व्यवहार, गरीबों को भूखा मारना, धन को भंगियों की विष्ठा के समान एकत्रित करना आदि सब धार्मिक आज्ञाएं भ्रष्ट की गई हैं तो इसमें धर्म शास्त्रों का क्या दोष? यदि भारत की कम्यून्जिम बाकी यह जाकर बची हैं कि गरीब अनपढ़ लोगों को व्यर्थ अपने स्वार्थ के लिये भड़का कर इन्कलाब के नाम पर देश की सम्पति को नाश करना, विधर्मियों और विदेशियों के इशारे पर नाजाइज हरकतें करके देश के उद्योगों का नाश कर देश में महंगाई बढ़ाना ही है तो इस में मूल रूसी कम्यून्जिम का क्या दोष? यदि यह ५०-१०० वर्षों की हलचल भारत में कम्यून्जिम का अर्थ केवल देश हानि की करतूतों के बराबर जा बची है तो ये हजारों वर्षों के अटूट धार्मिक नियम विधर्मियों और विदेशियों के प्रभाव के कारण यदि व्यवहार रूप में बिगड़ गये तो इसमें प्राचीन धर्म-शास्त्रों का क्या दोष!

देखिये! गंगा भारत की पवित्र नदी है जिसका जल निर्मल है। हिन्दू उसे वर्षों तक, दूर के प्रदेशों में संभाल कर रखते हैं। तथा धार्मिक दृष्टि से देखते हैं जब कि मुगल बादशाह उस की निर्मलता और शुद्धता के कारण उसका प्रयोग करते थे। गंङ्गा हिमालय से निकल कर सैंकड़ों मील की यात्रा करती वाराणसी तक आती है तो उसका जल शुद्ध और निर्मल रहता है। इस के पश्चात जैसे जैसे उसमें अन्य नदी नाले आकर समिलित होते है वैसे वैसे गंङ्गा अपना प्रभाव छोड़ना प्रारंभ करती है और कलकता में हुगली के पास तो साधारण जल जैसी बन जाती है। क्यों? क्यों कि जैसा ऊपर लिखा है, नियम है कि शुद्धता किसी हद तक स्थर रहती है। किसी भी अच्छी बात में थोड़ी सी भी खराबी मिल गई अथवा कमजोरी आई तो वह केवल

दंत कथा होकर रह जाती है। अमृत में केवल एक बूंद विष मिलाने से सारा अमृत विष समान बन जाता है।

ठीक इसी प्रकार महान आर्य जाति, आर्य ईश्वरीय धर्म हजारों लाखों वर्षों तक शुद्ध और सुरक्षित रहा। हजारों वर्षों के पश्चात जनसंख्या बढ़ी, नई आबादियां खड़ी हुईं, संसार के कोने कोने में मनुष्य-आर्य लोक बस गये। हजारों वर्ष उन्हें भी इस प्रकार बीत गए। मूल वेद के केंद्र भारत से छिन कर अलग होने से Main Current से Disconnect हो गए। प्रतिदिन का स्वाध्याय अभ्यास और रियाज़ रहा नहीं, बिगाड़ आता गया। बिलकुल पराए, न जाने क्या बन गये। हज़ारों वर्षों के पश्चात वे अपने पितृ भूमि भारत में आने लगे, थोड़े ही सही मगर आते रहे (किसी प्रकार कुछ देशों में प्राकृतिक स्थतियां भी ऐसी बनी के वे विवश होकर लौट आए)। यहां वापस आर्यों में मिलते रहे। बाद में उत्तर से शक, हूण इत्यादि, पश्चिम से अपनी सब पराई हो चुकी जातियां बिगड़े रूप और नए नामों से आकर भारत में मिलकर इस आर्य सरोवर को हिन्दू बना दिया। देश के कोने कोने में फैलकर समाकर हिन्दू बन गए। अवस्था यह हुई कि शकों के शाकी ब्राह्मण और क्षत्री, ईरान के मगी ब्राह्मण तो अरब के हुसैनी ब्राह्मण भी हिन्दुओं में मिल क्या गए अभी तक विद्यमान हैं। एक ब्राह्मण जाति है जो मूलतः यहूदी हैं किन्तु यहां एक प्रसिद्ध नाम के ब्राह्मण हैं। निकट समय के फ्रांस के "जजुवेंदी" नाम के ब्राह्मण भी भारत में हैं। अब ज़रा सीने पर हाथ धर कर ईमानदारी से कहें कि ऐसे ब्राह्मण किस प्रकार के वेदिक धर्म को स्थर रहने देंगे? और ऐसे तथाकथित "भृष्ट ब्रह्मणों" ने ही आर्यों के धर्म ग्रन्थों में उपरोक्त मिलावटें की हैं। मनुस्मृनि तक जन्म से ब्राह्मण-शूद्र का झमेला तथा छूआ छात का कलंक भारत पर थोप दिया है। मूर्ति पूजा, श्राद्ध, फलित-ज्योतिष जैसे कार्य इन्हीं की देन है। इन्हीं के मेल मिलाप से बौद्धमत भृष्ट हो गया। महायान-हीनयान इसी का फल है। वाममार्ग, चोली मार्ग जैसे व्यभिचार पूर्ण पन्थ इसी की उपज हैं। हिन्दुओं को मुसलमान बने रहने देने में तथा मुसलमानों को म्लेच्छ कहकर हिन्दुओं से अलग करने में ऐसे तथाकथित "पथ-भृष्ट ब्राह्मण" ही कारण हैं। इसलिये हर गंदी बात को प्राचीन आर्य वेदिक धर्म से जोड़ना कहां तक न्याय संगत है?

बिलकुल ठीक इसी प्रकार गंङ्गा रूपी आर्य नदी आज उन विभिन्न विदेशी कौमों जैसे गंदे नदी नालों से मिल जुल कर आज हिन्दू रूप में उपस्थित है जिस के न नाम का पता है न ही धर्म का। यद्यपि इसमें प्राचीन आर्य वैदिक तत्व अवश्य है। किन्तु निकट इतिहास के वहिशी आक्रमणों, कत्ले-आम, तथा सामाजिक विध्वंस ने इन हिन्दुओं के भी धर्म आदर्श को हिला दिया है। शेष, बाद की अग्रेज़ी शिक्षा ने उन के हड्डी-मांस हिन्दू रहने देकर बाकी सब ईसाई बना दिया है। ऊपर से आज़ादी के पश्चात की सेक्यूलर शिक्षा ने हिन्दू को हिन्दू तो क्या कुछ

का कुछ बना दिया है।

इस प्रकार आर्य-हिन्दुओं का मूल रूप महान धर्म-ग्रन्थ वेद होते हुए भी उस के भ्रष्ट और घृणित अर्थ करके फैलाये जा रहे हैं। अंग्रेज गये मगर वेदों सम्बंधी ऐसा विष फैला गये हैं कि स्वयं हिन्दू अब उन से अग्रसर होकर वेदों को और भी गंदे रूप में प्रस्तुत करते आ रहे हैं! तो नई पीढ़ी (Generation) ने वेदों को न मालू क्या समझ कर उसे एक साधारण धार्मिक ग्रन्थ मान रखा है। दयानन्द महिष वेदों का उद्धारक होकर आया उसने इस कार्य को जारी रखने के लिये आर्य समाज जैसी महान संस्था को जन्म दिया. मगर सौ वर्षों के पश्चात अब वह दीपक भी धीमा होने लगा है। क्यों कि आर्य समाजी लगभग समाप्त हो चुके अथवा हो रहे हैं, बाकी आर्य समाज के सभासद और मन्दिर खुलकर एक पंथ सा रह गया है. तो अब वेदों का महान कार्य कौन करेगा ? इसलिये वेदों को दूसरे मज़हबी किताबों के समान इतिहास ग्रन्थ मानकर, सच्ची खोज को दफनाया जा रहा है। सत्य तो यह है कि अब इस कार्य में भी स्वयं हिन्दू ही अग्रसर हैं। इतिहास लेखकों के पास वेद को छोड़कर दूसरा माल ममाला है ही नहीं जिस पर प्राचीन इतिहास की नींव रख सकें। वेदों के सिवाय जो मूल्यवान सामग्री पुराणों और संसार के इतिहास में बिखड़ी पड़ी है वह सब का सब एकत्रित करना और समझना संभव नहीं है, क्यों कि यह जीवन भर तथा सख़्त लग्न का काय है। वह किसी से होता नहीं। हर एक कुछ पुस्तकें पढ़ कर कोई एकाध नई चीज ढूंढ कर बाकी रेज़गारी का माल भरकर पुस्तक लिख मारता है, काम चल रहा है। और अवस्था यह है कि एक साधारण युवक भी ऊट पटांग विषय पर थीसिस लिखकर M.A. अथवा Ph. D. की डिग्री प्राप्त कर अपने को धन्य मानता है। पहले खोज ऐतिहासिक विषयों पर होती थी। अंग्रेज सभ्य कौम थी जिसे धीरे धीरे ज्ञान की महानता का अनुभव होना गया, वैश्यों से ब्राह्मण उत्पन्न करने लगे तो प्राचीन एतिहासिक खोज से भण्डार बना दिये। संसार के बड़े बड़े पुस्तकालय अमूल्य ऐतिहासिक रत्नों से भर गये। मगर मनुष आलस्य प्रमाद का घर है। धीरे धीरे सब धीमा (ठंडा) पड़ गया। कदरदान रहे नहीं, कौन कष्ट करे और कैसे करे। अंग्रेजी काल का Standard ऊंचा था, अब गिड़ रहा है। आज थीसिस क्या हैं मसखरों के टोप हैं। समय आएगा कि कोई थीसिस इस विषय पर लिखेगा कि "हजामत करने का कारोबार किस प्रकार उन्नति कर सकता है", और यह लिखने वाला भी Ph. D. बन जाएगा।

सो अंग्रेजी काल में जो भारतीय इतिहास की अमूल्य खोज हुई उसने भारती इतिहास के भी भण्डार भर दिये; लेकिन विशेष सिन्ध के इतिहास पर किसी ने नहीं लिखा। क्यों कि सिन्ध का कोई सिन्धी गंभीर तथा इतिहास का जानकार हुआ ही नहीं है। अपने के सिवाय इस विषय पर और कोई-क्यों लिखे। ऐसे तो "Sind Gazetteer" और "Antiquities of

Sind" इत्यादि जैसे कुछ सुन्दर ग्रन्थ अंग्रेज़ अधिकारियों के लिखे हुए हैं। किन्तु प्राचीन-मूल इतिहास को किसी ने छुआ नहीं है।

चालीस वर्षों से मेरा इतिहास से सम्बंध रहा है परन्तु उसमें भी भारत और संसार का इतिहास ही मेरा विषय रहा है। इसलिये यह जो कुछ लिखा है वह सिन्ध के इतिहास की रूपरेखा मात्र है जो 'कुछ भी न' से बहुत बेहतर है। विद्वान Scholar तो नहीं हूँ किन्तु इतिहास की हर शाख पर मैं ने अभ्यास-स्वाध्याय अवश्य किया है। हिन्दी भाषी न होने के कारण वह 'स्फुर्ति' तो नहीं भर सका हूं। फिर भी जो कुछ लिखा है वह भारतीय तथा संसार के इतिहास के लिये भी सहायक होगा। इस से पूर्व मैंने तीन पुस्तकें भारतीय इतिहास पर लिखी हैं बाकी चौथी को रद्द करना पड़ा। इन तीनों में जो कुछ भी मैं ने दिया है उसके लिये "इतिहासकार" होने का दावा न करते हुए भी अभिमान से कह सकता हूं कि भारत का शुद्ध और सच्चा इतिहास केवल इसी प्रकार लिखा जा सकता है, नहीं तो केवल धोखा है। और ऐसा धोखे भरा इतिहास ही विद्यार्थियों को भी पढ़ाया जा रहा है। अनेक भारती विद्वानों को जानता हूं, विदेशी विद्वानों का भी ज्ञान है, किन्तु भारती विद्यार्थियों को यदि अपने देश और जाति के लिये सन्मान उत्पन्न कराना है तो वह केवल अपने शुद्ध इतिहास से। इसलिये यह भी अभिमान के साथ कह सकता हूं कि यदि मेरे तीनों पुस्तकें हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद करा कर भारती विद्यार्थियों को पढ़ाया जाय तो केवल २५ वर्षों में भारत की काया पलट जाएगी। बावजूद इसके कि मै इतिहासकार नहीं हूं, परन्तु मैं ने "इतिहासकार" के कर्तव्य यथा संभव पूरे किये हैं। मुसलमानों का भी शुद्ध रूप ("हिन्दूस्तान" में) दिया है। कहीं पक्षपात नहीं दिखाई देगा। सत्य यदि बुरा लगता है तो दूसरी बात है, वह तो मैं ने सब के लिये भी लिखा है।

इस इतिहास में मैं ने अपने जीवन के तीस वर्ष का परिश्रम लगाया है। यह केवल प्राचीन काल तथा प्रथम भाग है। दूसरे भाग (यदि प्रकाशित हो सका) में बाकी इतिहास होगा जिसमें सिन्ध की भौगोलिक स्थति, भारती लोक-साहित्य में सिन्ध, प्राचीन जातियां, प्राचीन नगर, प्राचीन व्यक्ति और विद्वान, रस्म रिवाज, खेल, शिल्प, दस्तकारियां, व्यापार, खाद्य पदार्थ, वेश, राग-संगीत, साज, लोक गीत, दंत कथाएं, पशु पक्षी, आभूशण, भाषा, लिपि, कला, भारत के प्रांतों से सम्बंध, व्यापारी मार्ग इत्यादि विषयों का समावेश होगा।

किस अध्याय में क्या लिखा है उसके विवरण देने की आवश्यक्ता नहीं है। पुस्तक ऊपर से देखने से नहीं आद्योपांत पढ़ने से ही इसका महत्व जाना जा सकता है। यद्यपि मैं ने सब सक्षेप में ही लिखा है।

छापे की बहुत भूलें हैं, जानता हूं, स्वभाविक था, क्षमा याचना की भी आवश्यक्ता नहीं।

पुस्तक में मैं ने दो बातों पर अधिक लिखा तथा बहस किया है। एक-वेद दूसरा सृष्टि

उत्पति तथा आर्य-द्रावड़। आज सौ-डेढ सौ वर्षों की तूफानी हलचल और अनेक विवादों के पश्चात भी अवस्था यह है कि कोई भी विद्वान वेदकाल तथा आर्यों के भारत आगमन आदि बातों पर सहमत नहीं है। हरेक कोई न कोई नई कल्पना खड़ी कर दूसरे को काटकर चुप हो जाता है। श्री आर० एन० डांडेकर ने ठीक लिखा है कि "ऋग्वेद कालीन आर्यों का भारत प्रवेश से गहरा सम्बंध है। इस विषय में अनेक कल्पनाएं की गई हैं। परन्तु अनुभव ऐसा है कि प्राय: एक निर्णय दूसरे निर्णय को स्वत: काट देता है"।[1]

फिर ऐसे गपोड़ों पर कैसे विश्वास किया जा सकेगा तथा किस आधार पर ऐसा कहा जा सकेगा कि कार्य बाहर से आए, जब स्वयं कहने वालों को ही अपने गपोड़ों पर विश्वास अथवा सहमति नहीं है? इसके सिवाय यह भी सोचने की बात है कि यदि आर्य लोग मध्य एशिया से आए जो द्रावड़ों से अधिक सभ्य थे तो उन के पुरखा मूल में कहां रहते थे और मूल में कहां से आए? इस पर किसी ने विचार ही नहीं किया। आदि के स्रोत तक कोई पहुंचा ही नहीं क्यों कि वह कार्य केवल ब्राह्मणों का है। इस लिये यह बात सर्वथा निर्मूल समझनी चाहिये। इस प्रकार मानने के पश्चात ही किसी ठीक निर्णय पर पहुंचा जा सकेगा. जो बात हमने स्पष्ट लिखी है कि "आर्य लोग बाहर से नहीं आए", परन्तु सृष्टि उत्पत्ति के मूल पुरूष हैं. जैसा हमने सिद्ध किया है।

दूसरी बात कि ईसाई लोग सृष्टि उत्पति ४००४ ई० पू० मानते हैं। इसलिये संसार की हर प्राचीनता को वे इस घेरे में बंद करते हैं। मजहबी तंग दायरा है। असल में यहूदियों का ही यह ४००४ वर्षों का विश्वास था, जो बाद में ईसाइयत में घुस गया। आर्क बिशप अशर (Usher) ने उसे साधन बना लिया जहां से यह बात फैली है।[2]

---

(1) "Scholars are generally of the opinion that the question of the age of Rigveda is closely related to that of the entry of the Aryans into India,......Geological, Astronomical and religio-historical considerations also played their own part in this engrossing field. The result of all this is the enunciation of a large number of theories...... Indeed one is sometimes inclined to feel that in this veritable plethora of hypothesis, interesting as they might be, one hypothesis would easily cancel the other." (Progress of Indic Studies, P. 33_34)

(2) Archbishop Usher's famed chronology, which so long dominated the ideas of man. (Historians History of the World [1908], Vol. 1, P. 62)

यह बात हम कहते हैं ऐसा नहीं है। क्योंकि निर्मूल तो है ही और विज्ञान के विरुद्ध भी, इस लिये स्वयं ईसाई विद्वान भी इस तंग दायरे से तंग आ गये थे। श्री सेस (A.H. Sayce) ने अपने एक लेख "Antiquity of Civilized Man" में लिखा है "परन्तु जहां तक मनुष्य का सम्बंध था, इस का इतिहास अभी तक बाईबल के लिखे पृष्ठों पर सीमित था। पृथ्वी पर आदि मनुष की उत्पति सम्बंधी यह पुराना विचार आज भी उन लोगों में व्याप्त है, जहां हमें उसके होने की सब से अधिक आशा करनी चाहिये, और समझे जाने वाले गंभीर इतिहास लेखक प्राचीन इतिहास के तिथियों की प्राचीनता को कम करने में यत्न शील रहते हैं...... मनुष की इस पीढ़ी के लिये जो इस विचार में पली कि ईसा से ४००४ वर्ष पूर्व अथवा उस के आसपास सृष्टि उत्पन्न की जा रही थी, यह विचार कि 'मनुष स्वयं एक लाख वर्ष से पुराना है', विश्वास के अयोग्य और बुद्धि के विरुद्ध था"।[1]

वेद के विषय में तथा Classical संस्कृत के विषय में आधुनिक विद्वानों की किस प्रकार की योग्यता है उस के कुछ प्रमाण हमने दिये हैं। इसके सिवाय श्री रामशङ्कर भट्टाचार्य जी के लेख "वेदवाणी" मासिक, (बहालगढ़) में "आधुनिक शोध-विशेषज्ञों का संस्कृत ज्ञान" शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित हो रहे हैं जो द्रष्टव्य हैं।

यह सब इसलिये होता है क्योंकि आजकल संस्कृत जानने वाला प्रत्येक व्यक्ति वेद पढ़ने और उसके अर्थ करने में टांग अड़ाता है, जो अधिकार उनको नहीं है। और जैसा हमने लिखा है "वेदार्थ" करने का अधिकार केवल ऋषि तुल्य पडित को है, ऐरे गैरे को नहीं। हम तो यह भी मानते हैं कि मूल वेद पढ़ने का अधिकार भी प्रत्येक मनुष को नहीं है। वे योग्य पडितों के अर्थ पढ़ सकते हैं। ऐसा कैसे हो सकता है कि प्राथमिक का विद्यार्थी कालेज की पुस्तकें समझ सके। हमें लगता है कि प्राचीन आचार्यों ने वेद पढ़ने पर प्रतिबंध इसी कारण लगा रखे थे। हीरा

(1) But as far as man was concerned, his history was still limited by the dates in the margins of our Bibles. Even today the old idea of this recent appearance still prevails in quarters where we should least expect to find it and so-called critical historians still occupy themselves in endeavouring to reduce the dates of this earlier history...... To a generation which had been brought up to believe that in 4004 B.C. or thereabouts, the world was being created the idea that man himself went back to 100,000 years ago was both incredible and inconceivable." (Journal of the Royal Anthropological Institute of Great Britain and Ireland, Vol. 60, July-December 1930)

परख, योग्यता के पश्चात ही कोई उसका मूल्य समझ सकता है। वेद भी इसी प्रकार है क्यों कि वह ईश्वरीय ज्ञान है।

कोई व्यक्ति केवल विवाह न करने के कारण ब्रह्मचारी नहीं बन सकता न ही कोई व्यक्ति केवल गेरूआ वस्त्र धारण करने से संयासी बन सकता है। इसी प्रकार कोई केवल संस्कृत जानने से 'वेदज्ञ' अथवा 'वेदार्थ' करने का अधिकारी नहीं हो सकता। यह सब आज के ज़माने की अंधी और मूर्खता भरी परिपाटी जसी हो गई है। आज के अंधकार वाले युग में केवल स्वामी वृजानन्द और उसके शिष्य दयानन्द सरस्वती ही इस के अधिकारी थे। दयानन्द ने तो वेदार्थ करने की रीति भी बता दी। उस रीत से वेद की व्याख्या करने वाले कुछ पंडित अब भी विद्यमान हैं। जैसे कि आचार्य विश्वश्रवा, युधिष्ठर मीमांसक इत्यादि, इस प्रकार कुछ और भी हैं। अभी अंग्रेज़ी में स्वामी सत्य प्रकाश तथा प० सत्यकाम विद्यालङ्कार का किया हुआ अनुवाद भी छपा है जो भी विशेष देखने योग्य है।

इसलिये जब तक वेद को ईश्वरीय ज्ञान समझकर तथा सृष्टि उत्पति और मनुष्य (आर्य) जाति, आदि सृष्टि की जाति, जो सारे संसार में फैली है जैसा कि हमने लिखा है, ऐसा समझ कर खोज नहीं की जायगी, इतिहास का कोई भी निर्णय स्वीकार्य नहीं होगा। ऐसे ही निरर्थक वाद विवाद होते रहेंगे, बनेगा कुछ भी नहीं। परन्तु लगता ऐसा है कि भारत में अब केवल वेद की पूजा ही होनी रहेगी बाकी उसके स्वाध्याय तथा फैलाव का कार्य विदेशों में और विदेशी विद्वान ही करेंगे।

हमारी मान्यताएं !

हमने जो कुछ इस इतिहास ग्रन्थ में लिखा है उस अनुसार हमारी मुख्य मान्यताएं इस प्रकार हैं, जिस पर हमारे इस सारे विवेचन की नींव है :–

१– इस सृष्टि को परम पिता परमात्मा ने उत्पन्न किया जो सर्वशक्तिमान इसका नियन्त्रता है। वही ब्रह्मा, विष्णु और महेश है। वह परमात्मा, हम आत्माए तथा यह प्रकृति सब अनादि हैं। इसका पार पाना असंभव है। विकासवाद सत्य ज्ञान के अभाव का एक वाद है जो निराधार भी है।

२– इस सृष्टि की कुल आयु चार अरब वर्ष के लग भग है, जिस में से आधा समय बीत चुका है। इस में विज्ञान ने अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।

३– मनुष्य की उत्पति को १२ करोड़ वर्ष बीत चुके हैं अर्थात इस पृथ्वी पर मनुष्य इतने समय से विद्यमान है। आज का विज्ञान इस गणना के समीप आ रहा है। इस सृष्टि की आयु कुल १४ मन्वंत्र है। इस के चौथे मन्वत्र में सूर्य–चन्द्र पृथ्वी स अलग हुए जिसे बाईबल में चौथा दिन कहा गया है। सातवे में मनुष्य की उत्पति हुई और सृष्टि उत्पति का कार्य सम्पन्न हुआ जिसे ही बाईबल में सातवें दिन God का कार्य पूरा होने पर विश्राम करना लिखा है। बाकी १४वें

मन्वंत्र के अंत में इस सृष्टि की प्रलय भी होगी इसी को कुरान में १४वीं शताब्दी के अंत में क़यामत होना कहा गया है।

४- मनुष्य उत्पति हिमालय के पश्चिम, काश्मीर के पूर्व तथा तिब्बत के समीप भारती भूमि पर हुई इसलिये कि यही भाग जल से प्रथम बाहर आया जो मनुष्य के रहने योग्य हो चुका था। वह मनुष्य ही आर्य जाती था। इसके सिवाय आर्य-अनार्य (द्रावड़) नाम की कोई जाति भेद नहीं है।

५- मनुष्य को इस संसार में सुव्यवस्थित अपना जीवन कार्य चलाने के लिये ईश्वर ने ज्ञान रूपी भण्डार दिया जिसका नाम है वेद। इस समय संसार में जो भी ज्ञान-विज्ञान व्यवहार में है उस सब का आदि मूल बीज रूप में वेद में विद्यमान है।

६- उस ईश्वरीय ज्ञान वेद को समझने के लिये, ईश्वर ने मनुष्य को भाषा का ज्ञान भी दिया जो भाषा भी वैदिक अथवा वर्तमान में संस्कृत कहलाती है। इसी से संसार की सब प्रमुख भाषाओं का जन्म हुआ है।

७- वह मनुष्य-आर्य जाति जब इस भूमि पर बहुत बढ़ गई तब वह संसार के दूसरे भागों में भी फैल गई। आज के संसार का प्रत्येक व्यक्ति मूलतः उस मूल आर्य जाति का ही अंश है। जल वायु के कारण उसका रूप-रंग चाहे कुछ भी हो गया हो अथवा भाषा बिगड़ गई हो, मगर है मूल में आर्य जाति तथा वेद भाषा की संतान।

परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि मैं इन सब बातों पर इस पुस्तक में विस्तार से लिखूं। क्यों कि यह सिंध का इतिहास है न कि संसार का इतिहास। फिर भी यथा संभव मैं ने इन सब पर प्रकाश अवश्य डाला है, इसलिये कि इन सब बातों का सम्बंध सिंध के इतिहास के साथ भी है। जैसे कि वेद में इतिहास, वेद के सप्त सिन्धु से हिन्द, हिन्दू, इन्डया, मोहनजो दड़ो की आयु केवल ६००० वर्ष क्यों, वेद ईश्वरीय ज्ञान किस प्रकार, आर्यों का संसार में फैलाव इत्यादि बातें ऐसी हैं जिन पर आवश्यक प्रकाश डाला गया है। यद्यपि यह मेरा विशेष अध्ययन का विषय है और मेरे पास इस विषय की प्रचुर मात्रा में सामग्री है।

मैं इतिहासकार नहीं अपितु इतिहास प्रेमी अवश्य हूँ। मैं ने लगभग दो हजार पुस्तकें देखी-पढ़ी हैं। इसलिये जो कुछ लिखा है अथवा मानता हूं उसके पीछे मेरे लंबे स्वाध्याय का बल अवश्य है। मेरे विश्वास छः दिशाओं से पूरे प्रमाणों से सुरक्षित हों ऐसा मैं ने प्रयत्न किया है। फिर भी मेरी एक बात भी आज की मान्यताओं से मेल नहीं खाएगी, सब की सब सर्वथा विपरीत विचार धारा की हैं, इसलिये मेरा विश्वास और भी दृढ है कि यदि दुराग्रह न किया जाय तो जो सारा ढांचा मैं ने प्रस्तुत किया है वह इतिहास का काया कल्प कर देगा। लेकिन सत्य यह है कि दुराग्रह के कारण हमने अपने धर्म से भी हाथ धो रखे हैं तो स्वतंत्रा के धोखे में

परतंत्रता का सुन्दर और चमकदार 'Necklace' भी पहिन रखा है, जो हमें केवल 'आत्महत्या' में सहायक हो सकता है जिसकी ओर हम अग्रसर हो रहे हैं। अपने धर्म और संस्कृति का शत्रु "राजनैतिक मूर्ख" होता है, 'देश भक्ति' का लेबल लगाकर वह केवल 'Slow Poison' का सेवन करता रहता है। निकट समय में हमने केवल यही देखा है और देख रहे हैं। हमें दयानन्द जगाए अथवा विवेकानन्द, सावरकर सचेत करे अथवा लाजपतराय, हम सब को 'मुर्दाबाद' करने वाले हैं। इसलिये इतिहास से भी हमने इसी प्रकार खिलवाड़ कर रखी हैं। इसलिये ही मैं ने ये ऊपर के दो शब्द लिखे हैं। वर न भूमिका में इन शब्दों की आवश्यकता नहीं थी।

मैं हिन्दी भाषी नहीं हूं इसलिये भाषा में सौष्ठव तथा परिपक्वता का न होना तथा व्याकरण और उच्चार की अशुद्धियों का होना स्वाभविक है इसलिये क्षमा प्रार्थना का अधिकारी नहीं हूं। केवल शुद्ध हृदय से और दुराग्रह का त्याग कर इस पुस्तक को पढ़ने की प्रार्थना कर सकता हूं। मैं आर्य_हिन्दू परिवार का हूं यह मेरा सौभाग्य है, बाकी पुस्तक केवल एक साधारण मनुष्य होने के नाते बिना किसी पक्षपात के लिखी है। किसी की मान्यता के प्रतिकूल है तो वह केवल सरल स्वभाव से विचार करने पर अनुकूल अवश्य हो सकती है, ऐसा मेरा विश्वास है।

सईजपुर बोघा (अहमदावद) भवदीय
३-११-१९८० गगाराम सम्राट्

● **Shri Pococke says:-**

"Now the whole of this society in Greece, civil and military, must strike one as being eminently Asiatic, much of it specially Indian. Such it undoubtedly is; and I shall demonstrate that these evidences were but the attendant tokens of Indian Colonisation with its corresponding religion and language. I shall exhibit dynasties disappearing from Western India, to appear again in Greece; Clans, whose martial fame is still recorded in the faithful chronicles of North Western India, as the gallant bands who fought upon the plains of Troy; and, in fact, the whole of Greece from the era of the supposed Godships, Poseidon and Zeus, down to the close of the Trojan war, as being Indian in language, sentiment and religion and in the arts of peace and war."

पुस्तक सूची - (Bibliography)

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पाली

१- वेद भाषा-भाष्य (दयानन्द संस्थान)

२- वाल्मीकीय रामायण (गीता प्रेस)

३- महाभारत (गीता प्रेस)

४- विष्णु पुराण "

५- भागवत पुराण "

६- गीता "

७- महाभारत दामोदर सातवलेकर

८- राजतरङ्गिणी कल्हण

९- राजतरङ्गिणी जोनराज

१०- The Raghuvansna of Kalidas (Gopal R. Nandargikar 1897)

११- कौटलीय अर्थशास्त्र

१२- चरक संहिता

१३- बृहतसंहिता-वराहमिहिर (वाराणसी)

१४- मालविकाग्निमित्रम-कालीदास

१५- अष्टाध्यायी-पाणिनि

१६- हर्ष चरितम्-बाण

१७- अविमारिकं-भास

१८- वाग्भटलाङ्कर

१९- सिन्धु-लिपि रहस्योद्घाटनम्- प्रो० फतहसिंह

२०- दिव्यावदानम- edited by Dr. P.L. Vaidya

२१- अगड़दत्त-चरियं (कानजीभाई [पाटण] सम्पादित)

२२- वसंत विलास

२३- ऋषभपचाशिका-धनपाल विरचित

२४- पाइअ-सद्द-महण्णवो-(हरगोविन्द सेठ)

२५- प्राकृत प्राकृश-वररूचि कृत

२६- काव्य मीमांसा-राजशेखर

ENGLISH

1- Archaeological Survey of India-Annual Reports

2- Ancient India-Bulletin of the Arch. S.O.I.

3- Ancient Indian Historical Tradition-Pargiter

4- All India Oriental Conference, Proceedings

5- Annals of Rajasthan-James Tod

6- Alberuni's India—Sachau

7- Ancient Cities and Towns of Rajasthan-K.C. Jain

8- Ancient History of the Near East- H.R. Hall

9- Annals of the Bhandarkar O.R I., Poona

10- Aku-Aku, by Thor Heyerdhal (New York)
11- A Clue to the Indus Valley Script and Civilization (Rajmohan Nath)
12- Ancient History of Western Asia, India and Crete-Bedrich Hrozny
13- American Review Quarterly
14- Arrian's—Life of Alexander (Penguin, London)
15- Archaeology in the U.S.S.R. (A.L. Mongait)
16- Aryan Origin of the Alphabet (L.A. Waddell-London)
17- Bible (King James Version).
18- Buddhist Records of the Western World (Samuel Beal)
19- Bhandarkar Commemoration Volume (1917)
20- Babylonian Tablets of the Bernes Collection
(Theophilus G. Pernes) London-1915
21- Bharatiya Vidya Journal-Bombay
22- Bulletin-Deccan College Research Institute, Poona
23- Brahma Vidya-Adyar Library Bulletin
24- Chahun Daro Excavation-Mackey, Boston, U.S A.
25- Conquest of Mexico-Prescott
26- Comparative Philology of the Dravidian or South Indian
Languages-Caldwel
27- Ciba Review-Basle
28- Classical Accounts of India (R.C. Majumdar)
29- Cultural Forum (G.O.I.) Delhi
30- Dinkard, Pahlavi text, transliteration and translation
31- East Africa Today-(Vaghela-Shukla, 1958-59)
32- Encyclopaedia Britannica-9th edition
33- Early English Travellers in India-Dr. Ramchandra Prasad
34- Egyptian Language-Sir E.A. Wallis Budge
35- Egyptian Civilization- L.A. Waddell
36- Fresh Sidelights on the Indus Valley-Pakistan Archaeology
37- Geographical Magazine, London

38- Gypsy, Forgotten Children of India-Chamanlal
39- Herodotus-The Histories (Penguin Classics)
40- Historical Geography of Ancient India-Bimal Churn Law
41- Historical Origins and Historical Critiques (Robert Shaw-1892)
42- Human Skeletal Remains from Harappa-
(Anthropological Survey of India, Memoir No 9)
43- History of India by its own Historians—Vol. I, (Elliot Dowson)
44- History of Indian and Eastern Architecture-James Furgusson
45- Hindu Vishva-Monthly (Souvenir)
46- India What Can it Teach Us- Maxmuller
47- Index of Hittite Names-Geographical, part I;
(L A. Mayer-London-1923)
48- India and the World-Budha Prakash
49- Illustrated London News- London
50- " Weekly of India-Bombay
51- Indian Archaeology-A Review (Archaeological Survey of India, Delhi)
52- IRAN-Pelican Archaeology Series (R. Ghirshman)
53- Indo-Sumerian Seals Deciphered-(L.A. Waddell) Luzac, London, 1925
54- Indian Historical Quarterly-Calcutta
55- Indian Antiquary-1886
56- Islamic Culture-Hyderabad Dn.
57- India Mother of Us All-Bhikshu Chamanlal
58- Indian Palaeography-G. Buhler
59- Ingersolia-Memorial Edition, (Donohue Co. Chicago-1899)
60- Journal of Indian History-University of Travancore, Trivandrum
61- " Bihar and Orissa Research Society, Patna
62- " Royal Asiatic Society-London
63- " " " -Calcutta
54- " Sindh Historical Society-Karachi
65- Lampriere's Classical Dictionery-(London, 1853)

66) Life International Magazine
67) Land and the Book (W.M. Thomas). London, 1875
68) Loom of Language (Frederick Bodmer)
69) Modern Review, Monthly-Calcutta
70) Medieval India Quarterly-Aligarh
71) National Geographic Magazine-Washington
72) Natural History Magazine-New York
73) On Yuan Chwang's Travels in India (Watters)
74) ORGANISER, Weekly-Delhi
75) Outline of History (H.G. Wells-1934)
76) Orient Magazine-Hong Kong
77) Pictorial Education Quarterly-London
78) Pre-Aryan and Pre-Dravidian in India
79) Preliminary Report on Kot-Diji Exavations (Pakistan Archaeology)
80) Proceedings—Indian Science Congress-Baroda
81) Periplus of the Erythraean Sea-Schoff
82) Prehistoric and Primitive Man (Andreas Lommel, London)
83) Prehistoric India and Ancient Egypt (Sudhansu Kumar Ray)
84) Phoenician Origin of the Britons (L.A. Waddell)
85) Rgveda and the Indus Valley Civilization (Budh Prakash)
86) Rise of Civilization- (David and Joan Oates)
87) Sanskrit-English Dictionary (Sir Monier Williams, 188)
88) Sambodhi, Quarterly-L D. Institute of Indology, Ahmedabad.
89) South African Rock Pictures (N C. Nelson), New York
90) Seal of Aetea (Miehael Ridley)
91) Studies in Proto-Indo-Mediterranean Culture, part I. (Henry Heras)
92) Scientific American-New York
93) Talks on Zoroastrianism (D.A. Anklesaria)
94) Travels of Marco Polo, the Venetian-Dent, 1907
95) The Alphabet (David Dringer). Hutchinson's, London

96) The Indus People Speak (Swami Sankarananda), Calcutta

97) The Living Races of Mankind.

98) Theosophist (Journal Theosophical Society)

99) The World Today-March, 1929

100) Vendidad (Zand-I jvit-Dev-Dat)-Behramgore Anklesaria, Bombay-1949

हिन्दी

१) भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास-पं० भगवद्दत

२) वैदिक सम्पति_प० रघुनदन शर्मा

३) प्राचीन चरित्रकोश-सिधेश्वर शास्त्री

४) पाणिनि कालीन भारत-वासुदेवशरण अग्रवाल

५) महाभारत की नामानुक्रमणिका-वासुदेवशरण अग्रवाल

६) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज-डा० जगदीशचन्द्र जैन

७) बुद्धकालीन भारतीय भूगोल-भरतसिंह अपाध्याय

८) टाड राजस्थान (हिन्दी अनुवाद) गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

९) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वाराणसी)

१०) वैदिक धर्म_मासिक (पार्डी)

११) विश्वहिन्दु-मासिक

१२) सोवियत संघ-मासिक

१३) अवन्तिका-मासिक

१४) अजन्ता_मासिक

ગુજરાતી

૧) વંદીદાદ_અસલ અવસ્તા ઉપરથી (કાવશજી એદલજી કાંગા) મુંબઇ, ૧૮૭૪

૨) બજમે જશને રૂજે ખોરશેદ_નવસારી, ૧૯૪૫

૩) ઇરાની ખીલા રેકી તખતીઓ વીશે (જાંગીરજી બરજોરજી વાછા)_મુંબઇ, ૧૮૬૩

૪) તીસરી ગુજરાતી સાહિત્ય પરિષદ-રાજકોટ, ૧૯૦૯

૫) પુરાણોંમાં ગુજરાત (ઉમાશંકર જોષી)

૬) કાહાનડદે પ્રબંધ_ગુજરાતી શાલા પત્ર, અમદાવાદ, ૧૮૭૭

૭) બુદ્ધિ પ્રકાશ-ત્રૈમાસિક

૮) પ્રસ્થાન માસિક

अरबी-उर्दू (Arabic-Urdu) सिन्धी

१) कुरान मजीद मुतरजम (जयद बरकी प्रेस, दिल्ली १९२८)
२) हिन्दुस्तान अरबों की नज़र में (दारूलमुसनफीन, अइज़मगढ़)
३) हिन्दुस्तान में अरबों की हुकूमतें (काज़ी अतहर मुबारकपुरी)
४) अरब व हिन्द अहद रसालत में (काज़ी अतहर मुबारकपुरी)
५) अरब व हिन्द के तअलुकात (सय्यद सुलैमान नदवी)
६) तारीख सिन्ध (सय्यद अबूज़फर नदवी)
७) यसूह मसीह की नामालूम ज़िंदगी के हालात-निकोस नोटोविच (जालंधर, १८९९)
८) मुसद्दस हाली-मुबई, १८७८
९) मआरिफ-मासिक (अइज़मगढ़)
१०) बुरहान-मासिक (दिल्ली)

११) ऐटलस जाग्राफी सिंध (मुहमद सिदीक, १९४६)
१२) सामीअ जा सिलोक (मेंघराज सामी)
१३) "सेर कोहिस्तान"-अल्लह बचायो समो
१४) तारीख रेगिस्तान- राइचन्द हरीजन

● Shri Isaac Tailor, says :-

"Adelung, the father of Comparative Philology who died in 1806, placed the cradle of mankind in the valley of Cashmere, which he identified with paradise. To Adelung we owe the opinion, which has prevailed so widely, that since the human race originated in the east, most westerly nations, the Iberians and Celts, must have been the first to leave the parent." (The Origin of the Aryans [London, 1889], P. 9.

(ओ३म) भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

सिन्धु–सौवीर * Sindhu–Sauvir

सिन्ध का प्राचीन इतिहास

अध्याय १

सिन्ध-हिन्द नाम। सिन्ध का प्राचीन नाम सिन्धु, पीछे सिन्धु-सौवीर और इस समय सिन्ध (Sindh) है। यह नाम किसी राज परीवार से पड़ा है न कि सिन्धु नदी से। अगर नदी से होता तो मानससरोवर से लेकर समुद्र पर्यन्त पूरा प्रदेश सिन्धु कहलाता। परन्तु एसा न होकर सिन्ध नाम केवल वर्तमान सिन्ध प्रदेश के लिए प्रयुक्त होता है। मार्ग में दरद प्रदेश में से बहने पर वहां दारदी सिन्धु भी कहलाती थी। इतिहास में एसा कहीं नहीं मिलता कि किसी प्रसिद्ध नदी नाम से किसी देश का नाम पड़ा हो। जैसे कि नील से ईजिप्ट, गंगा-यमुना से भारत, राईन से यूरप, यांगत्सी से चीन, यूफ्रेटस और टाईग्रस से पश्चिमी एशिया का कोई प्रदेश अथवा टेमस नदी से लण्डन-इगलैंड इत्यादि। इस लिये सिन्ध अथवा सप्त-सिन्धु से सिन्ध तथा सिन्ध से हिन्द और इण्डया होना सब की सब बातें निराधार हैं। इस लिये आइये प्रथम इन निराधार कल्पनाओं को देखें जो साधारण तोर फ़ैली हुई हैं। उन में से कुछ यह हैं :-

१- वेदों में सिन्धु नदी अथवा सप्त सिन्धु वर्णन।

२- पारसी मत ग्रंथों में हप्त हिन्दू

३- चीनी साहित्य का शिन्तु व इंदु

४- हिन्दू शब्द के बुरे अर्थ इत्यादि।

वेदों में सिन्धु तो क्या किसी भी नदी का वर्णन नहीं है। कुछ नाम अवश्य हैं, किन्तु वे वर्तमान नदियों से सम्बंधित हैं, एसा बिलकुल नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि जिन्हों ने भी नदियों के नाम वेदों में दख कर, वर्तमान नदियों की कल्पना की है, उन्हों ने भी केवल सप्त-सिन्धु नाम से वर्तमान सिन्ध देश का वर्णन किया है, बाकी अन्य नदियों का नहीं। एसा क्यों हुआ कि सप्त-सिन्धु से सिन्धु देश तो बन गया, जिस में से सात नदियां कभी बहती ही नहीं थीं न ही अब बहती हैं, तो भी वह सप्त सिन्धु देश हो गया, जब कि सिन्धु की धार्मिक दृष्टि से भी इतनी महता नहीं है. बाकी गंगा, यमुना, और सरस्वती आदि नदियों के प्रदेशों के नाम ही नहीं हैं। क्यों नहीं उन नदियों से भी गंगा, यमुना आदि प्रदेश बने? यद्यपि वेद अति प्राचीन होने के कारण उस में किसी प्रकार का इतिहास हो ही नहीं सकता, फिर भी जो लोग इतिहास मानते हैं वे भी केवल नाम देख कर ही एसा मानते हैं, बाकी कोई भी लेखक (जिनको विद्वान कहा जाता है) एसा एक भी शब्द नहीं दिखा सका है, जिस से यह सिद्ध

हो सके कि वेद में सप्त-सिन्धु नदी अथवा सप्त-सिन्धु प्रदेश लिखा हो। चारों वेदों में एसा एक भी शब्द नहीं है। इस के सिवाय अगर केवल सिन्धु नदी की सात धाराएं कहीं अलग अलग होकर बहती हों तो भी उस को किसी प्रकार सप्त-सिन्धु प्रदेश कहा जा सकता है। परन्तु एसा भी नहीं है - एक तो सात नदियां सिन्ध में हैं ही नहीं न ही कभी थीं। अगर सरस्वती को छोड़कर भी बाकी पांच को लेंगे तो भी उन का अस्तित्व ही अलग अलग है, उनके नाम भिन्न हैं, उन को मिलाकर सिन्धु कैसे कहा जा सकता है? क्यों कि सप्त-सिन्धु से अभिप्राय भी यही है न कि 'सात सिन्धु' अथवा 'सिन्धु की सात धाराएं'। परन्तु इन में से एक भी बात नहीं हैं। तो फिर यह भ्रम (धोखा) नहीं है कि जो बात है ही नहीं वह अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये उसे तोड़मड़ोड़ कर वर्णन करना? किसी भी ग्रन्थ के आन्त्रिक रहस्यों अथवा तथ्यों को समझने के लिये उस काल के आगे और पीछे के एतिहासिक ज्ञान को आवश्यकता है, नहीं तो इस के सिवाय उस को समझना कठिन है। प्राचीन मत्तों (मज़हबों) के पुस्तकों को देखेंगे तो यह कसौटी समझ में आएगी। कुरान के बहुत से रहस्यों को समझा ही नहीं जाएगा जब तक उस काल के आगे पीछे के मज़हबी वातावरण और इतिहास को न जाना और समझा जायेगा। कुरान में 'अकबर' शब्द देखकर कोई अनजान मुग़ल राजा अकबर का वर्णन भी मान सकता है। इसी प्रकार बाईबल के 'न्यु टेस्टामेन्ट' को समझने के लिये ईसवी सन के आसपास का मज़हबी एतिहासिक ज्ञान आवश्यक है तथा 'ओल्ड टेस्टामेन्ट' को समझने के लिए ५-६ हज़ार वर्षों से भी अधिक पहले के काल का मज़हबी और एतिहासिक ज्ञान आवश्यक है। वैसी ही बात यहूदी तथा पारसी मतों के लिये है। परन्तु न तो वेदों के काल का किसी को ज्ञान है न ही आगे पीछे के धार्मिक अथवा एतिहासिक ज्ञान की। ऐसे ही अड शंड गप्पे सब ने हांक दिये हैं। इस के सिवाय वेदों को समझने के लिये अपूर्व और अथाह ज्ञान तथा तपस्या की आवश्यकता है। इस के अनुपस्थति में कुछ समझना और कहना सब का सब अन्धेरे में भटकने के समान है। पुराणों के प्रसिद्ध ईसाई विद्वान श्री पार्जीटर (F. E. Pargiter) महाशय को भी लिखना पड़ा कि "वैदिक साहित्य न तो एतिहासिक है न ही इतिहास से सम्बंधित :-

"The Vedic texts, notoriously, are not books of historical purpose, nor do they deal with history." (1)

जब इतनी गुंजायश है तो फिर वेदों के रहस्यों को कैसे समझा जा सकेगा?

परन्त इस से भी खड़ा सत्य तो यह है कि न तो वेद एतिहासिक ग्रंथ हैं, न ही वेदों में किसी प्रकार का कोई इतिहास है - अज्ञान और मज़हबी पक्षपात ने यह सब बबंडल खड़ा कर रखा है। आज का मज़हबी क्षुद्र प्राणी जितना सच्चे ईश्वर को मानने का ढोंग मचाए बैठा है

(1) Ancient Indian Historical Tradition, P. 61

उतना ही उस से अधिक-अधिक दूर होता जा रहा है। ईश्वर तथा ईश्वरीय ज्ञान का तो उसे कोई पता ही नहीं है इस लिये दोनों अवस्थाओं में वह मनुष्यपन को भी खोता जा रहा है। दोष उसका भी नही है। क्योंकि मनुष्य आलस्य प्रमाद का पुतला है। मनुष्य एक एसा प्राणी है जिसे बुद्धि से कुछ भी करने के लिये सीखने सिखाने की आवश्यक्ता है। सिखना केवल ज्ञान से होता है। चाहे वह चार पांव वाला पशु हो अथवा दो पाँव वाला मनुष्य। हितोपदेश में आता है:-

आहार निद्रा भय मैथुंश्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम।
धर्मोहि तेषामधिको विशेष: धर्मेणहीन: पशुभि: समान: ॥

अर्थत:- खाना पीना, नींद करना, डरना और सम्भोग इन में मनुष्य तथा पशु एक समान हैं (यह बातें सिखाई नहीं जातीं) केवल धर्म (ज्ञान व्यवहार) एसी वस्तु है जिस के व्यवहार में लाने से इनसान मनुष्य बनता है।

कुछ एसी ही बात अलामा अब्दुलबर ने अपनी पुस्तक "जामअ बयान अल इल्म व फ़ज़ला" में हज़रत अली से कही है। उस के अनुसार: "शक्ल के लिहाज़ से सब इनसान एक समान हैं- बाप आदम और मां हवा। हां फज़ीलत (मअल फ़ज़ल) है तो केवल आलमों (विद्वानों) को है, वही जिज्ञासुओं के पथप्रदरशक हैं—"

मनुष्य की उत्पति कब, कैसे, कहां, क्यों और किस ने की उसको छोड़ कर भी यह प्रश्न इस उत्तर का मुहताज है कि आरंभ में मनुष्य ने अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत किया। इसका उतर और बहस तो आगे होगा, हम यहां केवल इतना कहते हैं कि जिस परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना की, प्राणियों को जीवन दिया, उन प्राणियों को इस सृष्टि में रहकर इस का उपयोग तथा व्यवहार आदि का सब ज्ञान उस के साथ ही दे दिया। अगर न देता तो वह अत्याचारी तथा अन्यायकारी समझा जाता। क्योंकि एसे महासागर में फैंक तो देवे किन्तु उस पर और से तैरने का ज्ञान ही न दे। आज हम एक रेडियो सेट अथवा कोई मशीन खरीदते हैं तो उसका बनाने और वेचने वाला व्यापारी उस के प्रयोग का ज्ञान (Instructions) छपा हुआ उस के साथ कर देता है, तो फिर इस महान सृष्टि मण्डल का ज्ञान तथा उसका व्यवहार उस का रचयता प्रभु परमात्मा कैसे नहीं देगा? अवश्य देगा और दिया। वही है वेद! पादरी फिलिप ने लिखा है "नई खोजनाओं के आधार पर कह सकते हैं कि ऋग्वेद न केवल भारत परन्तु सारे संसार का प्राचीन ग्रन्थ है तथा वेद ईश्वरीय ज्ञान है":-

"After the latest researches in the history and chronology of books of Old Testament, we may safely now call the Rigveda as the oldest book not only of the Aryan humanity, but of the whole world .... We are justified, therefore, in concluding that higher and purer conceptions of the

Vedic Aryans were the results of a primitive divine revealation."

(The Teachings of the Vedas, P. 231)

इस राय को हम वेदों के लिये कोई प्रमाण-पत्र नहीं मानते न ही इस की कोई आवश्यकता है। केवल एक मतावलम्बी की राय है, जो उस ने किसी प्रकार दी है इसलिये। अब वेद और सप्त-सिन्धु पर लिखेंगे।

वेद में जिन शब्दों को देख कर संसारी नदियों का अर्थ किया जाता है, वेद में उन्हीं शब्दों के अनेक अर्थ हैं। परन्तु उनका धात्वार्थ है 'चलने वाला, बहनेवाला, गतिवाला आदि। नदियों के भी वैसे ही गुण हैं। इसलिये संसार मैं यह शब्द नदियों के लिये प्रयुक्त हो गये हैं। वेद में इन शब्दों का अर्थ किरण, नदी, वाणी आदि है। परन्तु जिन को वेद में गहरी खोज का कष्ट करना नहीं हो पाता न ही वैसी योग्यता है, वे दूसरे आवश्यक अर्थों को छोड़ कर केवल नदी अर्थ कर के अपनी जान छुड़ा लेते हैं। क्योंकि दूसरे अर्थों से उन की भ्रामिक मान्यताएं जड़ से खोखली पड़ जाती हैं। वेदों में गङ्गा, यमुना, सरस्वती आदि नामों के आने से उन का अर्थ उत्तर प्रदेश की नदियों से जोड़ कर बताना इतना ही सरल है, जैसे कि उन के दूसरे शुद्ध अर्थ करने के लिये विषय का क्रम देख कर शुद्ध अर्थ बिठाना कठिन है। इस के लिये प्राचीन व्याकरण शास्त्र के गहरे अभ्यास तथा कड़ी पाबन्दी की आवश्यकता है. जो वर्तमान लेखकों (जिन को संस्कृत विद्वान समझा जाता है) में बिलकुल नहीं हैं। भारत के पण्डितों और विद्वानों की तो बात ही कुछ और है जो पश्चिम के गुरुओं के केवल 'जी हुज़ूर' हैं, परन्तु स्वयं उनके पश्चिमी गुरु संस्कृत की कैसी योग्यता रखते हैं, उसका एक प्रमाण देते हैं। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने १९२८ के लाहोर में हुए आल इंडिया ओरीअन्टल कान्फ्रंस (जिसके वह अध्यक्ष थे) अपने भाषण में चेतावनी देते कहा था "बहुत करके हमारे संस्कृत के विद्वान वे हैं, जिनको वस्तुत: संस्कृत का अक्षर भी नहीं आता है और दूसरे वह हैं जो बेचारे भारती शास्त्रीयों के कृपा पर विद्वान कहे जाते हैं" :-

"But at the end of my address I think it to be my duty to give you a warning. At the present moment there is a large body of men who go as Sanskrit scholars without knowing a letter of Sanskrit. There are others again who tax the brains of poor shastris and make big name as Oriental scholars

"At the conference of Orientalists held under the Presidency of Sir Harcourt Butler in 1911 a very great man told the august assembly that without two shastris at their elbows they cannot be oriental scholars. Such

oriental scholarship should be discouraged."(1)

और भारती विद्वानों ने उन्हीं तथा ऐसे पश्चिमी (संस्कृत) अनुवादों का सहारा लेकर अपने धर्म को प्रस्तुत किया है। लोकमान्य तिलक ने भी मूल संस्कृत वेद न देखकर केवल इन्हीं अंग्रजी अनुवादों के आधार पर अपनी पुस्तकें लिखीं और धोखा खा गये। और वर्तमान में भारती, संस्कृत के लेखक आज भी अपने धर्म और जाति का अहित कर रहे हैं। इस बात को ध्यान में रखकर श्री हरप्रसाद जी ने आगे कहा था "मैं देखता हूं कि संस्कृत साहित्य पर कितना और कैसा कार्य हुवा है, और यह सब संस्कृत से अंग्रेज़ी फ्रेंच, जर्मन आदि दूसरी योरोपी भाषाओं के सहारे हुवा है .... किन्तु ये अनुवाद विश्वास के योग्य नहीं हैं .... इस लिये उनके आधार पर बने ग्रन्थों पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता।" :-

"I often see big works on Sanskrit literature and special branches of it, compiled mainly, if not wholly from translations of Sanskrit works in English, French, German and other European languages... but translations are never reliable." (Ibid, P. 109)

फिर कुछ प्रमाण देकर कहा :-

"In a similar way all translations should be taken at their worth" (Ibid)

भारत के महाविद्वानों (scholars) की महासभा, उसके सभापति को ऊपर लिखित राय हर भारतवासी को एक चेतावनी समझनी चाहिये, और हमारी भी यह राय है कि सारे ससार में इस समय संस्कृत के विद्वान अवश्य हैं, किन्तु वेदिक भाषा, व्याकरण शास्त्र तथा वेदों के रहस्यों को समझने वाला कोई इना गिना होगा। इस लिये जो भी विद्वान भारतीय अथवा विदेशी हैं, उन में से किसी को भी "वेदों का विद्वान" किसी भी स्तर पर, हम स्वीकार नहीं करते, न ही उन के वेद सम्बंधी रायों को हम अहम्यित देते हैं। वेदों के रहस्यों तथा गूढ़ अर्थों को जानने कि लिये प्राचीन ऋषियों-आचारियों ने कुछ योग्याताओं के प्रमाण तथा नियम स्थर किये हैं, जिन में ऋषि का दरजा कम से कम है। जब तक वैसी योग्यता किसी में नहीं हैं और उन नियमों को नहीं जानता, वह वेद का ज्ञाता तो क्या वेद को पढ़ने का भी अधिकारी नहीं है। पौराणिक काल में जो ऐसे वैसे को वेद पढ़ने से वंचित रखा गया था उस के पीछे भी यही भावना समझनी चाहिये। यह कैसे हो सकता है कि एक मैट्रिक पास विद्यार्थी एम० ए० के विषय वाली पुस्तकें पढ़ और समझ सकता हो ! इसलिये इस प्रकार के जो भी संस्कृत लेखक वर्तमान में हैं, वे जो कुछ भी वेदों के विषय में लिखते हैं वह उनका केवल खोखलापन है। कुछ थोड़े इस कोटी के हैं, क्योंकि उन्हों ने अपना जीवन केवल वेद के अध्ययन में लगाया है, तो भी वे सीमित हैं।

(1) Proceedings A.I.O.C. [1928], P. 108

कोई ग़लत फ़हमी न रहे इस लिये हम अपनी इस राय की पुष्टि नीचे प्रमाणों से करते हैं।

अथर्ववेद (१६-१-१) में है :-

'अतिसृष्टो अपांवृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः'

श्री विटनी (W D. Whitney) ने शौनिक-सांख्य अथर्ववेद संहिता का पहला सम्पादन 1856 (बर्लन) में किया। उस ने इस का अर्थ किया है :-

"Let go the bulls of water-Let go the heavenly fires"

और श्री ग्रिफिथ (T.H. Griffith) ने किया है :-

"The bulls of the waters hath been let go. The heavenly fires have been let go."

अर्थात "जलों के बैल छोड़ दिये जाएं (अथवा गये) और छोड़ दी जाएं (अथवा गईं) आकाश की अग्नियां."

इस पर और विवाद नहीं। हर बुद्धिमान समझ सकता है कि "जलों के बैल" क्या और उन को "छोड़ देना" क्या है – तथा "आकाश की अग्नियां" क्या है। परन्तु यह केवल वेद ज्ञान से विमुख विचारों के अर्थ हैं। और यह है इस का शुद्धि अर्थ जो ऋषि दयानन्द ने किया है। वृषभ निकला है 'वर्ष' धातु से, जिसका अर्थ है वसना (बरसात का) और यहां वृषभ का अर्थ हुआ वसाने वाला। वसना (बरसात) से ही वनस्पति की उत्पति होती है तथा काम-अग्नि भी। इस रहस्य को अलंकार में इस वेद मंत्र में दर्शाया गया है। किन्तु यह अंधेर केवल ईसाई लेखकों ही नहीं, स्वयं पौराणिक काल के दरबारी (सरकारी) पंडितों ने भी किया है, वह भी देखिये:-

यजुरवेद १६-२८ का प्रथम अंश है "नमः श्वभ्यः"

महीधर ने इसका अर्थ किया है:- "श्वानः कुक्कुरास्तद्रूपेभ्यो नमः इति नमस्कार मन्त्रा"

अर्थातः कुत्ता रुपी जो रुद्र भगवान है उस को नमस्कार। वास्तव में लौकिक अर्थ के अनुसार "कुत्तों को नमस्कार हो "एसा था। किन्त महीधर ने सोचा होगा कि 'कुत्तों को नमस्कार' यह बन्द अच्छा तो नहीं लगता इस लिये अपनी ओर से कुत्ते के लिये रुद्र भगवान का रुप घड़ लिया, जो मन्त्र में कहीं भी नहीं है। परन्तु दयानन्द ऋषि ने उसका शुद्ध वैदिक अर्थ किया है- "लोग कुत्तों को (श्वभ्यः) अन्न दें (नमः)"। यह प्रतिदिन किये जाने वाले पञ्च महायज्ञों का एक अंग है, जो हर मनुष के वैदिक व्यवहार में सम्मिलित है। यह इस लिये हुवा कि लौकिक में नमः का अर्थ केवल नमस्कार है. परन्तु निरुक्त (३-६-१३) में उसके अर्थ हैं:- आयु, ब्रह्म, यश, अन्न आदि। दयानन्द ने वैदिक व्याकरण का सहारा लेकर वेदों के शुद्ध अर्थ को पकड़ा। किन्तु यह बड़े कष्ट और तपस्या का कार्य है, जो इन आलसी और स्वार्थी पंडितों और लेखकों की योग्यता से बहुत दूर की बात है, इसलिये वे अर्थ का अनर्थ कर गये, और इसी का ही फल है कि

अश्वमेध तथा सोम आदि यज्ञों के अर्थ भी अशुद्ध किये जा रहे हैं। अंग्रेज़ी में See और School शब्द हैं। व्यवहार में इन दोनों का अर्थ 'देखना' तथा 'पाठशाला' है। परन्तु यह See जब ईसाई पोप के साथ आएगा तो उस समय भी इस का अर्थ देखना किया जायगा, क्या? पोप की गादी अथवा राज्य नहीं करेंगें क्या? School जब चित्रकारी अथवा कला के साथ आएगा, जैसे कि Mughul or Rajput School, तो उस समय यह मुगुल अथवा राजपूत पाठशाला किया जायगा? वहाँ इसका अर्थ 'शैली' नहीं किया जायगा? अगर एसा नहीं किया गया तो एसे 'पंडित' को क्या कहा जायगा? ठीक यही व्यवहार हर स्थान पर होता है, विशेश कर वेदार्थ में! जबकि उस का विषय, प्रकर्ण, आगे पीछे जांचकर अर्थ करना है। नहीं तो अर्थ तो क्या, कुछ बनेगा ही नहीं। दयानन्द की इस महानता को देख कर श्री अरविन्द घोष ने सोच कर लिखा है कि 'वेदों की अन्तिम व्याख्या चाहें कुछ भी जाकर हो परन्तु शुद्ध अर्थ करने में दयानन्द सदा अग्रणी और सन्मान के पात्र होंगे, जिस ने पुराने अज्ञान और मिथ्या ज्ञान के ढेर में से ऋषि दृष्टि से सत्य को निकाल कर प्रकट किया और बन्द सरोतों के मुहरों (seals) को तोड़ फैंका":-

"In the matter of Vedic interpretation, I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayanand will be honoured as the first discoverer of the right clues. Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age long misunderstanding, his was the eye of the direct vision that pierced to the truth and fastened on to that which was essential. He has found the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisoned fountains." (Dayanand and Veda)

यह सब यहां हम इस लिये लिख रहे हैं कि इस से ही हमारे सप्त-सिन्धु का भी सम्बंध है, इस के साफ किये बिना आगे बढ़ नहीं सकेंगे। सो यह सब दयानन्द सरस्वती ने अपनी "ऋग्वदादि भाष्य भूमिका" रुपी घाघर में ईश्वरी ज्ञान का समुद्र उडेल दिया है। जर्मन विद्वान मैक्समूलर पर भी इसी महान ग्रन्थ का प्रभाव पड़ा जिस ने उसकी मानसिक बुराई को, जिस का हम भूमिका में वर्णन करेंगे, बदल डाला जिस का उलेख उस ने स्वयं किया है और संस्कृत साहित्य के साफ दो काल निरधारित कर दिये। लिखा है :-

"We must divide the whole of Sanskrit literature beginning with the Rigveda, and ending with Dayanand's introduction of his edition of Rigveda, his by no means uninteresting Rigveda Bhumika in two great periods."(1)

(1) India, What Can it Teach Us, P. 148)

अब यहां प्रश्न हो सकता है कि दयानन्द का अर्थ शुद्ध है तो दूसरों का अशुध्द क्यों? तो फिर उतर प्रश्न होगा कि अगर दूसरे शुद्ध हैं तो दयानन्द अशुद्ध क्यों? हम इस लिये केवल इतना कहेंगे कि दयानन्द ने अपने को वेद भाष्य का एसा अधिकारी बनाया था जैसा वर्णन प्राचीन वेदाचार्यों ने किया है। इस अधिकार प्राप्ति के पश्चात अब वह जो लिखता है वह उस कोटि का है जिस कोटि का भाष्य प्राचीन ऋषियों ने किया है। किसी भी पंडित अथवा लेखक को वेदों का भाष्य करना तो क्या अर्थ करने का भी अधिकार नहीं है! वह ऋषि पद्धाति से किया हुआ भाष्य पढ़ सकते हैं स्वयं भाष्य करने के योग्य नहीं हैं। क्यों कि वेद को समझने की चाबियां जिस निरुक्त-निघंटू व्याकरण शास्त्र में सुरिक्षत हैं उन के खोलने की योग्यता हज़ारों वेद ज्ञानियों में से एक में होती है, हर एक का काम वेद भाष्य अथवा अनुवाद करना नहीं है। यह अनाधिकार चेष्टा है। एसा होने से अनर्थ और पाप होता है, जो हुआ है और हो रहा है। एसा नहीं है कि वेद संस्कृत में हैं इसलिये संस्कृत सीखने से वेद समझने की योग्यता भी आ सकती है। एसे तो मैट्रिक पास विद्यार्थी अंग्रेज़ी पढ़ सकता है परन्तु वह दर्शन शास्त्र (Philosophy) अथवा किसी और गूढ़ विषय की पुस्तक को कैसे पढ़-समझ सकेगा? समझेगा ही नहीं तो अर्थ का अनर्थ ही करेगा। वह पोप की गादी See को 'पोप का देखना' और मुगुल कला शैली (School) को 'मुगुलों की पाठशाला' ही कहेगा, उसे See और School शब्दार्थों का ज्ञान ही नहीं। इसी प्रकार यह भी है।

सो जिन वेद मंत्रों में नदियों का वर्णन माना जाता है, उन्ही मंत्रों में नदी नाम होते हुए भी उनके अनेक चमत्कारक और वैज्ञानिक अर्थ हैं। जिन को शताबदियों से भारत के ही आलसी तथा वेदों के विचित्र विद्वानों ने उनके अर्थ का अनर्थ किया है। जिन में सायण, महीधर, उव्वट रावण आदि हैं। इस कारण ही वाद में वेदों के इन चमत्कारक वर्णनों से एतिहासिक वर्णनों को मिलाकर बहुत सी पौराणिक कथाएं जोड़ दी गई हैं। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि वेदों के बड़े पौराणिक भाष्यकार आचार्य सायण ने जिस के वेद भाष्य के आधार पर योरोप और भारत के लेखक वेदों में इतिहास के भूत बताते हैं, उस सायण ने स्वयं अपने भाष्य की भूमिका में वेद में इतिहास को नहीं माना है।

अब सप्त-सिन्धु विषय को समझने के लिये हम नीचे पडिन रघुनन्दन शर्मा के महान ग्रंथ "वैदिक सम्पति" से कुछ उद्धरण देते हैं जिस महाविद्वान ने वेदों के रहस्य को समझने में अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया था। चाहे उन के सामने वेद के महान विद्वान तथा उधारक दयानन्द सरस्वती का वेद भाष्य उपस्थित था, तो भी उस ने अपनी योग्यता से भी अपने विषय को निभाया है। पंडित महोदय ने स्पष्ट लिखा है कि वेद के चमत्कारक अर्थों से बाद के ऐतिहासिक वर्णन का मेल हुआ है। इसलिये इस बात को भी ध्यान में रखकर नीचे का

वर्णन पढ़ने योग्य है। पं० रघुनंदन जी लिखते हैं :-

"गङ्गा और यमुना नदियों के लिये प्रसिध है कि गंगा विष्णु के चरणों से निकली है और यमुना सूर्य की पुत्री है 'इंद विष्णुर्विचक्रम' इत्यादि मंत्रों से सिद्ध हो चुका है कि वेद का विष्णु, सूर्य के सिवाय और कुछ नहीं है। जब गङ्गा और यमुना का सम्बंध सूर्य से है तो वह उतर प्रदेश से बहने वाली नदियां नहीं हो सकतीं। अमर कोश (१-३१) में है :-

गङ्गा विष्णुपदी जहनुतनया सुरनिम्नग।

भागीरथी त्रिपथगा त्रस्रोता भीष्मसूरपि॥

(अर्थात, गंगा का नाम विष्णुपदी है, नीचे जाने वाली है तथा तीन मार्ग और तीन सरोत वाली है। विष्णु सूर्य है। सूर्य के पैरों से गंगा निकली है और नीचे जाने वाली है।)

यमुना के लिये अमरकोश में लिखा है:-

"कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा"

(अर्थात: यमुना तथा सूर्यतनया एक ही है।)

सूर्य से उत्पन्न होने वाली यह दोनों क्या सूर्य की किरण नहीं हैं?

असिक्नी नदी के लिये ऋग्वेद (४/१७/१५) में आया है 'असिक्न्यां यजमानो नहोता' अर्थात. असिक्नी का सम्बंध यज्ञ से हैं। दूसरे स्थान पर ऋग्वेद (४/२१/४) में लिखा है 'यो वायुना यजति गोमतीषु' अर्थात, जो वायु द्वारा गोमती में होम करती है। तीसरे स्थान पर ऋग्वेद (१०/१७/९) में है कि 'सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते' अर्थात. "इस सरस्वती को जिसमें पित्र हवन करते हैं"। यहां यह तीनों निदियां यज्ञ तथा हवन से सम्बधित हैं। इस लिये स्पष्ट है कि यह किरणों के लिये इशारे हैं।

वेद में सूर्य के दश रश्मियों का वर्णन है। ऋग्वेद (८/७२/८) में 'आ० दशभि: खेदया:' तथा ९/९७/२३ में 'रश्मिभिर्थशभि' आया है। दूसरे स्थान (१०/२७/१६) पर है कि 'दशानामेकं कपिल' अर्थात इन दसों में एक का नाम कपिल है। बाकी नौ के लिये जो नाम आये हैं वे गंगा-यमुना आदि हैं। जैसे कि:-

"इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णि आ।

असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया आर्जीकीये शृणुहि आसुषोमया॥ (ऋ० १०/७५/५)

अर्थात, गंगा, यमुना, सरस्वती, शतुद्रि, परुष्णि, असिक्नी, मरुदवृधा, वितस्ता और अर्जीक्या आदि सोम से सम्बधित हैं। यह गंगा आदि नाम ऊपर लिखे नौ किरणों के हैं। दसवीं किरण कपिल कहलाती है। फिर दूसरे स्थान पर इन के नव नाम ही दिये हैं :-

ईडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्यातेऽदिते सरस्वती महि।

विश्रुति एता ते अघ्नये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥ (यजु० ८/४३)

अब यहां प्रश्न हो सकता है कि दयानन्द का अर्थ शुद्ध है तो दूसरों का अशुध्द क्यों? तो फिर उतर प्रश्न होगा कि अगर दूसरे शुद्ध हैं तो दयानन्द अशुद्ध क्यों? हम इस लिये केवल इतना कहेंगे कि दयानन्द ने अपने को वेद भाष्य का एसा अधिकारी बनाया था जैसा वर्णन प्राचीन वेदाचार्यों ने किया है। इस अधिकार प्राप्ति के पश्चात अब वह जो लिखता है वह उस कोटि का है जिस कोटि का भाष्य प्राचीन ऋषियों ने किया है। किसी भी पंडित अथवा लेखक को वेदों का भाष्य करना तो क्या अर्थ करने का भी अधिकार नहीं है! वह ऋषि पद्धाति से किया हुआ भाष्य पढ़ सकते हैं स्वयं भाष्य करने के योग्य नहीं हैं। क्यों कि वेद को समझने की चाबियां जिस निरुक्त-निघंटू व्याकरण शास्त्र में सुरिक्षत हैं उन के खोलने की योग्यता हज़ारों वेद ज्ञानियों में से एक में होती है, हर एक का काम वेद भाष्य अथवा अनुवाद करना नहीं है। यह अनाधिकार चेष्टा है। एसा होने से अनर्थ और पाप होता है, जो हुआ है और हो रहा है। एसा नहीं है कि वेद संस्कृत में हैं इसलिये संस्कृत सीखने से वेद समझने की योग्यता भी आ सकती है। एसे तो मैट्रिक पास विद्यार्थी अंग्रेज़ी पढ़ सकता है परन्तु वह दर्शन शास्त्र (Philosophy) अथवा किसी और गूढ़ विषय की पुस्तक को कैसे पढ़-समझ सकेगा? समझेगा ही नहीं तो अर्थ का अनर्थ ही करेगा। वह पोप की गादी See को 'पोप का देखना' और मुगुल कला शैली (School) को 'मुग़ुलों की पाठशाला' ही कहेगा, उसे See और School शब्दार्थों का ज्ञान ही नहीं। इसी प्रकार यह भी है।

सो जिन वेद मंत्रों में नदियों का वर्णन माना जाता है, उन्ही मंत्रों में नदी नाम होते हुए भी उनके अनेक चमत्कारक और वैज्ञानिक अर्थ हैं। जिन को शताबदियों से भारत के ही आलसी तथा वेदों के विचित्र विद्वानों ने उनके अर्थ का अनर्थ किया है। जिन में सायण, महीधर, उव्वट रावण आदि हैं। इस कारण ही बाद में वेदों के इन चमत्कारक वर्णनों से एतिहासिक वर्णनों को मिलाकर बहुत सी पौराणिक कथाएं जोड़ दी गई हैं। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि वेदों के बड़े पौराणिक भाष्यकार आचार्य सायण ने जिस के वेद भाष्य के आधार पर योरोप और भारत के लेखक वेदों में इतिहास के भूत बताते हैं; उस सायण ने स्वयं अपने भाष्य की भूमिका में वेद में इतिहास को नहीं माना है।

अब सप्त-सिन्धु विषय को समझने के लिये हम नीचे पडित रघुनन्दन शर्मा के महान ग्रंथ "वैदिक सम्पति" से कुछ उद्धरण देते हैं जिस महाविद्वान ने वेदों के रहस्य को समझने में अपना सारा जीवन व्यतीत कर दिया था। चाहे उन के सामने वेद के महान विद्वान तथा उधारक दयानन्द सरस्वती का वेद भाष्य उपस्थित था, तो भी उस ने अपनी योग्यता से भी अपने विषय को निभाया है। पंडित महोदय ने स्पष्ट लिखा है कि वेद के चमत्कारक अर्थों से बाद के ऐतिहासिक वर्णन का मेल हुआ है। इसलिये इस बात को भी ध्यान में रखकर नीचे का

वर्णन पढ़ने योग्य है। पं० रघुनंदन जी लिखते हैं :-

"गङ्गा और यमुना नदियों के लिये प्रसिध है कि गंगा विष्णु के चरणों से निकली है और यमुना सूर्य की पुत्री है 'इंद विष्णुर्विचक्रम' इत्यादि मंत्रों से सिद्ध हो चुका है कि वेद का विष्णु, सूर्य के सिवाय और कुछ नहीं है। जब गङ्गा और यमुना का सम्बंध सूर्य से है तो वह उतर प्रदेश से बहने वाली नदियां नहीं हो सकतीं। अमर कोश (१-३१) में है :-

गङ्गा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नग।
भागीरथी त्रिपथगा त्रस्रोता भीष्मसूरपि ॥

(अर्थात, गंगा का नाम विष्णुपदी है, नीचे जाने वाली है तथा तीन मार्ग और तीन सरोत वाली है। विष्णु सूर्य है। सूर्य के पैरों से गंगा निकली है और नीचे जाने वाली है।)

यमुना के लिये अमरकोश में लिखा है :-

"कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा"

(अर्थात : यमुना तथा सूर्यतनया एक ही है।)

सूर्य से उत्पन्न होने वाली यह दोनों क्या सूर्य की किरण नहीं हैं?

असिक्नी नदी के लिये ऋग्वेद (४/१७/१५) में आया है 'असिक्न्यां यजमानो नहोता' अर्थात. असिक्नी का सम्बंध यज्ञ से हैं। दूसरे स्थान पर ऋग्वेद (४/२१/४) में लिखा है 'यो वायुना यजति गोमतीषु' अर्थात, जो वायु द्वारा गोमती में होम करती है। तीसरे स्थान पर ऋग्वेद (१०/१७/९) में है कि 'सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते' अर्थात. "इस सरस्वती को जिसमें पित्र हवन करते हैं"। यहां यह तीनों निदियां यज्ञ तथा हवन से सम्बधित हैं। इस लिये स्पष्ट है कि यह किरणों के लिये इशारे हैं।

वेद में सूर्य के दश रश्मियों का वर्णन है। ऋग्वेद (८/७२/८) में 'आ० दशभि : खेदया :' तथा ९/९७/२३ में 'रश्मिभिर्थशभि' आया है। दूसरे स्थान (१०/२७/१६) पर है कि 'दशानामेकं कपिल' अर्थात इन दसों में एक का नाम कपिल है। बाकी नौ के लिये जो नाम आये हैं वे गंगा-यमुना आदि हैं। जैसे कि :-

"इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णि आ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया आर्जीकीये शृणुहि आसुषोमया ॥ (ऋ० १०/७५/५)

अर्थात, गंगा, यमुना, सरस्वती, शतुद्रि, परुष्णि, असिक्नी, मरुदवृधा, वितस्ता और अर्जीकया आदि सोम से सम्बधित हैं। यह गंगा आदि नाम ऊपर लिखे नौ किरणों के हैं। दसवीं किरण कपिल कहलाती है। फिर दूसरे स्थान पर इन के नव नाम ही दिये हैं :-

ईडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्यातेऽदिते सरस्वती महि।
विश्रुति एता ते अघ्नये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ (यजु० ८/४३)

इन्ही दस के लिये ऋग्वेद (५/४७/४) में कहा है 'दश गर्भं चरसे धापयन्ते', अर्थात "यह दसो ही प्रथ्वी में गर्भ धारण करती हैं"। सूर्य के दस किरण प्रथ्वी पर आकर गर्भ-भृग, प्रकाश को देती हैं। इन्हीं दस किरणों को सूर्य के दस-पुत्र भी कहा गया है, जो पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं। वह मंत्र यह है :-

"इमां त्वमिन्द्र मिढ्व: सुपुत्रां सुभगां कृणु।
द शास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ।।(१०/८५/४५)

यहां इन्द्र शब्द सूर्य के लिये ही आया है। वह पृथ्वी में उलिखित दसों किरणों से गर्भ धारण करता है। वह ही किरण फिर उसके दस पुत्र बन जाते हैं।

ऊपर गंगा, यमुना आदि नदियों को जो सूर्य से उत्पन लिखा है, उसका भी यही अर्थ है कि वे सूर्य के किरणें हैं, दसों दिशाओं में फैले उन दस किरणों में से सात प्रधान हैं। वेद में इन्हीं सात किरणों का भी नदी नामों से ही वर्णन है। ऋग्वेद (४/१३/३) में है :-

'तं सूर्य हरित: सप्त यह्वी: स्पर्शविश्वस्य जगतो वहन्ति' यहां सूर्य, हरित (किरण), सप्त और वहति क्रिया ये चारों पद सात किरणों के बहने का साफ वर्णन कर रहे हैं। दूसरी जगह ऋग्वेद (१/१८१/६) में 'वेषन्तीरुर्ध्वा नद्यो न आगु:' कहकर नदियों का उपर (आकाश) से सम्बंध दिखाया है। तीसरी जगह ऋग्वेद (५/५२/१७) में कहा है 'सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददु:। यमुनायामधि श्रुतम्'। यहां सात के साथ यमुना का नाम भी है परन्तु इतिहास लेखक यमुना को सप्त-सिन्धु में समिलित ही नहीं बताते। यमुना तो उतर प्रदेश से ही निकली है। ऊपर हम ने यमुना को सूर्य पुत्री लिखा है, इसलिये यमुना से सम्बन्ध रखनेवाली ये सातो नदियां 'सूर्य की पुत्री' ही हैं। अर्थात सातो ही सूर्य के किरणें हैं। ऋग्वेद (८/६९/१२) में आये हुए 'सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धव:'। अनुरक्षन्ति काकुदं सूर्यं सुषिरामिव' मंत्र का अर्थ तिलक महाराज ने भी यही किया है कि "आकाश में बहने वाली और अंत में वरुण के मुख में पड़ने वाली सात नदियां'। इस से भी वे आकाश के किरणें ही सिद्ध होते हैं। फिर दूसरी जगह ऋग्वेद (१/१२५/५) में है :-

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो य: पृणाति सह देवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतेमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ।।

अर्थात, सूर्य के पिछले भाग में जहां देवताओं के साथ जीव जाता है वहां सिन्धु नदियां उत्तम जल बहाती हैं" यह भी साफ किरणों का ही वर्णन है। क्यों कि यह प्रसिद्ध है कि ऋग्वेद, ९/११३/८ में मोक्ष स्थान का वर्णन आता है और मोक्ष धाम सूर्य की पीठ में बताया गया है। वहां भी बड़ी बड़ी सात नदियों का वर्णन है। वे सात नदियां किरणों के सिवाय और क्या हो सकती हैं? वह मंत्र यह है:-

यत्र राजा वैवस्वतो यत्र अवरोधनं दिव: ।

यत्र अमू: यहन्ती: आप: तत्र माँ अमृतं कधि: ।।

अर्थात "जहां वैवस्वत राजा है, जहां सूर्य अवरोधन है और जहां बड़ी बड़ी नदियां हैं, वहां मुझे अमर कर"। यह समग्र सूक्त मोक्ष स्थान के विषय का है और नदियों की तरह किरणों का वर्णन करता है। इन सातों किरणों के नाम ये हैं:-

तृष्टामया प्रथमं यातवेसजू: सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।

त्वं सिन्धो कुभया गोमती क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभि रीयसे ।। (ऋग्वेद १०/७५/६)

इस मंत्र में तृष्टामा, सुसर्तु, रसा, श्वेती, कुभा, गोमत और मेहत्नु के साथ मिली हुई क्रमु है। अब सप्त-सिन्धु में बताई गई सात नदियों का धोखा भी प्रकट हो जाता है, जिस में इन में से एक भी नदी सप्त-सिन्धु के अखाड़े में नहीं है। इस सात नदी रुप किरणों के लिए ऋग्वेद में ('त्रिवृतं सप्ततन्तुम्। ऋ० १०/५२/४ आदि में) 'त्रिवृत' शब्द बहुतायत से आता है। त्रिवृत का अर्थ है तिहरा। तिलड़िया सूत की तरह ये किरणें भी तिहरी हैं। इसमें एक भारी विज्ञान की बात कही गई है। ऊपर से जो सात किरणें आती हैं, वे तिहरी होती हैं। अर्थात उनमें तीन चीजें होती हैं। वे तीन चीजें अप, जल और अग्नि है। वे आग्नेय किरणें पृथ्वी अथवा बादलों से जल लेती हैं इस लिये जलीय भी हैं। इस तरह वे त्रिवृत रहती हैं। यहां नमूने के लिए ऋग्वेद (९/६६/६) का मन्त्र देखिये 'तवे मे सप्त सिन्धव: प्रसिषं सोम सिस्रते। तुभ्यं धावन्ति धेनव:' अर्थात् सोम से भीगे हुये सप्त-सिन्धुओं में धेनु दौड़ती हैं। यह धेनु शब्द किरण का ही वाचक है। ये धेनु-किरणें, सिन्धु-जलों के साथ दौड़ती हैं। दूसरी जगह ऋ० १/५०/९ में कहा है कि 'अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्य:। ताभिर्याति स्वयुक्तिभि:।' यहां 'युक्तिभ:' से सूचित किया है कि तीनों पदार्थ युक्ति से एक दूसरे में लिपटे हुए हैं। अंत में साफ़ साफ़ कह दिया है कि 'अस्मत् नदीभि: उर्वशी वा गृणातु' (ऋ० ५/४१/१९) इस मन्त्र में नदी के साथ उर्वशी का सम्बन्ध दिखाया है। पुरुरवा प्रकरण में 'उर्वशी च पूर्वचितिश्चाप्सरसौ' के अनुसार उर्वशी अप्सरा सूर्य की किरण ही है। यहां वेद ने ही स्पष्ट कर दिया कि ये नदियाँ किरणें ही हैं। किरणें सात हैं और दश हैं जो ऊपर बतलाई गई हैं। यहां सप्त-सिन्धु से जो लोग सिन्ध और पञ्जाब का इतिहास ढूंढ़ते हैं वे कितनी ग़लती करते हैं, यह ऊपर के वर्णन से प्रकट हो सकता है। तिलक महोदय ने साफ साफ कह दिया है कि 'सप्त सिन्धु से पञ्जाब सिद्ध नहीं होता, क्योंक पञ्जाब में तो सात नदियां नहीं हैं।(१)

सूर्य के काल्पिनिक चित्र को आपने देखा है, जिस के रथ में सात घोड़े जुटे होते हैं। ये सात घोड़े भी सात किरणें ही हैं। इन्द्र धनुष भी इन्ही सात रंगों का मिश्रण है। इन्द्र सभा

(१) वैदिक सम्पति, पृ ७७-७९

नाटक भी सुना देखा होगा उसमें भी सब्ज़ और लाल आदि परियां (अप्सराए) नृत्य करती हैं वह भी सूर्य (इन्द्र) के सात किरणों उर्वशी आदि अप्सराओं का अलङ्कार है, बस यही वेदों का सप्त-सिन्धु भी है।

अलख सम्प्रदाय का एक दोहा है :-

वेनि नयनरु ताङ्क वहिला नीरधार ।
से नीरधार होइला ये सपत सिन्धु जल ।।

(अर्थात, उसके आंखो से अश्रु बहने लगे और जैसे सात समुद्र बन गये।) दूसरे स्थान पर है:-

पुणि भिआण कले एक मेघ तेलाउणि।
तहि भरि रखिले अगाध सिन्धु पाणि ।।

(अर्थात, फिर उस ने बादलों की एक कड़ाही बनाई, जिस में समद्रों (सिन्धु) का अथाह जल भर दिया)

सिन्ध का वेदान्ति कवि मेघराज 'सामी' कहता है :

'जीएं घाघर लूण जी, सिन्ध में समाणी'

(अर्थात, जैसे नमक की घाघर समुद्र में समा गई।)

भागवत पुराण में सृष्टि वर्णन करते परीक्षित कहता ह:-

"तत्रापि प्रयव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभि सिन्धव"(१)

(अर्थात प्रयव्रत राजा के रथ के पहियों की सात लीकों से सात समुद्र (सिन्धव) बन गये थे)

यहां भागवत्र रचियता ने तो सप्त-सिन्धु शब्द के अर्थ पर आगे बढ़ने के लिए रास्ता बन्द कर दिया। इस लिये जिस प्रकार सप्त-सिन्धु शब्द का विस्तार फहलाव हुवा है, हो सकता है पारसी ग्रन्थ में 'हप्त हिन्दुकां' का प्रयोग भी किसी खास अर्थ को लेकर हुआ हो, जिस का इस समय ज्ञान नहीं है चाहे वह कुछ भी हो। सप्त-सिन्धु का लौकिक अर्थ लगाया जायगा तो वह भी केवल 'सात नदियां', 'साल समुद्र' अथवा सात किरणें हो सकता है। परन्तु किसी प्रकार भी वह कोई सप्त-सिन्धु देश नहीं हो सकता। जैनाचार्य जिनसेन रचित 'आदिपुराण (२९-८५) में गोदावरी नदी के सात धाराओं को 'सप्त गोदावर' कहा है न कि प्रदेश। लिखने वालों ने कभी यह भी नहीं सोचा कि समूचे संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर केवल 'सिन्धु प्रदेश' 'सिन्धु-सौवीर प्रदेश' अथवा सिन्धु नद नामों का प्रयोग हुवा है, कहीं भी "सप्त-सिन्धु देश" का उलेख मात्र भी नहीं किया है। अब संस्कृत के मूल आचार्यों को सप्त-सिन्धु नाम कहीं भी दृष्टि गोचर नहीं हुवा बाकी इन विदेशी 'विद्वानों' को आकाश वाणी हो गई! साफ़ जाहिर है कि वेद को केवल हिन्दुओं का ग्रन्थ समझ कर इन ईसाई लेखकों की मतांध और

(१) श्रीमद भागवत [गीता] ५-१६-२

राजनैतिक साजिश अथवा अज्ञानता से वेद के विरुद्ध एक जिहाद है, जिस में उनके भारती चेले तो अब उन से भी आगे निकल गए हैं।

यजुर्वेद (३४/११) का एक मन्त्र है, जिस में पांच नदियों का वर्णन है तथा देश शब्द का भी प्रयोग हुआ है। उस में से कुछ लोग पंजाब का वर्णन ढूंढते हैं, परन्तु मन्त्र में कुछ और ही वर्णन है। वह मन्त्र है :-

पञ्च नद्य: सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतस:
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥

(अर्थात 'पांच नदियां अपने सरोतों से सरस्वती की ओर जाती हैं और वह सरस्वती पांच प्रकार से होकर इस देश में बहती है।) अब पंजाब की पांच नदियां न तो सरस्वती की ओर जाती हैं, न ही सरस्वती पांच धाराओं में होकर बहती थी, न ही सरस्वती पंजाब में से बहती है, वह तो कुरुक्षेत्र से बहती थी। पंजाब की पांच नदियां ही और हैं। सरस्वती शब्द के लिये निरुक्त में है -

वाङ्नामान्युत्तराणि सप्त पञ्चाशत्। वाक्कस्माद्वचते:।
तत्र सरस्वती त्येतस्य नदी वद्देवतावच्च निगमा भवन्ति॥ (नि० नै० कां० पाद ७)

(अर्थात 'वाणी वाचक नामों से सरस्वती शब्द, वेदों में नदी और देवता के लिये आता है)। इस मन्त्र में चित की पाँच पांच वृतियां ली गई हैं और वे पांचों स्मृति में ठहरकर वाणी द्वारा फिर पांचों प्रकार के प्रकट करने वाली होती हैं। इस इन्द्रिय रुपी पांचों नदियों के नाम ये हैं:-

सा वो रसा अनितभा कुभा क्रुमु: मा व: सिन्धु: नि रीरमत।
मा व: परिष्ठात् सरयु: पुरीषिणी अस्मे इत् सुम्नं अस्तु व:॥ (ऋ० ५/५३/९)

अर्थात हे मरुतो ! हमको आपको रसा कुभा क्रुमु सिन्धु और फैले हुए जलवाली सरयू सुखदायी हों। इस विवरण का तात्पर्य यह है कि पांचों ज्ञानेन्द्रियों का विषय वाणी होकर बहता है और वाणी द्वारा आया हुआ ज्ञान पांचों इन्द्रियों का विषय होता है। दूसरी जगह 'सहस्त्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिण:' (ऋ० ९/७३/७) मन्त्र में भी हज़ारों धाराओं से बहनेवाले ज्ञान और वाणी को विद्वानों ने पवित्र करनेवाला कहा है, जो नदी रुप से वाणी का ही वर्णन है। इस लिए यह सरस्वती नाम वाणी का ही है, जैसा कि यजु० २०/४३ में कहा है कि 'सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्ति:' अर्थात सरस्वती, इडा और भारती वाणी के नाम ही हैं। (आश्चर्य है कि इन लेखकों को यहां भारती शब्द दखकर वेद में 'भारतवर्ष देश' की बू क्यों नहीं आई) सो यहां उक्त पांचों ज्ञानेन्द्रियों को भी नदी कहा गया है और वाणी को भी नदी ही बताया है। इस पांच नदी वाली वाणी को ऋ० २/४०/३ में 'पञ्चरश्मिम्' अर्थात पांच रश्मि वाली कहा है। इस तरह (ऋ० १/३/१२) में

'महो अर्ण: सरस्वती प्रचेतयतिके तुना। धियो विश्वा वि राजति' आया है, जिसमें बुद्धि को भी सरस्वती कहा है। बुद्धि भी गाम्भीर्य और प्रवाह में नदी की ही भांति है। (यहां भी आश्चर्य होता है कि इस मन्त्र का पहला शब्द है 'महो अर्ण:' परन्तु इस से बना महराण सिन्धु नदी का वाचक नाम क्यों नहीं लिया गया) इस तरह से वेद में किरणों को, नदी को, इन्द्रयों को, वाणी को और बुद्धि को नदी वाले शब्दों से वर्णन किया गया है, तथा गङ्गा आदि नाम उन्हीं पदार्थों के लिये कहे गऐ हैं। किन्तु लोक में आर्यों ने अपने व्यवहार के लिए वेद के शब्दों से अपनी व्यवहार्य नदियों के भी नाम रख लिए, जो अब तक चल रहे हैं। इस लिये वेद में आई हुई नदियां भारत की नदियां नहीं हैं और न वेद में गङ्गा आदि नाम इन गङ्गा यमुना आदि नदियों के लिए आये हैं। ये नाम किरणों और इन्द्रयों के हैं। शरीर में भी गंगा आदि नदियां हैं। यजुर्वेद ३४/५५ का मन्त्र है :-

सप्त ऋषय: प्रतिहिता: शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्ताप: स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतौ अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

(अर्थात 'सात ऋषि इस शरीर की रक्षा करते हैं और 'सप्ताप:' अर्थात सात नदियां सोती हैं।) शरीर में बहनेवाली ये नदियां इन्द्रियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। इस लिये 'सप्त-सिन्धु' के नाम से सिन्धु देश का ग़लत और निरर्थक इतिहास बनाना केवल अज्ञानता है। भला नदियां भी कभी सोती हैं; जैसे यहां दिखाया गया है?

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सप्त-सिन्धु तथा सप्त नद पंद्रह (१५) स्थानों पर आया है, परन्तु सायणाचार्य ने उस 'सप्त' शब्द का अर्थ सब स्थानों पर सात (७) नहीं किया है। छ: स्थानों पर तो उस ने सप्त शब्द का अर्थ किया है 'सर्पणशील" परन्तु सिन्धु का अर्थ सिन्धु नदी न कर के गंगा आदि किया है। और ध्यान रहे कि पुराने पौराणिक वेद भाष्यकारों में सायण का स्थान प्रमुख है।

विचार करने की बात है कि केवल वेद में ही सप्त-सिन्धु का वर्णन आया है किन्तु इस के पश्चात रामायण, महाभारत आदि और किसी भी संस्कृत ग्रंथ में कोई वर्णन तथा कहीं उल्लेख तक भी नहीं है।

ऐसे तो वेद में राजाओं, ऋषियों, नगरों आदि के नाम भी हैं। परन्तु उन का अर्थ वहाँ बिलकुल भिन्न है। कुछ स्वाध्याय शील लेखकों ने स्वयं भी इस बात को स्वीकार किया है। यजुर्वेद (५/२) में पुरुरवा और उर्वशी (जिस से आयु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ) का इतिहास बताया जाता है। परन्तु वेद में यह विज्ञान से सम्बद्धित है, इस लिये श्री ग्रिफ़्थ ने ऋग्वेद के टिप्पण में लिखा है कि "मैक्समूलर के मतानुसार यह उषा तथा सूर्य का वर्णन है" तथा डा॰ गोल्डस्टकर के मतानुसार यह प्रात:काल और सूर्य का वर्णन है":-

"Max Muller considers the story to be one of the myths of the Vedas which expresses the correlation of the dawn and the sun. According to Dr. Goldstucker, Urvashi is morning mist which vanishes away as soon as Pururava, the sun displays himself."

एसा अवश्य हुआ है कि वेदों के इन उपाख्यानों को पौराणिक विद्वानों ने एतिहासिक राजाओं से जोड़ दिया है. जो केवल अलङ्कार ही हैं, जिन को न समझने से बहुत सी एतिहासिक गड़बड़ी तथा अनर्थ भी हुआ है। उस को फिर सुलझाने का प्रयतन किया गया है और हो भी रहा है।

अकेले वेद के इस सप्त-सिन्धु (जिस का शुद्ध रुप उपर दिखाया गया है) का सहारा लेकर अनेक सप्त की कलपनाएं की गई हैं, जैसे कि सप्त सागर, सप्त द्वीप, सप्त पाताल, सप्त सरिता, सप्त सरोवर, सप्त कण इत्यादि। महाबलीपुरम में 'सप्तरथ' है। हो सकता है इसलाम का सप्ताकाश (सातवां आसमान जहां अलाह मियां बिराजमान है) भी इस प्रकार की कोई कल्पना हो। परन्तु कलपना से अधिक हकीकत यह है कि आसमान शब्द स्वयं ही वैदिक संस्कृत है। ऋग्वेद में 'अश्मानं' शब्द आसमान अर्थ में आया है। सो इसी प्रकार बाद में सप्तस्वर (संगीत के), सात दिन सप्ताह के, सप्त छन्द, तथा व्याकरण की सात विभक्तियां आदि अनेक चीजें बन गई, किन्तु मूल वेद में था उसलिये यह सब हुआ। विष्णु पुराण में पृथ्वी का वर्णन करते सप्त द्वीप और सप्त समुद्रों का वर्णन है।[1] हिन्दी कवि मलक महमद जायसी ने भी 'सात समुद्र खण्ड' में सप्त समुद्र का उल्लेख किया है जो पुराणों की नक़ल है। मध्य एशिया में भी 'सप्त नद' नाम का प्रदेश है। सात नदियों के कारण इस का मूल नाम कुछ एसा था जो बाद में तुरकी-मंगोल में से होकर इस समय रुसी भाषा में उसे सेमी-रेच्ये अर्थात सात नदियां (सप्त नद) कहा जाता है। परन्तु वहां अरस, चू आदि सात नदियां हैं। 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनीका" के अनुसार प्राचीन काल में ईजिप्ट में भी सात धाराएं (सप्त नद) बहती थीं। सिन्ध में अक्सर 'सात समुन्ड' (सात समुद्र) पार करके व्यापारी विलायत आया जाया करते थे एसा लोक कथाओं में आता है। उर्दू कवि हाली ने एक शेर में 'सातों समुद्र' लिखा है। कुरान में ही 'सबअ्त अलबहर' (सात समुद्र) आया है और वह अरब देश के इर्द गिर्द के अथवा दूर के सात समुद्र हैं जैसे कि :- बहीर: रुम, बहीर: कुल्जम, बहर अरब, बहर हिन्द, बहर अमान, वहर फारस, बहर अस्वद। ये सात समुद्र भी सात नदियों के समान हैं।

सप्त-सिन्धु का अर्थ होगा सिन्धु नाम वाली सात नदियां, एक ही प्रदेश में से बहती हों। किन्तु संसार के किसी भी भाग में एसी बात हो नहीं सकती और एक ही नाम वाली पांच नदियां भी एक प्रदेश में नहीं हैं। तो फिर सप्त-सिन्धु में एसा क्यों? गुजरात में सुकली नाम की

(1) विष्णु पुराण [गीता], २/२/५-६

छोटी बड़ी चार नदियां हैं। गंगा नाम की भी अन्य नदियां हैं, परन्तु कहीं भी उनके समूह (मिला कर एक ही समय) एक ही प्रदेश में से बहने के कारण नदी नाम नहीं मिला। परन्तु सिन्ध में तो एक से अधिक बड़ी नदी है ही नहीं न कभी थीं। इस से तो यह अच्छा था कि ये सप्त-सिन्धु के मजनू वर्तमान सिन्ध के लाड़ प्रदेश को जहां सिन्धु नदी कभी सात धाराओं में होकर समुद्र में मिलती थी, सप्त-सिन्धु कहते तो अच्छा था, कुछ बात भी बन पाती चाहे वह असंगत होती। किसी सम्राट चन्द्र (गुप्त) के मेहरुली वाले लेख में एक जगह लिखा है कि 'राजा पहले सिन्धु नदी के सात मुख पार करके फिर जाकर वाह्लीकों को जीता':-

"तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाहिलका"

पेरिप्लस में भी एसा लिखा है कि "सिन्धु नदी के सात मुख हैं, और एक को छोड़ कर बाकी दूसरों में जहाज़ों का आना जाना नहीं होता"। परन्तु टालमी ने तो इन सातों के नाम भी लिखे हैं जिन में से दूसरे का नाम सिन्थोन (Sinthon) लिखा है। इस लिए ज़ाहिर है कि सप्त-सिन्धु का उल्लेख वेद से जोड़ना एक राजनैतिक शड़यंत्र है। फिर भी यहां यह प्रश्न होगा कि कौन सी सिन्धु? क्यों कि सिन्धु नाम की भारत में ही चार नदियां हैं। चम्बल नदी की शाखा को काली सिन्धु, बागड़ी सरोञ्ज के ऊपर पश्चिम की सिन्धु, देवास की ओर छोटी सिन्धु, बुन्देल खण्ड के पहाड़ियों से निकलने वाली सिन्धु पारा तथा जोनराज के अनुसार किशन गंगा को भी सिन्धु कहा जाता है और कशमीर में इस सिन्धु और मधुमती नदियों के सङ्गम पर शारदी तीर्थ तथा मन्दिर हैं।[1] मध्य प्रदेश में भी सिन्धु तथा मधुमती (वर्तमान मुहवर) नदियों का सङ्गम था। प्रचीन पदमावती नगरी इसी के समीप तथा सिन्धु पारा के सङ्गम पर होगी। संस्कृत नाटक 'मालती माधव' में भी सिन्धु और मधुमती सङ्गम का वर्णन है। राज भोज के 'सरस्वती कंठाभरण' में भी इस सिन्धु तथा पारा नदियों का वर्णन है:-

पुरः पारा अपारा तट भवि विहार पुरवरं,
ततः सिन्धुः सिन्धुः फणि पतिवनं पावनमत।

कवि कालीदास के 'मालविकाग्निमित्र' में भी सिन्धु का वर्णन आता है। परन्तु वह सिन्धु कौन सी? कुछ इसे काली सिन्धु कहते हैं। प० गौरी शंकर ओझा के अनुसार यह मालवा से निकल कर राजपूताना में से बहने के कारण काली सिन्धु कहलाती है।[2] हालांक टाड के हिन्दी अनुवाद में उस का नाम उन्होंने केवल सिन्ध लिखा है।[3]

(1) डा० रघुनाथ सम्पादित, जोनराज राजतरङ्गिणी, पृ० ५९५
(2) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ५, पृ० २०३
(3) टाड राजस्थान [हिन्दी अनुवाद] खण्ड १, पृ० ४११

कालीदास ने मेघदूत में सिन्धु नदी का प्रेमिका के रुप में वर्णन किया है :-

'वेणी भूत प्रेतनुं सलिला तामती तस्य सिन्धुः'

इस लिये सप्त-सिन्धु वाली कौनसी सिन्धु है, पहिले तो यह निर्णय होना चाहिये, जो नहीं किया गया है, इस लिये सब धोखा चल रहा है।

अब इस बात को और स्पष्ट करने के लिये एक और बात लिखते हैं। ऊपर कहा गया है कि वेद में किसी प्रकार का भी इतिहास नहीं है। वर्तमान में वे नाम देखकर और वेद में भी वही नाम देखकर ये लेखक धोखा खा बैठे हैं। क्यों कि ईश्वरीय ज्ञान के आधार पर ही संसारी नाम भी रखे गये हैं। सो वेद में और नामों की तरह अयोध्या नगरी का भी वर्णन है। परन्तु वेद की अयोध्या आज की अयोध्या नहीं है, जिसे राजा इक्ष्वाकु ने बसाया था। देखिऐ कैसा वर्णन है -

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्रयरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमातमन्वत् तैद्व ब्रह्मविदो विदुः।। (अथर्ववेद १०/२/३१-३२)

अर्थात "आठ परिखा और नव द्वार वाली देवनगरी आयोध्या हैं। इसमें हिरण्यकोश है, जो स्वर्गज्योति से आवृत है। यहां तिहरा बन्दोबस्त है। और यक्ष आत्मा की भांति बैठा है जिसको ब्रह्मविद लोग जानते हैं।" कहिये कैसी अयोध्या है ? कैसा उत्तम वर्णन है ? यह उत्तर प्रदेश की है या शरीर रुपी ? गीता में भी इस शरीर रुपी अयोध्या का उल्लेख है :-

'नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्'।

संत वाणी में भी इस शरीर रुपी अयोध्या का वर्णन है :-

"नव द्वारे को पींजरा तामे पंछी पौन। रहेने में आश्चर्य है गये अचंबा कौन।"

नव द्वारों का पिंजरा उसमें पक्षी (आत्मा), आश्चर्य है न! बाद में गीता और संत वाणी की प्रेरणा से सवाई राजा जयसिंह ने ज्योतिष्यों के सलाह से जयपुर नगर आबाद किया जिसे भी नव द्वार हैं। देखिये! मूल वेद ज्ञान का आश्रय पाकर शरीर रुपी नगर भी समझा गया तो वास्तव में नगर भी बस गया और इस का नाम भी मूल के आधार पर अयोध्या रखा गया। क्यों कि संसारी सब नाम इश्वरीय ज्ञान वेद से ही लिये गये हैं। मनु महाराज का दावा है कि 'वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक संज्ञाश्च निर्ममे' अर्थात 'वेद शब्दों से ही सब पदार्थों के नाम रक्खे गये हैं'। यद्यपि वेद में इन शब्दों के अर्थ आध्यात्मिक हैं, जो न समझ कर वर्तमान लेखकों ने इस अयोध्या को उतर प्रदेश की अयोध्या लिया है। ऐसे तो वेद में बृज (बृज), अर्व (अरब), गांधार (कंधार), रुम (इटली), रुश (रशिया), अंग, बाहलीक, मगध आदि

नाम आए हैं, परन्तु वेद में उन सबका अर्थ भिन्न है, जैसे अयोध्या। वह न समझकर वेद में इतिहास खोजा गया है, जो मिलने का नहीं। पानी बिलोना है। केवल अशुद्ध धार्णा, अशुद्ध सोच तथा झूठे ज्ञान का कोलाहल मचा हुआ है।

महाभारत (भीष्म पर्व, ६/३८) में आया है :-

धनु संस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे।
इलावृतं मध्यमं तु पञ्च वर्षाणि चैव हि॥

अर्थात 'महाराज! दक्षिण और उत्तर में क्रमशः भारत और ऐरावत नामक दो वर्ष धनुषकी दो किटियों के समान स्थित हैं और बीच में पांच वर्ष हैं। इन सब के बीच में इलावृत वर्ष है'॥

अब साधारण लोगों के लिये वर्ष का अर्थ साल (वर्ष से ही वर्षा [बरसात] और उसी से वृषभ [बैल] बना) है तो फिर दक्षिण और उत्तर की ओर साल (वर्ष) काहे का! और उनके बीच में पांच साल (वर्ष) किस लिये? ऐसा श्लोक अकेला ही किसी अनाड़ी को मिल जाये तो वह अंधेर कर देगा। परन्तु विद्वान विषय को आगे पीछे देखेगा, विषय कौनसा चल रहा है, क्या चल चुका है और आगे क्या है आदि। सो आगे के श्लोक ३७ में है कि:-

'वर्षमैरावतं राजन् नानाजनपदावृतम्'

अर्थात 'आगे ऐरावत नामक वर्ष है। राजन् वह अनेकानेक जनपदों से भरा हुआ है'। स्पष्ट है कि यहां वर्ष का अर्थ साल (year) नहीं किन्तु प्रदेश है, जिस में अनेक जनपद हैं, जैसे कि भारतवर्ष।

इस प्रकार के अनेक अलंकार वेद मन्त्रों के आधार पर बने हैं। उर्वशी वाले अलंकार को तो मैक्समूलर पश्चिम के 'यूरोपा' से जोड़ते हैं जिस से 'योरोप' देश का नामकर्ण हुआ है।

हप्त हिन्दू! वेद के सप्त-सिन्धु से सिन्धु देश का इतिहास गलति सिद्ध करने के पश्चात अब देखें पार्सी मत ग्रन्थों का हप्त हिन्दू का कैसा रुप है। पार्सियों का यह हप्त हिन्दू देखकर तो इस सप्त सिन्धु विवाद को उतेजना मिली है। यद्यपि बात में दम कुछ नहीं है। हम यहां मूल पहल्वी वेन्दीदाद (Zind-I Jvit-Dev-Dat) से मूल उद्धरण दे रहे हैं, जिसका अनुवाद पारसी विद्वान श्री बहराम गोर अंकलसेरिया ने किया है जो पारसी अनुसंधान संस्था के० आर० कामा ओरीअन्टल इन्स्टीटयूट (मुम्बई) की ओर से १९४९ में प्रकाशित किया गया है। श्री बहराम गोर ने उस के शुद्ध अनुवाद के लिये ईरान में जाकर अनेक हस्त लिखित प्रतियां देखीं, जिसका उल्लेख उन्हों ने ग्रन्थ की भूमिका में किया है। इतने कष्ट के पश्चात तैयार किये गए इस प्रमाणिक सम्पादन का हम भी सहारा ले रहे हैं। उस में प्रथम परगर्द (फरगर्द) के प्रथम श्लोक के पश्चात क्रम ठीक नहीं दीखता। दूसरे श्लोक से उत्पति का वर्णन है। परन्तु वह वस्तुतः संसार के देशों का क्रम है अथवा और कुछ, वह अगर ईमानदारी से पहला फरगर्द पूरा पढ़ा जायगा तो लगेगा

कि वह न मालूम क्या है। इस लिये लगता है कि इस प्राचीन ग्रन्थ के मूल रहस्य को भी समझा ही नहीं गया है। केवल अनुवाद करना और बात है। इस लिये हम आज भी विश्वास के साथ कह सकते हैं कि इसका रहस्य फिर भी कोई वैदिक विद्वान ही खोल सकता है। क्यों कि सोलह प्रदेशों अथवा स्थानों (lands and places) में से एक भी शुद्ध नहीं लिखा है। सात्वें श्लोक में Nisay देश (न मालूम कौनसा) का वर्णन करने के पश्चात मूल पहल्वी मे लिखा है :-

[Ae: an guyom, anda an han-kha hast]

[Note: I-mention that, as *There* is the other-too of that name]

तो फिर ऊपर लिखा Nisay सब से अच्छा (Fraz-brehinit) कैसे हुआ, जैसा उसके लिये लिखा है ?

फिर बारहवें देश अथवा स्थान का नाम Rag लिखा है, जिसके लिये लिखा है :

[There is one who says: 'Raye'. Its having three-races is this that the priest (ब्राह्मण), the warrior (क्षत्री), and the husbandman (वैश्य) become happy therefrom."

दूसरी जगह फिर R-a-y लिखा है। अब आएं अपने अठारहवें श्लोक पर:-

"Panzahom (the fifteenth) ez jakan (of lands) u (and) rostakan Am (I) pahalom (created) fraz- brehinit (the best), Men ke (I who) Auhr-mazd (Ohrmazd) [hom], ke (was that which was the) Hapt-hindukan."[1]

फिर टीका में है कि [Vas Hapt-hindukanih e ku sar-khata hapt hast] अर्थात 'वह हप्त हिन्दूकां इस लिये कहलाता है कि इस में सात राजा हैं [Its being Hapt-Hindukan is this that it-has seven chiefs]. किन्तु आगे लिखता है 'E chi ra guyom, ku, hapt rot ?' अर्थात, मैं उन को सात नदियाँ क्यों कहता हूं ? (यद्यपि कहीं कहा ही नहीं है)

[Why do-I-say this, that-is, seven rivers ?]

उतर देते लिखता है: "chi, an ez Avista peta." अर्थात "क्यों कि वह अवेस्ता से जाहिर है।"

[For, that is evident from the Avesta]. अब अवेस्ता में क्या लिखा है वह देखें :- [Hacha ushastra Hindva avi daoshastarem Hindum] अर्थात 'पूर्व की ओर की नदी से पश्चिम वाली नदी तक' "From the Eastern river towards the Western river." यह स्पष्ट है कि यहां Hindva का अर्थ पूर्व तथा Hindum का अर्थ पश्चिम किया गया है, और सिन्ध-हिन्द से इसका कोई सम्बंध नहीं है। अन्त में टीकाकार लिखता है :

(1) Pahalvi : Vendidad, 1-18

[Hast ke aetun guyet, ae: "Har kesvar-e aevak hast] अर्थात 'एक और कहता है कि हर देश में एक है' "There is one who thus says: Every clime has one." परन्तु क्या ? इसका कहीं उल्लेख नहीं है।

किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इस प्रकार के सब सोलह देशों (जैसा समझा जाता है परन्तु है बिलकुल ग़लत) के लिये वेन्दीदाद में हर देश की उत्पति के पश्चात उस के विरुध एक और चीज़ बनी है और वह भी अहुरमज़्द (पारसी परमात्मा) के विरोधी ने ही बनाई है। सो हप्त-हिन्दुकां के विरूध क्या बना ? देखें :-

Az-as Pa an-i oi petiyarayih fraz-karinit Gana-Minuy por-marg, (an-i) awaron dastan,—(stahma—tar bawet),— U-(an-i) awaron garmih,—(freh ez patman bawet).

अर्थात "इस पर गण-मिनुय (विरोधी) ने इस (हप्त-हिन्दुकां) के मुकाबले में उत्पन्न किया असाधारण हेज़ (इस्त्रियों का मासिक) [वह बड़ा पीड़ा दायक है] तथा असाधारण गर्मी, जो पतमान (इस शब्द का अर्थ अनुवादक ने भी नहीं किया है) से भी अधिक है।

"Thereupon, 'Gana-Minuy,' full-of death, counter-created, in opposition to it, (the) abnormal menstruation,-(it is very oppressive), and (the) abnormal heat,—(it is more than patman)." (Ibid. P 13)

अब इस हप्त-हिन्दुकां के मुकाबले में यह हेज़ (menstruation) की नदी क्यों और किस लिए है वह तो अनुवादक ने भी नहीं लिखा है। हमने बिना किसी हस्ताक्षेप के पूरा मूल दिया है। पाठक स्वयं देखें कि वह सिन्ध से सम्बद्धित सप्त-सिन्धु है अथवा और कुछ। पूरे वर्णन से कहीं भी यह सिन्ध का वर्णन नहीं लगता। यदि यह सिन्ध है तो केवल सिन्ध क्यों उत्पन्न किया, पूरा भारत क्यों नहीं ? या सिन्ध की पूंछ पारसी भगवान भारत से मिला रहा था। इस के सिवाय हिन्दू शब्द का अर्थ यहां सिन्ध बिल्कुल नहीं है और प्राय: इसका अर्थ केवल पूरब है।

इसी वेन्दीदाद का गुजराती अनुवाद श्री कावसजी एदुलजी कांगा (मुम्बई) ने किया है जो भी इसी कामा इन्स्टीटयूट का प्रकाशित किया हुआ है। उस ने तो साफ लिखा है "पूर्व भारत से पश्चिम भारत के साथ"।[1] परन्तु इस की टीका करते अपनी पुष्टि में कुछ नहीं लिखा है। इतना ही नहीं अपितु सप्त शब्द को उड़ा दिया है क्यों कि 'पूर्व भारत से पश्चिम भारत' का उल्लेख करते सप्त शब्द का न कहीं अर्थ किया है न कहीं अर्थ में जोड़ा है। वास्तव में यह सात (सप्त) का चक्र पराना है, जैसा उपर दर्शाया गया है। दूसरी पारसी पुस्तक दीनकर्द (Dinkard) में भी सप्त द्वीप का वर्णन है। वोहू-क्षथ्र (चोथी गाथा) में इस प्रकार है कि :-

(1) वेंदीदाद, गुजराती, पृ० ४

"The twentieth fargard, Vohu-Khshathra is about the oppressive actions of the reign of Dahak over the SEVEN Regions."[1]

इस सात शब्द का क्या अर्थ है, वह साफ लिखा हुआ तो वहां भी नहीं है, किन्तु श्री वेस्ट (West) ने लिखा है "Over the earth of seven regions' हम इसे संस्कृत साहित्य का सप्त-द्वीप कह सकते हैं।

ऊपर वेन्दीदाद के अनुवादक तथा गुजराती टीकाकार ने 'हिन्दू' शब्द का अर्थ पूरब (East) किया है, इस की पुष्टि में एक और प्रमाण देते हैं। पारसी धर्म ग्रन्थ महरयश्त (१०-१०४) के श्लोक की दूसरी पंक्ति है "यत छत उशस्तैरी हिंदोव"। पारसी विद्वान श्री तारापोरवाला ने इस पर बहस करके अंत में लिखा है कि 'इस हिंदू का अर्थ पूरब है':-

"The mention of Hind of course means the East."[2]

हमारे विचार से यह अर्थ भी अशुद्ध है। सन् १९२२ की बात है "दी कैम्बृज हिस्टरी आफ इन्डिया" भाग १ 'एन्शन्ट इन्डया' पर एक विद्वान ने आलोचना की और बड़ी योग्यता से की। उस ने भी इसी ऊपर लिखित बात को लेकर लिखा था कि "पूर्व हिन्द से पश्चिम हिन्द तक न केवल मिथ्र (वैदिक मित्र) परन्तु सरौश की सता भी इसी प्रकार दिखाई गई है जो अशुद्ध है, जब कि इस पश्चिम के साथ कभी सिन्ध-हिन्द नाम मूल ग्रन्थों में आया ही नहीं है, परन्तु अनुवादकों ने अपनी बात को पूरा बिठाने के लिए जोड़ दिया है":-

"The passage .... runs thus 'the long arms of Mithra seize upon those who deceived Mithra; even when in eastern (India) he catches him, even when in western (India) he smites him down; even when he is at the mouth of Ranha river (and), even when he is in the middle of the earth.' The same statement is repeated in part in Yasna (57-29), regarding the power of Sraosha, the guardian genius of mankind, as extending over the wide domain from India on the east to extreme west- 'even when in eastern (India) he catches (his adversary), even when in western (India) he smites him down.'

"To our unsophisticated minds these passages contain no political allusions at all. They propound the extensive powers of Avestan Gods. It seems most probable that 'India' (or to be exact) was the extreme eastern

(1) Dinkard, book IX; Chapter XX-1
(2) Proceedings A. I. O. C. [1922] P. 86

limit of the world known to the Iranians. In both the passages the word 'India' or 'Indus' does not appear in the text after the word western. It has been supplied by the translators. The passage probably refers to the whole world from eastern Indus (or India) to the extreme world."[1]

फ्रेंच विद्वान डार्मसटेटर (James Darmesteter) जो ज़न्द (पारसी) साहित्य के बड़े विद्वान माने जाते हैं, उन्हों ने भी हप्त-हिन्दूकां आदि का उल्लेख करते साफ़ लिखा है कि 'यह संसार का भौगोलिक ज्ञान है जो पारसी विद्वानों को था।' :-

"We have here nothing more than a geographical description of Iran seen from a religious point of view."

अर्थात, मूलत: यह न जाने क्या है, कुछ मालूम नहीं। अलबेरुनी ने एक विचित्र बात लिखी है। उसने जो कुछ लिखा है वह स्पष्ट नहीं है। उसका अर्थ क्या है, साफ लिखा होते भी अस्पष्ट है (हो सकता है अनुवादकों ने पूरी तरह न समझा हो) इस लिए हम केवल मूल यहां देते हैं। लिखा है :-

"As the name union of the five rivers occurs in this part of the world (in Punjab), we observe that a similar name is used also to the north of the above mentioned mountain chains, for the rivers which flow thence towards the north, after having united near tirmidh (तिरमिज़) and having formed the river of Balkh, are called the union of the 'Seven rivers'. The Zoroastrians of Sogdiana have confounded these two things; for they say that the whole of the seven rivers is Sindh, and its upper course Baridish".[2]

इन से भी विचित्र बात यह की है कि सिन्ध और सैन्धव दोनों को अलग अलग लिखा है। (वही, पृ० २६१)

इन सब बातों को ध्यान में रखकर हम फिर भी यह दुहराते हैं कि स्वयं पारसी विद्वानों ने भी अपने ग्रन्थों के रहस्यों को पूरी तरह नहीं समझा है। उनका प्राचीन ग्रन्थ है 'जन्द अवेस्ता'। उस के पुराने विद्वान शताब्दियों के चपेट में समाप्त हो गए, रहस्य साथ ले गए। कुछ इसलामी तलवार ने कत्ल कर दिये। गम्भीर ज्ञाता रहे नहीं। इस लिए अपनी बुद्धि से जो कुछ (पूरे विश्वास से परिश्रम करते भी) उन्हों ने समझा है, वह दिया है। और मूल गम्भीर अर्थों के अभाव में दूसरे सब विद्वानों ने भी उन अर्थों का आश्रय लिया है। यह शिकायत स्वयं पारसी

(1) Modern Review, December 1922

(2) Sachau: Alberuni's India, Chapter XXV, P. 260

विद्वानों को भी है। इन्हीं डा० तारापोरवाला ने १९२२ की ओरीअन्टल कान्फ्रेंस में अपना निबन्ध पढ़ते समय आरंभ में ही इस शिकायत का उल्लेख करते कहा था :-

"There are still many passages in the Avesta which are by no means clear as to their meaning and scholars are by no means quite agreed as to their real significance."[1]

इस लिए न केवल इस एक श्लोक (१९) अपितु पहले पूरे फरगर्द का जो भी अर्थ पारसी अथवा पश्चिमी विद्वानों ने किया है वह पूरे का पूरा अशुद्ध है, तो फिर दूसरे स्थानों पर भी एसा ही हाल है। परन्तु हम यहां अपने उद्देश्य वाले फ़रगर्द के सम्बंध में ही लिखेंगे। देखिए! अहुरमज़्द ने कुछ प्रदेश उत्पन्न किये, फिर लगा ढंढोरा पीटने कि देखो में ने यह कार्य किया है। और आश्चर्य तो यह है कि हर बार हर प्रदेश की उत्पति के लिये लिखा है 'fraz brehinit' अर्थात 'सबसे उत्तम', तो फिर 'सब से निकृष्ट' कौन सा प्रदेश है ? अथवा उत्तम और अच्छा कौन सा है ? और यह भी कि हर प्रदेश की उत्पति के विरुद्ध एक एक गंदी वस्तु की उत्पति भी हर श्लोक के साथ दी गई है, जो सर्वथा प्रतिकूल है। ज़रा सारा मूल कोई पढ़ तो देखे! जैसा कि हप्त-हिन्दुकां के विरुद्ध आर्तव। स्पष्ट है कि कि यह अर्थ इस फरगर्द का हो ही नहीं सकता। ठीक अर्थ यह हो सकता है कि वह सृष्टि उत्पति का क्रम वर्णन किया गया है कि पहले फलां चीज़ (न कि विशेष प्रदेश) उत्पन्न हुई फिर यह हुई, फिर वह हुई इत्यादि। परन्तु इन रहस्यों को अभी तक समझा नहीं गया है। जिस प्रकार बाईबल में पहले ही अध्याय (जैसा वेंदीदाद के प्रथम ही फरगर्द में है। यह भी सम्भव हो सकता है कि इस चीज़ को ईसाई मत में पारसी मत से नकल किया गया हो) Genesis में संसार का उत्पति क्रक वर्णित है, और वहां पहले श्लोक में है कि 'परमात्मा ने स्वर्ग और पृथ्वी बनाए'। श्लोक १६ में है 'परमात्मा ने सूर्य और चन्द्र बनाए'। श्लोक १९ में है 'यह काम उस (God) ने चौथे दिन किया। फिर अध्याय दूसरे के श्लोक २ में है 'परमात्मा ने यह सब काम (सृष्टि उत्पति) सात दिनों में पूरा किया। :-

"And on the seventh day God ended his work which he had made".[2]

परमात्मा के लिए इस प्रकार की निरर्थक बातें लिखने का प्रयोजन? परन्तु वास्तव में यह सृष्टि उत्पति का क्रम था और इस के अनुसार चौथे दरजे पर सूर्य और चन्द्र उत्पन्न हुए, जिस को न समझ कर उसका अर्थ चौथा दिन किया गया है। नहीं तो जब तक सूर्य ही उत्पन नहीं हुआ तो दिन कैसे हो गया। और सात दिनों का अर्थ भी यही है जो वैदिक सृष्टि उत्पति का

(1) Proceedings A. I. O. C. 1922

(2) Old Testament, Genesis, 2-2

क्रम है कि परमात्मा ने प्रथम छः मन्वंतरों में पृथ्वी, जल, वनस्पति, पक्षी, पशु आदि उत्पन किए और सातवें मन्वंतर में मनुष उत्पति हुई, और बस! ईश्वर का उत्पति कार्य समाप्त हुआ। इसी को बाईबल में सातवां दिन कहा गया है और वेन्दीदाद का 'हप्त' भी इसी से सम्बद्धित हो। इसी प्रकार कुरान में है :

"इन रबकुम अला: अल ज़ी खलक़ अलसमवात
वा अलअर्ज़ फी सितहि अथाम"[1]

(अर्थात, वस्तुत: तेरा रब अल्ला: ही है जिस ने आकाश और पृथ्वी को छः दिनों [के संख्या] में उत्पन किया)

भले इसलामी मुल्ला और मौलवी कुरान की इस चीज़ को सचमुच 'दिन' निरधारित करें किन्तु सच्चाई यह है कि यह दिन मूलत: इस उत्पति क्रम का छठ्ठा दरजा अथवा स्थान है अर्थात वेदिक छः मन्वंतरों में सृष्टि उत्पति हुई। वेद में आता है:-

१- "ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धातपसोऽध्यजायत।
२- "समुद्रादर्णवादधि ...... अहोरात्राणि।
३- "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत। (ऋग्वेद, १०/१९०/१-२-३)

अर्थात, 'परमात्मा के ज्ञानमय अनन्त सामर्थ्य से इश्वरीय नियम तथा प्रकृति प्रकट हुई और उस सामर्थ्य से जलों से भरे समुद्र तथा आकाश उत्पन हुए और जल भरे आकाश उत्पति के पश्चात सूर्य और चन्द्र उत्पन किये इत्यादि।

और यह भी ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण कहे हैं। वही 'दह हन्दारज़ (Dah Handarz) अथवा Ten Admonitions पारसियों के बने तो इसी प्रकार 'दस आज्ञाएं' (Ten Commandments) महात्मा मूसा के बाईबल में हैं। अंतर अवश्य है। ऐसा ही वैदिक विधान के अनुसार पञ्च महायज्ञ प्रत्येक मनुष के लिए अनिवार्य हैं जिन में कुत्ते, कौवे, भूखे आदि के लिए कुछ भोजन देना सम्मिलित है तथा ईश्वर आराधना भी है। पारसियों में भी इसी प्रकार पाञ्च वार प्रतिदिन बंदगी अथवा नम: (ह का ज़ होकर जैसे हस्त का ज़स्त) नमज़ आवश्यक है तो वह इसलाम का भी नमज़ से नमाज़ भी पाञ्च बार अनिवार्य हैं। इस तरह का प्रवाह चलता रहा है। प्राचीन से भी प्राचीन और अब के पश्चात भी। उन युगों में परिवर्तन होता रहा है, रुप बदलता है, किन्तु प्राचीनता के तत्व उन में अवश्य रहते हैं। और इसी प्रकार यह मत मतान्तरों के जीवन में भी होता रहा है। मगर सब के मूल में ईश्वरीय ज्ञान का साक्ष्य अवश्य विद्यमान है। बाद में बिगाड़ आया क्यों कि प्रवाह चलता, दूषित होता, परिवर्तित होता रहता है। इसी प्रकार यह सब हुआ है। सब का शुद्ध रुप ईश्वरीय ज्ञान में देखा

(1) अलकुरान, सूरत यूनिस, आयत ४

जा सकता है। यही उपाय है प्राचीन रहस्यों को समझने का। परन्तु देर बहुत हो चुकी है, फिर भी यत्न करना फ़र्ज़ है।

क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि ईसाइयों का पैग़मबर ईसा जिसको मसीह भी कहा जाता है (यह मसीह शब्द मूलत: जन्द भाषा का है तथा इसलामी मुला भी मूल पारसी है) वह महात्मा गौतम बुद्ध की प्रशंसा सुनकर किसी सारथवाह के साथ छुपकर पहले ठट्टा (सिन्ध) में आया जो उस समय व्यापारिक केंद्र था। सिन्ध से वह भारत गया, वहां से नेपाल पहुंचा, जहां बुद्ध मत का ज्ञान ग्रहण किया, फिर लौट कर अपने देश गया। स्वयं यहूदी थे। यहूदियों में बुद्ध मत का प्रचार किया जो बाद में स्थानिक विचारों से मिलकर ईसाई मत प्रसिद्ध हुआ और जैसे बुद्ध से बौद्ध वैसे ईसा से ईसाई मत प्रचलित हो गया। यह सब विवरण एक रुसी यात्री श्री नोटोविच (N. Notovitch) ने तिब्बत (Tibet) में बौद्धों के पुस्तकों से देखकर फ्रेंच भाषा में छपवाया जहां से अंग्रेजी, हिन्दी तथा उर्दू में भी प्रकाशित हुआ है। इस की पुष्टि में एक और प्रमाण भी है। प्रत्येक बौद्ध भिक्षु हल्दी में रगे पीत वस्त्र पहनता था (और है)। भारती सन्यासी गेरूए वस्त्र पहनते हैं परन्तु (ब्रह्मचारी और) बौद्ध भिक्षु पीत वस्त्र पहनता है। मौलवी अब्दुलमजीद नदवी ने एक रवायत दी है, उस अनुसार "मरियम का बेटा ईसा हल्दी में रंगे (पीत वस्त्र) दो कपड़ों में उतरेगा (नाज़िल होगा):-

'यनज़ूल ईसा बिन मरियम सोबीन महर्द दीन'[1]

हम लबे विस्तार में चले गए। अब अपने विषय पर आते हैं। इस सप्त-सिन्धु का हप्त-हिन्द होने के साथ एक यह भी उदाहरण दिया जाता है कि जिस प्रकार 'सोम का ज़न्द भाषा में होम' हो गया अर्थात सोम लत्ता का होम, जिस में से शराब बनती थी, उसी प्रकार सप्त-सिन्धु का हप्त-हिन्द हो गया। वास्तव में सोम नाम की कोई लत्ता संसार में कहीं है ही नहीं। नहीं संस्कृत साहित्य में इस लत्ता (बूटी) का कहीं वर्णन मिलता है। यह सब चंद्रमा का अलंकार है। चांद को संस्कृत में सोम कहते हैं। इसी चांद का ही अलंकार है जो सोम लता के नाम से जोड़ दिया गया है। सोम लत्ता का एक एक पत्ता प्रतिदिन बढ़ता है और १४ दिन के पश्चात फिर एक एक होकर नष्ट होता है। सोम (चांद) भी इसी प्रकार प्रतिदिन एक एक टुकड़ी होकर बढ़ता है तथा १४ दिन के पश्चात अर्थात पूर्णमासी से एक एक टुकड़ी होकर घटता जाता है। सोम लत्ता से जो लाभ है वही लाभ चांद के प्रकाश से होता है अर्थात वीर्य तथा शक्ति बढ़ते हैं। पारसी साहित्य में भी इस का इसी प्रकार का महत्व था जो समझा नहीं गया है। डा० होमी बाना ने अपने एक लेख "गौकरण" (Gaokerena) में कवि 'खबरदार' के हवाले से सोम को चांद सिद्ध करने का प्रयास किया है:-

(1) उर्दू पत्रिका 'मआरिफ' [अइज़मगढ़] वर्ष १०३, अंक ४, पृ० ३१३

"Kavi Khabardar in one of his articles on 'Tir Yast' has tried to prove HAOMA to be MOON; growing of the moon is compared with Haoma's helping the growth of plant life, thus creating the 'Elixir of Life' अमृत"।[1]

हम ने ऊपर लिखा है कि ज़न्द अवेस्ता के रहस्यों को पारसी विद्वान भी समझ नहीं पाए हैं। किन्तु निराशा नहीं है, क्यों कि पारसी विद्वान इन बातों को समझने समझाने का पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। वेन्दीदाद के प्रथम फरगर्द के हप्त-हिन्दूकां के लिए हमने जो कुछ लिखा है, वैसी बात फरगर्द २० में आती है। उस के श्लोक ४ में है कि "मैं अहुरमज़द ने जड़ी बूटी उत्पन्न कीं, सैकड़ों हजारों अगणित गौकरण में से"। यह गौकरण क्या है, यह समझना ऐसा ही कठिन है जैसा हप्त-हिन्दूकां। परन्तु डा० होमी बाना ऊपर लिखित लेख में इस शब्द पर तर्क-वितर्क कर किसी अच्छे परिणाम पर पहुंचा है और पूरा लेख पढ़ने तथा समझने जैसा है। (वही, पृ० १५७)

यह बात भी ध्यान में रखने जैसी है कि जिस प्रकार वेन्दीदाद के प्रथम फरगर्द में सोलह प्रदेशों का वर्णन किया गया है उसी प्रकार पार्सियों में १६ अग्नियों का भी विधान है। ये १६ अग्नियां क्यों? कम अधिक क्यों नहीं? १६ का अंक कोई विशेष अंक भी नहीं है। और फिर अलग अलग १६ रसोईघरों से क्यों? इस का ऊपर के १६ प्रदेशों से कोई सम्बंध है क्या? क्यों कि १६ कोई विशेष धार्मिक अंक भी नहीं है। डा० अन्कलसेरिया (D. A. Anklesaria) ने अपने छठे व्याख्यान (जो उन्हों ने रंगून [बर्मा] में दिये थे) में भी केवल इतना कहकर बात समाप्त करने का यत्न किया है कि:-

"All these fires are taken through the various ceremonies of purification, the whole idea being the universal manifestation of Divine life in human beings whatever their stations in life may be."[2]

ऐसा नहीं हो सकता कि ये उन आर्यों (ईरानियों सहित) वैदिक १६ संस्कार हैं जो सारे जीवन में होते रहते हैं और हर संस्कार में अग्नि (हवन) जलती है?

इस प्रकार सप्त-सिन्धु और हप्त-हिन्दू को असत्य सिद्ध करने के पश्चात अब चीनी यात्रियों का शिन्तु तथा इन्दु आदि देखें।

चीनी साहित्य का शिन्तु - सिन्धु से हिन्दू बनने की पुष्टि में चीनी यात्री ह्यूनत्सांग का प्रमाण भी दिया जाता है जिस ने शिन्तु नाम लिखा है जिसे भी सिन्धु का बिगड़ा रूप माना जाता है। परन्तु वह भी ठीक नहीं है। श्री बील (Samuel Beal) जिस ने इस ग्रन्थ का चीनी भाषा

(1) 'अजमे जशने इजे खोरशेद' (नवसारी) मेमोरियल वाल्युम [1945], पृ० १५६
(2) Talks on Zoroastianism [1935], P. 60

से अंग्रेज़ी अनुवाद किया है उस ने ह्वेनसांग के शब्दों में लिखा है कि :-

"तिअन-चू (भारत) के नाम अनेक हैं। उसको पहले शिन्तु और हिअन-तउ कहा जाता था, परन्तु अब उचार शुद्धि के अनुसार उस का नाम इन-तु है। इन-तु के लोग अपने देश को अनेक नामों से पुकारते हैं ...... चीनी भाषा में चांद के अनेक नाम है इन-तु उन में से एक है, और यह अच्छा नाम है इसलिए हम इसे चांद कहते हैं।[1]

परन्तु भारत को चांद (चंद्र) क्यों कहते हैं इस के लिए ह्वेनसांग लिखिता है कि "क्यों कि भारत में ही बड़े बड़े ज्ञानी (गौतम बुद्ध आदि) हुए हैं जिन्हों ने संसार को सत्य मार्ग दिखाया है और चांद भी प्रकाश का फैलाने वाला है, इस लिये भारत को चांद (In-tu) कहा जाता है। (वही)

यहां कहीं भी सिन्ध अथवा सिन्धु का शिन्तु नहीं अपितु शिन्तु का शुद्ध रूप इन-तु बताया गया है अर्थात मूलत: प्रसिद्ध बात ग़लत सिद्ध हो गई। हां! यदि शिन्तु अथवा हिन्तु नाम सचमुच हैं तो उन पर से हिन्दू नाम बनना सम्भव हो सकता है कि चीनी लोगों के अरब तथा ईरान में व्यापार आदि के लिए जाने के कारण भारत का नाम शिन्तु-हिन्तु से बिगड़ कर सिन्धु वा हिन्दू हो सकता है। परन्तु यहां प्रश्न होगा कि अरब-ईरान का भारत के साथ पहले सीधे आना जाना नहीं होता था कि जो उन्हों ने चीनी लोगों से सीखकर यह हिन्दू नाम का उच्चारण करना आरंभ किया?

चीनी भाषा का उच्चार भेद ऐसा कठिन है कि मुश्किल से कोई विदेशी, चीनी भाषा का विशेषज्ञ भी इस के प्रत्येक उच्चार का शुद्ध उच्चारण कर और समझ सकेगा। ह्वेनसांग के उसी पुस्तक का दूसरा अनुवाद श्री वाट्र्स (Thomas Watters) ने किया है, उस ने ऊपर लिखित बात तथा नामों को दूसरी प्रकार से लिखा है। उसके अनुसार:-

"We find that different councils have confused the designations of

---

(1) " On examination, we find that the names of India (T'ien-chu) are various and perplexing as to their authority. It was anciently called Shin-tu, also Hien-tu; but now, according to the right pronunciation, it is called In-tu. The people of In-tu call their country by different names according to their district. Each country has diverse customs. Aiming at a general name which is the best sounding, we will call the country In-tu. In Chinese, this name signifies the moon. The moon has many names, of which this is one." Beal: Buddhist Records of the Western World, Book II, P. 69

Tien-chu (India); the old names were Shen-tu and Sien (or Hien) tou; now we must conform to the correct pronunciation and call it Yin-tu The people of Yin-tu used local appellations for their respective countries; their various districts having different customs; adopting a general description, and one which the people like, we call the country Yin-tu which means 'Moon'."[1]

अब कौन निर्णय करे कि शुद्ध किया हुआ उच्चार भी इन-तु ठीक है अथवा यिन-त ? यह स्पष्ट है कि पुराना उच्चार शेन्तु अथवा हेन्तु था जहां से ही सिन्धु अथवा हिन्दू नाम बन सकता है न कि सिन्ध से हिन्द। वह भी तब सम्भव हो सकता है जब विक्रमी संवत से थोड़ा ही आगे अथवा पीछे हिन्दू नाम मिलता हो। अगर इस से बहुत पूर्व यह नाम मिला तो शेन्तु-हेन्तु ऐसे के वैसे रह जाएंगे। और जो शेन्तु-हेन्तु स्वयं प्राचीन होंगे तो बात बनेगी। किन्तु निश्चय के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता। श्री वाट्टर्स का विश्वास है कि दूसरे सब नाम शेन्तु (Shen-tu)। उच्चार का बिगड़ा हुआ रूप हैं। इस के बाद उन्हों ने इस नाम पर अच्छा विद्वता भरा बहस छेड़ा है जिस से यह सिद्ध होता है कि स्वयं हवेनसांग के मूल चीनी का भी कुछ स्थलों पर शुद्ध अर्थ नहीं किया गया है, जैसे एक स्थान पर एक वाक्य के विषय में लिखा है कि:-

"But the passage has probably some copyist's mistake" (Ibid; P. 138)

चांद के अर्थ में एक और नाम भारत के लिए चीनी साहित्य में मिलता है तिएन-चू (T'ien-chu)। परन्तु हवेन-सांग ने उसको भी छोड़ कर 'यन्तु' लिखा है। एक चीनी लेखक जिसे हवेन-सांग के वर्णन की पुष्टि है उस ने चांद की उपाधि भारत के लिए एक और कारण से दी है - उस अनुसार "जिस प्रकार चांद रात्री को तारों में बड़ा है उस प्रकार भारत भी संसार के देशों में महान है"। (वही, पृ० १३९) श्री वाटर्स ने इस पर भी अच्छी चर्चा की है किन्तु कोइ निर्णय नहीं कर सके हैं। इस लिए फिर भी यह कहना उचित होगा कि सिन्धु का शिन्तु नहीं अपितु शिन्तु-हिन्तु अथवा इन्तु-तियन्तु का ही बिगड़ा रूप हिन्दू अथवा हिन्द हुआ होगा जो बाद में ईरान-अरब तथा यूरोप में पहुंचा।

सिन्धु से हिन्द बनना - यह बात प्रसिध्द है कि सिन्धु नदी से ही हिन्दू, हिन्द और इन्ड-इन्डिया बना तो फिर सिन्धु नदी जिस से बिगड़ कर हिन्दू बना तो स्वयं सिन्धु नदी का नाम बदल कर हिन्दु नदी क्यों नहीं बना ? अगर सिन्ध से हिन्द अथवा हिन्दू होना सम्भव है तो फिर उसी आधार पर सिन्धु नदी से हिन्दू-नदी क्यों असम्भव हो गया? फिर भी किसी भी

(1) Watters: On Yuan Chwang's Travels in India, Chapter V, P. 131

फारसी अथवा अरबी पुस्तक में ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता जिस से यह सिद्ध हो सके कि 'स' से 'ह' होकर 'सिन्ध' से 'हिन्द' बन गया ! ऐसे तो गुजराती में भी 'स' से 'ह' होता है जहां 'सारु' को 'हारु' कहा जाता है। प्राचीन ईजिप्शन (मिस्र देश) में भी 'स' से 'ह' हो जाता है जहां संस्कृत 'शिर:' का 'हिर' हो गया है और चित्रलिपि में भी उसका चित्र 'सर' है। चीनी शिन्तु का हिन्दु हो सकता है तो यह कोई फारसी अथवा ज़द की विशेषता नहीं है। यह तो प्राकृतिक नियम है। इसी प्रकार 'ह' का 'अ' होकर हिन्द का इन्ड अथवा इन्डिया भी यूनानी (ग्रीक) का विशेश नियम नहीं है। यहां भी ह' का 'अ' होता है जैसे 'हानर' (Honour) का 'आनर' तथा हास्पीटल (Hospital) का 'अस्पताल'। ऐसे तो हम भी गप्प मार सकते हैं कि 'ज़न्द अवस्था' भी मूल में 'सिन्ध व्यवस्था' से बिगड़ कर बना है। इस लिए सिन्ध का हिन्द हुआ मानना अप्रमाणिक है।

दूसरी ओर से देखें। मान लिया कि सिन्धु से हिन्द बना, तो ठीक यह था कि जब सिन्ध का हिन्द बना तो इस अवस्था में सिन्ध नाम उन देशों से लुप्त हो जाता जहां वालों ने सिन्ध का हिन्द किया था। अरब तथा ईरान के लोग सिन्ध का हिन्द करने के पश्चात मूल सिन्ध नाम को बिलकुल भूल गए होते। किन्तु ऐसा न होकर अरब तथा ईरान वालों में सिन्ध तथा हिन्द दोनों नाम अलग अलग प्रचलित हैं। वे सिन्ध और हिन्द का पृथक पृथक व्यवहार करते हैं। वे सिन्ध <u>अथवा</u> हिन्द नहीं किन्तु सिन्ध <u>और</u> हिन्द साफ़ लिखते हैं। नीचे २-३ प्रमाण देते हैं :-

१- दसवीं शताब्दी का बग़दाद का यात्री मसऊदी, मकरान के बाद सिन्ध और भारत के समुद्री किनारों तथा सीमाओं का वर्णन करते लिखता है: "जैसे हम ने लिखा है, यहां सिन्धु आकर समुद्र में मिलती है, और यहीं देबल नगर है, जिस के साथ हिन्दुस्तान का किनारा मिला हुआ है"[1]

२- आफ्रीका के राज परिवार का शरीफ अल-इद्रीसी, विभिन्न जातियों के रंगों का वर्णन करते लिखता है कि "प्रथम महाद्वीप के सब निवासी गंदुमी अथवा श्याम वर्ण के होते हैं। इसी प्रकार हिन्द <u>और</u> सिन्ध तथा चीन के तटवर्ती निवासियों का रंग भी गंदुमी अथवा श्याम होता है"। (वही भाग २, पृ० १६२)

३- प्रसिद्ध विद्वान अलबेरूनी ने 'सिन्ध देश के लिये' और 'हिन्द देश के लिये' प्रस्थान करने के लिये साफ लिखा है कि:-

"In marching from our country to SIND we start from the country of Nimroz i.e. the country of Sijistan, whilst marching to HIND or India proper we start from the side of Kabul."[2]

(1) हिन्दुस्तान अरबों की नज़र में, [उर्दू] भाग १, पृ० २६१-२
(2) Sachau: Alberuni's India, Vol. I. P. 198

४_ किन्तु मसऊदी ने तो इस से भी स्पष्ट करके लिखा है कि "सिन्ध की भाषा हिन्द (की भाषा) से भिन्न है और सिन्ध इसलामी देशों को समीप है। इस के बाद हिन्द है।"[1]

स्पष्ट है कि कभी भी किसी भी जाति ने सिन्ध का हिन्द नहीं किया और नहीं हिन्द को सिन्ध से बिगड़ा माना है। उन्होंने सिन्ध को साफ अलग और हिन्द को सर्वथा अलग शुमार किया है। इस लिए सिन्ध से हिन्द होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सिन्धू (मलमल-साटीन) कपड़ा ! कहा जाता है कि बैबीलोन्या के प्राचीन लेखों में एक कपड़े का नाम 'सिन्धू' मिला है, जो सिन्ध से वहां गया होगा, जिस का बिगड़ा रूप 'सिन्दल' अथवा आजकल का 'साटीन' हो गया है। आइये उसे भी देख लें।

बैबीलोन्यन (बाबली) एक प्राचीन भाषा है, जिस का ज्ञान बहुत थोड़े विद्वानों को है। बहुधा सब विद्वान अपने निर्णयों में एक दूसरे का अनुकरण करते हैं। ऐसा करते करते जितना किसी सच्चाई का रुप बिगड़ता है उतना ही झूठ अधिक दृढ़ तथा सत्य होता जाता है। अरबी में है 'ग़लत उलआम सहीह' अर्थात जो ग़लत बात अधिक प्रचलित हो जाती है वह अन्त में सत्य समझी जाती है। इस प्रकार सिन्धू मलमल का नाम भी इसी ग़लत प्रसिद्धि से एक तथ्य बन गया। लोकमान्य तिलक ने इस नाम की अधिक प्रसिद्धि की जिस ने एक लेख में उस का उल्लेख किया है।[2]

हमारे विचार से इस शब्द का उल्लेख सब से प्रथम श्री साइस (Prof. A.H. Sayce) ने किया था।[3] जिस ने भी इस बात पर हठ नहीं किया केवल अपनी राय बताई थी, और तिलक महोदय ने भी ऐसा ही लिखा था कि प्रो० साइस के शब्दों में वह कपड़ा 'सिन्धू' नाम से अवश्य प्रसिद्ध होगा :-

" The learned professor has further stated that this 'Muslin' or woven cloth must have been called 'SINDHU' by the Accadians (Chaldians)."[4]

साइस महाशय के सिवाय दूसरे जिन भी लेखकों ने इस शब्द को अपनाया वे बाबली भाषा के विशेषज्ञ नहीं थे। साइस अधिकारी (Authority) था, इस लिये अन्य सब लेखकों ने उसका सहारा लेकर इस शब्द तथा बात को प्रसिद्धि दी। किन्तु साइस महाशय ने भी इस बात की केवल 'सम्भावना' जताई थी न कि हक़ीकत। यहां तक कि दूसरी आपत्ति से बचने के लिए ऐसा भी लिख दिया कि यह सिन्धू कपड़ा समुद्र के रास्ते बैबीलोन्या गया होगा। (वही पृ० ३१)

(1) हिन्दुस्तान अरबों की नज़र में, भाग १, पृ० २८८

(2) R.G. Bhandarkar Commemoration Volume, P. 29

(3) Hibbert Lectures [1887], Pp. 137-8

(4) op. cit. Tilak: Chaldean and Indian Vedas, P. 31

क्यों कि यदि स्थलमार्ग से लिखता तो वह शब्द ईरान में से होकर जाते समय 'स' से 'ह' होकर सिन्धू का स्वयं हिन्दू बन जाता ? तब इस सिन्धु कपड़े के नाम का क्या हशर होता ? कैसे भी ऊपर लिखित बात केवल अनुमान है वह भी ग़लत।

रायल एशियाटिक सोसायटी, लंडन की ओर से 'Asiatic Society Monograph, Vol. XVI' [1915 A.D.] प्रकाशित तथा श्री पिञ्चिज़ (Theophilus G. Pinches) द्वारा सम्पादित एक पुस्तक है जिस में एक लेख की प्रतिलिप दी हुई है जिस में बाबली भाषा में कुछ कपड़ों का वर्णन है जो राजा तथा दरबारी लोग पहनते थे। लिखा है :-

"*as tug bara ge (2-3) as tug lamhus nitah (4-5) nis tug lamhus us-bar* (reverse 1) *Gu-de-a-ra (2-3) sag nig-ga-ka ba-na-gar* (4) *zi-ga* (5)D. *Akara(?) ni-saga.*"[1]

अर्थात "६ (as) रंगे हुए राजाई कपड़े, ६ पुरुषों के कुरते, २० *(nis)* कोरीओं (weavers') के कुरते, गौडीआ के लिए, गोदाम (storehouse) के अधिकारी ने बनाए थे। अकरा (इस शब्द का अर्थ समझा नहीं गया है) निसगा (वह) लेकर चला गया है।"

मूल सारा यह है और कहीं भी 'सिन्धू' अथवा 'सेंदल' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है (जो लमहुस नीटाह के लिए है)। तो फिर यह आया कहां से? श्री पिञ्चिस जिन्हों ने ये सब मुहरें (seals) सम्पादित की हैं, उन्हों ने इन की व्याख्या करते लिखा है कि यह 'लमहुस नीटाह' एक प्रकार का चोग़ा अथवा कुरता (न कि कपड़ा) होता था जो सब स्तर के लोग राजा तक भी पहन्ते थे। और यह शब्द बंबीलोन्यन भाषा का है इस का उच्चार 'सिदीन्नु' होता था जिसे श्री मुस-आर्नोल्ट (Muss-Arnolt) ने 'सुदीन्नु' पढ़ा है और उस की तुलना (comparison) तेल-अल-अमर्ना (Tel-al-Amarna) के 'सटीन्नु' से की है।" और इस 'लमहुस नीटाह' का 'सिदीन्नु' किस प्रकार हो गया यह हम अपनी बोल-चाल में देख सकते हैं जैसे कि अंग्रेज़ी Watch-Maker का 'घड़ी-साज़' तथा Ink-Pot का 'स्याहीदानी' आदि। हम श्री पिञ्चस का यह मूल भी दिये देते हैं:-

"As these garments are generally named in the order of their importance or value...... at the end of line 1 has been regarded as having its meaning of "lord", or the like. *Tug-bara* is translated *subat eluti* (or *eliti*), "garment of exaltation," and *subat eristi*, possibly "robe of desire"="desirable garment." The *lamhus-nitah* is rendered in Babylonian as *Sidinnu* (see my correction of "Cuniform Inscriptions of Western Asia." V, 14, 50, in the *Zietschrift fur* Keilschrift for schung, ii, 265), Muss-Arnolt reads *sudinnu,* and compares

(1) The Babylonian Tablets of the Berens Collection, P. 8

"the *satinnu* of the Tel-al-Amarna tablets, which Schwally, (*Idioticon*, 121-2,) compares with targum ......" (Ibid, P. 9)

हक़ीकत सामने है, और स्पष्ट है कि यह सिन्धू नाम का कपड़ा भी केवल एक गप्प है जिसे सिन्ध देश के साथ कोई सम्बंध नहीं है।

हिन्दू शब्द की प्राचीनता !

पश्चिम एशिया के प्राचीन हिट्टी भाषा में [(hi-in)du-wa] नगर और Hinduwa नाम मिलता है, इस विषय में और कोई ज्ञान नहीं।[1]

बाईबल में आता है:-

"Now it came to pass in the days of A-has-u-e-rus, which reigned, from India even unto Ethiopia, over an hundred and seven and twenty provinces."[2]

मूल इबरानी (Hebrew) भाषा में 'होदू' (Hodu) और 'कुश' शब्द आए हैं जिन में से किश तो ऐबीसीन्या के लिए है बाकी होदू क्या है इस के लिए कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं है किन्तु यहूदी विद्वान श्री जोज़ेफ (T. K. Joseph) के अनुसार यह होदू सिन्ध का हिन्द नहीं है :-

"I take this 'Hodu' as Hebrew corruption of Sutudru (Sutlej) and not of Sindhu (Hindu, Hidu, Indus)."[3]

श्री जोज़ेफ ने इसी पत्रिका में दूसरे स्थान पर लिखा है कि होमर (Homer) के दिनों में भारत के काले रंग वाले लोगों को 'पूर्व के Ethiopian' (Ody. 1,23-24) कहा जाता था"।[4]

प्राचीन काल से ही 'हिन्दू' नहीं किन्तु केवल 'हिन्द' नाम प्रसिद्ध है। प्राचीन अरबी तथा फारसी साहित्य में हिन्दू अथवा हिन्दुस्तान नाम का कहीं भी प्रयोग नहीं मिलता, केवल हिन्द है। हिन्दू अथवा हिन्द के निवासियों के लिए "अहल-हिन्द" शब्द का प्रयोग मिलता है न कि हिन्दू। और फिर सिन्धु नदी का नाम सिन्धु है न कि सिन्ध। स का ह होकर बिगड़े तो भी सिन्धू का हिन्दू होना चाहिये न कि हिन्द।

प्राचीन पारसी साहित्य में हिन्द शब्द का प्रयोग नहीं है अपितु प्राचीन पारसी सम्राटों ने अपने लेखों में अपने को आर्य लिखा है। ईरान का अंतिम शहनशाह अब तक अपने को आर्य

(1) The Index of Hittite Names [Geographical] p. 22

(2) The Book of Esther, 1-1 and 8-9

(3) Journal of Indian History, Vol. XXVI, pt. II, p. 204

(4) Ibid, p. 205

कहलाता रहा। तेहरान में 'आर्य महर विश्वविद्यालय' है न कि हिन्दू विश्वविद्यालय, क्यों कि हिन्दू नाम प्राचीन ज़द भाषा में है ही नहीं, फारसी में है। 'हप्त-हिन्दूकां' को हम गलत सिद्ध कर चुके हैं। प्राचीन आर्य सम्राट दारा के लेख में 'हेन्दूश' नाम अवश्य मिलता है किन्तु वह भारत के लिये नहीं है जैसे कि हीराडोटस (Herodotus) के प्रमाण से प्राय: दिखाया जाता है, जिस पर हम आगे बहस करेंगे। परन्तु स का ह नियम से होता है पारसी में, किन्तु इस हिन्द का प्रयोग स्वयं ईरान में है ही नहीं, होता है तो अरबी में जहां स से ह होने का नियम ही नहीं है, वह भी अच्छे अर्थों में और सन्मान के साथ, जिसका वर्णन हम अभी करेंगे।

"बहुत प्राचीन काल में अरब के एरम (Eram) राज्य में, जिस की राजधानी शिबुम (Shibum-शिवपुरी) थी, उस की चार रानियों का उल्लेख मिलता है, जिन में से एक का नाम हिन्द था। उन चार में से दो ने तो स्वयं राज्य भी किया। अरब में इसलाम से पूर्व तथा बाद में भी हिन्द नाम मिलता है। सबा (Sabean) काल में हिन्द नाम की छः स्त्रियों का वर्णन मिलता है, जिन में से पांच रानियां थी तथा एक विदुशी थी। अमीर और कवि अमर-उल-कैस के माता की बहिन का नाम भी हिन्द था। प्रसिद्ध प्रेमी युगल 'लैला मजनू' की लैला का असल नाम हिन्द था, बाद में उसकी आखों और बालों के काला होने के कारण उसका नाम लैला प्रसिद्ध हुआ। अरबी रसूल मुहमद की पत्नी उम-सलमा का नाम भी हिन्द था। इसलाम विजय के कारण कुरैश वंश का अभिमान टूट गया था, धीरे धीरे इसलाम ग्रहण कर रहे थे, कुछ कट्टर रहे। उन में से एक अबू सिफ़यां जो उनका मुख्या था उस ने भूल से किसी प्रकार इसलाम की ओर झुकाव दिखाया तो उसकी पत्नी हिन्दया आवेश में आ गई और तलवार निकाल अपने साथियों को आज्ञा दी कि 'कत्ल कर दो इस बूढ़े बेवकूफ को, टुकड़े टुकड़े कर डालो और अपने देवताओं की रक्षा करो, तथा उनकी इज़त का बदला लो। हिन्द ने कितनी लड़ाइयों में भाग लिया, बहुत से मुसलमानों को कत्ल किया, जिन में मुहमद का चाचा हमज़ा भी था। इस ने इसलाम के भक्तों में बड़ी तबाही लाई, इस लिए बाद के इसलामी इतिहास में उस के विरुद्ध लिखा गया, जैसा कि इसलामी इतिहासों में अक्सर होता है। परन्तु यह सबमु हमद के अवसान के पश्चात हुआ और शीआ मुसलमानों ने यह बात घड़ ली जिस से कि उम्मया वंश के प्रथम फ़लीफा मुआव्या को बदनाम किया जा सके, जो इस देवी हिन्दया का बड़ा लड़का था। हिन्दा विदुशी नारी थी। परिस्थिति को देख कर उस ने अनुमान किया कि इसलाम के विरुद्ध अधिक समय तक युद्ध लड़ना लाभकारी न होगा। कुरेश वंश सत्य के मार्ग से विचलित हो गया है। अब्दुलाह इब्नस (Ibnus) सय्यद अरब का अन्तिम महापुरुष था, उस ने भी विपदा आने की सूचना की परन्तु मुसलमान नहीं हुआ। किन्तु हिन्दा का होसला नहीं टूटा तथा ईश्वर पर भरोसा रखे बैठी थी, जिस के लिए डा० गेलानी का कहना है कि वह अरब का 'महादेव' था। हिन्द (हिन्दया)

की आयु उस समय साठ वर्ष की होगी, परन्तु शरीर की स्थति अच्छी थी। अबू सिफयां के साथ विवाह के पूर्व वह दो विवाह कर चुकी थी और कुल मिलाकर उसे २६ पुत्र हुए जिन में से १६ विभिन्न युद्धों में मारे गए। उस का एक विवाह एक अमीर अल-फ़क़ीह इनबुल (Inbul) मुग़ेरीह के साथ हुआ जिस ने इस पर संदेह किया जो ग़लत सिद्ध होने पर इस ने स्वयं उसे तलाक दे दी। हिन्दा बाद में मुहमद के पास काबे में अंदर जाकर मिली और उस के साथ कुछ वाद विवाद भी किया। बावजूद इस के मुहमद स्वयं तथा और दूसरे वरिष्ठ नेता जो बाद में खलीफा भी बने उस (हिन्दया) का बड़ा आदर सन्मान करते थे। अंत में मुहमद के सदाचार और शील का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह मुसलमान हो गई। डा० गेलानी के अनुसार उस ने घर आकर शिवजी के लिङ्ग (जिस की वह पूजा करती थी) को ज़मीन पर फैंका तो वह टूट गया किन्तु फिर वह स्वयं जुड़ कर असली स्थान पर जाकर स्थापित हो गया।"[1]

अरब की एक और मुख्य व्यक्ति हिन्द थी जो बाद में सिन्ध की हो गई। इस का सीधा सम्बंद्ध ऊपर वर्णित देवी हिन्दया तथा रसूल से था। हिन्दया के वंश में से वह स्वयं थी तथा उसका पति लुआई (Luai) मुहमद के दुहतरों हसन और हुसैन के वंश में से था। उनको दो पुत्र थे-तालिब और असीम। उनका एक और लड़का पुत्र समान असद था जो असल में एथ्योप्यन था, जिस को उसने स्वतंत्र कर के फिर पाला था। हिन्द की दूसरी बहिन मैमूना अब्बासी खलीफ़ा अल-मुस्त्रश की माता थी। यह सन् १११८ की बात है। उस समय तक भारत से बड़े बड़े पंडित बग़दाद में जाकर एकत्रित हुए थे। परन्तु बाद में परिस्थिति बिगड़ने से उन्हों ने वहां से पलायन करना आरंभ किया। हिन्द ने भी सिन्ध में आकर रहने का निश्चय किया। सामारो और सन (Samarra and Saniyya) में उसके पूर्वज सम्पति छोड़ गये थे। सिन्ध में यह सन् ११३८ में पहुंची जहां उस ने एक मन्दिर का जीर्णोधार कराया। वहां रहते मन्दिर के पुजारी की कन्या सीता के साथ हिन्द के लड़के असीम का प्रेम हो गया। हिन्दू पुजारी कन्या के मुसलमान होने पर इच्छुक नहीं था नहीं असीम से विवाह कराने पर। उधर हिन्द का पति लुआई और बड़ा बेटा तालिब लड़की के मुसलमान न होने पर अड़े थे। इस लिये हिन्दा दोनों को सामारे में छोड़ कर सीधे सनिया (सन) में आई जहां सिवाय धर्म परिवर्तन के दोनों का विवाह हो गया। ईश्वर की लीला तो देखो कि केवल एक वर्ष के बाद सीता की मृत्यु हुई और जब अग्निसंस्कार हुआ तो कहते हैं कि असीम भी उसी चिता में कूद पड़ा।

डा० गेलानी, जिन्हों ने यह कथा लिखी है, उनके अनुसार यह विवरण उन्हों ने अरबी लेखक इब्न बार के हस्तलिखित पुस्तक "अयून अखबार अल हिन्द व सिन्द" से लिया है जो Mss.

(1) Dr. Gelani: "ORGANISER" Weekly [Delhi] of 8-11-1969

उन्हें इराक़ के 'Ministry of Foreign Affairs & Culture' के सौजन्य से प्राप्त हुआ था।[1]

हम यह सब केवल हिन्द शब्द का महत्व तथा सन्मान जताने के लिये लिख रहे हैं। अरब कवियों को यह नाम इतना प्यारा था कि वह अपनी प्रेमिकाओं और पत्नियों तक के नाम हिन्द रखते थे और अरबी काव्यधारा में इस हिन्द नाम का इतना ही महत्व है जितना फारसी में लैला और शीरी का। सेब्वय (अरब कवि) कहता है:

"अ ख़ालिद क़द अलकतक बाद हिन्द फशीनी अलख्वालिद व अल हिनूद"

अर्थात 'हिन्द: के बाद खालिद: ने तेरा दिल जीत लिया है। मुझे उन सुन्दरियों ने बूढ़ा कर दिया।

एक और कवि कहता है :-

"इलाला अबाले अलयोम मा फस्लत हिन्द अज़ा बकयत उन्दी अलहमा म: व अलवर्द"।

अर्थात 'सनु लो, कि मुझको अब हिन्द: के कृत्य की कोई चिन्ता नहीं है क्यों कि मेरे पास कबूतर तथा गुलाब हैं।)

हिन्द नाम का बहुवचन हिन्दात, हनूद, अहिन्द, अहनाद, अहांद होता है। रुबा के एक शेर का बंद है:-

'हती अब्सताह अलसिन्द वअल अहान्दा'

(अर्थात 'यहां तक कि सिन्ध और हिन्द वालों को मुबाह अलरम बना दिया।)

हिन्दी में ي लगाने से हिन्दी कहते हैं। अदी बिन रकाअ कहता है :-

'रब नारबत अर मकहा, तकज़म अलहिन्दी व अलग़ार'

(कितनी ही ऐसी अग्नियां देख मैं ने रात बिताई है जो ओद हिन्दी तथा ग़ार के पेड़ को खा रही थीं)

कभी कभी ي से पहिले ک लगाकर हिन्दकी कहते है, जिसका बहुवचन हनादक होता है। कसीर का एक बंद है :-

"तमातम योफ़ून अल व फोर हनादका"

इब्न हबीब की टीका के अनुसार इस मिसरअ में हनादक का शब्द 'भारती विद्वान' (جهال الهند,) के लिए प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार 'कुस्त हिन्दी', 'तलवार हिन्दी', 'तम्र हिन्द', 'ओद हिन्दी' इत्यादि शब्द अरबी में है। 'हिन्द' का 'हिन्दी' रुप भी अरबी है न कि भारती।

यह इसलाम के समय तथा उस के बाद के उदाहरण हैं जिन में हिन्द शब्द का प्रयोग हुआ है। इसलाम से पूर्व और बहुत पूर्व के भी उदाहरण हैं। यरोशलम के हमीदा: पुस्तकालय में, तांबे

(1) वही, ता० २४-१-१९७०

के पत्रों पर प्राचीन अरबी भाषा में कुछ काव्य बन्ध लिखे हुए हैं। एक की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है:-

"आया मुबारक अल अर्ज़े योशअ नूर हा मन अलहिन्द"

(अर्थात, ए भारत [हिन्द] की पवित्र भूमि तू धन्य है)

फिर चौथी पंक्ति में है:-

"वहिज़ा नेज़ूल अलरसूल मन अलहिन्द"

(परमात्मा ने अपने रसूलों (ऋषियों) द्वारा भारत में [वेद] प्रकाशित किये)

पं० ज्ञानेन्द्र देव सूफी ने एक प्रमाण से लिखा है कि रसूल अरबी के चाचे उमर बिन हाशिम (जिसे उसकी विद्वता के कारण अबू अल हकम कहते थे और जिसे इसलामी काल में द्वेश के कारण अबूअल जहल कहा जाने लगा उस) की एक कविता महादेव (शिव) की स्तुति में कही गई है। उस की दो पंक्तियों में हिन्द शब्द दो जगह आया है।

"नजूम अज़ाअत सम गाब अलहिन्दो"

"बसही क़यामा फी अलमकाम अलहिन्द"

(अर्थात, भारत धर्म का मार्ग दिखाने में गुरु है, इतयादि)

(Al-Hilal [Cairo] March 1932)

प्राचीन पारसी साहित्य में हिन्दू शब्द कभी संयोग से मिलता है। बाद में जो मिलता है वह अरबी जैसा नहीं है। फारसी ग्रन्थ 'दसातीर' में है:-

"इकन्नों ब्रह्मन बियास नाम अज हिन्द आमद।
बस दाना की आकिल चूं ना नीस्त॥"

"चू बियास हिन्दी ब बलख आमद, गुस्ताशप जरदश्त राये कानद
मन मर्दे अम हिन्दी नेज़ आदेह, न ब हिन्द बाज गश्त॥"

(अर्थात व्यास नामी ब्रहमण हिन्द (भारत) से आया, जिस के जैसा विद्वान पंडित और कोई नहीं था ...... जब व्यास हिन्दी बलख में आया तो शाह गुस्ताशप ने ज़रदश्त को बुलाया)

फिर व्यास स्वयं कहता है "मैं हिन्द में जन्मा हूं"। और फिर वह हिन्द लौट गया।

कवि फिरदोसी ने "शाहनामा" में हिन्द और हिन्दी शब्द का प्रयोग किया है। एक जगह लिखा है कि:- "ईरानी शाह नौशीरवान ने बरज़ूया नामी विद्वान को पञ्चतन्त्र ग्रन्थ लाने के लिये हिन्द में राइ हिन्दी के पास भेजा। इसी पञ्चतन्त्र को फ़ारसी-अरबी में "कलीला व दमन्न:" कहा जाता है। उसी पुस्तक का प्रथम पहलवी भाषा में अनुवाद कराया गया, बाद में सन् ७५० में अब्दुला इब्न अल मकूफा ज्योतिषी ने इस का फ़ारसी अनुवाद किया। ईरानी मंत्री बोज़रज मेहीर ने लिखा है "यह पुस्तक हिन्द के विद्वानों और ब्राहमणों की रचना है, जिस के अंदर

शिक्षाएं तथा बहुत गूढ़ सिद्धान्त भरे हैं।"

हाफ़िज़ शीराज़ी के ग़ज़ल का एक बंध है:-

अगर आं तुर्क शीराज़ी बदस्त आरद दिले मारा,
बख़ाले हिन्दयश बख़शम समरकन्द व बुखारा रा।

(अर्थात, शीराज़ की प्रेमिका मुझे स्वीकार करे तो उस के गल के तिल पर समरकन्द और बुखारा दान कर दूं)

दूसरी जगह कहता है:-

शकर शकिन शुवन्द हमा तूत्याने हिन्द,
ज़ेन कन्दी पारसी के बंगाला मेर वन्द।

(अर्थात, भारत के सब कवियों का मुंह मीठा होगा इस ईरानी मिठाई से जो बंगाल को जा रही है।)

बजुज़ हिन्दुई जुल्फश हीचकस नीस्त,
के बरखुरदार शद अज़ रुये फर्रुख़।

(फर्रख हाफ़िज़ की एक प्रेमिका का नाम है, उस के लिए कहता है "इस के हिन्दूआना (काले) बालों के सिवाय और कोई नहीं है जो फर्रुख के गालों को छू सके)

जलाल अलदीन रुमी ने अपनी रचना 'रुबाइयात रुमी' में एक रुबाई लिखी है:-

बेगाना मै गीरी मरा जन गूयम-दर कूए शमा ख़ान-ए-खुद मी जोयम,
दुशमन नीम अरचंद कि दुशमन रुयम-असल व तुर्क अस्त अगर चे हिन्दी गूयम।

(अर्थात, तू मुझे पराया समझता है इस लिए यह कहता हूं कि तेरी गली में मैं अपना घर ढूंढ रहा हूं। मैं शत्रु नहीं हूं अगर चे शत्रु जैसा लगता हूं, वास्तव में तुर्क हूं अगरचे हिन्दी बोलता हूं)

इसी प्रकार प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरु तो हिन्दी शब्द को सर आंखों पर रख कर चला है।

पं० सातवलेकर ने एक लेख में मनुस्मृति के कुछ श्लोक दिये हैं जिन में हिन्दू शब्द आता है।[1] किन्तु वे सब प्रक्षिप्त हैं इसलिए उनका कोई मूल्य नहीं है, और न ही हिन्दू शब्द की इतनी प्राचीनता है। इसी विश्वहिन्दू पत्रिका (मार्च. १९७०) में पौराणिक पडित माधवाचार्य ने कुछ संस्कृत श्लोक दिये हैं। परन्तु वे सब भी विश्वसनीय नहीं है, यदि हों भी तो वे बाद के मिलावटी हैं। जो कुछ संस्कृत में लिखा है वह सब सत्य है एसा नहीं है।

जैन ग्रन्थ "निशीथ चूर्णी" में 'हिन्दू देश' शब्द आया है जो भी सातवीं शताब्दी का है।

---

(1) विश्वहिन्दू, [मासिक] जनवरी १९६६

कवि चन्द बरदाई ने "पृथ्वीराज रासो" में लिखा है :-

"अटल नगर अजमेर, अटल हिन्दव अस्थान"

भविष्य पुराण में लिखा है कि "विक्रमादित्य के पोते शालीवाहन ने "सिन्ध स्थान" की मर्यादा स्थापित की और सिन्धु नदी को अपने राज्य की सीमा निरधारित किया।

(किन्तु कौन सी सिन्ध ?):-

सिन्धुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमन्।
म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना ॥

(भविष्य पुराण, प्रतिसर्ग पर्व, अ॰ २)

किन्तु यह भी बहुत पीछे की बात है और किसी अंश तक विश्वसनीय है।

ध्यान देने जैसी बात है कि संत कवि तुलसीदास अपने रामायण में, जो बड़ा लोकप्रिय काव्य है, उस में कहीं भी, एक स्थान पर भी हिन्द, हिन्दू अथवा हिन्दी शब्द का प्रयोग नहीं करता है।

ऐसे तो हिन्दूपुर, हिन्दूशाह, हिन्दूसिंह तथा हिन्दूखान नाम भी मिलते हैं।

इस प्रकार हिन्दू शब्द का प्रयोग सन्मान से दिखाया गया अब इस के बुरे अर्थ भी देखें।

हिन्दू शब्द के खराब अर्थ!

कहा जाता है कि अरब, तुर्क, मुग़ल आक्रमणों के पश्चात हिन्दुओं को बुरा कहना आरंभ किया गया, इस लिये फारसी कोशों में हिन्दू शब्द का अर्थ काला, चोर, तिल आदि मिलता है। यह भी ग़लत है। किसी भी अरबी-फारसी लेखक ने हिन्दू अथवा हिन्द शब्द को इस अर्थ में नहीं लिया है, कोई प्रमाण नहीं है। हां फारसी कोश में इन के ये अर्थं अवश्य है। अरबों ने तो हिन्द शब्द को स्वयं अपनाया जैसा हम ऊपर देख चुके हैं। पुराने विद्वानों और रिवायतों में तो स्वर्ग से हज़रत आदम का उतरना ही हिन्द में कहा गया है। यदि हिन्द चोरों और काले लोगों का देश था तो फिर 'हिन्दुस्तान जनते निशान' कैसे हो सकता है? निःसंदेह भारतवासियों का नाम मूलत. हिन्दू नहीं है, तो इसका अर्थ यह थोड़ा ही है कि जो शताब्दियों से अच्छे भाव और अर्थ में चला आ रहा है वह अब खराब हो गया। हमारी दृष्टि में अगर वर्तमान में हिन्दू केवल सच्चे हिन्दू बन जाएं तो भी अपने देश का बड़ा उपकार कर सकते हैं, आर्य बनना तो पिछला ख्वाब है। अब हम पहले हिन्दू बहिश्त का वर्णन करेंगे, फिर खराब अर्थ आदि देखेंगे।

हज़रत अली से रिवायत है कि हज़रत आदम प्रथम सरंदीप में उतरे, और सब लेखकों ने सरंदीप (सिलून-लंका) को हिन्द (भारत) में ही शुमार किया है। बावजूद इस के बाद के सब अरब विद्वानों ने हज़रत आदम का हबूत (आकाश से नीचे उतरना) भारत में ही लिखा है।

वहब बिन संब: (८वीं शती) के अनुसार "आदम का हबूत (नीचे उतरना) पूर्व भारत के एक पहाड़ पर हुआ जिस का नाम 'बासम' है"।

'हबत अदम अली जबल शर्क अलहिन्द यकाल ल: बासम'

(कुतब रावन्दी-किसस अल नबियां। ११-२११)

अल इमाम मुहमद बिन अली अलबाकुर के अनुसार 'निःसंदेह आदम जब हिन्द में उतरा तो अलह ताला ने उसके लिए एक घर की नींव रखी और आज्ञा की कि वह वहां जाकर सात बार उसका तवाइफ़ (परिक्रमा) किया करे। बस वह 'मत्ती' और 'अर्फात', और जिस प्रकार अलाह ने आज्ञा की, वह अपने मिनासक करता था। इस के पश्चात वह हिन्द के लिए रवाना हुआ। बस, जहां जहां उसका पांव पड़ा वहां वनस्पति उग आई तथा दोनों कदमों के बीच जो मफ़ास्ला रहा वह जंगल हो गए, जिन में कोई भी चीज़ नहीं है। फिर आप 'अलबयत' की ओर आए और सात बार उसकी परिक्रमा की उसके मिनासक पूरे किए, जैसे कि अल्लाह ने आज्ञा दी।" (वही, ११-१८)

अल इमाम जाफ़र अल सादिक के अनुसार "निःसंदेह जब आदम को नीचे उतारा गया तो वह सर ज़मीन हिन्द पर आया। इस के बाद 'हिज्र अस्वद' उस की ओर फेंका गया जो आकाश गगन में एक लाल याकूता था।" (वही ११-२१०)

इमाम जाफ़र से दूसरी भी रिवायत है कि "जब अल्लाह ने आदम का पश्चाताप स्वीकार किया तो उस फरिश्ते को एक सफ़ेद और ताबदार मोती के रुप में बदल कर आदम के पास भेजा। उस समय वह सर ज़मीन हिन्द पर था।" (सदूक अलल अल शराअ, ९-१४८)

हिन्द नाम की प्रमाणिक्ता ऊपर दी गई। रिवायतों के अनुसार तथा अपने रावियों के विश्वसनीय होने के कारण ये एक स्रोत का दरना रखती हैं, इस लिये कि वे महाशय न केवल कुरान के आलिम थे अपितु दूसरी आस्मानी किताबों का भी उन्हें ज्ञान था। विशेष कर हबूत-आदम के विषय में जितनी भी रिवायतें हैं उन सब का मूल हैं। इस लिए सय्यद इब्न ताऊस ने इस रिवायत को "सहीफ़: इदरीस" के प्रमाण से उद्धृत किया है, जैसा कि मुहमद बाकर मजलिसी लिखता है "और यह कि सय्यद (इब्न ताऊस) अपनी पुस्तक "सअद अलसऊद" में लिखता है कि मैं ने "सहफ इदरीसी" में देखा है ...... और हज़रत आदम के जन्नत (स्वर्ग) से निकलने तथा सर ज़मीन हिन्द में बासम नामी पहाड़ पर 'नहील' उपत्यका (तराई) में जो 'धनज' और 'मण्डल' हिन्द के दो नगरों के बीच में है उसके हबूत की हदीस का वर्णन किया है तथ हवा जिद्द: में उतरी।" (बहार अल अनवार, ११-१९६)

बाद के लेखकों ने भी सिवाय किसी मतभेद के इसी रिवायत को नक़ल किया है। जाहज़ि

लिखता है कि "और आदम जन्नत से उतरा और उस (हिन्द) के नगरों की ओर प्रस्थान किया"।

इब्न अल फ़कय अलहमदानी ने लिखा है "और हदीस में है कि आदम हिन्द में सरंदीप पहाड़ पर उतारा गया और 'हवा' जिद: में, इबलीस लईन 'मीसान' में तथा सांप इस्बहान में"।

मसउदी के अनुसार "बस अल्लाह् ने आदम को सरंदीप द्वीप में राहून नामी पहाड़ पर उतारा जिस पर जन्नत के वे पत्ते भी थे जिन से उसने अपना शरीर ढंका था। वे पत्ते जब सूख गए तो वे हवा में उड़ गए और हिन्द के भिन्न भिन्न स्थानों पर फैल गए"।

इब्न खिल्दून ने भी इस रिवायत को नक़ल किया है, वरन् इस से भी आगे बढ़ कर सरंदीप पर 'मस्जिद आदम' का उल्लेख किया है। लिखता है "इन तीन मस्जिदों के सिवाय हमें किसी दूसरी मस्जिद का ज्ञान नहीं है, सिवाय इस के कि हिन्द के द्वीप सरंदीप पर मस्जिद आदम के बारे में जो कुछ कहा जाता है"। (इब्न खिल्दून [इतिहास], १-६२४)

भारत के अत्तर (عطر) जो सदियों से इतिहास प्रसिद्ध हैं उनका कारण भी यह कहा जाता है कि आदम जन्नत (स्वर्ग) के पत्ते अपने साथ लाया था जो सूख कर, हिन्द के नगरों में फैल गए। इमाम जाफ़र से रिवायत है कि "अल्लाह् ने जब आदम को पृथ्वी पर उतारा तो स्वर्ग में जो वस्त्र उसे पहना हुआ था वह वापिस ले लिया गया। बस उस ने एक पत्ता लिया और अपने शरीर को ढांका। जब नीचे उतरा तो उस पत्ते की सुगंधी हिन्द के दूसरी वनस्पतियों के साथ मिल कर फैल गई। इसी पत्ते के प्रभाव से जिसने जन्नत की सुगन्धी को उड़ाया, पृथ्वी पर अत्तरों का जन्म हुआ ...... पहला पशु जिस ने उन पत्तों को चरा वह मुश्की हिरण था, इस कारण हिरण (मृग) के नाभि में मुश्क पाई जाती है।"

आदम के बाद उसका पुत्र शेठ (वसिष्ठ) हुआ जिस के वंश में हज़रत इद्रीस (अत्रि) हुआ। इद्रीस के बारे में जो रिवायतें हैं उन से मालूम होता है कि वह सिन्ध में भी आया था। (हबीब अलसेर, १-१६०)। इसी के वंश में हज़रत नूह (मनु:) हुआ जिस के समय में संसार के इतिहास का बड़ा भयंकर तूफ़ान (जल प्लावन) आया था। जिस के पश्चात नूह के तीन पुत्रों साम, हाम और याफ़स से संसार की संतति फैली। इमाम जाफ़र सादिक की रिवायत है कि हाम के वंश में सिन्ध, हिन्द तथा हब्श हैं और साम के वंश में अरब और अजम।[1]

उपरोक्त सब अरबी रिवायतों का मूल रहस्य कुछ भी हो (जो केवल भारतीय इतिहास को गहरी खोज से देखने पर समझ में आ सकेगा) यह स्पष्ट है कि हिन्द नाम भारत के लिए अरब में प्रसिद्ध था तथा बिलकुल सन्मान की दृष्टि से देखा जाता था। ऊपर आदम वाला विवरण भी इसलिए दिया गया है कि एक तो जगह जगह हिन्द नाम का उल्लेख आया है दूसरा

(1) यह आदम तथा जन्नत का पूरा अवतरण हम ने सय्यद महमूद हसन कैसर के एक लेख से लिया है, जिस के लिए देखें रिसाला 'बुरहां' (दिल्ली), आगस्ट १९६२।

यह कि रोचक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। अगर हिन्द नाम बुरे अरर्थों में भारत तथा हिन्दुओं के लिये प्रयोग में होता तो यह सब लिखा निरर्थक होता। परन्तु ऐसा नहीं है। हमें अरब इतिहास को इसलाम की दृष्टि से नहीं किन्तु मूल अरब की दृष्टि से देखना चाहिए। तब स्पष्ट हो जाएगा कि हिन्द नाम घृणा से भरा कहीं भी नहीं मिलेगा। भले फ़ारसी में उसके और अर्थ भी हैं, जैसे हाफ़िज़ शीराज़ी तथा अन्य फारसी कवियों ने लिखा है, किन्तु किसी ने भी अथवा किसी भी फारसी पुस्तक में भारती हिन्दू के लिए कभी, कहीं भी प्रयोग नहीं मिलता। नहीं तो यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इसलाम के घर अरब देश के निवासी अरब हर भारतवासी को अभी तक हिन्दू कहते हैं, चाहे वह हिन्दू (धर्म का मानने वाला), मुसलमान, ईसाई, पारसी कोई भी हो। अमेरीका में भी हर भारतवासी को हिन्दू कहते हैं, फ्रान्स में फ्रेंच हर भारतवासी को L' Hindus करके पुकारते हैं। चीन में मुसलमान, बौद्ध, कन्फ्यूशन आदि सब रहते हैं परन्तु वहां का मुसलमान भी किसी को मुसलमान नहीं परन्तु चीनी कहता है (मुसलमान तो उसके मजहब का नाम है)। रशिया का हर निवासी रूसी कहलाता है चाहे वह मुसलमान हो। इंगलंड के हर निवासी को अंग्रेज कहा जाता है। इसी प्रकार हिन्द में रहने वाला हर एक नागरिक देश के नाते केवल हिन्दू है, उसका धर्म-मजहब चाहे कुछ हो। इस लिए अगर हिन्द खराब अर्थ वाला होता तो अरब अपने दीनी भाई को हिन्दू (चोर, रहज़न, काफिर) कैसे कह सकते हैं। स्पष्ट है कि हिन्दू नाम मज़हब के नाते नहीं किन्तु देश के नाते और अच्छे अर्थों में प्रयोग हुआ है। हिन्द शब्द के बुरे अर्थ होने का दूसरा कारण यह है कि पहले किसी ज़माने में हिन्दू, एथोपिया तथा काले अरबों को भी हिन्दू कहा जाता था। क्यों ? इस पर आगे लिखेंगे। श्री मोल्सवर्थ ने अपने कोष में हिन्दू शब्द का अर्थ लिखा है :-

"Hindu in Persian signified 'black' and that it was applied by the Persians to denote not only the Indians but also the Ethiopians, black Arabians and so forth". (Molesworth's Marathi-English Dictionary)

हां! हमने जो ऊपर अरब कविता के प्रमाण से और अभी वसिष्ठ, अत्रि, मनु आदि नामों का उल्लेख किया है, सो भारत और अरब इतिहास के साथ इस प्रकार बाईबल के वर्णन के साथ भी गहरा सम्बन्ध हैं। पुराणों के इतिहास के समझने के लिए मध्य एश्या (Asia Minor) का तथा बाईबल का वर्णन बड़ा सहायक सिद्ध होगा। मालूम होगा कि भारत के प्राचीन लोगों तथा इनका आपस में कितना रक्त का सम्बन्ध है। इन्द्र, वरुण, दशरथ, राम सब एक महान रंग मञ्च के महान पात्र हैं और सब के लिए समान सन्मान के अधिकारी हैं। सन १९६५ के मार्च महीने में मोराक्को के कसाबयानिका में जो इतिहास लेखकों का सम्मेलन हुआ था उस में डा० आदल फासल ने जो निबंध पढ़ा था उस में उस ने यह दिखाने का प्रयत्न किया था कि "हज़रत

इब्राहीम वास्तव में वैदिक ऋषि है जिस ने कोई १० हज़ार वर्ष पूर्व मक्के में काबे की बुनियाद रखी थी तथा अरबों की ईद-उल-नूर (ईद-उल-ज़ुहा) का भी हज़रत इब्राहीम के साथ सम्बन्ध है जैसे भारत में दीपवाली।"[1]

अरबों ने अंक-विद्या भारत-हिन्द से सीखी इस लिये अरब उसे 'इल्म हिन्दसा' कहते हैं। और हिसाबो जानकार को हिन्दवी कहा जाता है। अगर हिन्द अथवा हिन्दू शब्द बुरा होता तो फिर यह अच्छा क्यों? एक फल हिन्द से अरब-ईरान में पहुंचा तो उसे 'हिन्दवाना' कहा गया जो आजकल 'हिन्दाणा' प्रसिद्ध है। फारसी में ही हिन्द-भारत की वस्तु अथवा निवासी को हिन्दी कहा जाता है। स्पष्ट है कि इस हिन्दू शब्द के खराब अर्थ किसी और गलतफहमी के कारण हैं। आइए वह भी देखें:-

प्राचीन किसी काल में एथोप्या, अरब, ईरान, हब्श और भारत को एक साथ हिन्द अथवा हिन्दू कहा जाता था और ग्रीक (यूनानी) यूरोपीय साहित्य में भी इन सब देशों के लिए इन्डिया शब्द का प्रयोग होता था। इसलिए कितने वर्णन एक देश के दूसरे देशों के साथ मिल कर बहुत ग़लतफहमी तथा confusion का कारण बने हैं। वह कारण भारत की महान्ता है अथवा उन लेखकों की अज्ञानता, यह उन्हें मालूम, परन्त यह हकीकत है। श्री जोजेफ (T.K. Joseph) ने इस विषय पर बड़ी विद्वता से अपने लेख "Citerior India and extra-Indian India" में बहस करके लिखा है कि "प्राचीन लेखकों ने अरब, लिब्या, पार्थिया, पर्शिया और मीडिया को 'इन्डिया' लिखा है। दक्षिण अरब को विशेष कर हिन्द (India) कहा जाता था"।

"Fr. Thurston S.J. and Mr. Attwater say that 'India was a name applied indifferently by Greek and Latin writers to Arabia, Libya, Parthia, Persia, and the lands of Medes." (Butler's "Lives of the Saints" [1933], Vol. 8, P. 289)

"It is admitted that the (Ethiopians and) Homerites (South Arabians) were called Indians. So (the land of) the South Arabians was (the land of) the Indians. From that it is easy glide to the statement that South Arabia was India."[2]

श्री पेरुमलिल (A.G. Perumalil) ने एक लेख "A Few Christian Writers on Early India" में लिखा है कि "यह स्पष्ट है कि बेज़न्टाईन के ग्रीक लोग एथोप्या और अरब के निवासियों को 'इन्डियन' कहते थे":-

(1) 'Organiser' Weekly, [Delhi], dated 29-10-1970
(2) Journal of Indian History, Vol. XXV, Pt. 2

"That, it is clear that Byzantine Greeks called the Ethiopians and Homerites, Indians." और ये नाम साफ लिखे मिलते हैं :-

"For the Ethiopians they use such terms as: Ethiopians, Auxumite Indians and Indians from Ethiopia; and for the Homerites: Homerites, Homerite Indians, Sabeans, and Indians from Saba or Arabia Felix."[1]

मार्कोपोलो ने अबेस्या (ऐबीसीन्या) को दूसरा अथवा मध्य इन्डिया कर के लिखा है :-

"Abascia is an extensive country termed the Middle or Second India. Its principal king is a Christian."

इसके सम्पादक ने इस पर टीका करते लिखा है कि :- ऐबीसीन्या के सिवाय मार्कोपोलो ने अरब और ईरानी Gulf को भी भारत में गिना है।"[2]

डा० लडविक (Ludwick Sternbach) ने अपने एक लेख "Gujarat as known to Mediaeval Furope" में एक प्रामणिक बात लिखी है। उसके अनुसार एक प्रेस्टर जान (Prester John) अपने को 'हिन्द का बादशाह' कहता था। इस लिए सन् ११७७ में पोप अलगेज़ेंडर तीसरे ने डाक्टर फिलिपस (Phillipus) को भेजा कि वह इस "King of India" को ढूंढ निकाले। इस पर टीका करते श्री लडविक ने लिखा है कि "वह इन्डिया ऐबीसीन्या था।:-

"At present we know perfectly well that there existed in the Middle ages THREE INDIAS and that Prester John if he really existed, was the Emperor of that India, which is now known under the name of Abyssina."[3]

किसी ज़माने में भारतवासी चीन नामी दो देशों को जानते थे, एक वर्तमान चीन और दूसरा भारत के उतर-पूर्वी सीमा पर, जहां का राजा भगदत महाभारत युद्ध में सम्मिलित हुआ था। अरब अथवा ईरानवासी भी इसी प्रकार किसी दूसरे देश को भी हिन्द कहते होंगे जैसा हम ने ऊपर दिखाया है, जहां से किन बातों को लेकर वे हिन्द शब्द के परिभाषिक अर्थ उन में मुहावारे की तौर प्रचलित हो गए अथवा तो वहां भारती हिन्दूओं की अधिकता हो गई होगी तब उन देशों को भी हिन्द कहा जाने लगा होगा। इमाम अबू यूसिफ ने सज्जालद और दोशबा से रिवायत की है कि "जहां बसरा आबाद हुआ था वह और उसके इर्दगिर्द का पूरा प्रदेश अर्ज़हिन्द (हिन्द भूमि) कहलाता था।"।[4]

(1) The Journal Bihar and Orissa Research Society, Vol. XXVIII, Pt. IV

(2) The Travels of Marco Polo, the Venetian [Dent. 1907] P. 398

(3) Bharatiya Vidya [Bombay], Vol. XV, No. 1, P. 69

(4) किताब अलखिराज [अबू यूसिफ याकूब बिन इब्राहीम], पृ० ३४

यही रिवायत दूसरे भी अनेक अरबी पुस्तकों में मिलती हैं (रिसाला 'बुरहां' [दिल्ली], जुलाई १९६१)। डा० डिलेसी (Delacy Oleary) ने लिखा है कि "पुराने ईसाई पादरियों के लेखों में अरबों को हिन्दू कहा गया है"। :-

"Arabians were called Indians in early Christian Patristic literature."[1]

डा० बुचमन ने लिखा है कि "सौ वर्ष पूर्व कन्नड़ जिल्लों में प्रवास करते जैनियों ने मुझे बताया था कि प्राचीन काल में अरब में अनेक हिन्दू रहते थे और एक पार्शव भट्टाचार्य उन दिनों मक्के का राजा था"। :-

"Indians were numerous in Arabia in ancient times, and that one Parshva Bhattacharya ruled in Mecca in these days."[2]

इसीलिए श्री अब्दुलकरीम शहर्स्तानी ने अपनी पुस्तक "अलमलल व अलखलल" की भूमिका में लिखा है कि "अरब तथा हिन्द का मज़हब लगभग एक जैसा है। :-

"इन अलअरब व अलहिन्द यतकारवां अलो मज़हब वाहिद"

एक और उदाहरण पश्चिम एशिया में भी मिलता है। प्राचीन काल में लगश और अक्काद के राजे अपना माल दिलमून, मगान और मेलूखा से मंगाते थे, जो यूरोप के बदर थे जिन का वर्णन उन्हों ने अपने लेखों में किया है। परन्तु श्री ओपेनहयम (A.L. Oppenheim) के अनुसार "जब किन अज्ञात कारणों से पूरब से सम्बन्ध टूट गया तो ये मगान और मेलूखा भूगोल की दंतकथाएं बन गईं और ये नाम बदल कर दूर दक्षिण की ओर ईजिप्ट के लिए प्रचलित हो गए, जब वहां एथ्योप्यन वंश राज कर रहा था। मेलूका काली चमड़ी वाले लोगों का देश मानने में आने लगा"[3]

श्री क्रेमर (S.N. Kramer) ने लिखा है कि ऐतिहासिक लेख "The Curse of Agade" के अनुसार मेलूकों को 'काले देश के लोग' कहा गया है।"[4]

अरब विद्वान जाहिज़ ने एक गलत किन्तु रोचक बात लिखी है कि "दरया महराण (सिन्ध) नील नदी से निकला है"। प्रमाण (तर्क) यह दिया है कि इन दोनों नदियों में घड़ियाल होते हैं'। हो सकता है उस ने यह अनुमान हीराडोटस के किसी लेख से देख कर किया हो जिस ने लिखा है कि 'नील नदी के सिवाय केवल सिन्धु नदी ही है जिस में घड़ियाल होते हैं।" और हीराडोटस जैसे इतिहास लेखक ने भी न जाने कौनसे और कितने देशों को इन्डिया (भारत-हिन्द)

(1) Arabia Before Mohamed, P. 149

(2) Asiatic Researches, Vol. IX, Pp. 284-5

(3) Ancient Mesopotamia, P. 64

(4 History Begins at Sumer, P. 317

अनुमान करके चला है। एक जगह लिखता है "भारत के पूर्व में बयाबान (desert) है। एशिया के बिलकुल पूर्व में भारत है। वहां कई कबीले रहते हैं जो विभिन्न बोलियां बोलते हैं, कुछ कच्ची मछली खाते हैं। उस के पूर्व में एक पदेई कबीला रहता है, जो कच्चे मास पर निर्भर रहते हैं। जब उन में कोई बीमार पड़ता है तो उसके सगे सम्बन्धी उसे मार देते हैं, नहीं तो ठहरने से उसका मास बीमारी के कारण ख़राब हो जाएगा।

"एक और कबीला है, जो कुछ नहीं करते हैं। न तो खेती करते हैं न ही बने घरों में रहते। वनस्पति पर जीवन निर्वाह करते है।

और यह तो विशेष ध्यान से पढ़ने जैसा टुकड़ा है।:-

"सब भारतवासी (हिन्दू) जिन का मैं ने वर्णन किया है, बाहर खुले आम (स्त्री पुरुष आपस में) सम्भोग करते हैं। उनकी चमड़ी का रंग एथ्योप्यन लोगों जैसा होता है। उनका वीर्य दूसरी जातियों की समान श्वेत (white) नहीं होता किन्तु उनकी चमड़ी जैसा काला होता है। वही बात एथ्योप्यन लोगों में भी हैं। उन (हिन्दुओं) का देश ईरान से बहुत दूर दक्षिण की ओर है, और कभी दारा के आधीन नहीं हुए।"[1]

अब यह भी हिन्द (भारत) है जिस के लिए यूरोपीय इतिहास का पप्पा इस प्रकार लिखता है तो फिर हिन्दू शब्द के अर्थ चोर-डाकू आदि न होंगे तो और क्या होगा? फिर भी यह ध्यान में रहे कि हीराडोटस कभी भारत में आया ही नहीं। दूसरी बात यह कि मनुष काला हो चाहे लाल अथवा पीला, संसार के किसी भी कोने में रहता हो, किसी का वीर्य कभी भी काला नहीं होता, न ही एथ्योप्यन लोगों का। फिर ऐसे एतिहास लेखकों पर कैसा विश्वास किया जा सकेगा, जो अपनी ही बात को स्वयं ही काट देता है कि हिन्द देश ईरान से बहुत दूर दक्षिण की ओर है और कभी भी दारा के अधीन नहीं हुए। और स्वयं दारा के वर्णन में सिन्ध को दारा का करद माना है, जो बात ऐतिहासिक तथ्य के सर्वथा विरुद्ध है। इस के सिवाय कोई भी स्वाभिमानी भारतवासी अथवा संसार का कोई भी ग़ैरतमंद इस बात को स्वीकार तो क्या कल्पना भी नहीं कर सकता कि कोई भी मनुष इस प्रकार खुले आम पशु समान सम्भोग कर सकता है।

(1) "All the Indian tribes I have mentioned copulate in the open like cattle; their skins are all of the same colour, much like the Ethiopians. Their semen is not white like other people's, but black like their own skins–the same pecularity is to be found in the Ethiopians. Their country is a long way from Persia towards the south, and they were never subject to Darius." (Herodotus [Penguin-1959], Book III, P. 21)

महाभारत में इतिहास विरुद्ध नहीं लेकिन न समझने जैसी एक बात आती है। सञ्जय धृतराष्ट्र को भौगोलिक वर्णन में पहाड़ों का उल्लेख करते कहता है "हे राजेन्द्र! उस (रैवेतक पर्वत) के उत्तर में श्याम नामक एक बड़ा पर्वत है। उस पर्वत का रंग श्याम है, इसलिए वहां के निवासी भी सांवले होते हैं:-

उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामी नाम महागिरः।
यत: श्यामत्वमापन्ना: प्रजा जनपदेश्वर ।।[1]

इस पर धृतराष्ट्र ने पूछा कि 'वहां के लोगों का रंग ऐसा काला क्यों हुआ है? (ऊपर कहा गया है कि श्याम पर्वत के कारण लोग सांवले हैं, फिर भी पूछा गया है!) सञ्जय ने उत्तर दिया "महाराज! सब द्वीपों में लोग गोरे और काले होते हैं।" फिर कहता है "इस पर्वत का रंग काला अथवा सांवला इस लिए है कि श्री कृष्ण यहां सदैव रहते थे। उसके श्याम रंग के कारण इस पर्वत का रंग भी श्याम हो गया है:-

श्यामो यस्मात्प्रवृतो वै तत्ते व क्ष्यामि भरत।
अस्तेऽत्र भगवानकृष्णस्ततकान्त्या श्यामतां गत:।।

स्पष्ट है कि ऊपरी तौर पूरी बात ग़लत है। श्री कृष्ण के रहने से किसी पर्वत का रग श्याम हो जाए, असंगत है। किन्तु बात में कुछ रहस्य अवश्य है। वह जब तक खुले तब तक यह सब न मालूम किया है। यह ऊपर का वर्णन शक द्वीप का है। श्री बुद्धप्रकाश ने लिखा है "एक चीनी रिवायत तथा इस मैदान के बहुधा लोगों की मान्यता के अनुसार भी उत्तर दिशा का रंग काला माना गया है। इस लिए उत्तर के सब निवासियों को काले (श्याम) रंग का समझा (माना) जाता था"। और जिस प्रकार हिन्दू अर्थात काला आदि (जैसे श्री कृष्ण में माना जाता है) ठीक उसी प्रकार काला अर्थात उत्तर (दिशा)। इस लिए बलगेर्या के काले बलगर अर्थात उत्तर के बलगार और काले उगरीन अर्थात उत्तर के उग्रिय"।[2]

ठीक इसी प्रकार हिन्दू शब्द को समझें। यहां जैसे काले का अर्थ उत्तर वैसे हिन्द का अर्थ भी पूरब समझना चाहिये। पारिभाषिक शब्द है कोई किसी विशेष भाषा का नहीं है। संगम काल में तामिल लोग आन्ध्र लोगों को वदुगर तथा उनकी भाषा को वदुगु कहते थे. क्यों कि आंध्र तामिल के उत्तर में हैं। वदक्कु का अर्थ उत्तर है, इस लिये वदुगर अर्थात उत्तर के। जैसे सिन्ध में लाड़काना से ऊपर सक्खर-शिकारपुर तक के लोगों को नीचे दादू आदि ज़िलों के लोग 'उत्तराधीं' कहते हैं, अर्थात उत्तर के, चाहे वह किसी भी ग्राम का हो। इसी प्रकार तेलुगु अर्थात दक्षिण के लोग। यह तेनुगु अथवा तेलुगु का अर्थ है दक्षिण भारत के लोग।

(1) महाभारत [सातवलेकर], भीष्म पर्व, १२/७७
(2) India and The World, P. 215

अंत में एक रोचक बात समझने जैसी है। भारत में सन्थाली आदिवासी भाषा में हेन्दे (हिन्दू) शब्द का अर्थ भी काला है। एक गीत की ये पंक्तियां हैं जिस में एक कुंवारी कन्या कोयल को सम्बोधित करके कहती है:-

हेन्दे उडियराम उड़िय अंदिन, ससाङ पियोयेम पियो वंदिज।

निञाक बोहोक चोटरे नालो पयोम पियोया कुंअरी मन पियो हाले-डाले॥

अर्थात 'हे काली उड़य (कोयल) तुमने मुझे अपनी चहक सुनाई, पी ले पपीहा! तू ने मुझे अपनी पी पी सुनाई, पपीहा! तू मेरे सर से उड़ते मुझे अपनी चहक मत सुना (तेरी चह चह सुनकर) मैं कुंआरी का मन डांवाडोल होने लगता है

सिन्धु नाम!

अब आइये मूल रूप देखें कि सिन्ध पर सिन्ध नाम कैसे पड़ा।

महाराजा मनु की अयोध्या वाली शाखा में इक्ष्वाकु वंश के ४९वें कुल में सिन्धु द्वीप नामी राजा हुआ, जिस के नाम पर सिन्धु देश का नाम प्रसिद्ध हुआ। उसी वंश में राजा हरिश्चन्द्र तथा श्री राम हुए। इसी शाखा की ३७वें कुल में रुरुक राजा हुआ, जिस के नाम पर सिन्ध का रुरुक राज्य प्रसिद्ध हुआ, जो इस समय रोहड़ी नाम से विख्यात है और यही नाम अरबों का अलोर भी है। महाराजा मनु के ही वंश में सातवां राजा महामनस हुआ जिस के दो पुत्र थे, उशीनर और तितिक्षु। उन्हीं में से आन्व प्रजा दो भागों में बंट गई। उशीनर के कुल में सुवीर हुए जिस के नाम पर सिन्ध का सौवीर प्रदेश प्रसिद्ध हुआ। इसी लिये सिन्धु-सौवीर नाम की जोड़ी संस्कृत साहित्य में प्राय: आती है और यही सारी सिन्ध (ऊपर, बिचला, निचला) है जो ऊपर लिखित राजाओं के नामों से और विशेष कर सिन्धु-सौवीर नाम से प्रसिद्ध है। श्री गोपाल नन्दर्गीकर ने 'रघुवंश' के अंग्रेज़ी अनुवाद के अंत में जो वंशावली अयोध्या राज्य की दी है उस में सिन्धु-द्वीप ४५वी तथा रुरुक ३४वें कुल में है।[1] परन्तु श्री पार्जीटर ने सिन्धु-द्वीप ४९वें और रुरुक ३४वें कुल में लिखा है।[2] श्री पार्जीटर ने एक ख़ास बात यह लिखी है कि "वंशावलियों में प्राय: बहुत नाम छोटे करके प्रयोग में लाए गये हैं। जैसे कि रोहिताश्व का रोहित, भीमसेन का भीम, प्रसेनजित का सेनजित, और इसी प्रकार सिन्धु-द्वीप का सिन्धु होकर प्रयोग हुआ है (वही पृ० १२७)। इस लिये सिन्धु द्वीप का संक्षिप्त नाम ही इस देश का नाम केवल सिन्धु प्रसिद्ध हुआ। यह कहना कठिन है कि सिन्धु नदी का नाम भी इसी सम्राट् के नाम से पड़ा। किन्तु सम्भव यही है कि अयोध्या का चक्रवती राज्य जैसे जैसे पश्चिम की ओर फैलता गया वैसे वैसे

(1) The Raghuvansha of Kalidas [1897], P. 601

(2) Ancient Indian Historical Tradition, P. 147

प्रदेशों के नाम भी पड़ते गये। और यह भी सम्भव है कि सिन्धु बहुत दूर होने के कारण इस का यह नाम सिन्धु (द्वीप) राजा के इस प्रदेश पर अधिकार होने पर प्रदेश और नदी नाम सिन्ध प्रसिद्ध हुए। इसलिये यह भी नहीं माना जा सकता कि सिन्धु बहुत बड़ी नदी होने के कारण इसका नाम सिन्धु पड़ा। तो फिर सिन्धु नाम की दूसरी छोटी छोटी नदियों का नाम सिन्धु कैसे पड़ा, क्यों कि वे तो बहुत छोटी हैं? किन्तु यह सब हमारा अनुमान है। महाभारत के अनुसार सिन्धु द्वीप राजा एक राजर्षि भी थे।[1]

महाभारत में ही उसके कुल का कुछ वर्णन भीष्म पितामह के मुख से सुनते हैं। उस अनुसार, भरत वंश में अजमीढ नामी एक राजा हुआ जो यज्ञ करता था। उसका पुत्र महाराजा जह्नु था जो महात्मा श्रेणी का था। जह्नु के पुत्र का नाम सिन्धुद्वीप था जो पिता के समान गुणवान और महा यशस्वी था। उसी का पुत्र महाबली बलाकाश्व हुआ, उसका पुत्र वल्लभ, जो धर्मात्मा था। वल्लभ का पुत्र कुशिक हुआ जो इन्द्र के समान तेजस्वी था। कुशिक का पुत्र श्रीमान गाधि हुआ जिसे बड़ी आयु तक संतान नहीं हुई। संतान की इछा से पुन्य कर्म करने के लिये वह वन में रहने लगा। वहां रहते और सोम याग करने से उस के हां पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम सत्यवती था। पृथ्वी पर इस जैसी सुन्दरी और कोई नहीं थी आदि।[2]

पं० भगवद्दत्त के अनुसार राजा सिन्धुद्वीप मंत्र दृष्टा ऋषि था और ऋग्वेद के (१०-९) सूक्त का यह दृष्टा था।[3]

पुराणों में प्राय: मुख्य वंशों के विशेष राजाओं का ही नाम मात्र वर्णन है, इस लिये इस विषय पर अधिक नहीं लिखा जा सकता।

हिन्द और इन्डिया- अंत में हम एक सुझाव इन नामों के विषय में देतें हैं जो हमें सबसे अधिक मान्य है। विष्णु पुराण में भारतवर्ष को नौ (९) भागों में बांटा गया है। जिन में से एक का नाम इन्द्रद्वीप है।[3] अब यह इन्द्र (द्वीप) किस भाग का नाम है यह स्पष्ट नहीं लिखा है, किन्तु अनुमान है कि यह उत्तर-पश्चिम भारत है। १५ से १७ श्लोकों में जिन जातियों का वर्णन किया गया है उन में सिन्धु-सौवीर के साथ पारसीक (इरान) का भी उल्लेख है। हो सकता है यही इन्द्र(द्वीप) नाम उस काल में अधिक प्रचलित होने के कारण प्रसिद्ध हो गया हो और फिर यवन लोगों ने द का उचार न होने के कारण इन्द्र का इन्ड कर दिया हो जो बाद में इन्डिया बन गया और फिर अ का ह होने के नियम से इन्ड का हिन्द बन गया हो जिस का

(1) महाभारत [गीता] शल्य पर्व, ३९-३७

(2) महाभारत, अनुशासन पर्व, ४/१-७

(3) भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग २, पृ० ११०

(4) विष्णु पुराण [गीता], ३/६-७

बाद में अरब देश में अधिक प्रचलन हो गया होगा। प्राकृत नियमानुसार भी अ का ह होता है जैसे अमीर का हमीर, आर्य का हर (Herr जर्मन), उष्ट्र का हुष्ट्र (मकरानी में) तथा अकामन्यन का हखामनी (पारसी)। यह एक सुलझा हुआ सुझाव है जो अंधेरे में थोड़ा प्रकाश दे सकता हैं और सत्य हकीकत भी हो सकता है।

इस प्रकार हमने इस अध्याय में पूरे वाद विवाद को लेकर यह दिखाने करने का प्रयत्न किया है कि सप्त-सिन्धु अथवा हप्त-हिन्दू तथा सिन्ध का हिन्द और इन्डस आदि सब बातें निरर्थक हैं। और यह सब हमने इस प्रकार निराधार सिद्ध किया है जिस प्रकार हमने अपनी पुस्तक "भारतवर्ष" में सिकन्दर की भारत में पराजय सिद्ध की थी। हो सकता है हमारा यह दावा शतप्रतिशत सही न हो परन्तु कम से कम हमने प्रचलित गलत धारणाओं को नवानवे प्रतिशत (९९%) निर्मूल अवश्य सिद्ध कर दिया है, ऐसा हमारा विश्वास है।

इति सिन्धु-सौवीर प्रथम अध्याय

Shri H. H. Hinduman, eminent British publicist says :

"Many hundreds of years before the coming of the English, the nations of India had been a wealthy and highly civilized people. Their religious ideas and philosophic and scientific conception have greatly influenced the progressive races of the West. And yet, nine-tenths of what has been written by the British about India is so expressed that we are made to believe the shameful falsehood that stable and civilized Government in Hindustan began only with the rule of the British."

卐 ● Shri Cruiser, an eminent French savant, says:- 卐

"If there is a country on earth which can firstly claim the honour having been the cradle of the human race or atleast the scene of primitive civilization, the successive developments of which carried into all parts of the ancient world, and even beyond, the blessings of knowledge which is the second life of man that country assuredly is INDIA."

● Rev. Thomas Maurice, says :-

" The Asiatic origin of the Druids has long been an acknowledged point in the world of antiquities. Mr. Reuben Burrew, the great practical astronomer of India, was the first person, who after a strict examination and comparison of their mythological superstition and their periods directly affirmed them to be a race of emigrated Indian Philosophers."

(Asiatic Researches, Vol II, P. 483)

"These priests (Druids), Brahmins of India, spread themselves widely through the northern regions of Asia even to Siberia itself, and gradually mingling with the great body of the Celtic tribes (Kalatoya people to the south of Kashmir) who pursued their journey to the extremity of Europe finally established the Druid, that is, Brahmin system of superstition in ancient Britain. This I contend was the first oriental colony settled in these (British) islands." (Antiquities of India, Vol. VI, Pt. I, P. 2'6)

● Shri J. Princep, says :-

" The Buddhists of the West accepting Christianity on its first announcement atonce introduced the rites and observances which for centuries had already existed in India. From that country Christianity derived its monorchical institutions, its forms of ritual and church service, its councils of convocations to settle schisms on points of faith, its worship of relics and working of miracles through them and much of the discipline and of the dress of the clergy even to the shaven heads of the monks and friars." (Mongolia and Tartary)

卐 卐

सिन्ध और सिन्धु-नदी * Sindh & Sindhu River

अध्याय २

सिन्ध की सीमाएं इस समय जो हैं उन में दक्षिण को छोड़ बाकी लगभग वही हैं अर्थात उत्तर में मुलतान (पंजाब) के नीचे दशेरक (दुहर्की) तथा उबावरो से ऊपर तक, पूर्व में राजस्थान, पश्चिम में बलोचिस्तान। दक्षिण को दो भागों मे लेंगे। दिक्षण पश्चिम में रतनाकर (अरबी) समुद्र और दक्षिण पूर्व में कच्छ, जो प्राचीन काल में सिन्ध में सम्मिलित था। उत्तर में उपरी भाग का कुछ उल्लेख मिलता है जो विश्वसनीय नहीं है। अब हम पहले वर्तमान सिन्ध का भूगोल वर्णन करेंगे बाद में प्राचीन।

समूचे सिन्ध प्रदेश में से सिन्धू नदी बहती है। सिन्धू नदी हिमालय के मानसरोवर झील में से निकल कर कशमीर और पंजाब में से ११०० मील चलकर सिन्ध में कशमोर के पास प्रवेश करती है। सिन्ध में से ६०० मील टेढ़ा मेढ़ा (zigzag) चल कर कराची जिले के केटीबंदर के पास समुद्र में गिरती है (वैसे साधारण और सीधा फासला ६८० मील है)। २०० वर्ष पूर्व इस के सात मुख थे और १० वर्ष पूर्व दो मुख थे; एक लगभग वर्तमान और दूसरा नीचे कच्छ में सिन्धु-सागर संगम। पहले का पेरीप्लस और टालमी ने तथा दूसरे का अलबेरुनी प्रमाण है। परन्तु विस्तार से देखा जायगा तो सिन्धु तिबत के पश्चिम भाग में कैलाश पर्वत के उत्तर पूर्व में मानस्सरोवर से निकल कर प्रथम दो धाराओं में बहती है, जिन में से एक कैलाश के उत्तर-पश्चिम की ओर चली जाती है और दूसरी दक्षिण-पश्चिम की ओर। पिलनी के अनुसार सिन्धु के समूह में १६ नदियां सम्मिलित थी जिन में मुख्य सतलज (शतद्रु) है। सिन्धू के पूर्व में सहायक (tributaries) नदियां चनाब (चन्द्रभागा), झेलम (वितस्ता), रावी(इरावती), बियास (विपाषा) हैं। रावी पहले कशमीर में चम्ब के दक्षिण-पश्चिम किनारे पर दिखाई देती है, वहां से लाहोर से होकर दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती झेलम और चिनाब की मिली धारा में मिल जाती है। बियास, पीर पंजाल पहाड़ी पंक्ति में से निकल अर कशमीर में रावी के मूल चम्ब के समीप ही देखने में आती है और फिर दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती २६० मील चलने के बाद सतलज में मिलती है। सतलज मानसरोवर के पश्चिम भाग से निकल कमेत पर्वत पर दक्षिण-पश्चिम को मुड़ कर, फिर पश्चिम की ओर बहती है। बाद में कपूरथला के दक्षिण-पश्चिम छेड़े पर बियास उस में मिलती है। बाद में सतलज और बियास की मिली धाराएं दक्षिण-पश्चिम की ओर बह कर अलीपुर और उच्च के बीच में चनाब से मिल गई हैं। पार्जीटर के अनुसार प्राचीन काल में यह सिन्धू की सीमा तक स्वतंत्र बहती थी। सतलज और बियास की मिली धारा को इस समय

घघर कहते हैं। एरियन के समय तक यह नदी कच्छ की खाड़ी तक स्वतंत्र रूप से बहती थी।[1]

क्षेत्रफल ! इस समय सिन्ध की लम्बाई उत्तर से दक्षिण ३६० मील और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम १५० मील है।

प्राकृतिक विभाग!

१- सिरो- उत्तर तथा ऊपर सिर की ओर होने के कारण इस भाग को सिरो कहा जाता है जिस में उत्तर सरहद (सीमा) तथा सक्खर ज़िल्ले हैं।

२- लाड़- दक्षिण तथा नीचे की ओर का भाग होने के कारण यह लाड़ कहलाता है। इस में कराची तथा हैद्राबाद ज़िल्लों के आधे आधे भाग हैं। लाड़ इस समय इतना ही भाग है परन्तु प्राचीन काल में भड़ोच (गुजरात) तक विस्त्रित था जिसे दक्षिण गुजरात का लाट प्रदेश कहा जाता था। इस समय गुजरात में लाड़ (लाट) का अस्तित्व ही नहीं है जब कि सिन्धू में अभी तक है, लेकिन सिन्ध तक ही सीमित है। यह लाड़ क्या है, उस पर आगे लिखेंगे परन्तु प्राचीन काल में कम से कम २००० वर्ष पूर्व इस की बड़ी महत्ता थी।

३- विचोलो - बीच अर्थात सिरो और लाड़ का बीच वाला भाग, इस में सारा नवाबशाह ज़िल्ला, हैद्राबाद, लाड़काणा और खैरपुर रियासत का आधा, दादू ज़िले का थोड़ा पूर्वी भाग और कराची ज़िले का कुछ भाग है।

रेगिस्तान (मरूभूमि)- सिन्ध का पूर्वी भाग जिसे वारयासो (रेती वाला) अथवा थर भी कहते है। इस में खैरपुर का आधा और बाकी थरपारकर ज़िल्ले हैं। थड़पारकर के नीचे कभी समुद्र था।

कोहिस्तान(पहाड़ी)- पश्चिम का पहाड़ी भाग। इस में दादू ज़िला, लाड़काणा का आधा और कराची ज़िले का थोड़ा भाग है। कोहिस्तान के उत्तरी भाग में प्राचीन यौधेय लोगों का राज्य था जिसे आजकल जोही कहा जाता है। कक्कड़ तहसील के भाग को काच्छो तथा सिन्धु नदी के दोनों किनारों के समीप वाली भूमि को कच्चो कहा जाता है, क्यों कि वहां की जमीन नरम तथा कच्ची होती है।

पहाड़- पश्चिम में हालार पहाड़ियों की पंक्ति है जो बलोचिस्तान को सिन्ध से अलग करती है। इस में करो, खीर्थर (क्षीर सागर) तथा पब्बु जबलु (पहाड़) शामिल हैं। खीर्थर पहाड़ की तीन शाखाएं हैं:- कोहिस्तान (कराची) ज़िला, भग्गोठोड़हो अथवा लकी के पहाड़ और बुड़िहयाड़ो (लाड़काणा ज़िला)। ये सब पहाड़ सिन्ध के पश्चिम तथा सिन्धू नदी की दाहिनी ओर हैं।

(1) Imperial Gazetteer of India, Vol. 23, P. 179

टकरियां (Hills)- आदमशाह (सक्खर), काल्कां (रोहड़ी), मकल्ली (ठट्टो), गञ्जो टकर (हैद्राबाद), कारुंभड़ (थर में नगरपारकर के पास), यह किसी समय ज्वालामुखी था)।

नदियां- मुख्य नदी सिन्धू है। छोटी हब नदी है जो खीर्थर पहाड़ से निकल कर १२० मील चल कर रास (cape) मान्ज के पास समुद्र में गिरती है। यह केवल वर्षा के दिनों में बहती है फिर सूख जाती है। समुद्र केवल रत्नाकर (अरबी) है जिस में सिन्धू तथा हब नदियां गिरती हैं। रास (cape) भी केवल एक मान्ज़ अथवा अलअमारी है जो कराची के पश्चिम में समुद्र में नोक के समान खड़ी है।

द्वीप - सिन्धू नदी में ज़िंद:पीर (रोहड़ी के पास जहां उदेरोलाल अथवा ख्वाजा खिज्र का आस्तान है), बखर (सक्खर और रोहड़ी के बीच), सात्रबेलो (सखर), मन्होड़ो, बाबा और भिट (तीनों समुद्र में)।

झील- मन्छुर (दादू जिले में बूबक के पास)। यह नाम मानसरोवर का बिगड़ा रूप है जो राजस्थान में भी है, कींझर (इस नाम का जिला जो उड़ीसा [भारत] में है), हालेजी और सोनहरी (तीनों ठट्टे के पास), सूमरी (अमरकोट के पास) मखी (सांघड़ के पास)।

चश्मे (स्रोत)- मंघोपीर (कराची के पास) यहां दो चश्मे हैं एक ठंडे पानी का (जिस में [घड़ियाल रहते हैं]) और दूसरा गरम पानी का, झिमपीर के पास तथा तीसरा धारातीर्थ (लकी के पास पहाड़ी पर)। धारातीर्थ का अर्थ मराठी में शहीद है।

नई (धाराएं=torrents) ये पानी के छोटे वहाव होते हैं जो केवल वर्षा के दिनों में पहाड़ों से बहकर आते हैं। इन में गाज और बारन (खीर्थर पहाड़ से निकलते हैं), मलीर और रन्नीकोट (कोहिस्तान से)। रन्नीकोट गांव सन के पास आकर सिन्धू नदी में गिड़ती है।

वाह (नाले=canals) और फाट- वाह राज्य की ओर से खुदवाये जाते हैं परन्तु सिन्ध में दूसरे वाह भी हैं जिनको फाट कहा जाता है। क्यों के वे नदी में बाढ़ आते समय वे फट निकलते हैं। वे हैं घाड़, बघाड़, ओचितो अथवा हजामिड़ो, उल्हन्दो नारो, उभरन्दो नारो, फुलेली और पेञारी। प्रथम चार सिन्धू के दाएं और बाकी तीन बांएं तट पर हैं। बघाड़, पेञारी और ओचितो अथवा हजामिड़ो कराची ज़िल्ले में है, बाकी चार सक्खर बराज (बांध=barrage) के बाद वाह (canals) के रूप में हो गए हैं। मूल प्राकृतिक शाही, बेगारी और सिन्ध वाह हैं।

वर्षा ! सिन्ध में वर्षा थोड़ी पड़ती है। वर्ष में सरासर ५-६ इन्च। कभी तो अति अधिक पड़ने से बाढ़ भी आती है। ऊंचे पहाड़ों के न होने के कारण ही वर्षा थोड़ी पड़ती है, क्योंकि वे पहाड़ बादलों की नमी को रोककर बरसा नहीं सकते।

ऋतु (मौसम)- वर्षा अधिक न पड़ने के कारण सिन्ध का जलवायु (climate) ग्रीषम में

गरम तथा शरद ऋतु (Winter) में ठंडी है। तो भी उत्तर, बीच और दक्षिण के जलवायु में अंतर है। लाड़ की हवा नमी (moist) है इस लिए कि समुद्र समीप है।

जंगल ! सिन्धू नदी के दोनों किनारों पर जंगल अधिकतर हैं।

खेती ! फ़स्ल (पैदावार) ख़रीफ़ और रबीअ दो होती है। बारानी (वर्षा पर) भी खेती होती है। गेहूं, जुआर, बाजरा, सफेद और लाल चावल, और कपास होती है। इस के सिवाय चन्ना, मटर, सरसों, ज़ांभो, गन्ना, तमाकू, भांग, नारंगी, आम, खजूर, नारियल, पपीता, सिन्धी गिद्रा (खरबूज़ा), हिन्दाणा, बेर (छोटे और बड़े), निम्बू, तूत आदि अनके अन्न और फल होते हैं।

खनिज पदार्थ (Minerals)- कोयला, लोहा, मेट (मुलतानी मिट्टी), नमक, चानीहो (kind of potash), फटकड़ी (Alum), चीरोली (Gypsum) चूने का तथा रेतीला पत्थर, नील (Indigo) आदि।

नगर! कराची, ठट्टा, हैद्राबाद, कोटड़ी, दादू, सेवहन, लाड़काणा, सक्खर, शिकारपुर, नवाबशाह, टंडो आदम, तथा मीरपुर खास।

जन संख्या ! बटवारे के समय सिन्ध की जन संख्या लगभग ४५ लाख थी जिस में से हिन्दू चोथा भाग थे। उस अनुसार हिन्दू १२ लाख, मुसलमान ३२ लाख, सिख ३१ हज़ार, देसी क्रस्तान (ईसाई) १३ हज़ार, पारसी तथा और दूसरे ५ हज़ार थे।

भाषा और लिपि ! साधारण भेद के साथ सारी सिन्ध में सिन्धी भाषा बोली जाती थी। असल में देवनागरी (जिसे सिन्ध में शास्त्री लिपि कहा जाता था) बाद में हटाई (जैसे राजस्थान में मुण्डा लिपि किसी समय थी) अंत में नस्तअलीक (अरबी) से बनी लिपि प्रचलित थी जो इस समय भी है।

व्यापार ! हिन्दू बहुधा व्यापार, ज़मीनदारी तथा सरकारी नोकरी करते थे। मांझंद तथा हैद्राबाद के बहुतेरे हिन्दू दूर देशों में व्यापार के लिए जाया करते थे। पहले शिकारपुर के हिन्दू जिन को शिकारपुरी कहा जाता है, वे तुर्किस्तान और रूस तक व्यापार के लिए जाते थे। मुसलमान प्रायः खेती तथा मेहनत का काम करते थे।

शिक्षा। शिक्षा का प्रचार और प्रसार सिन्ध में बहुत कम है, उस में भी मुसलमान तो नहीं के बराबर थे। इस दृष्टि से सिन्ध पिछड़ा प्रदेश था।

आवागमन। असल तो नौका से व्यापार बहुत होता था। इस के सिवाय ऊंट, गदहा, खचर, घोड़ा और बैलगाड़ी भी थी। अब मशीन युग में बहुत बदल गया है फिर भी ऊपर के साधन अब भी हैं।

लघु उद्योग ! जंडी (लकड़ी पर रंगीन, सुन्दर और प्रसिद्ध काम), काशी (Glazed earthenware), लूंगी (कपड़ा), कपड़े रंगाई का काम, फरासी, ग़लीचा, खेस (चादर जैसा कपड़ा). अजरक, (बांधने का कपड़ा), लोई (गरम चादर), खथ्था (ठडा-गरम चादर जैसा कपड़ा). पाखड़े (ऊंट पर रखने के लिये, डबे, नसवार, पीतल तथा कुटि (Bell metal) के बरतन आदि। कारखाने खुलने से अब और उद्योग भी बढ़े हैं।

बंदर ! कराची मुख्य और बड़ा (बंदर), कोटड़ी, केटीबंदर (पहले शाहबंदर और लारवी बंदर भी थे तो भंभोर [बरबर] के बंदर भी थे), और सक्खर।

प्राचीन (पुरातत्त्व के) स्थान ! मोहन-जो-दड़ो (डोकरी, लाड़काणा), काहू-जो-दड़ो (मीरपुर खास) भुकर-जो-दड़ो (लाड़काणा), कोटडूजी खैरपुर मीर्स) और भंभोर (कराची)। इस के सिवाय आमरी आदि जैसे अनेक प्रागैतिहासिक स्थान भी हैं।

शुद्ध वायु के स्थान ! भिर्क, मेटींग थाणो-बूलाखान, खदाची और दाढ़ियालो।

हिन्दूओं के स्थान! लकी (सब से मुख्य तीर्थ), उदेरोलाल, साधबेलो, पिथोरो तथा हिंगलाज।

सिन्धू नदी !

नदी (अथवा नदियों) का देश की अवस्था, भूगोल और इतिहास पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। नदी के प्रवाह बदलने, पीछे हट जाने अथवा आगे बढ़ आने से बड़ा परिवर्तन हो जाता है। और यह हर नदी के साथ अनिवार्य है। सिन्धू ने भी ऐसे अनेक चक्कर काटे हैं, प्राकृतिक नियम से प्रवाह बदला और बहुत कुछ किया है। इस लिए सिन्ध के प्राचीन इतिहास के लिये उसकी वतमान स्थति को स्वीकार नहीं किया जा सकता। हमें प्रथम तो उस के सृष्टि उत्पति काल की स्थति पर सोचना होगा जिसका कोई ज्ञान नहीं है। यह भी मालूम नहीं कि सृष्टि उत्पति के समय सिन्धू विद्यमान थी कि नहीं। अगर थी तो कौन सी। प्राचीन साहित्य में ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता। महाभारत धर्म ग्रन्थ के साथ इतिहास ग्रन्थ भी है। रामायण में जहां राम-राज्य से सम्वद्धित वर्णन है, महाभारत में भारत के साथ साथ संसार के लगभग बड़े भाग का वर्णन है। भीष्म पर्व में जम्बूद्वीप का वर्णन आता है, वहां नदियों के वर्णन में आता है कि ब्रह्मलोक से उतर कर त्रिपथगा दिव्य नदी गङ्गा पहले उस बिन्दुसरोवर में ही प्रतिष्ठित हुई। वहीं से उसकी सात धाराएं हुईं। उन के नाम इस प्रकार हैं 'वस्वोकसारा, नलिनी, सरस्वती, जम्बू, सीता, गङ्गा और सिंधु'।[1] इस में गंगा मूल है बाकी सात धाराएं हैं जिन में से एक सिंधु थी, किन्तु इस समय सिन्धु धारा नहीं अपितु स्वतंत्र मानसरोवर से सिन्धु के रूप में १७०० मील लम्बी नदी है। हो सकता है गंगा की सात धाराओं वाली सिंधू कोई और हो। वायु पुराण

(1) महाभारत [गीता] भीष्मपर्व, ६/४७-४८

(४७-४०) के अनुसार सिन्धु बिन्दुसर में से निकलती है। हो सकता है सिंधु पहले एक धारा हो और बाद में पृथ्वी में आए किसी परिवर्तन से सब कुछ बदल गया हो। यह केवल अनुमान है। सृष्टि उत्पत्ति को करोड़ों वर्ष हो गये हैं। इस के पश्चात कई जल प्लावन (deluge) भी आए हैं जिन में से एक तो बहुत बड़ा और प्रसिद्ध है जिसे 'तूफान नूह' (Noah's Arc) कहा जाता है। किसी समय हिमालय के पीछे मध्य तुर्किस्तान का भाग समुद्र था। खुदाइयों में प्राय: ऐसे अवशेष मिल आए हैं। किसी समय हिमालय नहीं था अथवा बहुत नीचे छोटा था तब वह भाग भारत से मिला हुआ था उसे उत्तरकुरु कहा जाता था, जिसे टालमी ने Ottorocorrae कर के लिखा है और आजकल 'उतरार' नाम से प्रसिद्ध है। फिर कोई समय आया प्रथ्वी में और परिवर्तन आए, समुद्र पश्चिम-दक्षिण की ओर उतर कर खाली हो गया और इस समय केवल 'अरल की झील' के रूप में उस का अवशेष बाकी है। उसी परिवर्तन में मध्य एशिया का समुद्र भी खाली हो गया जिस का अवशेष मृत-समुद्र (Dead-Sea) है और जीवित रूप में कैस्पियन (Caspian)। अरब विद्वान अलबेरुनी ने लिखा है कि "बलख़ की नदी (जेहूं अथवा आक्सस) बलख़ान से होकर कैस्प्यन समुद्र में पड़ती थी"। बाद के उरगञ्ज के अब्दुल ग़ाज़ी ने लिखा है कि उसके जन्म से ३० वर्ष पूर्व (सन् १००८ में) आक्सस का बहाव अन्तिम रूप में बदल कर अरल की ओर हो गया। सन् १५५८ के एन्थोनी (Anthoni Jenkinson) ने एशिया से खीवा की ओर यात्रा करते लिखा है कि आक्सस अरल में जा पड़ती है"।[1]

इसी प्रकार जैमिनी ब्राह्मण (३-२३९) के अनुसार "प्राचीन काल में जो वन और नदियां (जिन का वर्णन वहां किया गया हैं) सिन्धु के पश्चिम की ओर थीं वे बाद में भूमि परिवर्तन से बदल कर पूर्व की ओर हो गईं"। यहां सिन्धु के प्रवाह बदलने का पक्का प्रमाण उपस्थित है।

अभी अभी एक हज़ार वर्षों में ही सिन्ध देश में समुद्र ज़मीन से लगभग ४० मील हट कर दूर हो गया है तो फिर प्राचीन प्रवाह-रूप वर्तमान से किस प्रकार अनुकूल हो सकता है।

कृत्रिम रुप से भी कुछ बड़ी बड़ी नदियों के प्रवाह को इतिहास काल में परिवर्तन किया गया है। 'सर्वे आफ़ इन्डिया' के पुराने अधिकारी श्री बोस ने अपने एक लेख "Solution of the Kosi Problem" में कुछ ऐसे प्रमाण दिये हैं। उस अनुसार:-

"लगभग ६००० वर्ष पूर्व मिस्र (Egypt) के मेनीस (Menes) राजा ने मम्फ़िस (Memphis) मन्दिर को डूबने से बचाने के लिये नील नदी का प्रवाह पश्चिम से पूर्व की ओर कर दिया।

"लगभग ५०० वर्ष पूर्व एक दन्तकथा के अनुसार 'बैबीलोन्या के राजा निमरोद (Nimrod) ने साहस करके दजला (Tigris) नदी का प्रवाह बदल दिया जो ४००० वर्षों तक रहा। अंत में

(1) Budh Prakash; India And the World, P. 210

हलाकू ने उसे नष्ट कर दिया और बैबीलोन्या भी नश्ट हो गया।

"दक्षिण भारत के चोल वंशी एक राजा ने १०८० फुट लम्बा बांध (Dam) जो ४० से ६० फुट चौड़ा था सिरंगापटनम के नीचे बनाया था जिस से कावेरी को कोलेरोन (Coleron) से अलग किया जा सके और उस का प्रवाह तांजोर जिले की ओर किया जाय। वह अभी तक है और अब उस पर से रास्ता बनाया गया है।

"इसी प्रकार फ्रांस की राईन नदी के भी टेढ़े मेढ़े भाग कार्ल्सरुहे (Karlsruhe) के पास ठीक करके सीधी की गई है"।[1]

नदियों का प्रवाह वायु के रुख़ के कारण भी बदलता है। इस के दो प्रमाण मोजूद है। मिसेसिपी, एब्रो और राईन इस के उदाहरण हैं। रोमन काल में राईन नदी का प्रवाह ज़ूडर ज़ी (Zuider Zee) वाले प्रदेश में से था जो अब वायु के रुख़ के साथ बदल कर वर्तमान रूप हुआ है। डैन्यूब का रुख़ भी इसी प्रकार वायु के रुख़ पर हो गया है। (वही)

ऐसे तो गंगा नदी के लिये भी पौराणिक वर्णन है जिस के अनुसार राजा दिलीप के पुत्र राजा भगीरथ से गंगा का अवतरण करना लिखा है, और इसी लिये गंगा को भागीरथी भी कहा जाता है।

स्वयं सिन्धु का प्रवाह कलहोड़ा लोगों के समय कच्छ की ओर बंद कर दिया गया था।

परन्तु अगर सिन्धु प्राचीन काल में भी इसी रूप में हो तो भी कठिनाई सामने है। एक तो प्रागैतिहासिक काल में राजस्थान से लेकर सारा दक्षिण भारत समुद्र था। तो उस समय सिन्धु कहां गिड़ती थी और कहां तक! इस के पश्चात फिर भूमि परिवर्तन हुए कुछ भूमि बाहर निकल आई। किन्तु वह आज के आफ्रीका और मैडागास्कर तक एक समान बड़ा महाद्वीप था तो उस समय सिन्धु कहां पड़ती होगी? फिर न जाने कितने हज़ारों लाखों वर्ष बीत गए जो पृथ्वी में फिर परिवर्तन हुए जिस ने लगभग वर्तमान रूप धारण किया, जो भी बदलता रहा और अब भी बदल रहा है। मगर सिन्धू का रुप निकट समय में ही साफ़ प्रमाणों से दो प्रकार का मिलता है। पेरीप्लस और टालमी ने सिन्धू के सात मुखों का उल्लेख किया है। उस के पश्चात सिन्धू के दो मुख थे। जिस में से एक कच्छ में सिन्धु-सागर-संगम था। कच्छ का मरुस्थल समुद्र था उस की एक नोक सिन्ध के थरपारकर तक थी जिस के अवशेष भी मिल चुके हैं। इस लिये यह सब विस्तार से सोचना पडेगा। कहते हैं कि सिन्धु के मुहाने से जिन लोगों ने प्रस्थान किया उन्हों ने ईजिप्ट और एथोप्शा को जाकर बसाया। तो क्या उस समय सिन्धु नील नदी के अधिक समीप थी कि जहां से ये लोग वहां पहुंचे अथवा पश्चिम एशिया में जो मोहन-जो-दड़ो जैसे अवशेष मिले हैं उस का भी यही कारण है क्या? इतिहास की बहुधा भ्रामिक धारणाओं

(1) Modern Review, June 1956

का यह भी बड़ा कारण है कि लेखकों ने प्राचीन और प्राकृतिक भूगोल (Geonomy) के परिवर्तनों की अवहेलना की है। उन्हों ने जो वर्तमान में देखा उसी को लेकर थोड़ा प्राचीन भौगोलिक स्थानों का ज्ञान पाकर उसे आधार बना कर खोज (research) की है, इस लिये वे संसार के इतिहास को शुद्ध रूप में समझने में असफल रहे हैं।

कैस्प्यन समुद्र ने भी बड़े परिवर्तन झेले हैं। प्राचीन काल में वह आज से अधिक उत्तर की ओर फैला हुआ था और पूर्व में तो बहुत अधिक फैला हुआ था, जिस में वर्तमान 'सीर' दरया और बीच का सारा मरुस्थल भी उस में था (चीन तक) जिस की सीमा निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। न जाने कि सिन्धु नदी की शाखा कभी ऊपर उत्तर-मध्य तुर्किस्तान की ओर भी बहती थी, क्यों कि सिन्धु का नाम कभी वंक्षु अथवा चक्षु (आक्सस) नदी भी मिलता है। इलाहाबाद के राजा चन्द्र (गुप्त) के लोह स्तम्भ लेख में सिन्धु को कुछ लोगों ने ग़लत समझ कर उस के स्थान पर चक्षु नदी किया है। रघुवंश (४/६७) में सम्राट रघु की विजय यात्रा का वर्णन करते कवि कालीदास कहता है :-

"विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः"

इस में साफ 'सिन्धु तीर' अर्थात सिन्धु के किनारे लिखा है। किन्तु कुछ पांडुलिपियों में 'वंक्षु तीर', 'वंक्षण तीर' तथा 'वक्षुतीर' भी मिलता। सिन्धु से वंक्षु होना स्वभाविक भी नहीं है। तो फिर यह क्यों? सोचने जैसी बात है।

हम ने ऊपर लिखा है कि भारत-आफ्रीका आदि कभी आपस में जुड़े हुए एक महाद्वीप बनाते थे, थोड़ा इसे भी देखें। भौगोलिक तौर पर, भारत का पश्चिम समुद्र किनारा मूंगे के द्वीपों (Coral Atolls) के पट्टे और किनारों द्वारा मैडागास्कर और मारीशस से आज भी जुड़ा हुआ देखने में आएगा, और प्राचीन काल की यह निशानी है कि यह ज़मीन का टुकड़ा किसी ज़माने में ऐबीसीन्या (अफ्रीका) और भारत को आपस में मिलाए हुए था, जो बात वहां (आफ्रीका) के वर्तमान पशु तथा वनस्पति से भी सिद्ध होती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री हक्सले (**Prof. Julian Huxley**) के अनुसार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि:-

"Palaeonlology, Physical geography and geology, equally with the ascertained distribution of living animals and plants offer their concurrent testimony to the former close connexion of Africa and India, including the tropical islands of the Indian Ocean."

इसी प्रकार श्री ब्लान्फोर्ड (H.F. Blonford) गम्भीर खोज के पश्चात इस परीणाम पर पहुंचे हैं कि :-

"With the decrease of Cold, the flora and the reptilian man, fauna

of Permian times were diffused to Africa and India."

आगे लिखते हैं कि "दक्षिण भारत और दक्षिण आफ्रीका प्रागैतिहासिक (Pre-History) काल में आपस में मिले हुए थे :-

"South India remained connected with South Africa upto the end of Permian epoch at the earliest and Miocene epoch at the latest."[1]

विद्वानों की यह भी राय है कि इस समय हाथी, गेंडा (Rhino), सिंह और बैल केवल भारत और आफ्रीका में ही पाया जाता है, और दोनों का रुप-रंग लग भग समान है, क्योंकि पहले भारत और आफ्रीका जुड़े हुए थे। अलग होने के बाद दोनों तरफ नस्ल वही था और जुदा जुदा जल वायु के कारण थोड़े भेद के साथ जुदा जुदा बढ़ता रहा है।

महाभारत (सातवलेकर) के अनुसार "सम्राट भरत चक्रवर्ती न परन्तु सार्वभौम सम्राट् था।"

'स राजा चक्रवर्त्यासीत्सार्वभौमः प्रतापवान्'। (आदिपर्व, ६९/४७)

और इसी सम्राट भरत के लिये यह भी प्रसिद्ध है कि उस ने अनेक अश्वमेध यज्ञ किये थे। उस की आयु २०० वर्ष से अधिक थी। ऐतरेय ब्राह्मण (८/२३) के अनुसार उस के एक अश्वमेध यज्ञ का कराने वाला दीर्घतमा मामतेय था और वह यज्ञ मषणार देश में सम्पन हुआ था। किन्तु यह मशणार देश भारत में कहीं नहीं है, परन्तु अफ्रीका में है, जिसे आजकल मशूणा (दक्षिण रोडेश्या) कहा जाता है। और विशेष बात यह है कि सम्राट भरत ने इस यज्ञ में सोने से जड़े दांतों वाले हाथी दान किये थे। मसूणा(लैण्ड) इस समय भी सोने के लिये प्रसिद्ध है। इस लिये यह अनुमान लगाना ठीक है कि सार्वभौम सम्राट भरत ने अपने साम्राज्य के उस भाग (जो उस समय भारत से जुड़ा हुआ तथा आधीन था) में यज्ञ किया। इस पर और आगे लिखेंगे। और यह भी केवल इत्तिफ़ाक नहीं कहा जायगा क्यों कि हीराडोटस ने लिखा है कि नील के सिवाय सिन्धू ही है जिस में मगरमछ (crocodile) पाए जाते हैं और अरब विद्वान जाहिज़ ने भी इस बात की पुष्टि की है कि दोनों में घड़ियाल होते हैं। और सिन्धु में घड़ियाल होते हैं, इस लिये सिन्ध के एक छोटे बंदर का नाम 'वाघूदर' है। श्री लेकी (Dr. L.S.B. Leaky) के अनुसार हिरण, रीछ, भेड़ और सूअर आदि पशु मूलतः आफ्रीका के नहीं किन्तु एशियाई (भारती) नस्ल के हैं:-

"When we examine each of the three faunas critically, we find that the northern region (of Africa) has good many animals which are not essentially African, for example, the deer, bear, wild sheep and wild boar, all of which are of Asiatic affinities."[2]

(1) Quarterly Journal of the Geological Society, Vol. XXX [1875], P. 534

(2) The Stone-Age Africa, P. 21

और श्री जान्स्टन (Sir Harry H. Johnston) के अनुसार "आफ्रीका के मूल निवासी (Negro) भी भारत से आकर यहां बसे हैं।":-

" In all probability man first entered Africa from Asia, in which continent he almost certainly originate. He followed the footsteps of those large mammals which now form the most striking features in African fauna..... It seems much more likely that the bulk of African humanity in its original types passed from INDIA into Africa, and thence into north eastern Africa."[1]

वैज्ञानिकों की यह भी राय है कि किसी ज़माने में एशिया और आमेरीका भी आपस में जुड़े हुए थे। तीसरी एशियाटिक मुहिम (expedition) जो सन् १९२३ में मंगोल्या में काम कर रही थी, उसे कुछ अवशेष (fossils) मिले थे जिन से यह सिद्ध होता था कि किसी ज़माने में ज़मीन का कोई चौड़ा टुकड़ा उत्तर अमेरीका और एशिया के बीच मोजूद था। टिटेनोथेर (Titanothere) नामी एक बड़े जानवर का अस्थिपिञ्जर मिला है जो Utah और Montana पर लाखों वर्ष पहले फिरता था। इस से भी अधिक महत्व की जो चीज़ मिली है वह है Baluchitherium नामी विशाल काय गेंडे की खोपड़ी, जो संसार में सब से बड़ा पशु था, जो भी लाखों वर्ष पहले पृथ्वी पर घूमता था। इस का माप १५ फ़ुट खड़ा (standing position) और २४ फुट लम्बा था।[2]

वैज्ञानिकों ने यह भी खोज निकाला है कि "किसी ज़माने में भारत और मैडागास्कर के बीच लेमूरिया (Lemuria) नामी एक महाद्वीप (continent) था जिस में ६ करोड़ लोग बसते थे, जो इस समय ग़रक़ (submerged) हो गया है। इस प्रकार से सब भौगोलिक तथ्य हैं जिन को किसी भी ऐतिहासिक निर्णय पर पहुंचने के लिये अवश्य ध्यान में रखना होगा नहीं तो कोई भी निर्णय विश्वास के योग्य नहीं होगा।

सिन्धू नाम- सिन्धू नदी का नाम आरंभ से आज तक केवल सिन्धु रहा है। संस्कृत साहित्य में केवल सिन्धु नाम ही व्यवहृत हुआ है। यद्यपि इस का दूसरा संस्कृत नाम 'महअर्णव' भी सुनते है किन्तु वह संस्कृत साहित्य में कहीं नहीं मिलता। और आश्चर्य तो यह है कि यह नाम अरबी साहित्य में ही मिलता है। यह ज्ञात नहीं कि इस शब्द की आयु कितनी है परन्तु केवल इसलाम से बाद के साहित्य में यह नम 'महरान' के रूप में सिन्धू के लिये आता है। कुछ लेखकों ने सिन्धु और महरान दोनों को अलग अलग माना है जो ठीक नहीं। महरान

(1) A History of the Colonization of Africa, P. 1

(2) Modern Review, September 1923

(महराण) का उल्लेख फारसी में सिन्ध के इतिहास का अरबी से फारसी में अनुदित 'चच्च नामा' में मिलता है :- "चूं बेरून आमद व सवार शुद: बूद: व मीरफत, बजिवी महरान रसीद बमोज़अ कि आनरा कारमती गोयन्द अज़ जानिब मशरकी महरान"।

अर्थात 'जैसे वह बाहर निकला तो सवार था और जा रहा था। महरान नदी पर उस स्थान पर पहुंचा जिसे कारमती कहते हैं (जो) महरान के पूर्व में है'।

और उसी पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर है कि "अरोड़ सेहून नदी पर है जिसे महरान कहते हैं"।

नवमी शती के इब्न खुर्दाज़बः ने बसरः से भारत आने तक के रास्ते का वर्णन करते लिखा है कि "फिर अर्मुज़ से सारा एक सप्ताह का रास्ता है और यही ईरान और सिन्ध के बीच की सीमा है। सारा से देवल ८ दिन का रास्ता है और देवल से ६ मील आगे सिन्ध की नदी महराण (महरान नहर अलसिंद) का मुख है।[1]

दसवीं शती का इस्तखरी लिखता है "नगर मन्सूरः एक चौरस मील लम्बा चौड़ा है- दरिया महरान की एक खाड़ी उसे चारो तरफ़ से घेड़े हुए है। इस लिये वह द्वीप जैसा लगता है"।[2]

अलबेरूनी ने इस बात को बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। वह लिखता है "जब से (पंजाब की) पांच नदियां मुलतान से नीचे पंचनद के पास (सिन्धु से) मिलती हैं तो बड़ा नद बन जाता है ...... मुसलमान इस दरिया को, जब वह सिन्ध के नगर अरोड़ से सम्मिलित रूप में बहता है तो दरिया महरान कहते हैं"।[3]

सिन्ध के पारसी विद्वान प्रो० पिथावाला ने अपने एक लेख "Historical Geography of Sind" में कहीं भी महरान का उल्लेख नहीं किया है, जिस की खोज नवीन और निकट की है।[4]

यूनानी लेखक एरियन ने सिन्धू के फट कर दो शाखों का उल्लेख किया है। और वह द्वमुखी कहां थी इस का तो ज्ञान नहीं है क्यों कि नदी के रुख बदलने और समुद्र के पीछे हट जाने से इस समय कुछ भी ठीक तौर से कहना कठिन है तो भी एरियन ने साफ़ लिखा है कि सिन्धू के समुद्र में पड़ने तक भी दोनों (शाखों) का नाम सिन्धू है। :-

'Both preserved the name Indus down to the sea'.

वास्तव में जिसे अलग महरान माना जाता है, जिस का सूखा (dried) पेट इस समय पूर्व में है वह महरान नहीं अपितु पुरानी हाकरो नदी है। जिस में से निकला हुआ 'उभरंदो नारो'

(1) हिन्दुस्तान अरबों की नज़र में (उर्दू) भाग १, पृ० १६ (2) वही, पृ ३६६
(3) Sachau: Alberuni's India, Vol. I, P. 260
(4) Journal Sind Historical Society, Vol. II, Pt. II

अभी मोजूद है। प्रो० पिथावाला ने सिन्धु के अनेक बार प्रवाह बदलने की परेशानियों का वर्णन करके फिर लिखा है "(सिन्ध के) लोगों का दूसरा सहारा हाकरो है, जिस में से 'उभरंदो नारो' निकला है। वह भी पूर्वी सिन्ध में गुम हो गया है। (वही पृ० ८३)

दुर्भाग्य से भारत ही क्या सारे ससार के इतिहास की कोई भी बात पूरे विश्वास के साथ कहनी कठिन है। दत कथाएं तो क्या मूल ग्रन्थ भी बहुधा विश्वसनीय नहीं हैं। जिस कारण हर छोटी छोटी बात के लिए भी विवाद होता है। विवाद क्या वास्तव में शास्त्रार्थ हो जाता है। तो भी इतिहास की प्राय: ऐसी उलझनें हैं जो मज़हबी पागलपन के समान सुलझती ही नहीं। हर दस वर्ष के बाद उस पर वादविवाद करें तो हर बार नया रूप दिखाई देगा। सो यह हाकरो और महराण जैसी साधारण बात भी ऐसी ही है। कुछ उसे महराण और हाकरो मानते हैं तो कुछ घघर और हाकरो। वही बात उसके मूल प्रवाह की भी है। यह भी देखें :-

श्री ओल्डहाम (G.F. Oldham) ने अपने एक लेख "The Sarasvati and the Lost River of The Indian Desert" में बड़ी खोज और युक्तियों के साथ लिखा है कि "इस समय अदृश्य हुई हाकरो को उभरंदो की धारा थी जिस में घघर, वाह, स्वामदाल अथवा सरहिन्द नदियां थीं और पूर्वी धारा में तीन शाखें नंवाल नामी थीं। प्राचीन काल में सतलज हाकरो की पश्चिमी धारा में से बह कर समुद्र में पड़ती थी। परन्तु जब उस ने अपना प्रवाह बदला तो ब्यास से मिलकर सिन्धु में जा मिली। सरस्वती जो उस में गिड़नी थी वह अकेली पड़ गई और रेतीले स्थान में अदृश्य हो गई।

"सरस्वती और हाकरो का सूखना कम वर्षा के कारण नहीं परन्तु सतलज के प्रवाह बदलने के कारण हुआ है।

"सरस्वती और घघर के विषय में इतिहास में कहीं भी इन के पूरी मात्रा में भर कर बहने का कभी उल्लेख नहीं मिलता।

"केवल एक शती पूर्व सतलज ने लुधियाना के कोट (गढ़) के पास से अपना पुराना प्रवाह बदला है, जो वर्तमान से पांच मील दूर है और दस फुट ऊपर है"।[1]

श्री स्टाईन (Sir Aurel Stien) ने भी इसी बात को मानते हुए अपने एक लेख "A Survey of Ancient Sites along the Lost Sarasvati River" में लिखा है कि "हाकरो के सूख जाने का कारण यह है कि प्राचीन काल में सतलज ने अपना प्रवाह बदला है जो पहले घघर से मिलता था... ... प्रमाण हैं कि ऐतिहासिक काल तक भी घघर में फसल के लिये अच्छी मात्रा में पानी होता था"।[2]

(1) Jl. Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland [1893], Pp. 49-76

(2) The Geographical Journal [1942], Vol. XCIX, No. 4, Pp. 173-182

राय बहादुर गौरी शंकर ओझा ने 'टाड राजस्थान' के हिन्दी अनुवाद के भौगोलिक टिप्पण में लिखा है :-

"घघर नदी की एक शाखा का नाम साकड़ा अथवा हाकड़ा था, जो पहले पंजाब से चलकर बीकानेर और जोधपुर राज्यों में से बहती सिन्ध में जाकर सिन्धू में पड़ती थी। परन्तु बहुत समय से उस का प्रवाह बंद हो गया है, जिस के बारे में बहुत बातें प्रचलित हैं। किन्तु उस के बंद होने का कारण यह है कि इस तरफ (राजस्थान) का किनारा ऊंचा होते होते बिलकुल बंद हो गया। अभी तक थोड़ा थोड़ा पानी बीकानेर राज्य के हनुमान गढ़ प्रदेश में आता है, जहां उस से गेहूं आदि की खेती होती है। उसे वहां वाले कग्गर नदी कहते हैं। मारवाड़ में हांकडा के बहने का यह प्रमाण है कि जोधपुर और मालानी के परगनों में बहुत से गांवों की सीमा के अंदर गन्ना पेरने के पथर के कोल्हू पड़े मिलते हैं, जिन के बारे में ऐसा कहा जाता है कि पहले यहां हांकड़ा (हाकरो) नदी बहती थी, जिस के किनारे गन्ने की खेती होती थी, जिसे इन कौल्हूओं में पेर कर गुड़ बनाया जाता था। अगर इस नदी का बहाव यहां न होता तो इन रेतीले भागों में एसे कोल्हू कैसे सम्भव होते!"[1]

श्री कैलाश चन्द्र लिखते हैं "घघर नदी किसी ज़माने में बीकानेर राज्य के उत्तर में बहती सिन्धु में जाकर मिलती थी"। फिर टिप्पण में लिखते हैं "इस समय घघर नदी का नाम प्राचीन सरस्वती और दृषद्वती दोनों के लिये प्रयुक्त होता है।[2]

पांचवी शती के गङ्गधार लेख में उसका नाम गरगरा आया है।

(Corpus Inscriptionum Indicarum, P. 72)

राजस्थान का प्रसिद्ध रंगमहल नगर इसी नदी के किनारे पर था जिस की खुदाई में से सिन्धु-संस्कृति काल के अवशेष मिले हैं। इस के सिवाय हनुमान गढ़ नगर भी घघर नदी के बाएं किनारे पर है। पुरातत्व और जलवायु के आधार पर यह माना गया है कि छठी शती के मध्य में घघर नदी ने जल लेना छोड़ा है।

श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार लिखते हैं "दृषद्वती नदी को आजकल घघर कहा जाता है"।[3] महाभारत में दृषद्वती के उत्तर और सरस्वती के दक्षिण वाले प्रदेश को 'ब्रह्मावृत' कहा गया है तथा उकसी स्वर्ग से तुलना की गई है और यही कुरुक्षेत्र भी है। महाभारत के अनुसार ही सरस्वती अदृष्य होने के पश्चात तीन स्थानों से फिर प्रकट होती है।

श्री बिमल चरण ला के अनुसार पेहूआ (प्राचीन पृथुदिक) के समीप उरनाई के पास सरस्वती के साथ मार्कुण्ड का प्रवाह भी मिलता है और इस मिले जुड़े प्रवाह को भी सरस्वती

(1) टाड-राजस्थान, प्रथम खण्ड, पृ० ३१

(2) Ancient Cities and Towns of Rajasthan, P. 144

(3) वैदिक धर्म, मासिक (पार्डी), अप्रेल, १९६६

कहा जाता है जो अंत में नीचे घघर अथवा घरघर के साथ आकर मिलती है, जिसे सरस्वती का निचला भाग कहा जाता है और इस समय सरस्वती सतलज और यमुना के बीच से बहती है"।[1]

ऊपर के विवरण से भी कुछ संतोषजनक परिणाम नहीं निकलता, फिर भी ये तथ्य निकलते हैं कि "प्राचीन नदी दृषद्वती थी, जिसे आजकल घघर कहा जाता है। उस की एक शाखा हाकरो थी जिसे सतलज से पानी मिलता था तो वह पंजाब से चलकर बीकानेर और जोधपुर राज्यों से बहती हुई सिन्धु में नगरपारकर के पास गिड़ती थी। उभरंदो नारो उस का चिह्न अभी है। फिर जब सतलज का बहाव बदला तब हाकरो को पानी कम हो गया और नदी सूख गई। बाद में हाकरो को घघर भी कहा गया है क्यों कि इस का मूल घघर नदी था"।

किन्तु श्री राइचन्द हरीजन अपनी पुस्तक 'तारीख रेगिस्तान' में लिखता है कि "उस समय सिन्धु नदी की एक शाखा वहां से चलकर नगरपारकर के पास गिड़ती थी जो हाकरो नाम से प्रसिद्ध थी। नदी का यहां से बहना सिद्ध करता है कि थर प्रदेश की भूमि उस समय समतल थी और फिर जब भूकम्प आया तब नदी का प्रवाह भी बदल गया, नगर ग़रक हो गया और कितने मीलों में भूमि नीचे ऊपर हो गई, जिस कारण रेतीले टीले (sand hills) उभड़ आए। अरबी समुद्र यहां से हट कर सूख गया, जिस कारण वर्तमान कच्छ की मरुभूमि प्रकट हो गई।

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय दूसरा

(1) Historical Geography of Ancient India, P. 30

Colonel James Tod, says:-

"The first habit of the Germans, says Tacitus, on rising was ablution which must have been of Eastern origin and not of the cold climate of Germany, as also, the loose flowing robe, the long and braided hair tied in a knot at the top of the head of emblematic of the Brahmins."

(Tod's Rajasthan, Vol. I, P. 63

अध्याय ३

मोहन-जो-दड़ो * Mohen-jo-Daro

इतिहास के निर्माण में प्राचीन स्थानों की खुदाई (Archaeology-पुरातत्व) का बड़ा योग दान है, इतिहास की रंगत ही बदल गई है। किन्तु मज़हबी संकीर्णता ने इन प्राचीन अवशेषों की आयु भी इस संकुचित घेरे में संकीर्ण कर दी है। प्रमाण भले कितने भी किसी प्रकार भी विद्यमान क्यों न हों, परन्तु किसी प्रकार भी मनुष के रङ्गमंच की आयु ६-७ हज़ार वर्ष के भीतर ही सीमित करनी है। क्यों कि जिन्हों ने इतिहास में प्रथम पुरातत्व को अपनाकर प्रस्तुत किया उन का मज़हब सृष्टि की आयु इस सीमा से बाहर करने नहीं देता, इस लिये कि उनका पहला पुरुष हज़्रत आदम को उत्पन्न हुए इतने ही बरस बीते हैं और आदम से ही बाकी मनुष्य उत्पति मानते हैं। इस ईसाई हिसाब के अनुसार आदम से हज़्रत नोह (Noah) तक ११ वशों के २२६२ वर्ष, हज़्रत नोह के पुत्र शेम से हज़्रत इब्राहीम तक के वंशो के १३१० वर्ष कुल ३५७२ वर्ष हुए। इब्राहीम कब हुआ यह निश्चित नहीं। डा० स्पीगल के अनुसार इब्राहीम लगभग १९०० ई० पू० हुआ है अर्थात आज तक ३८७९ वर्ष होते हैं। अन्य विद्वान आदम का समय आज से ७०४३ वर्ष पूर्व मानते हैं। इस हिसाब से इब्राहीम को हुए आज तक ३४७१ वर्ष होते हैं। दोनों का मध्य युग यदि ३६५० वर्ष मान लें तो आदम को हुए आज तक (३५७२+३६५०=) ७२२२ वर्ष होते हैं। यद्यपि ईसाई लेखक सृष्टि उत्पति को ६००० वर्षों के अंदर ही बंद कर देते थे। श्री वेल्स (H.G. Wells) ने ही लिखा है कि "केवल २०• वर्ष पूर्व मनुष उत्पति की आयु ६००० वर्ष गिनी जाती थी। परन्तु अब परदा हटा है तो मनुष अपनी प्राचीन्ता लाखों वर्षों तक हांकता है।[1] और यह सब भी इस लिये स्वीकार किया जाता है क्यों कि ऐसे पुराने अवशेष, प्राचीन कालीन प्राणियों के अस्थिपिञ्जर आदि मिल चुके हैं और इन सब की वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षा की जा चुकी है। नहीं तो वह ज़माना था कि विज्ञान के रहस्य बताने पर ईसाई पादरी और पोप उन लोगों को मृत्यु-दण्ड देते थे। बीमारियों को जिन्न-भूत-प्रेतों का कार्य समझा जाता था। ओरीजन (Origen) ने लिखा है :-

"It is demons which produce famine, unfruitfulness, corrup·ion of air, pestilences, they have concealed in clouds in lower atmosphere and are attracted by the blood and incense which the heathen offer to them as God."

---

(1) The Outline of History [1934], P. 15

डाक्टरों को आदेश थे कि पादरियों की आज्ञा बिना बीमारों को औषधि न दें। और क्योंकि नई दुनिया (अमेरीका) का उल्लेख ईसाई पुस्तकों में नहीं है इस लिये वह देश संसार में हो नहीं सकता, इस लिये कोलम्बस को वहां जाने की आज्ञा नहीं मिल रही थी; गैलेलो नामी विज्ञानी को केवल यह विचार व्यक्त करने पर कि "पृथ्वी गोलाकार है और वह सूर्य के चारों ओर घूमती है" पोप की अध्यक्षता में Inquisitition Court ने दस वर्ष की सज़ा दी और साफ लिखा कि यह सब बाईबल की शिक्षा के विरुद्ध है। दोषारोपण में कहा गया था कि:-

"The first proposition that the sun is the centre and does not revolve around the earth is foolish, absurd, false in theology and heretical, because expressly contrary of the holy scriptures."

दूसरा दोष यह था कि "पृथ्वी केन्द्र नहीं है किन्तु सूर्य के चारों ओर फिरती है" यह भी निरर्थक है, क्यों कि यह बात भी ईसाइयत के विरुद्ध है:

"And the second proposition that the earth is not the centre but revolves around the sun is absurd, false in philosophy and f om a theological point of view at least opposed to the true faith."

इसी कड़ी सज़ा के कारण उस बिचारे की कारागृह में ही मृत्यु हो गई। एक दूसरे विज्ञानी के विरुद्ध भी इस लिये कार्यवाही की गई, क्यों कि उसने भी "पृथ्वी गोल और अन्य लोक लोकांतर भी हैं" कहा था। उसे फेब्रवरी सन् १६०० में जीते जी उस पर तेल छिड़क कर जलाया गया। यूनान के अपने समय की एक दार्शनिक स्त्री हपेश्या को जो अफ़लातून (Plato) और अरिस्तु (Aristotle) के सिद्धान्तों का प्रचार करती थी, बिशप साइरल की आज्ञा से उसे बिलकुल नग्न करके खुली बजार में उसे संगसार किया गया।[1] मार्टिन लूथर की कैसी दुर्दशा की गई वह सब जानते हैं। श्री इंगरसोल (Ingersol) ने इस विषय पर बहुत कुछ और सख्त लिखा है।

और ऐसे अंधकार युग में और इस के थोड़ा पश्चात संसार के इतिहास के ग्रन्थ लिखे गए। तो जिन ईसाई लेखकों की यह विज्ञान विरोधी मजहबी अवस्था थी वे दूसरे मजहब तथा देशों के सच्चाइयों का किस प्रकार गला घोंटते होंगे और ऐतिहासिक तथ्यों को मरोड़ते थे उसका अनुमान किया जा सकता है। सच्चे धर्म का ज्ञान था नहीं, पाखण्ड, अंध श्रद्धा और अज्ञानता का राज्य था। इस दौर में पले पादरी जब कुछ भी लिखने बैठे तो मजहबी ठेकेदारी होने के कारण वे आरम्भिक काल के लेखक भी विद्वान (Scholars) माने जाते थे। जो कुछ कहते थे वह सच्च समझा जाता था। बाईबल में कहीं भी सृष्टि उत्पति का साल संबत नहीं लिखा है,

(1) The History of the Conflict Between Science and Religion

स्वयं ईश्वर (God) के लिये ही ऐसा लिखा हैं कि 'उसने सातवें दिन दुनिया तैयार कर के समाप्त की, तो फिर सन् सवत की बात ही कहां थी। कुरान में से इस सवाल का उत्तर मिलने का तो प्रश्न ही नहीं था क्यों कि वह तो निकट समय का मज़हब था। और इसी काल में ये ईसाई पादरी ईसाई शासकों की छत्रछाया में भिन्न-भिन्न देशों में गये। उन्होंने वहां का इतिहास देखा, प्राचीन स्मारक (यादगार) देखे, खुदाई में उन्हें अनुपम वस्तुएं मिलीं किन्तु उनके पास कोई सन् संवत का मापदण्ड था ही नहीं अर्थात उनके पास गिनने के लिये अंक ही नहीं थे, हज़ार से आगे गिनना ही नहीं आता था तो प्राचीन्ता को क्या समझेंगे ?

अंग्रेज़ी में जो अंक हैं वे रोमन हैं इस लिये उन्हें रोमन फ़िगर्स कहा जाता है, जो पुराने घड़ियाल तथा वाचों आदि पर I, II, III, IIII (IV), V रुप में थे और रोमन शासन के समय इंगलैंड तथा यूरोप में फैले। रोमन लोक अपने अंकों को 'अरेबिक फ़िगर्स' कहते हैं क्यों कि उन्हों ने भी अरबों से सीखा था, इस से पहले वह अंगुलियों पर गिन कर काम चलाते थे जैसे ऊपर I, II, III आदि से स्पष्ट है। किन्तु स्वयं अरब भी अपने अंक को 'हिन्दू अंक' अर्थात 'इल्म हिन्दसा' कहते थे क्यों कि उन्हों ने भी भारत से सब सीखा था। ज़ाहिर है कि अंक विद्या मूलतः भारतीय है। बावजूद इस के संसार के इन पुरानी जातियों के पास हज़ार से अधिक का कोई अंक नहीं था। हज़ार भी संस्कृत सहस्र का बिगड़ा रुप (स का ह तथा ह का ज़ होकर बना) है। इसी प्रकार संस्कृत 'शत' का 'सद' और cent बना है। इस में भी 'शून्य' भारत की विशेष देन है। संस्कृत में लक्ष है परन्तु संसार में इस के लिये कोई शब्द नहीं है। अरब भी भारत से अंक विद्या सीखने के पश्चात भी लाख नहीं कहते थे किन्तु सौ-हज़ार और हज़ार-हज़ार बोल सकते थे क्यों कि उसका प्रयोग उन्हें आता ही नहीं था, न ही आवश्यकता थी। अरब-ईरान के रियाज़ीदान (गणितज्ञ) भारत की ही उपज हैं। अरब विद्वान अलबेरुनी ने ठीक लिखा है कि "मैं ने प्राय: संसार की जातियों और उन के अंकों का अभ्यास किया है, जिन के साथ मेरा वास्ता पड़ा हैं, तो विदित हुआ कि हज़ार से आगे कोई नहीं बढ़ता।" :-

"I have studied the names of the ORDER of the numbers in various languages with all kinds of people with whom I have been in contact, and have found that no nation goes beyond the thousand."[1]

यदि औरों के पास केवल चार अंक (इक्का, दशक, सौ, हजार) हैं तो आर्यों (हिन्दुओं) के पास अठारह हैं और अन्तिम को परार्दह कहा जाता है। परन्तु अलबेरुनी लिखता है कि "हिन्दू एक १९वां अंक भी मानते हैं जिसे 'भूरी' कहा जाता है"। यदि आर्यों के १८ अंक न होते तो आज के विज्ञान की गाड़ी पहियों रहित होती। सो जिन के पास हज़ार के बाद ? का प्रश्न खड़ा था वे

(1) Sachau: Alberuni's India, Vol. I, P. 174

लाखों वर्षों वाली सृष्टि की आयु कहां से लाते ? समझ नहीं पाते तो क्या कहते ? परन्तु समय आया, भारती ज्ञान के साहित्यक प्रकाश से संसार की आंखें खुलीं तो अब लाख (Lac) भी है तो परार्द्ध तक पहुंचने का साहस भी। प्रो० मैक्डोनल ने ठीक लिखा है कि "सायन्स के लिये भी यूरोप भारत का आभारी है। अंक विद्या हिन्दूओं की ईजाद है. जिस ने संसार की उन्नति पर बड़ा प्रभाव डाला है। अरबों को अंक विद्या, अर्थमेटिक तथा अलजब्रा हिन्दू गुरुओं ने सिखाई और उन्हीं से ही पश्चिम के देशों में फैली"। :-

" In science too the debt of Europe to India has been considerable. There is, in the first place the great fact that the Indians invented the numerical figures used all over the world. The influence which the decimal system of reckoning dependent on these figures has had not only on mathemetics but on the progress of civilization in general, can hardly be overestimated. During the eigth and ninth centuries the Indians became the teachers in arithmetic and algebra of the Arabs and through them of the nations of the West Thus, though we call the latter science by an Arabic name, it is a gift we owe to India."

इस प्रकार जब हजार पर अंत (terminus) था, ईसाई विश्वास के अनुसार दुनिया ६००० वर्ष के भीतर जन्मी, निपजी, इस अवस्था को पहुंची तो बाकी दूसरी दुनिया का इतिहास वे इस छः हजार के जेल-चक्र से अलग कैसे करेंगे। यद्यपि हीराडोटस मिस्री लोगों के लिये कहता है कि वे कहते हैं कि "अमेसिस (Amasis) से १७००० वर्ष पूर्व"।[1] परन्तु श्री शा (Robert Shaw) ने आदम से लेकर जोजफ तक २१ वंशों के (प्रत्येक के अलग अलग वर्ष देकर, हिसाव कर के) कुल १०,६०६ वर्ष दिये हैं।[2] जोजफ का जन्म कब भी हुआ परन्तु १७२८ ई० पू० में वह भाइयों की ओर से बेचा गया था।[3] यदि १०-१२ वर्ष वे भी जोड़े जाएं तो कुल १७४० हुए। और वर्तमान के १६८० कुल ३७२० इस में १०६०६ ऊपर के जोड़े जाएं तो कुल १४६२६ हुए। उधर हीराडोटस बहुत प्राचीन प्रमाण १७००० का प्रस्तुत करता है। फिर भी ये पादरी अपने दुराग्रह पर जमे रहे कि नहीं, क्यों कि सृष्टि उत्पति जुल्यन (Julian) सन् ७१० में हुई और हजरत ईसा उस उत्पति के ४००४वें वर्ष में जन्मे,

(1) They say that seventeen thousand years before the reign of Amasis."
(The Histories [Penguin], Book II, P. 120)

(2) Historical Origins and Critiques, book I, P. 47

(3) Lampriere's Classical Dictionary, P. 1

उस में चालू सन् के १९८० वर्ष जोड़े जाएंगे तो कुल ५९८४ वर्ष अर्थात ६००० वर्षों के भीतर। फिर दुनिया में भले लाखों वर्षों के अवशेष मिल जाएं। श्री शा ने तो जल-प्लावन (deluge) से ही पूर्व के वैबीलोन्यन शासकों के युगों के कुल वर्ष १२० सिरी (बराबर ४ लाख ३२ हजार) दिए हैं।

अब जो अकेले इस संख्या ४,३२,००० का संस्कृत साहित्य से मिलान किया जाए तो भी बड़ी उलझन हल हो जाए। क्योंकि वैदिक साहित्य में ही एक युग की अवधि ४,३२,००० वर्ष की है। परन्तु जिस ज़माने में ये ईसाई लेखक, इन ऐतिहासिक युगों का निर्माण कर रहे थे, उस समय अज्ञानता का राज्य फैला हुआ था। बाईबल को समझने वाला न कोई था न अब भी है। उन्हों ने जो सुना, समझा वही किया। इस लिये भले भारती इतिहास अथवा संसार का इतिहास स्वयं अपनी शुद्ध जन्मपत्रीको कितनी भी पुरानी बताए, तो भी ये ईसाई उसे तोड़ मरोड़ कर उसी ६००० के ईसाई घेरे में बंद करते थे। अज्ञानता में अज्ञानता ही पनपती है। वैसे भी प्राचीन जातियों को भी अपने इतिहास का ज्ञान कम रहता था, अपने ही वास्तविक्ताओं को वे कम जानते थे। यह जैसी कि पुश्तैनी बीमारी है। आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी के क्लासीकल आर्कआलाजी के रीडर श्री स्टैन्ले (Stanley Casson) ने दो सुन्दर उदाहरण दिये हैं। उस के अनुसार "प्लूटार्क ने अपनी पुस्तक 'Genius of Socrates' में लिखा है कि किस प्रकार एक समाधि Heliartos जो मध्य ग्रीस में खोली गई, उस में से कुछ बर्तन निकले तथा कांसे (Bronze) पर किसी अज्ञात लिपि में खुदा हुआ एक लेख भी मिला। वहां वालों की समझ में कुछ नहीं आया इस लिये उन्हों ने वह ईजिप्ट के विशेषज्ञों के पास पढ़ने के लिये भेजा। उन्हों ने पढ़ कर उतर लिख भेजा जो उन्हें भी ठीक लगा। परन्तु श्री स्टैन्ले लिखते हैं कि (यद्यपि वह पूरा नहीं समझा गया है) तो भी वह अशुद्ध है। उन के कहे अनुसार वह ट्रोजन युद्ध (यूनान की प्राचीन ऐतिहासिक युद्ध जिसे रामायण से मिलाया गया है) काल का है। जिस में यूनानियों को स्वाध्याय के लिए प्रार्थना की गई है। वास्तव में वह Minoan अथवा Mycenoean समाधि है और वह लेख भी मिनोअन लिपि का है और वह अभी तक भी नहीं पढ़ा जा सकता। इसी प्रकार दूसरा लेख (रोमन काल का) मिला है, जो वहां के स्थानिक रोमन कान्सल (Consul) ने राजा नीरो (Nero) के पास भेज दिया जिस ने फिनीश्यन लिपि का समझ कर विशेषज्ञों के पास भेजा। उस का ऐटिक, ग्रीक और फिर लैटिन में अनुवाद किया गया। इस समय वह केवल लैटिन में विद्यमान है"।[1]

इस लिये इस अज्ञानता वाले दौर में जो कुछ भी कहा गया अथवा लिखा जा रहा था वह सत्य समझा जा रहा था। हमारा इशारा केवल मज़हबी संकीर्णता की ओर है।

(1) Archaeology PP. 8-9

पश्चिमी ईसाई लेखक (जिन्हें इतिहासकार कहा जाता है) प्रथम तो यूनान को अपनी संस्कृति का देवता मानते थे। मिस्र की खुदाइयों से जो बहुमूल्य भण्डार हाथ आए तो फिर उस का महत्व बढ़ गया और उसकी ओर ताकने लगे, इस से पूर्व जैसे कि ईजिप्ट का कोई अस्तित्व ही नहीं था। और उस समय तक उनके लिखे अनुसार भारत गंवारों का देश था, जहां के लोग गीत गाने के सिवाय और कुछ जानते ही नहीं थे। परन्तु यहां आने पर जब उनको संस्कृत साहित्य मिला तो वह अपने देश में ले जाकर उसका अभ्यासकर वर्तमान वैज्ञानिक युग को जन्म दिया। जहाज, हवाई जहाज, वायरलेस, रेडियो आदि जैसे आविष्कार किए, तो ऐसा लाभ प्राप्त करके भी भारत का नाम तक नहीं लिया (अकृतज्ञ बन गये) क्यों कि वे भारत पर शासन करते थे। अवहेलना करना जैसे कि उनका अधिकार था। लेकिन जब यूनान और मिस्र से भी महान सिन्धु-संस्कृति के अवशेष मोहन-जो-दड़ो में मिले तब होंठ खुलने लगे। उस समय वे समझ ही नहीं पाए कि उनके बाप दादों के सांस्कृतिक यूरोपीय केंद्र यूनान (Greece) से भी महान, तो ईजिप्ट से भी उत्तम यह गाय और भेंस चराने वाले गंवार किसी भी काल में ऐसे उन्नत कैसे हो सकते हैं। यह सब होने के पश्चात भी वे मोहन-जो-दड़ो को इस ६००० के तंग दायरे से बाहर नहीं निकाल सके! एक हजार वर्ष तो उन्हों ने रख दिये रिजर्व फ़ण्ड में, बाकी पांच हजार वर्ष मोहन-जो-दरो के लिये दान कर दिये। इस प्रकार मोहन-जो-दरो अथवा पश्चिम एशिया (एशिया माइनर) के दूसरे प्राचीन स्मारक, जिन की आयु का कोई हिसाब ही नहीं है, सब का इसी प्रकार इस Suffocation में दम घुट रहा है।

सबसे प्रथम तो ये सब सिन्धु संस्कृति से सम्बंधित प्राचीन स्मारक और अवशेष, जो पृथ्वी से खोद कर निकाले गए हैं, वे जलप्लावन (Deluge) के पश्चात के हैं। बेबीलोन्या में भी इस बात के लिखित पक्के प्रमाण "गिलगमेश उपाख्यान" के रूप में विद्यमान हैं, और इधर भारत में भी शतपथ ब्राह्मण में विद्यमान है। फिर वर्तमान वैज्ञानिकों ने उन तथा पृथ्वी की आयु कूतने के लिये कुछ नाप निर्धारित किये हैं। इस अनुसार :-

युग (Eras)	काल (Epochs)	आयु (Age)
क्वार्टरनरी (Quarternary)	होलोसीन (Holocene)	१५,००० वर्ष
ज्योलाजी (Geology)	प्लाईस्टसीन (Pliestocene)	१,५००,००० "
टर्शरी (Tertiary)	प्लायोसीन (Pliocene)	१५,०००,००० "
	मायोसीन (Miocene)	३०,०००,००० "
	आलीगोसीन	४०,०००,००० "
	यूसीन	६०,०००,००० "

इस में भी पैलेयोसीन (Palaeocene) युग यूसीन युग का आरंभ है। इन में युग बड़े भाग

(Broad division) और काल छोटे भाग (Simaller division) हैं, सुगमता से आयु नापने के लिये। ये वैदिक ढंग के सत तथा कलि आदि युगों के समान हैं। अब तो रेडियो ऐक्टीविटी (Radio Activity) आदि और सुलझे हुए नापों का आविष्कार भी हो गया है।

फिर मनुष जाति के विभिन्न युगों की आयु के नाप इस प्रकार नियुक्त किये गये हैं:-

अवधि (Period)	संस्कृति (Culture)	आयु (Age)
	लोह युग (Iron Age)	३००० वर्ष पूर्व
होलोसीन	कांस युग (Bronze Age)	५००० " "
(Holocene)	ताम्बा युग (Copper Age)	६००० " "
	नया पथर युग (Neolithic Age)	१०००० " "
	मध्य " " Mesolithic Age)	१५००० " "
प्लायस्टोसीन	पथर युग (Paleolithic)	अढाई से ३ मिल्यन वर्ष पूर्व

इस अन्तिम युग में ये विभाग हैं:-

काल (Period)	मनुष का प्रकार (Human Type)	वर्ष (Years)
ऊपरी (Upper)	क्रोमैग्नन (Cromagnon & Grimaldi Chancelade)	२०,००० वर्ष पूर्व
मध्य (Middle)	नीअन्डर्थल (Neanderthal)	६०,००० से डेढ लाख वर्ष पूर्व
नीचेका (Lower)	हेडलबर्ग (Heddleberg)	४ लाख से डेढ करोड़ वर्ष पूर्व

ये ऊपर के युग खड़े हैं अथवा खोटे, वह तो वैज्ञानिक जानें, जो स्वयं किसी दृढ विश्वास पर नहीं पहुंच सके हैं। जैसे नए नए अवशेष मिलते जा रहे हैं उनका विज्ञान भी नए रास्ते ढूंढ निकालता है। परन्तु एक बात अवश्य हुई है कि मज़हबी दायरे (वृत) को वे बहुत पहले तलाक़ दे चुके हैं। बाईबल में से उन्हें कुछ नहीं मिल सका तो विज्ञान का सहारा लेकर अपना काम संवारने लगे। बाईबल में लिखा वहुत कुछ है, आयु भी निकल सकती है, परन्तु शर्त यह है कि संस्कृत-वैदिक साहित्य को इन सब रहस्यों का केंद्र मान कर खोज की जाए। न केवल यह परन्तु पुराणों के एतिहासिक रहस्यों को भी ओल्ड टेस्टामेन्ट की सहायता से बहुत सुगमता से खोला जा सकेगा। पुराणों में बाद के मिलावटी गपोड़ों को छोड़कर प्राचीन इतिहास के बड़े अमूल्य रहस्य समाए हुए हैं उन पर से पर्दा केवल पश्चिम एशिया के अत्यन्त प्राचीन एतिहासिक

लेखों से मिलाने के पश्चात हट सकता है। तब समझ में आएगा कि अयोध्या का अजादे (Agade) अथवा अकेडियन (Accadian) और वहां का राजा सागर सार्गन (Sargon) कैसे हुआ। वशिस्ठ का सेठ (Seth) चन्द्रमा का चदमोस (Cadmos), गर्ग का जार्ज (George), ब्रह्मा का अब्राहम, आदि अथवा आदिम का आदम (Adam) और रवि का रा (Ra) कैसे हुआ। इतना क्या ऊर्क का आर्क (Ark [of Noah]) तथा परिमण्डल का पिरामिड (Pyramid) भी वहां से ही समझ में आ सकेगा। किन्तु हर अवस्था में वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार करके कुछ सोचा जायगा तो सब मिलेगा। वेद में इतिहास मत ढूंढिये। ज्ञान और विज्ञान ढूंढें, जिसका वह भण्डार है। नहीं तो इसके सिवाय संसार के इतिहास अथवा ज्ञान की कोई भी समस्या सुलझ नहीं सकेगी। जब संसार को वैदिक साहित्य से विज्ञान के सब मूल आविष्कार, शासन प्रबंध, संसार का व्यवहार ही क्या मनुष्यता का पाठ भी जब वैदिक स्रोत से मिल सका तो बाकी यह रहस्य नहें मिलेगा? यूरोप के हवाई जहाज़ से पूर्व क्या यहां हवाई जहाज़ नहीं थे, क्या उसका ढांचा मुम्बई में अभी तक मोजूद नहीं है? कौटिल्य अर्थ शास्त्र पढ़ने के पश्चात तो यूरोप की सबकी सब सैनिक और शासनीय व्यवस्था पूरा नकल दीख रहा है। भारती 'नीलपत्र' पर से 'ब्लूबुक्स' (Blue Books) नहीं बने? ऐसी कौनसी चीज़ है जो संसार को मूल रूप में वेदों से नहीं प्राप्त हुई? कौन सा ऐसा नया आविष्कार है जिसे यूरोप अपना कह सकता है? केवल भारती रूप बदल कर विदेशी रुप धारण कराया गया है! ऐसी कृतघ्नता के बाद यूरोप वाले ऐसा कहने के किस प्रकार अधिकारी हो सकते हैं कि यह सब उनके मज़हब और बुद्धि की करामात है? बदल जाइये! बरसों पहले भारतवासी ही कहते थे कि भाई यूरोप के लोग कमाल करते हैं। एक जीवन-दान नहीं देते बाकी और सब करते हैं। और अब यह पुस्तक सिन्धी में लिख रहा था तो ४० वर्षों के बाद आज की प्लास्टिक सर्जरी देख कर एक ने वही शब्द दुहरा दिये! क्या यह सच नहीं है कि यह प्लास्टिक सर्जरी भी भारत की देन है, संस्कृत साहित्य की कृपा निधि है? अत्यंत निकट समय में भी यह प्लास्टिक सर्जरी यहाँ भारत में व्यवहृत नहीं थी? सन् १६०५ के फबरवरी मास में "King Institute of Preventive Medicine, Madras" का उदघाटन करते मद्रास के राज्यपाल श्री अम्पटिल (Lord Ampthil) ने कहा था "जब यूरोप अभी झंगली अवस्था में था तब भारत डाकटरी कला में पूर्णता प्राप्त कर चुका था। अरबों ने जो कुछ हिन्दू आयुर्वेद शास्त्रों से सीखा वही यूरोप वालों ने हस्तगत किया। भारत सब का आदि गुरु है"। :-

"The people of India should be grateful to Col. King for having pointed out to them that they can lay claim to have been acquainted with the main principles of curative and preventive medicine at a time when,

Europe was still immersed in ignorant savagery. I am not sure whether it is generally known that the science of medicine originated in India, but that is the case, and the science was first exported from India to Arabia and thence to Europe. Down to the close of 17th. century, European physicians learnt the science from the works of Arabic doctors; while the Arabian doctors many centuries before, had obtained their knowldege from the works of great Indian physicians such as Dhanvantri, Charak and Sushrut. It is a strange circumstance in the world's progress that the centre of enlightenment and knowledge should have travelled from East to West, leaving but little permanent trace of its former existence in the East.

"Now we are begining to find out that the Hindu Shastras also contain a Sanitary Code no less correct in principle, and that the great law-giver Manu was one of the greatest sanitaray reformers the world was ever seen."

श्री हंटर (Sir William Hunter) ने लिखा है "हिन्दू डाक्टरी और सर्जरी पूर्णताको पहुंची हुई थी। वे अंगोंको काट सकते थे, रक्त स्राव बंद करते थे, टूटे और फिसले (dislocated) हड्डियोंको ठीक करते थे। सर्जरीमें उन्हे निपुणता प्राप्त थी, टेढ़े नाक और कान आदिको ठीक करते तथा नये बना भी सकते थे, जो ज्ञान यूरोपके डाक्टरोंने अभी अभी हिन्दुओंसे उधार प्राप्त किया है। हिन्दू सर्जन हरप्रकारसे कुशल थे, कैसा भी सूक्ष्म आपरेशन करनेसे नहीं हिचकते थे।"[1]

(1) "The surgery of the Ancient Indian Physicians was bold and sklful. They conducted amputations, asserting the bleeding by pressure, a cup-shaped bondage and boiling oil; practised lithotomy; performed operation in the abdomen and uterus; cured hernia, fistula piles; set broken bones and dislocations; and were dexterous in the extraction of foreign substances from the boday. A special branch of Surgery was devoted to rhinoplasty, or operation for improving deformed ears and noses and forming new ones, a useful operation which European Surgeons have now borrowed. The ancient Indian Surgeons also mention a cure for Neuralgia, analogous to the modern cutting of fifth nerve above the eyebrow. They were expert in midwifery, not shrinking from the most critical operations."

(Indian Gazetteer, India, P. 220)

यूरोपने क्या दिया है? विज्ञानके अति और दुरुपयोगसे मनुष्य जातिकी बरबादी तो आखोंसे देख रहे हैं। बाकी दो उपहार स्वीकार करने पड़ेंगे। प्रथम, सुख आरामकी असीमित सामग्री उत्पन्न करके मनुषको आरामतलब, हरामखोर, व्यभिचारी बनाना; दुसरे सदाचार हीण और भयानक वहशानियतकी ओर अग्रसर होना। इन दो के सिवाय आजकी सभ्यताने कुछ नहीं दिया है, न ही दे सकेगी। बहक कर नहीं किन्तु गम्भीरता पूर्वक सोचेंगे तो बस यही नजर आयगा। आकाशमें उड़कर चंद्रमापर पहुंचकर निरर्थक खोज करनेमें अरबोंकी संख्यामें धन लुटानेसे यदि वह धन संसारके अंग ढांकने और पेट भरने पर खर्च किये जाए तो क्या वह ठीक नहीं होगा? यह चंद्रमाका खोजना और ग्रहोंकी ज्ञान गंगा तो भारती साहित्य में हजारों लाखों वर्षोंसे एक प्रवाहसे बह रही है। यूरोप ने भी वह अमृत जल पी करके अपनेको धन्य किया है तो हमने भी। आज निसंदेह हम भी उससे विमुख हो गये हैं तो दुखी भी हैं। परन्तु यूरोप वैज्ञानिक युग के भीतर डूबा (Submerge) होनेके पश्चात सुखी देखते भी दुखी हैं। हमारी गरीबी और सादगी सदाचारके उच्च शिखर पर खड़ी है। हमारे पास आत्मिक संतोष है और यूरोप आत्मिक, शारीरिक अथवा राजनैतिक रोग पीड़ाके संतापसे व्याकुल है। क्या श्री फ़िलिंच (Lourd Flinch, Paris) के मुख से यह यूरोप के मनकी वेदना व्यक्त नहीं हो रही :-

Oh India ! will you not help us ?
Be patient with us, India !
Remember we are your children,
You are old and learned and wise before we existed.
Our path is steep and thorny
Help us, MOTHER INDIA !
We, your real VEDIC CHILDREN, are turning and gaze to our motherland together.

We can become the great regenerating and moralising of this world.

क्या श्रीमती वीलर (Wheeler Willox) के मुखसे यह यूरोपके मनकी सचाई प्रकट नहीं हो रही ?:-

"We have all heard and read about the ancient religion of India. It is the land of the great VEDA-the most remarkable works containing not only religious ideas for a perfect life but also facts which all the science has since proved true. Electricity, Radium, Electrons, Airshps all seem to be known to the seers who found the VEDAS."

केवल एक सौ वर्षकी बात है कि ईजिप्टकी नील नदीके मूलका किसीको ज्ञान नहीं था कि वह कहांसे निकलती है। इसलिये ही सिन्धुसे नील अथवा नीलसे सिन्धु तथा दोनों को भी एक समझा गया था। परन्तु जैसे हम आगे चलकर दिखायेंगे कि यह रहस्य भी हिन्दू पुराणोंने ही बताया, तब जाकर आफ्रीकामें पुराणोंका 'अमर सरोवर' खोजकर नीलका उद्‌गम ढूंढ़ निकाला गया। लेकिन, क्योंकि मज़हब अपने आपमें विवश हैं, उनमें किसी प्रकारका आत्मिक आकर्षण है ही नहीं, न ही सम्बंध, इसलिये वे प्रायः शासकोंके पराधीन होजाते हैं। शासक अपने स्वार्थ सिद्धिके लिये उन मज़हबोंको उल्लूकी आंखोंके समान प्रयोग करके उनको फैलाते भी हैं और स्वार्थ भी सिद्ध करते हैं, जिससे सचाईकी मौत होजाती है। इसलिये भारत में आये विदेशी लोगोंने अपने मज़हबके सहारे पर धोखा, बेईमानी, कतलाम (संहार) तथा तलवार की तेज़ धारसे केवल मज़हब थोपा, संस्कृतिका तो प्रश्न ही नहीं था। और अपने मज़हबको उन्होंने यहाँ की, थोरे समयके लिये जीती जनता के धर्मको अपनेसे ओछा समझा और इस धोखेमें स्वयं धोखा खागए। किन्तु अंग्रेजी काल में जो इस राजनैतिक चाल तथा उसकी चहल पहलसे अलग रहे उन्होंने भारतके ज्ञान-विज्ञान और संस्कृतिको समझनेका प्रयास किया, समझा-समझाया भी। किन्तु इन विदेश्यों ने षड्‌यंत्र से जो विद्या यहां पढ़ाई उसने भारतीय संस्कृति तथा साहित्य की जड़ोंको खोखला कर दिया। और यह वह नींव है जिसपर संसारके सुख-शान्ति और उन्नतिका आधार है। इसप्रकार उन्होंने भारतसे शत्रुता क्या की मनुष मात्रसे की। भारत तो भटककर किसी प्रकार थम भी जायगा, परन्तु ये वैज्ञानिक मदमें मस्त यूरोपीय जातियां यूनान, मिस्र और रोमके समान भटक कर नष्ट हो जाएगी। उनके घातक अन्वेषण उन्हे खाकर पस्त कर देंगे तब वे फिर भारतकी ओर हाथ फैलाकर देखेंगे।

मनुषके नाते हम और वे सब उस एक ईश्वर की संतान हैं, जिसकी प्रकृति पर हम सबका समान अधिकार है और उसके ज्ञान पर भी। आओ? सब उस प्रभुके ज्ञानकी ओर लोटें, और भविश्यके सुख शान्तिकी राह साफ़ करलें। यह भ्रम भी सब लोग दूर करदें कि वेद हिन्दूओं अथवा आर्यों के हैं। नहीं! वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, ईश्वर हर प्राणीका है, उसका सूर्य चन्द्रमा न हिन्दूका है न गैर हिन्दूका। हरएकका है इसी प्रकार उसका ज्ञान वेद भी हर मनुषके लिये है। बाईबलमें ऐसा नहीं लिखा है कि बाईबल मनुष्य मात्रका है, न ही कुरानमें कहीं ऐसा लिखा है। कुरान में तो वह केवल मका और उसके चारों ओर के लोगों के लिये ही लिखा है तो फिर वह मनुष्य मात्रका कैसे हो सकता है? परन्तु वेद स्पष्ट कहता है कि यह ज्ञान मनुष्य मात्रके लिये ही है। संसारके समझने तथा उसमें रहनेके लिये वह प्रकाश-स्तम्भ हैं। उसे संभालकर रखें, कभी भी आपकी संसारी मशीनरीका जोई पुर्जा बिगड़

जाए तो उसके ठीक ठीक करनेका साधन उसमें ही मिलेगा, और केवल वेद में।

सिन्धु संस्कृति (मोहन-जो-दरो) और नर्मदा संस्कृति!

ऊपर जो युग कौर आयु के मापदण्ड दिये गये हैं, उस अनुसार मोहन-जो-दरोको केवल कांस युग (Bronze Age) का कह सकते हैं। पहले उनको देखें।

श्री अमृत वसंत पण्डया, जिसका उल्लेख हमने पिछले अध्याय में किया है, उन्होंने एक गुजराती लेख "हिन्दुस्तानमां प्रलय पूर्वनी संस्कृति तथा नर्मदा संस्कृतिना सिद्धान्तनी असत्यता" सन् १९३७ में लिखा था, जो हमारे इस आशय की पूर्ति करता है, इस लिये हम उसके कुछ अंश, उनका आभार मानकर, यहां प्रस्तुत करते हैं। (कोष्ठक में हमारे शब्द हैं):-

"बड़ोदामें हुई सातवीं "आल इन्डिया ओरीअन्टल कान्फ्रंस" में श्री करंदीकरने एक निबंध पढ़ा था जिसमें उन्होंने कहा था कि 'अति प्राचीन कालमें सिन्धु (मोहन-जो-दरो) संस्कृतिसे भी पूर्व नर्मदा नदी के तल में एक उत्तम और उन्नत संस्कृति थी। पुराणोंसे मालूम होता है कि वैवस्वत मनुके समय अर्थात २४०० ई० पू०में जलप्रलय (Deluge) हुई जो सारे उत्तर भारतमें फैल गई। मत्स्य पुराणसे ज्ञात होता है कि उस प्रलयसे नर्मदा प्रदेश बच गया था। इसलिये श्री करंदीकरने वहां अपील की कि इस विषयमें खोज होनी चाहिये। नई राय थी, किसीने नहीं सोचा कि भारत जल प्लावन और पश्चिमी तूफान (नोह) में कैसा सम्बंध है। जलप्लावन कहां, कब, कैसे और क्यों हुआ। और यदि हुआ तो उसकी परिधि तथा प्रसार कितना और कहांसे कहांतक था (जिसके लिये कोईभी प्रमाण नहीं है)। सब उत्साह में आगए और "Narmada Valley Research Board" बनगया और करंदीकर उसका मंत्री बना। दो वर्षके परिश्रमके पश्चात फल यह निकला कि पृथ्वीमें से कुछ नहीं निकला। एक भी स्थान ऐसा नहीं मिला जहांसे सिन्धु संस्कृतिसे पूर्व तो क्या समकालीन अवशेष भी कोई नहीं मिला। यदि कुछ मिला तो वह मौर्यकालके पश्चातका। करंदीकरके इस निष्फलता का कारण यह है कि उसने अपना सिद्धांत केवल पुराणोंके आधार पर गढ़ लिया था, पुरातत्वको उसने ध्यानमें ही नहीं लाया। यहां क्रमशः उसका खण्डन करेंगे :-

प्रथम दलील यह थी कि पुराणोंके अनुसार नर्मदा प्रदेश में ऐसी सस्कृति थी जो जलप्लावन (प्रलय) से पूर्व मौजूद थी, और प्रलय में यह प्रदेश डूबा नहीं था।

यह दलील बिलकुल ग़लत है। भारती साहित्यमें प्रलयका जो स्थान है वही पश्चिम एशियाके प्राचीन जातियों सुमेर, हिटाईट, वैबीलोन्या और असीर्याका है। भारत और सुमेर देशकी राजवंशावल्यां प्रलयके पश्चातकी हैं। बाढ़ उतरनेके पश्चातही राज्य स्थापित हुए। इसलिए जिन देशोंमें प्रलय आई उनके प्राचीन नगरोंकी खुदाईमें प्रलयके पूर्वके चिह्न (चिन्ह) अथवा अवशेष मिलने चाहिये। परन्तु उनमें से कोई भी ऐसा प्रमाण प्रलयका नहीं मिला है।

इसलिये सिद्ध हुआ कि प्रलय भारतमें नहीं हुई।

मेसोपोटाम्यासे अभी अभी श्री वुल्ली (Sir Leonard Wooly) को उर (Ur) और प्रो० लैंगडनको किश (Kish) के उत्खननसे ठेठ तलेकी खुदाईसे प्रलयके चिह्न मिले हैं। ठीक वंशावलियोंमें लिखे अनुसार प्रथम राजवंशके अवशेषोंके नीचे प्रलयके स्पष्ट प्रमाण मिले हैं। यह प्रलय ऐसी भयंकर थी कि उसके जलके कारण ८ फुट मिट्टीका मोटा तह जम गया था। उसके नीचे उत्खनन करते प्रलय पूर्वके अवशेष मिले हैं। उनके मिले अवशेषोंसे ज्ञात होता है कि वे यूफ्रेटिस नदी (उर और किश दोनों इस नदीके किनारे बसे हुए थे) के तटवर्ती प्रदेशों में खेतीका कार्य करते थे। उस संस्कृतिके तहके नीचे खुदाई करते उससे पूर्वके किसी भी संस्कृतिके चिह्न नहीं मिले हैं, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि मेसोपोटाम्यामें बसने वाली वही प्रथम (आर्य) जाति थी।

पुरातत्वके सिद्धान्तानुसार सबसे प्रथम मनुष प्रत्थरके औज़ारोंका प्रयोग करता था। इसके पश्चात तांबेके उपकरणोका अन्वेषण हुआ और मनुष पत्थरसे ताम्रयुगमें आया। तांबेके पश्चात कांसेका उपयोग होने लगा। सुमेर, मिस्र, और सिन्धु संस्कृत्यां कांसयुग (Bronze Age) की थीं। (परन्तु) उनके नीचे पत्थर संस्कृतिके अवशेष नहीं मिले हैं। इससे विद्वानोंने यह राय स्थरकी कि यह प्रलयपूर्वकी जाति अपनी संस्कृतिके साथ कहीं बाहरसे आकर यहां बसी होगी (ग़लत बातको सत्य करनेका यह संस्कारित ढ़ंग)। पश्चिम एशिया, ईजिप्ट और ईरानके अनेक नगरोंका सम्पूर्ण रीतिसे ठीक तलेतक उत्खनन होचुका है, परन्तु कहींसे भी ऐसे अवशेष नहीं मिले हैं, जहां 'पत्थर संस्कृति' से 'ताम्र संस्कृति' उत्पन्न हुई हो।

पिछले वर्ष (१९३६) डा० टेरी (D. Terry) की अध्यक्षतामें अमेरीका और इन्गलंडका संशोधनमण्डल भारतमें आदि मानवके अवशेष और यहांकी प्राचीन संस्कृतिकी खोजके लिए यहां आया था। उस मण्डलका संशोधन कार्य सफलता पूर्वक समाप्त हुआ है और वे संग्रहीत सामग्रीकी सूक्षम छानबीनके लिये वापस अपने देशको गए हैं। अपनी खोजके विषयमें डा० टेरीने यहांके समाचार पत्रोंमें कुछ लेख भी लिखे थे। उनकी मानयता थी कि "भारतही सारे संसारमें ऐसा देश है जहाँ मनुष जाति पत्थर युगसे ताम्रयुगमें आई हो"। उत्तर भारतमें कशमीर और उत्तर पंजाब प्रदेशोंमें मनुष जातिने अनेक प्रकारके पत्थर युगोंमें जीवन बिताया था। प्राचीन, मध्य और नया, तीनों प्रकारके पत्थर युगोंकी संस्कृतिसे सम्बंद्धित अवशेष और स्थान मिले हैं। वहांसे जैसे जैसे मनुष्य जाति दक्षिणकी उर्वर भूमिकी ओर फैलने लगी वैसे वैसे पत्थर युगका लोप और ताम्रयुगका विकास होने लगा। इसीलिए कशमीर और उत्तर पंजाबमें पत्थरके चिह्न मिलते हैं तो दक्षिण पंजाब, उतर राजपूताना, सिन्ध और बलोचिस्तानमें ताम्रयुगके चिह्न मिलते हैं। संस्कृतिके परिवर्तनका कारण यह है कि उन निचले प्रदेशोंमें पत्थरका

अभाव होनेके कारण औज़ारोंके लिए मनुषने तांबेका उपयोग खोज निकाला।

प्राचीन कालमें कच्छकी मरुभूमि नहीं थी, उर्वरा भूमि थी, सरस्वती नदी उसमेंसे होकर बहती थी। उस समय सौराष्ट्र सिन्धका ही एक भाग था ...... सरस्वतीके प्राचीन प्रवाहपर सिन्धमें बीजनोत तथा एक दो स्थानोंसे इस प्राचीन ताम्र संस्कृतिकी सामग्री मिली है। राजस्थान और सिन्धके जिस भागमेंसे सरस्वती (हाकड़ा) बहती थी, वहांसे प्राचीन कालमें तांबा मिलता था। आज भी वहां थोड़ा बहुत मिलता है। यही कारण है कि सरस्वतीके किनारे ताम्रयुग की संस्कृति उत्पन्न हुई। इसके साथही पत्थरकी चीजें भी मिली हैं। डा० टेरीके अनुसार सिन्धु प्रदेश पत्थर और ताम्रयुगका संगम स्थान था। सरस्वती संस्कृतिमें से ही सिन्धु संस्कृति उत्पन्न हुई थी। सिन्धमें आमरी नामक स्थानसे उत्खननमें सिन्धु सस्कृतिके चिन्होंके नीचेसे इस सरस्वती संस्कृतिकी सामग्री मिली है। विद्वान इसे सिन्धु संस्कृतिसे पूर्व आमरी संस्कृति (Amri Culture) कहते हैं।

परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि सरस्वती सस्कृतिकी सामग्री उर और किशसे मिली प्रलय पूर्व संस्कृतिकी सामग्रीसे पूर्णतया समानता दर्शाती है। इससे लगता है कि प्रलयसे पूर्व आर्योंका एक बड़ा समूह अपनी इस सरस्वती संस्कृतिके साथ, मेसोपोटाम्यामें बसनेके लिये गया था। सरस्वती तटसे लेकर सिन्ध, बलोचिस्तान, सीस्तान, ईरान और मेसोपोटाम्यातक इस संस्कृतिके अवशेष मिले हैं। इन सब प्रदेशोंमेंसे इस सस्कृतिके जो जो चीज़ें मिली हैं वे सब समान हैं। तांबेके अस्त्र, मिट्टी के बसंतनोंकी बनावट, रंग, उसपर चित्रित आकृतियां इत्यादि सब एक दूसरेसे मिल आते हैं। यह हमारे लिये कम गौरवकी बात नहीं है कि संसारकी इस अतिप्राचीन संस्कृतिकी जन्म भूमि भारत सिद्ध होता है। ईरानके दक्षिण टाईग्रस (दजला) नदीके पूर्वमें जो एलाम (Elam) प्रदेश कहलाता है, बहां सूसा नामक एक अति प्राचीन नगरके उत्खननमें बिलकुल तलेमें इस महान संस्कृतिकी सामग्री प्रचुर मात्रामें मिली है। वहीं इन लोकोंकी लिपिमें लिखे लेख भी मिले हैं। उनकी संस्कृति और लिपिको सुमेर पुरातत्वके विद्वान Proto-Elamite नामसे पुकारते हैं। श्री ओरट नामी एक विद्वानने अपनी एक पुस्तक "Link with Past Ages" में लिखा है कि "ये प्रोटो-एलामाईट लोक संस्कृत भाषा भाषी कृषक (वैश्य) थे"।

यह अब सिद्ध हो चुका है कि मेसोपोटाम्यामें उर और किशकी खुदाईमें प्रलयके चिन्होंके नीचे जिस संस्कृतिकी सामग्री प्राप्त हुई है वह भारतकी सरसवती संस्कृतिके आर्योंकी थी, जो वहां जाकर बसेथे। बादमें यूफ्रेटीज़ नदीमें महाविनाशकारी बाढ़ आई जिसकारण उनलोगोंकी अत्याधिक हानि हुई इसलिये वे लोग मेसोपोटाम्या, एलाम और ईरानको छोड़कर अपनी मातृभूमिमें लौट आए। ईरान, एलाम और मेसोपोटाम्यामें जहांजहां इस सरस्वती संस्कृतिवाले लोगोंकी आबादीके चिह्न मिले हैं वहांवहां बादमें वे लोग वह आबादी छोड़कर कहीं चले जानेके चिह्न मिले हैं। उर और किशके उत्खननसे पूर्व विद्वान यह नहीं समझ सके कि संसारमें सबसे प्राचीन संस्कृतिवाले ये लोग ईरान, एलाम और

मेसोपोटाम्याको छोड़कर अचानक किस कारण और कहीं चलेगये थे। उर और किशसे मिले प्रलय चिन्होंसे अब विद्वान एकमत होकर मानते हैं कि प्रलयके विनाशकारी बाढ़के कारणही ये लोक इस प्रदेशको छोड़कर चलेगये थे। वे लोग भारत लौट आए, उससमय यहां "ब्राह्मण ग्रन्थों" की रचना हो रही थी। इसलिये इस घटनाका ब्योरा 'शतपथ ब्राह्मण' में प्रविष्ट होगया। उससमय आर्यावर्तका राजा वैवस्वत मनु था। और यह घटना मनुके समयमें हुई, उसकी यादको स्थायी रखनेके लिये महाराजा मनुको इस घटनाका नायक बनाया गया। शतपथ ब्राह्मणमें कहीं भी ऐसा नहीं लिखा है कि इस प्रलयका घटनास्थल भारत था। बादमें पुराणकारोंने इस घटनाके ब्योरेको बढ़ाकर भारतसे जोड़ दिया। ये पुराण विक्रमी संवतके पश्चातके लिखे हुए हैं। श्री करंदीकरने केवल पुराणोंपरस ही अपना मन्तव्य व्यक्त किया। इस लिये उसके दलील शास्त्रीय नहीं हैं। उसका कहना है कि समूचा उत्तरभारत प्रलयके बाढ़में ग़रक हो गया था। केवल नर्मदा प्रदेशही बाहर था। यह बात कितनी अस्वभाविक है? पुराण कहते है कि हिमालयपर्वतके शिखर भी प्रलयमें डूब गए थे। प्रलयका जल ५-५ मील ऊपर हिमालयपर्वत शिखरोंपर चढ़ आया था तो नर्मदा प्रदेश कैसे बच गया? भारतीय भूगर्भ (Geology) द्वारा इस बातकी पुष्टि नहीं होती कि उत्तर भारतमें जलकी ऐसी बड़ी बाढ़ कभी आई थी। ऐसी बाढ़के लिये इतना सारा जल तुरत कहांसे आयगा? क्या हिन्दी महासागर उत्तर भारतके ऊपर फैल गया था? (तो भी निर्मदा कैसे बचसकी?) ये बातें पुराण लिखने वालोंके गपोड़े हैं।

प्रलयके चिह्न जब मेसोपोटाम्यामें मिले, तो भारतके विद्वान श्री काशीप्रसाद जायसवालने तुरत यह दलील घड़ली कि "प्रलयकी बाढ़ मेसोपोटाम्यासे राजपूताना तक घिर्ड़ी हुई थी, यही कारण है कि इन दोनों देशोंमें प्रलय कथा प्रचलित है"। परन्तु तथ्य तो यह है कि यह कथा अकेले भारत और मेसोपोटाम्यामें प्रसिद्ध नहीं है। सारे यूरोपके जातियोंमें यह कथा प्रचलित है, पैसफिक समुद्रके आदिवासियोमें इसका प्रचार है। प्राचीन अमेरीकाके माया, अज़टेक, नाहुआ और इन्का लोकोंकी प्रलयकथा, बिलकुल भारत और अमेरीका की कथा के समान है। तो फिर ऐसा क्यों नहीं मान लिया जाय कि प्रलयकी बाढ़ मेसोपोटाम्यासे आरंभकर पूरे यूरोप, भारत, पैसफिक समुद्र और अमेरीकाके ऊपर फैल गई? क्योंकि इन सब देशोंमें प्रलय कथाएं प्रचलित हैं। इस दलील घड़ने से श्री जायसवालको यह भी विचार नहीं आया कि मेसोपोटाम्या और राजपूतानाके मध्यमे बलोचिस्तान और ईरानके सैंकड़ों मील लंबा चौड़ा प्रदेश है, सिजमें अनेक पहाड़ी पंक्तियां हैं। क्या इन सब प्रदेशों और पहाड़ों, उंचे-नीचे मैदानोंको बाढ़के लपेटमें लेती यह जल प्रलय भारत तक आगई थी? और किस कारण राजपूतानामें आकर रुक गई और वहांसे गंगाके मैदान और बंगाल तक क्योंन बढ़ी? सब देशोंमेंसे एक भी देशके भूगर्भ द्वारा ऐसी जल प्रलयके आनेकी अल्पमात्र भी पुष्टि नहीं होती।

जलप्रलय (Deluge=طوفان نوح) सचमुच क्या थी? इसका घटनाकेंद्र कौनसा देश था? इसकी कथा किसप्रकार भारतमें आई? इससे पूर्व किस जातिकी संस्कृति थी? इसका ठीक वर्णन पुरातत्वके आधारपर ऊपर दिया गया है? सच यह है कि नर्मदा प्रदेशमें प्रलयपूर्व किसी प्रकारकी भी कोई संस्कृति नहीं थी, न ही वहां किसी संस्कृतिका जन्म हुआ, न ही भारत जलप्रलयका केंद्र था। फिर यह कैसे माना जाय कि नर्मदा प्रदेश प्रलयसे बच गया था? श्री करंदीकरने इसके लिये दो युक्तियां दी है:- सर जान मार्शलकी पुस्तक "Memoirs of Central India" में लिखा है कि नर्मदा तट स्थित महेश्वरके स्थानपर भूमिस्तरसे ३०-४० फुट नीचे प्राचीन कालीन पकी ईंटें और मिट्टीके बर्तन मिले थे। यह उदाहरण नर्मदा प्रदेशकी अति प्राचीनताको सिद्ध करता है। श्री करंदीकरको ३०-४० फुटकी गहराई बहुत प्राचीन लगती है और इसलिये वह ऐसा मानता है कि इतनी गहराईमेंसे मिले अवशेष अवश्य जलप्रलय पूर्वके होने चाहियें। परन्तु मोहन-जो-दरोका उत्खनन कार्य ४५ फुटकी गहराईतक हुआ है। प्रलय पूर्वकी सरस्वती संस्कृतिके अवशेश उर और किशमें ७५-८० फुटकी गहराईमें मिले है, सूसा (Susa) में ६० फुटकी गहराईमें मिले हैं। फिर ऐसा क्यों माना जायकि महेश्वरसे ३०-४० फुट गहराईमें मिले अवशेष प्रलय पूर्वके होंगे? महेश्वरसे मिली हैं पक्की ईंटें। प्रलय पूर्वकी सरस्वती संस्कृतिके अवशेषोंमें कच्ची ईंटे मिली हैं। उस कालमें पक्की ईंटोंका प्रचलनही नहीं था। मोहन-जो-दरोमें पक्की ईंटोंका प्रचलन था, जहांसे ४५ फुटकी गहराईमेंसे पक्की ईंटें मिली हैं। इस अनुसार महेश्वरके ३०-४० फुटकी गहराईसे मिली चीजें मोहन-जो-दरो के ४५ फुट नीचेसे मिली चीज़ोंसे अधिक प्राचीन नहीं हैं। जल प्रलय संस्कृतिकी तुलनामें नर्मदा संस्कृति तो कलकी बात है।

सरस्वती संस्कृति और मोहन-जो-दरोके अवशेषोंकी तुलना करनेसे ज्ञात होता है कि सिन्धु संस्कृति सरस्वती संस्कृतिकी पुत्री है। लिपियोंके विषयमें भी यही बात है। प्रोटो-एलमाईट और मोहन-जो-दरो लिपिकी तुलनासे स्पष्ट हो जाता है कि सिन्धु लिपि प्रोटो-एलमाईट (सरस्वती) लिपिसे उत्पन्न हुई थी। डा० लेंगडन और हन्टर आदि विद्वानभी कहते हैं कि सिन्धु और प्रोटो-एलमाईट लिपियां एक दूसरेसे बहुत मिलती हैं। यह प्रोटो-एलमाईट कहलाती सरस्वती संस्कृति जल प्रलयकी दुर्घटना को लेकर मेसोपोटाम्यासे आगे नहीं बढ़ सकी। जब यह संस्कृति मोहन-जो-दरोके सुधरे हुए रुपमें बदल गई तब सारे संसारमें उसका फैलाव हुआ। चीनके अति प्राचीन स्थानोंसे जो चीज़े मिली हैं वे मोहन-जो-दरोकी चीज़ोंसे मिलती हैं। मध्य एशियाके 'अनाओ ओसिस' में मोहन-जो-दरो जैसी वस्तुएं मिली हैं। मेसोपोटाम्याकी सुमेर (Sumer) संस्कृति जो प्रलयके पश्चात वहां स्थापित हुई थी वह भी मोहन-जो-दरो जैसी है। उसकी लिपिभी मोहन-जो-दरो जैसी और उससे उत्पन्न हुई मिलती है। तेल-रहिफ और बोगज़कोई (एशिया-माइनर) से जो अतिप्राचीन हिटाईट संस्कृतिकी सामग्री मिली है वह तथा प्राचीन हिटाईट लिपि सिन्धु-संस्कृति

तथा सिन्धुलिपि जैसी है। मध्य यूरोपके डैन्यूब घाटी और थेसलीसे मोहन जो-दरो जैसीही चीजें मिली हैं। ईजिप्टसे सर पेटरीको वहांके प्रथम राजवंशकी वस्तुए मिली हैं तथा एक प्रकारकी प्राचीन लिपि मिली है जो ईजिप्शन (मिस्री) चित्राक्षरों (Heiroglyph) की जननी थी, वे चीजें और लिपि सिन्धु संस्कृति और लिपि की बालिकाए सिद्ध होती हैं। आश्चर्यकी बात है कि पैस्फिक महासागरके नेकर्नी और ईस्टरक्यू (Easter Island) से कुछ वर्ष पूर्व एक आश्चर्यजनक प्राचीन लिपिमें लिखे लेख मिले थे। उस लिपिकी तपास करते ज्ञात हुआकि यह सिन्धुलिपिकी ही पुत्री थी। और डा० लैगडन जैसे विद्वानने कहा है कि "मोहन-जो-दरो संस्कृति वाले लोग प्राचीन कालमें पैस्फिक समुद्रमें यातायात करते थे और यह इन्हीं लोगोंकी लिपि तथा संस्कृति ईस्टरक्यू के खंडहरों में मिली है"। उत्तर अमेरीकाके प्राचीन माया जातिके संस्कृतिके अवशेषोंपर भी सिन्धू संस्कृतिकी छाप देखनेमें आती है। दक्षिण अमेरीकाके पेरु (Peru) की इन्का (Inca) संस्कृति भी इस के आरंभ कालीन रुपमें ईस्टर आइलंड संस्कृति जैसी होने के कारण सिन्धु संस्कृतिकी ही पुत्री सिद्ध होती है। इस प्रकार चारों ओर पृथ्वीपर, प्राचीन संस्कृतियोंके मूलमें सिन्धु संस्कतिका विस्तार दीखता है। इस अवस्थामें ऐसा कैसे माना जा सकेगा कि भारतके नर्मदा प्रदेशमें, सिन्धु संस्कृतमें भिन्न, एक दूसरे प्रकारकी संस्कृति विद्यमान थी? नर्मदा प्रदेशमें बादमें सिन्धु संस्कृति पहुंची हो और उसीके अवशेष महेश्वरमें मिले हों यह सम्भव हो सकता है। इस सिन्धु संस्कृतिका विस्तार पैस्फिक महासागर तक हुआ, यह जानकर आश्चर्य होना है। अमेरीकामें मेक्सीकोके टोल्टेक (Toltec), अज़टेक (Aztec) और माया संस्कृतिपर भी सिन्धु संस्कृतिका प्रभाव स्पष्ट है। फिर दक्षिण अमेरीकामें पेरु के इनका लोगोंके प्राचीन संस्कृतिके जो अवशेष इन्डियाना पर्वतपर मिले हैं, उसकी कला सिन्धु-संस्कृति कलासे बहुत मिलती है। इस प्रकार जो सिन्धु संस्कृति सारे संसारमें फैली वह नर्मदा प्रदेश तक क्यों नहीं फैली ?[1]

यह एक विद्वानका उपरोक्त लेख हमने इस लिये दिया है कि जो कुछ हमें मोहन-जो-दरोके लिये लिखना है यह उसका उपोद्घातके तौर है। कुछ स्थलों पर हमें लेखकसे थोड़ा कुछ विरोध है फिरभी इस विद्वानके रायके लिये हमें श्रद्धा है। इस लिये अब आइये मूल मोहन-जो-दरो विषय पर।

ऊपर जो युग लिखे गए हैं उनका विश्वसनीय होना आवश्यक है, ऐसा नहीं है। जब कभी भी कोई नया अवशेष मिल आता है तो पूरा सिद्धान्त कल्पना मात्र होकर रह जाता है। क्योंकि ये युग केवल अनुमानिक होते हैं। फिरभी वैज्ञानिक ढंग पर विभाजन है इसलिये कुछ थोड़ा किसी तथ्यपर पहुंचनेके लिये एक साधन हैं। बाकी मनुष्य जातिके लिये स्थिरकी हुई आयु के साथ हम सहमत नहीं हैं। संसारमें किसी प्रकारका कोई पत्थरयुग, ताम्रयुग, लोहयुग इत्यादि

(1) 'પ્રસ્થાન' માસિક [ગુજરાતી], મે, ૧૯૩૭.

नहीं है। क्योंकि प्राय: सब स्थानोंपर और सारे संसारमें जो भी प्रागैतिहासिक अवशेष मिले हैं उन सबमें केवल पत्थरके औज़ार मिले है, इसलिये उसे पत्थर (Palaeolithic) युग कहा जाता है। यह सब इसलिये माना जाता है क्यों कि इसके पीछे डार्विनका विकासवाद (Evolution Theory) काम कर रहा है जिसे कोई आधारही नहीं हैं। डार्विन (Darwin) के अनुसार विकासके अन्तिम सीमापर बन्दर और बन-मानुषमें से मनुष्य बना, इस लिये उसे जितनी बुद्धि थी उस अनुसार वह जंगली पशुओंके समान कच्चा मांस खाता था, अग्नि प्रज्वलित करनेका ढंग सीखा तो कच्चा पक्का मांस खाने लगा। भोजनके लिये शिकार करनेके कारण उसे कुछ सख्त औज़ारोंकी आवश्यक्ता हुई तो वे उसने पत्थरसे बनाए इत्यादि। परन्तु यह ध्यान रहे कि संसारमें हर स्थानपर पत्थर उपलब्ध नहीं होता। और बावजूद इसके ऐसे स्थानोंसे भी पत्थर के औज़ार मिले हैं। किन्तु यह कल्पना करने वालोंने यह नहीं सोचा कि इन पत्थरोंको घढ़कर उससे कोई भी उपकरण बनानेके लिये भी दूसरे तथा पत्थरसे भी कठोर (लोहा आदि के) औज़ारोंकी आवश्यक्ता होती है। इसके सिवाय पत्थर आवश्यक्ता अनुसार काटकर चिकना बनाया ही नहीं जा सकता, न ही पत्थरसे पत्थर चिकना हो सकता है, और उसमें भी मांस काटनेके लिये तीखा करना ! क्योंकि पत्थरके जो भी प्राचीन औज़ार मिले हैं वे लगभग सबके सब अच्छी घड़ाई वाले, सुडोल और बहुत चिकने हैं। कुछ तो बहुत तीखे हैं और अब भी काममें लाए जा सकते हैं। फिर यह सूझ-बूझ अथवा विवेक उस आदि मनुषको कहांसे आया कि पत्थरको भी चिकना तथा तीखा करना है और वह भी किससे? जबकि उसे लोहा आदि धातुका ज्ञानही नहीं था! पत्थरसे पत्थर इसप्रकार सुडोल और चिकना हो नहीं सकता। इसके लिये किसी कठोर धातुकी कावश्यक्ता है। परन्तु फिरभी कठिनाई यह होगीकि उस धातुको पिघालकर किसी औज़ारके रुपमें परिवर्तित होना कैसे सम्भव हो सकता है। नहीं की अवस्थामें भी यह प्रश्न होगाकि यह बुद्धि उसे कहांसे आई। वही बुद्धि उसके पूर्वज बन्दर अथवा बनमानुषमें क्यों नहीं आई। आज हज़ारों वर्षों के पश्चात भी उस आदि मानवको आदिवासी क्यों कहा जाता है। वे क्यों नहीं उन्नति करके कोई हवाईजहाज़ बनाकर उस में बम आदि अस्त्र रखकर किसी परदेसी राज्यका नाशकर, शासक बनकर और अधिक उन्नति करते ? विकासवाद यहां आकर क्यों ठप हो गया? नहीं, सब धोखेकी बातें है।

अब और आगे बढ़नेसे पहले हम यह तथ्य बतादें कि कोई भी प्राणी मनुष अथवा पशु आदिवासी अथवा बहुत उन्नत समाज, सिवाय इन चार बातोंके कुछ नहीं जानता, जो वह जानता है "भोजन खाना, नींद करना, किसी दूसरे प्राणी आदिसे डरना, और सन्तानोत्पति। वह चाहे अंधा है, बहरा है, कुछभी, किसप्रकारभी ये चार बातें अवश्य करेगा। केवल ये चार बातें, जिसके सिखानेकी उसे आवश्यक्ता नहीं है। मगर इससे अधिक वह कुछ नहीं करसकता, यहां तक कि

मुखमें ज़बान होते हुए भी बोल नहीं सकता। एकही समय अंधा और बहरा वह तो सिखानेसे भी कुछ नहीं सीख सकता, यद्यपि ऊपर लिखित चारों बाते कर सकता है। किन्तु पशु तो सिखानेसे भी न मनुष की भाषा बोल सकता है न ही और उन्नति कर सकता है। तो फिर आदि बनमानुष किस प्रकार उन्नति कर मनुष्य बनसका? यदि ऐसा है तो जरा इस आदि मानुष और बनमानुष के नर और मादा को आपसमें मिलाकर कोई संतानोत्पति तो करके दिखाए। जब मूल एक है तो एसा सम्भव क्यों नहीं होना चाहिये? नहीं! प्राचीन ऋषियोंका वचन है और सर्वशक्तिमान परमात्माकी उसपर मोहर (Seal) लगी है कि :-

आहार निद्रा भय मैथुनश्च सामान्यमेतत्पशु भिर्नराणाम।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषः धर्मेणहीनः पशुभिसमानः॥

कभी यह भी किसी विज्ञानीने सोचा है कि न केवल मनुष और पशु परन्तु कोई भी समान जाति पशुसे सम्भोग कर संतानोत्पति कर सकता है और करता है! परन्तु कोई भी कुता किसी भी कुतियाके साथ कहीं भी किसी भी स्थानपर सम्भोग करसकता है, किन्तु मनुष चाहे वह संसारके किसी भी भागमें हो, चाहे जंगली अवस्थामें हो, कभी भी, किसी भी स्त्रीके साथ किसी भी स्थानपर ऐसा कर सकता है? आदिवासी अथवा पत्थरयुगके लोगोंमें तो ऐसे पापके लिये आज भी मृत्युदण्ड है। निकोबार द्वीपोंमें तो शोम-पेन (Shom Pen) नामक एक प्राचीन कबीला रहता है। उनमें केवल एक पत्नी रखने और केवल एकबार विवाह करनेका नियम है। स्त्रियोंसे अच्छा व्यवहार करते हैं।[1] यह समान सूझ-बूझ उस पत्थरयुगके मनुषरुपी पशुमें कहांसे आई जो विकास करके पशुसे मनुष बना? इसका सुन्दर उत्तर प्रो० स्टीफन, आस्ट्रेल्या के आदिवास्योंका वर्णन करते कुमारी हिल (Miss Ernestine Hill) की पुस्तक "Great Australian Loneliness" से उद्धृत किया है, जो समझने और गंभीर्ता पूर्वक सोचने जैसा है। :-

"To rank the Australian native as a moron and gorilla man is to do him a very grave injustice. Deceived by a physiogonomy sullen in repose, the protruding chin and the receding forehead of the ape, and those long tenuous fingers that are peculiarly helpless with the tools of our civilisation, the earlier ethnologists were hasty in their judgements. To look closer and with kindlier eyes is to discover that the Aboriginal is redeemed by the delicate sensitive ear to the true musician, quite, quick laughter of a very real sense of humour, left far behind in the race of the ages, marooned on an island continent of sunny climate, he never bothered to build himself

(1) Modern Review, June 1914, P. 657

a house because he did not need it".[1]

इस अवस्थामें ऐसा क्यों न माना जाय कि अति-प्राचीन कालमें मनुष सादा (simple) रहता था, उच्च ज्ञान रखते भी इस संसारी दिखावट कौर भोग-विलासके जीवनसे बहुत दूर था। वह जानते हुए भी विलासी जीवनसे परे रहता था। तो भी वह पत्थरके सिवाय बाकी सब चीज़ोंका उपयोग करता था। किन्तु संसारमें सब घरेलू काममें आनेवाले साधनोंमें केवल पत्थर ही ऐसी वस्तु है जो बच सकती है अथवा हड्डियां, बाकी सबकुछ नष्ट हो जाता है। इसलिये ससारके हर ऐसे प्राचीन स्थानसे हड्डियां मिली हैं अथवा पत्थरके उपकरण। बाकी सब तो जलवायुके प्रभावसे नष्ट हो गए, नामोनिशान भी नहीं मिलता न ही मिल सकता है। इसका सबसे मुख्य कारण यही है कि वे प्राचीन स्थल सादे होते थे। आज जैसी अथवा मोहन-जो-दरो जैसी सुन्दर इमारतें नहीं थीं, कोई इतने बड़े नगर नहीं थे, प्राय: छोटे गांव होते थे। इसलिये वे ऊपरी तहों (Layers) में ही उजड़ी अवस्थामें रहे, जिस कारण उनमें बची कोई भी वस्तु नहीं बच सकी है। क्योंकि बाह्य जलवायु किसे भी सुरक्षित रहने नहीं देता। मोहन-जो-दरो अथवा पश्चिम एशिया के भी केवल बड़े नगर मिले हैं। वह भी इसलिए कि वे निचले भागों (तहों) में वायुके प्रभावसे सुरक्षित थे। क्या इन राज्योंमें कुछ छोटे गांव नहीं होंगे? क्या ऐसे हर राज्यके मुख्य नगरोंके अतिरिक्त कोई छोटे गांव मिले हैं जहांसे ऐसी सब वस्तुएं मिली हों? क्या सारी सिन्धमें केवल मोहन-जो-दरो ही एक ऐसा नगर था जहां ऐसी उन्नत संस्कृति थी, बाकी सारी सिन्धमें सबके सब पत्थरयुगके लोग रहते थे? क्या ऐसा एक भी कोई स्थल संसारके किसी भी भागमें मिला है जिसमें से नीचेसे लेकर पत्थरयुग, मध्य पत्थरयुग, नव पत्थरयुग, ताम्रयुग, कांस युग और लोहयुग एकही समय एकही स्थानसे खुदाईमें मिले हों? नहीं। एक भी नहीं!! कदापि नहीं। क्योंकि ऐसा हो ही नहीं सकता!! क्योंकि एसा सब कभी हुआ ही नहीं है। क्या आजके समयमें हमारे घरोंमें ये पत्थरके उपकरण साधारणतया नहीं हैं? हमारा कोई भी गांव आज नष्ट हो जाय तो हज़ारों वर्षोंके पश्चात वहांसे क्या मिलेगा? केवल पत्थरका खरल, पत्थरकी चक्की, पत्थरका वह टुकड़ा जिसपर मसाला पीसा जाता है, स्नान-गृहमें पत्थरका छोटा स्थल, पत्थरके तोल करनेके बट्टे, जिसका प्रयोग अब भी गांवोंमें होता है। तो क्या हमसब जंगली अथवा पत्थर युगमें शुमार किये जाएगे' इसलिये कि आजके रेडियो, फ्रिज, टी० वी० आदि सब मिट्टीमें मिलकर 'स्वर्गवास' हो ज़ाएंगे? अथवा उसके साथ कुछ लोहे और पत्थरकी चीज़ें मिल जायंगी तो उसे पत्थर और लोहका सम्मिलित युग माना जाएगा? क्या यह विज्ञानके नामपर मनुषको मूर्ख बनानेकी मूर्खता भरी कल्पना नहीं हैं? क्या यह मज़ाक नहीं है कि पत्थरयुग एक स्थानपर, सौ मील दूरीपर ताम्रयुग, और थोड़ी दूरीपर फिर कांसयुग तो वहीं लोह युग!

(1) Modern Review, August 1942

सब ग़लत, सब धोखा है। कारण स्पष्ट है। आजका विज्ञानी प्रायः ईसाई मज़हबका माननेवाला है। ईसाई खुदाकी खुदाई अथवा उसका इल्हाम इतनी योग्यता नहीं रखता कि यह रहस्य बता सके। ईसाई खुदाको स्वयं यह ज्ञान नहीं कि उसने यह सृष्टि क्यों, कैसे और कब रची। और यदि रची तो वह भी उतावलमें अर्थात केवल सात दिनोंमें! सृष्टिमें क्या उत्पन्न किया, उसका प्रयोजन क्या है, लाभ कौंसा अथवा लाभ किस प्रकार लिया जाय इत्यादिका ज्ञान उसे स्वयं नहीं है, क्योंकि उपरोक्त एक भी बातका उत्तर अथवा उल्लेख बाईबलमें नहीं है। किन्तु मज़हबोंको विज्ञान और तर्कसे कोई सम्बंध ही नहीं हैं और विज्ञानके सिवाय धर्म धर्म नहीं अपितु मत-मज़हब है, जबकि विज्ञानसे ही धर्म धर्म कहलाता है। दोनों एक दूसरेके सिवाय रह क्या वास्तवमें चल नहीं सकते। आजका कोई भी वैज्ञानिक, वैज्ञानिक और ईसाई दोनों एकही समयमें होकर नहीं रह सकता। यदि है तो वह अपने मज़हबसे धोखा करता है अथवा तो विज्ञानसे द्रोह करता है। क्योंकि मज़हबी तौर उसके लिये और कुछ रहा ही नहीं है इसलिये रस्मी तोर ईसाई कहलाकर रहसकता है वास्तवमें नहीं। क्योंकि सचा विज्ञान और मज़हब कभी भी साथ साथ नहीं चल सकते। गैलीलोको विज्ञानका सत्य प्रकट करनेके कारणही तो दण्ड मिला था, क्योंकि गैलीलोका सचा मत ईसाई मतके विरुध है। तो आजका वैज्ञानिक वह सत्य स्वीकार करनेके पश्चात ईसाई किस प्रकार रह सकता है? क्या यह गैलीलोकी आत्मा को दुखी करनेके समान नहीं है? क्या यह विज्ञानसे विद्रोहके समान नहीं है? भला जब सूर्य ही नहीं था तो वह फिर चौथे दिन कैसे उत्पन्न हो गया?[1] जब सूर्यही नहीं था तो दिन कहांसे आ गया? इसी प्रकार इस्लामी खुदा जहाज़के सातवें मन्ज़िलके समान सातवें आस्मानपर बैठा बैठा मौज उड़ारहा है, तो फिर वह दुन्याका कारोबार जो पगपगपर सुचारु रूपसे चलाना है, कैसे चला सकेगा? परन्तु क्योंकि वहां विज्ञानके लिये कोई आधारही नहीं हैं, तो भी यह सब माननाही पड़ेगा, नहीं तो तलवारके नीचे झुकनाही पड़ेगा, और कोई छुटकारा नहीं है। इसलिये सचा विज्ञान नहीं है तो सचा धर्म भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार विज्ञानमें मज़हबके लिये कोई स्थान नहीं है। केवल दोनों सचे हैं तो चल सकते हैं नहीं तो मौत! प्रो० हक्सले (Huxley) को इस लिये स्पष्ट लिखना पड़ा कि:-

"True science and true religion are twin sisters and the separation of either from the other is sure to prove the death of both. Science prospers in proportion as it is religious and religion flourishes in exact proportion to the scientific depth and firmness of its basis."

विकासवादका कारण तथा डार्विन (Darwin) जैसे योग्य वैज्ञानिकका खुदा (God) से विमुख होनेका कारण भी ईसाई खुदाका अज्ञानी रूप है। इसीलिये आजके बुद्धिजीवी ईसाई अपने

(1) Bible, Genesis, 1-19

मज़हबको स्वयंके लिये नहीं किन्तु केवल निर्यात (Export) के योग्य समझते हैं। धनसे उसे दूसरे माल सामानके समान निर्यात करके शासनको दृढ करो, बस? घरमें केवल इसप्रकार मानना चाहिये जिसप्रकार मैकाले ने भारतके हिन्दुओंके लिये सोचा था।

सो क्योंकि आजका वैज्ञानिक सच्चे ज्ञान-धर्मसे अनभिज्ञ है, उसका मज़हब उसका मार्ग दर्शन नहीं करता, वह सृष्टिके यथार्थ ज्ञानको भी नहीं जानता, उसे मालूम नहीं कि सृष्टि किसने, कैसे, कब और क्यों उत्पन्न की। यदि की तो उसके व्यवहारका ज्ञान कहां? मज़हबके पास इस सबका कोई उतर नहीं है। धर्म केवल परमात्माका होता है। इसलिये विज्ञानी विज्ञानके इस महान पदपर पहुंचनेके पश्चात भी सचा ईश्वर और ज्ञान न पाकर अपना खुदा (भगवान) गढ़ (Create) कर, अपनी इछानुसार उनसब प्रश्नोंका उतर देना चाहता है और यही उसका इल्हाम (الہام) भी है। और ये उतर और आजके वाद तथा सिद्धान्त (Theories) हैं और ये मनुष्यके गढ़े हुए होनेके कारण और उन सब वादोंकी नींव ईश्वरीय ज्ञान पर आधारित न होनेके कारण परिवर्तनके भी आश्रित हैं। कोई भी विज्ञानी अपने सिद्धांत अर्थात आविष्कार अथवा कल्पनापर बहुत देरतक टिक नहीं सकता। आगे चलकर वह स्वयं उसे बदल देगा अथवा तो और कोई उससे अनोखी सूझबूझ वाला उसे बदल क्या बिलकुल निरर्थक और रद्द कर देगा। इसप्रकार बनने बिगड़ने वाले आजके विज्ञानिक वाद हैं, जिनसे कभी कभी सचा लाभ लिया जा सकता है।

सो, पत्थरयुगका वर्णन चल रहा था। मोहन-जो-दरोसे कुछ बड़े भारी गोलाकार पत्थर मिले हैं, जिनके लिए सर जान मार्शलने लिखा है कि ये पूजाके पात्र हैं अथवा गदाके मुटठे। फिर स्वयं अपनी बातका खण्डन करता है क्योंकि उसीके लिखे अनुसार उस हर एक पत्थरको उठानेके लिये ४-५ लोगोंकी आवश्यक्ता है।[1] घर संख्या ५ की खुदाईसे एक स्थानपर ऐसे पत्थरोंका ढेर मिला है, जो १५के लगभग हैं।[2] वास्तवमें ये लंगर हैं जो नावों तथा जहाज़ोंको किनारे आदिपर खड़े करनेके लिये प्रयोगमें आते थे। और विचित्र बात तो यह है कि इसी प्रकारके पत्थर पैस्फिक समुद्र के याप (Yap) द्वीपोंके निवासियोंके पास भी हैं। वे इससमय उनको प्रयोगमें नहीं लाते किन्तु उन्हे अपनी संपति समझते हैं। उनमेंसे कुछका व्यास (diameter) दो फुट है शेषका ८ से १० फुट है।[3] और जहां तक हमें स्मरण है ऐसे गोलाकर पत्थर आस्ट्रेल्याके आदिवासियोंके पास भी हैं। अबतो कच्छ (भारत) में भी मिले हैं। अब यह पत्थरयुग है कि पहाड़युग? सिन्धमें पत्थरकी ऐसी खानें (Quarries) तो नहीं थी और न ही मोहन-जो-दरोके समीप ऐसा कोई पहाड़ था। तो फिर यह पत्थरयुगका ऐसा माल वहां कहांसे आया? इससे यह स्पष्ट नहीं कि ये

(1) Archaeological Survey Report, 1924-25, P. 61, and plate XXVI

(2) Ibid, 1926-27, Plate XIII

(3) National Geographic Magazine, December 1952, P. 135

सब बातें सब स्थानोंपर समान हैं। श्री जान मार्शलने दूसरे स्थलपर लिखा है कि "यह स्मरण रहे कि ये (मोहन-जो-दरोके) लोग अभी पत्थरयुगसे परिवर्तन वाले दौरमें थे। क्योंकि वे प्रतिदिनके प्रयोगके लिये पत्थरके चाकू, छेनी (,~ʲ,-scraper) का प्रयोग करते थे जो सैंकड़ोंकी संख्यामें घरोंसे मिले हैं। परन्तु बावजूद इसके वे तांबा, सोना, चांदी, जस्ता तथा पारे (Mercury) का भी अच्छा ज्ञान रखते थे और उस सबका प्रयोग करते थे।[1]

सोना, चांदी और पारेका प्रयोग करनेवाले भी पत्थरयुगके जंगली हुए, जिनकी कलासे कोई आजका विज्ञान भी मुकाबला नहीं करसकता तो फिर सुधरा हुआ और नया क्या होता है, समझमें नहीं आता। इसलिये जहां पत्थरयुग, ताम्रयुग, लोहयुग (लोहा तो मुर्चा [Rust] लगानेसे नष्ट हो गया) सोना, पारा सब विद्यमान हैं उस देश अथवा राज्यकी आयु बस, केवल पांच हज़ार वर्ष? क्योंकि बाईबलके अनुसार छः हज़ारसे अधिक आगे बढ़ना ही नहीं है, इस लिये? सो, औरोंका खुदा भले कितने भी सीमित ज्ञानवाला हो लेकिन हमारा भगवान सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापिक और अपार (लामहदूद ...) ज्ञानका स्वामी है, जो संसारके प्रत्येक प्राणीका सबका मालिक (स्वामी) है, उसका ज्ञान वेद हमें सब बता रहा है। उसकी व्याख्या करनेवाले ऋषि मुनि सब सुना गए हैं कि मनुष केवल मनुष रूपमें ही सृष्टिके आदिमें उतपन्न हुआ था, वहीं उसे इश्वरीय ज्ञान वेद भी मिला, वहींसे वह संसारमें फैला। सृष्टि उत्पति कब, कहां कैसे और क्यों उत्पन्न की यह ज्ञान भी वेदमें विद्यमान है। इसलिये मनुषको उत्पन्न हुए लाखों वर्ष व्यतीत होगए, उस आदि मनुष्यसे बिछड़ा मनुष जहां भी होगा, जिस परिस्थितिमें होगा उसमें उसके मूल संसकारोंकी छटा अवश्य विद्यमान होगी, और उसका पालन करता होगा।

आस्ट्रेलयाके आदिवासियोंमें "स्वर्ग-नर्क जैसा कोई विचारही नहीं है। उनका विश्वास है कि मृतककी आत्मा वापस आत्माओंके स्थानमें जाती है और वहां ठहरती है, जबतक उसका पुनर्जन्मका समय आजाए और वह पुनर्जन्म किसी मनुष, पशु अथवा वनस्पतिमें ही हो सकता है"। क्या यह प्राचीन शुद्ध वैदिक सिद्धांतका थोड़ा बदला हुआ रूप नहीं है? संसारमें किसी प्राचीन दर्शन (Philosopy) में ऐसा उतम विचार है? और प्रो० स्टीफनके शब्दोंमें "One wonders if this is another link in the Australian aboriginies' connection with India."

(1) "These People were still, be it remembered, in the transition stage between the stone and copper ages. For everyday purposes they were using stone knives or scrapers of the crudest types, hundreds of which have been found in their houses. But they were familiar, neverthless, with working of copper, gold, silver and lead and probably of mercury also."
(Archaeological Survey Report, 1924-25 PP. 61-2)

श्री स्टीफन आगे लिखता है "उन आदिवासियोंमें बालकके प्रति विशेष प्रेम होता है। बालकके छोटेसे बड़े होनेतक उसके संस्कार होते रहते हैं। परन्तु जैसेही उसका निरधारित समय आता है, तो उस समयसे उसे स्त्रियोंसे दूर अथवा परिवारसे भी अलग रखा जाता है। वहां उसे दल (कबीले) के विशेष शब्दों और संकेतोंसे शिक्षा दीजाती है। उसे सिखाया जाता है कि कौनसी लड़कियों में से विवाह कर सकता है और किनसे नहीं। इस शिक्षाकी अवधिमें उसके खानेपीने पर कड़ा प्रतिबंध रहता है। एक समय आनेपर उसका ऊपरका एक दांत निकाला जाता है (एक के स्थानपर संस्कारका दूसरा ढंग) और फिर एक और संस्कार किया जाता है। इसके पश्चात उसे पूर्ण पुरुष घोषित करके इस आशयके कबीलेके कुछ चिह्न उसके शरीरपर अंकित किये जाते हैं। इस दौरान एक और विशेष क्रिया की जाती है और वह बालक (ब्रह्मचारी) वचन देता है कि "न अशुभ बोलूंगा, नहीं बड़ोंका अनादर करूंगा और न ही अवकाशके समयमें बकवास करता रहूंगा"। एकवार वह युवक इसप्रकार तैयार हो गया तो फिर दल (कबीले) के हर कार्यमें भाग लेने लगता है।[1]

क्या यह वर्णन आर्योंके यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्य और गुरुकुल शिक्षा जैसे संस्कार नहीं हैं? यह बात हमारी उपरोक्त बातकी पुष्टि नहीं करती कि संसारके हर मनुषका मूल एक है? और ये संस्कार हैं जो आर्योंसे भी पूर्वके आदिवासियोंमें विद्यमान हैं, ऐसा? पितासे पहले पुत्रका जन्म हो गया? इसलिये तो कहते हैं न कि इस विषयमें विज्ञानका प्रत्येक निर्णय ग़लत और निराधार है, तथा वाद (Ism) सब धोखा हैं। श्री स्टीफन दूसरे स्थानपर इन आदिवासियोंकी बुद्धिमताका वर्णन करते लिखते हैं कि "उनके भाषाकी अवनतिकी अवस्थाको देखकर ऐसा नहीं समझना चाहिये कि उनकी दिमाग़ी शक्ति क्षीण है। डा० वार्नर कहते हैं कि मेरे विचारमें आदिवासी पूर्णतया ऐसा ही बुद्धिमान है जैसा एक सफेद यूरोपीय (White-Man)। इसी प्रकार दूसरे विशेषज्ञ प्रो• पोर्टीअस तथा डा० डुगइड (Duguid) के भी उनकी बुद्धमताके विषयमें एसेही विचार हैं"।

डा० रफेल (Rafael Karsten) जो इस विषयका विशेषज्ञ है उसने लिखा है कि "विकासवादका आधार ठीक नहीं है। विकास (Evolution) और आदि (Primitive) शब्दों का सावधानीसे प्रयोग करना चाहिये। मैं पहलेही संकेत कर चुका हूं कि 'पिछड़ी' और 'आदिम जाति' का भेद-विभाग करना ठीक नहीं है। मैं और यह जोड़देता हूं कि जबकि फ्यूज्यन (Fuegians) लोगों की भाषाको डार्विनने 'अर्ध सभ्यों' की भाषाके समान निरर्थक बताया था, तब अंग्रेज पादरी टामस ब्रिजसने कुछ ही वर्ष पश्चात इसी भाषामें ३२००० शब्दोंका संग्रह किया था" :-

"I have already pointed out that this opinion must be considered

(1) Modern Review, August 1942

erroneous. I may add that, whereas their language, for instance, was regarded by Darwin as half-animal-like and not even as articulate, the English missionary Thomas Bridges, a few decades latter, noted down in this same language a vocabulary of no less than 32,000 words."[1]

सो जब आदि मनुष्य मूल भूमिपर संख्यामें बढ़ गया तो वह संसारके भिन्न-भिन्न स्थानोंपर फैलने लगा। क्यों नहीं वह पृथ्वीपर फैलनेके लिये समुद्र यात्रा करते, भटककर किसी प्रतिकूल स्थानोंपर जाकर पड़ा होगा परन्तु उसके पास आदि ज्ञान है तो वह पत्थर, तांबा, और लोहा चाहे कुछ भी, सबका पूरी तरह उपयोग कर सकता है। वह जानता है कि यदि आग जलाने के लिये कोई साधन न हो तो लकड़ीकी रगड़से आग उत्पन्न की जा सकती है। आदि मूल रूपमें उसे विज्ञानका ज्ञान तो था ही, कोई नई खोज उसने नहीं की। शुद्ध सात्विक भोजन करना है, यदि मजबूरी है. आप्तकाल है तो फिर जीवन निर्वाहके लिये कुछ भी खाया जा सकता है। कोई ७-८ वर्ष पूर्व फिलिपाईन (Philippine) द्वीप समूहमें एक आदिमकालीन जनसमूह जिसे पत्थरयुगका कहा जाता है (किन्तु है उससे भी प्राचीन) अर्थात "Stone Age Caveman of Madanao" देखा गया है। जिसके पूरे समूह (कबीले) में केवल २४ सभ्य हैं, जिन्होंने न कभी किसी मनुषकी शक्ल देखी थी न ही किसीने उनको कभी देखा था। अचानक ये प्रकाशमें आए हैं। उनका एक ऐतिहासिक वाक्य है कि :-

"Our ancestors told us never to leave this place of ours. They told us the God of our people would come if we remained here."

कैसी व्याकुलताके शब्द हैं ? हजारों वर्षोंसे यहां भटकते आकर रहे, उनसे सबकुछ भूल गया है। कहांसे आए ये मनुष? यदि ये बनमानुषसे मानुष बने तो उनके ये शब्द किस अर्थ के? स्पष्ट नहीं है कि यह उनके परमपरागत बड़ोंका आदेश है, जब वे मूल स्थान भारतसे समुद्र यात्रामें भटक कर यहां आकर पहुंचे होंगे? बड़ोंने किसी प्रकार जीविकाकी तलाशमें जाते समय अपने छोटोंको यह आदेश दिया होगा कि यह स्थान नहीं छोड़ना। क्या मालूम बादमें वे स्वयं किसी मुसीबतका शिकार बनगए होंगे। इस समय ये एक जंगलमें रहते हैं. गुप्त अगोंको ढांकते हैं बाकी निपुट नंगे हैं। उनका एक हथियार पत्थरका कुछ गोलाकार टुकड़ा है जिसे वे बांसके डंडे पर पेड़के किसी रेशोंसे बांधते हैं। इसीसे वे कुल्हाड़ीका काम लेते हैं, जिससे जंगली फल आदि काटकर खाते हैं और यही इनका भोजन है। आग जलानेका विचित्र ढंग भी वही पत्थरयुग वाला है। परन्त आश्चर्य तो यह है कि जिनको पत्थरयुग (Stone Age) का कहा जाता है उनकी शक्ल सूरत में जंगलीपनकी छाया भी नहीं है। कुछ स्थानिक प्रभावको छोड़कर वे आज

(1) The Origin of Religion [1935], P. 14

भी भारतवासी लगते हैं जैसा हमने उनको निकटके कैमेरासे देखा है। सुन्दर रंग, सुडोल रूप है।[1] यदि ये पत्थरयुगके होकर भी बिना मास खाए अर्थात निरामिष रह सकते हैं और अपना सीमित संसार न मालूम कितने हज़ार वर्षोंसे चला सकते हैं (क्यों कि न मालूम कोनसे युगमें वे समुद्रकी लहरोंमें बहते भटकते किनारे पहुंचकर इसप्रकार बस सके हैं) तो जिन पत्थरयुगकी खोपड़ियोंके आधार पर उन्हे बनमानुष जैसा पशु होनेकी कल्पना कीगई है, वह सब झूठ और धोखा नहीं है? कौनसा भेद है मोहन-जो-दरो निवासियोंमें, जिनको मनुष होकर रहनेके सब साधन उपलब्ध थे और ये भी हैं उन्हींके सगे सम्बंधी जो व्यापार आदिके लिये निकले तो भटक गए, और उनको केवल वे सुख साधन उपलब्ध नहीं हैं? हज़ारों वर्षोंके पश्चात मोहन-जो-दरो आदिमें वे मरी हुई अवस्थामें मिले हैं तो ये जीवित रूपमें। ज़रा कल्पना तो कीजिये! मनुष्य जाति एक, केवल एक ही है। जलवायु और चारों ओरके वातावरणका उनके शरीर तथा स्वभावपर प्रभाव होता है।

डा० लीके (Louis S.B. Leakey) जिसका हमने ऊपरभी उल्लेख किया है वह अपनी पत्नी और पुत्रके साथ अपना जीवन इस प्राचीन मनुषकी खोजमें व्यतीत किया है। हाल ही में उनको एक खोपड़ी सन् १९७२ में मिली है, वह भी अफ्रीकामें, जहां आदि पत्थरयुग अथवा किसी भी युगके मनुषकी कल्पना मुश्किलसे की जाती है और उस खोपड़ीकी आयु २.६ मिल्यन वर्ष पुरानी आंकी गई है।[2] इसके पश्चात इसी पत्रिकामें सन् १९७१ में उनको एथोप्यामें भी मनुश्यकी खोपड़ी मिली जिसे वे इससे भी प्राचीन मानते हैं। तो फिर मोहन-जो-दरोकी आयु (Age) इतनी कम क्यों? जब कि दोनों लगभग एक निकट युगके हैं। यदि मोह-जो-दरो (उतर पश्चिम भारत) में कांस युगका मनुष था तो फिर सारे भारतमें जहांका जलवायु भिन्न भिन्न है इसीप्रकारके अवशेष मिले हैं और इधर पश्चिम एशिया में ठेठ यूरोपीय सीमा पर्यंत और पूर्वमें पैस्फिक महासागर तक जहां ईस्टर आइलण्डमें मोहन-जो-दरो लिपिमें लेख मिले हैं, वहां कौनसे युगके लोग रहते थे जो मोहन-जो-दरो युगके हो गए? अभी अभी समाचार मिला हैं कि राजस्थानमें कोटड़ी नदीके तटपर पत्थरयुगके अवशेष मिले हैं जो एक लाख वर्ष प्राचीन हैं। अब यह एक लाखका पत्थरयुग कैसा? फिर तो मोहन-जो-दरोकी आयु ७५,००० वर्ष होनी चाहिये! ईस्टर आइलण्डके पत्थरके विशालकाय बुत पत्थरयुगके हैं तो गुंदसट्रप (Gundesirup-जर्मनी) से मिले मोहन-जो-दरोके समान चित्र वाले लोग कौनसे युगके थे? लेकिन सच तो यह है कि संसारके दूर दूर भागोंमें जहां भी ऐसे प्राणी, अज्ञातयुगके लोग अथवा अवशेष मिलते हैं वे सब प्रायः भारतवासी हैं, जो हज़ारों वर्ष पूर्व नावों अथवा ग़ोराबों (जहाज़) में सवार होकर नये प्रदेश बसानेके लिये समुद्रके छातियोंको चीड़ते अज्ञात

(1) National Geographic Magazine: August 1972, P. 219

(2) National Geographic Magazine, January 1973, P. 143

मंजिलकी ओर जारहे थे। कुछ सफल होगये और बस गये और कुछ सफल होकर लौट आए। अन्य जो रास्तेमें भयंकर तूफान अथवा समुद्री लहरोंमें बहकर भटक गये, नावें तथा जहाज़ टूट गये, उनके पाटोंपर चढ़कर अथवा अनजानेमें अनजान स्थानोंपर जा निकले और प्रतिकूल वातावरणमें रहकर शताब्दियोंके पश्चात जलवायूके कारण रूपरंग बदला, भाषा बिगड़ी। जीवन निर्वाह कठिन तो ज्ञान भी गुम। जीवनके संस्कार थे उनपर चलते रहे। इस प्रकार ऐसी परिस्थितियोंमें सबकुछ भूल गये। स्वयं उन्हे भी ज्ञान नहीं रहा कि वे मूलतः कौन हैं, कहांसे आए, कब आए, कैसे और क्यों आए। सबकुछ 'न जाने क्या' हो गया। निकोबार द्वीपोंके आदिवासियोंको अपने विषयमें अब यह ज्ञान है कि "कोई पुरुष, न जाने किस देशसे एक तख्तेपर बहता हुआ यहां आया, उसके साथ एक कुतिया थी। कुछ समयके पश्चात उसने उस कुतियासे लड़का उत्पन्न किया। वह लड़का जब बड़ा हुआ तो उसने नारियलके पेड़के पत्तोंसे बने कपड़ेसे उस कुतिया को छिपा दिया। बापको मारकर स्वयं उस कुतियाको अपनी पत्नी बनाकर बैठ गया। उसमें से ही ये सब लोग उत्पन्न हुए हैं"।[1]

अब ऐसी परिस्थितिमें ऐसे लोगोंको कौनसे युगमें रखा जाएगा? यह तो एक साधारण उदाहरण है कि किसप्रकार समुद्री यात्रामें बह और भटककर कौन कहां जाकर पहुंचा। हज़ारों वर्षोंके बाद वह भी मशीनी युगमें सुगम साधनोंसे पहुंचनेके कारण यह सब खोज सम्भव हो सकी है। कैप्टेन जेम्स कुक, जिसे पैस्फिक महासागरका कोलम्बस कहा जाता है, ने एक टापू पर ओमई (Omai) कबीलेके तीन जन स्थान्य आदिमवास्योंमें देखे। उनसे पूछनेपर ज्ञात हुआ कि ये ताहिती (Tahiti) द्वीपके हैं और सब बीस जन साथमें निकलकर दूसरे द्वीपको जा रहे थे तो ६०० मील बह और भटककर मंगाइया (Mangaia) के बदले यहां पहुंच गये।"[2]

इसीप्रकार आस्ट्रेल्याके तिवि (Tiwi) टापूपर बसे आदिवासियोंकी तपास करते डा॰ कार्लटन (Dr. Carleton S. Corn) को (जिसने उनकी पूरी जानकारी प्राप्त करनेके लिये वहां दस दिन बिताए थे) उनके भोजन प्राप्ति तथा शिकार आदिके ढंगसे यह अनुमान किया है कि ये सब लोग ५० हज़ार वर्ष प्राचीन हैं ![3] अब ये कौनसे युगके और वो भी जीवित लोग हैं ?

अब ऐसे लोगोंके पास क्या होगा, कैसे साधन होंगे जो पत्थरयुगसे लोहयुगके बनकर दिखाएं? विवश थे। ऐसे प्राचीन भटके हुए भारतवासियों (अब आदिमवासियों) के पास जब कोई साधन नहीं था तो आग जलानेके लिये पेड़ किसप्रकार काटेंगे, खेतीके लिये औज़ार कहांसे लाएं, भोजन पकानेके लिए बर्तन कहांसे आएंगे, पहिननेके लिये वस्त्रोंका प्रबंध कैसे होगा ? कुछ भी तो नहीं था, हरेक बात प्रश्न था। मूल उन्नत संस्कृतिके स्वामी थे, समझते जानते सब थे, परन्तु

(1) Modern Review, June 1914, P. 658
(2) National Geographic Magazine, January 1927
(3) Ibid, March 1956, P. 419

कुछ करनेसे लाचार थे। पत्थरोंके औज़ार बनाए। लोहा आदि कोई धातु हो भी तो उसे पिघलाने, नरम करने, रूप परिवर्तन करने आदिके लिये साधन कहां? बस! ऐसेही संसारके अत्यंत सभ्य लोग, प्रतिकूल परिस्थितिमें जंगली भी बन गए (जंगली इसलिये कहलाए क्योंकि उन्होंने इन विदेशी यूरोप्यन जातियोंकी अपनेमें उपस्थितिका विरोध किया, उनको मारा, इसलिए) तो नजाने क्या बनगए। आज भी पालीनीश्याके समोअन (Samoan) लोगोंके वयोवृद्ध तो देखें, सहसा उतर प्रदेशके वयोवृद्ध याद आजाएंगे। उनकी सुन्दर लड़कियांतो देखो! ज़रा हवाई (Hawai) द्वीप समूहकी अति सुन्दर और सुडोल सुन्दरियां तो देखो! क्या ये सब जंगली युगके लोग हैं? कमाल तो यह है कि समोअन लोगोंका मुख्या सिरपर जो ताज रखता है उसके ऊपर तीन लम्बी लकड़ियां इसी ढंगसे रखता है जिस प्रकार मोहन-जो-दरोमें एक योगी के सिर पर हैं। बिलकुल ताज़ा आदिवासी देखें। अभी समाचार पत्रोंसे मालूम हुआकि लिथून्या (Lithunia) का एक युगल (पति-पत्नी) राजनैतिक डरसे सिडनी (Sidney) नगरके निकटमें एक गुफामें जाकर छिपे। और निरंतर २८ वर्षं तक इसीप्रकार छिपे रहे। भोजनके लिये जंगलके फल और अंग ढाकनेके लिये फटे चिथड़े वह भी केवल गुप्तांगोंके ढाकनेके लिये। उनमें से पुरुष श्री स्टेपन (Stepan Pietroszys) इससमय जीवत है, आयु ८१ वर्ष, बाकी पत्नी (आयु ६१ वर्ष) अभी मर गई है।[1]

यह तो एक अकेला जोड़ा था, जिससे बड़ी आयुके कारण कोई वंश नहीं चला और देखा गया। यदि १०-२० होते और नहीं मिलते तो केवल दो-तीन सौ वर्षोंके पश्चात उनको कोई पहिचान भी नहीं पाता। भाषा बदल जाती, सबकुछ बदल जाता और बिलकुल न जाने कोनसा आदिवासी कबीला समझनेमें आता क्योंकि उनका बंश भी बढ़ जाता। हमारे सामने यह उन्नत युगका मनुष एक आदिवासी जीवनमें रहता है तो ऐसी ही उपमा संसारके मूल आदिवासियों पर संगत नहीं होती? यदि हां, तो फिर प्राचीन बनमानुस, आदिवासी और आजका उन्नत मनुष आदि यह सब पाखण्ड नहीं है? क्या यह सब विकासवादका खोखलापन नहीं है? परन्तु विकासवादपर स्थित मनुष्य-विज्ञान यह सब नहीं समझ सकेगा न ही बतला सकेगा कि वास्तविक्ता क्या है। वैदिक संस्कृत साहित्य यह सब बतलाएगा। यदि पत्थरयुगके आदिम लोग पशुसे मनुष्य बने थे तो उन (मनुष रूपी) पशुओंमें मरे हुए लोगोंको जलाने अथवा दफनानेका विचार कैसे आया? नजाने क्या है, कौन है, मर गया, फैंकदो इसे, पड़ा रहेगा! उसको जलाने अथवा साधनके अभावमें, उसे ज़मीनमें गाड़ने, उसके ऊपर समाधि बनाना इत्यादि विचार उस पशुमें कहांसे आए? स्पष्ट है कि इन प्राचीन संस्कारोंका वंश परम्परागत दृढ़रिवाज था और ज्ञान था कि आत्मा कोई कुछ है, वह नष्ट नहीं होती, प्राणी मरकर फिर वापस आएगा, इस लिये उसे किसी सन्मानके साथ और सुरक्षित स्थानपर रखा जाए। वहींसे फिर अज्ञानताकी उन्नति से

(1) Times of India, Daily [Ahmedabad] dated 13-2-79

यह विकास हुआ कि उस मृतक शरीरके साथ कुछ खानेपीने तथा और सुखका समान साथमें रखनेमें आया। तो फिर वे किस युगके लोग थे? एते आदिमानव और मोहन-जो-दरोके इतने उन्नत मानव क्या सब एक ही गाड़ीके सवार थे? इन सभकी आयु भी इसप्रकार एक जैसी केवल ६००० वर्षोंके अन्तर्गत हो गई क्या? इन दोनोंके मध्य में कुछ हज़ार वर्ष विकास करते नहीं बीते होंगे? एक क़बरमें गाड़े उसकी आयु भी ५००० वर्ष और वह उन्नति के शिखर पर पहुंच गया, एक और भी ऐसा करता है परन्तु वह मनुष बननेकी अभी आरंभिक अवस्थामें है उसकी आयु भी ५००० वर्ष! तो फिर मज़हबकी अज्ञानताकी अवस्थामें यह विज्ञानके नामसे धोखा नहीं है?

इसलिये हम इन सभी वैज्ञानिक (मूलतः अज्ञानी) कल्पनाओंको रद करके सिन्धु-सस्कृति (मोहन-जो-दरो) की आयु (Age) कमसे कम मध्य-पत्थर-युग (Mesolithic Age) से भी पूर्वकी घोषित करते हैं जो न्यूनतम २५००० वर्ष प्राचीन है, अधिक कितनी भी हो। और यही आयु हम पश्चिम एशिया (Asia Minor) के लियेभी स्थिर करते हैं। स्वयं सर जान मार्शलने मोहन-जो-दरोकी आरंभिक खुदाईके पश्चात एक भेंटमें, जो उन्होंने मुम्बईमें जनवरी १९२५ में Bombay Chronicle के प्रतिनिधिको देते कहा था कि "हमें अबतक खुदाई (Excavations) में एक दूसरेके नीचे नौ नगरोंके अवशेष, अभिन्न वस्तुए और मिट्टी के तहों (Layers) के नीचे मिले हैं[और कमाल यह कि हर तहके नीचे समान उन्नत संस्कृतिके समान अवशेष मिले हैं] जिससे बेबीलोन्यासे भी पूर्वकी संस्कृतिपर प्रकाश पड़ेगा। हम अभी और गहराईमें खुदाई करेंगे और लगभग ३० फुट नीचे तक जाएंगे और समझते हैं कि अभी ३, ४ अथवा ५ नगर इन तहोंसे और भी मिलेंगे जिनकी आयु ९ से ११ हज़ार वर्ष प्राचीन होगी। इन तहोंसे ही ऐसी सुंदर और सुदृढ पक्की ईंटें मिली हैं जो वैसी हमने कहीं देखी ही नहीं हैं। नगरोंकी रचना, गलियां, योजना (Plan), अनगिनत बहुमूल्य वस्तुएं और मोहरें (Seals) सब उच्च श्रेणी की चीजें हैं"।[1] यद्यपि हम इस सिन्धु संस्कृतिकी आयु २५ हज़ार वर्ष भी साधारण और कम समझते हैं, परन्तु फिर भी हम धीरेसे आगे बढ़ते हैं और हमें विश्वास है कि भविष्यमें जब विज्ञानी लोग वेदके रहस्योंको समझनेकी योग्यता प्राप्त करेंगे तो वे इस अवधिसे भी और आगे बढ़ आएंगे, जब उन्हे पश्चिम एशियामें भारतके प्राचीन ऋषियों, मुनियों, राजाओं-जैसे कि इन्द्र, मित्र, वरुण, दशरथ, सगर इत्यादिके मिले तथा स्पष्ट भाषामें लिखे लेख विवश करेंगे कि लौट चलो अपनी प्राचीन मातृभूमि 'Mother India' की शरणमें! जहांपर ही हमारे इन सब रहस्योंका उदघाटन होगा, तब वे बहुत और आगे बढ़कर हमारी इस स्थापनाका स्वागत करेंगे और तब संसारके सच्चे इतिहासका रूप निखरकर बाहर आएगा, जो इस समय मजहबी संकीर्णतासे कलंकमय पड़ा है। और तब प्रो॰ मैक्समूलरके ये शब्द सार्थक समझे जाएंगे, कि:-

(1) Modern Review, February 1925

"There was a time when the first ancestors of the Indians, the Persians, the Greeks, the Romans, the Slavs, the Celts, and the Germans were living together within the same enclosure, nay, under the same roof."[1]

सन् १९४३ में एक यूरोपीय कलाकार और विद्वानने एक चित्र तैयार किया था "The Parliament in Athens in the 5th. century B. C." जो "Democracy in the Ancient World" नामक लेखमालामें "पिक्टोरियल एजूकेशन" में छपा था। चित्र क्या है, एक वैदिक आर्य युगका दृष्य है। प्राचीन आर्य (भारतमें नहीं किन्तु प्राचीन ग्रीस-यूनानमें) वानप्रस्थियोंके से कपड़े ओढ़कर संसदमें उपस्थित हैं। एक अधिकारी मत्तों (Votes) की मोहरें सभासदोंमें वितरणकर रहा है, मुख्य अर्थात सभापति कोई अधिनियम विचारार्थ उपस्थित कर उसपर तर्क कर रहा है, जैसेकि उसपर समर्थन प्राप्त किया जासके। ऊपर कुछ वयोवृद्ध अथवा ब्राह्मण उनके सामने हवन कुण्डमें आहूतियां डाल रहे हैं।[2] क्यों नहीं यह चित्र कोई प्राचीन अथवा असली नहीं हैं, फिर भी जिस योग्य कलाकारने कुछ पढ़-सोच-कल्पनाकर चित्र खींचा है उसने कुछ तो समझा होगा न! या उसने ऐसा तो नहीं समझा कि कुछ आर्यसमाजी हर कार्यके आरंभमें हवन कर रहे हैं? उसने जो कुछ भी सोचा वह गभीरतासे समझने जैसा है। तो यह सब क्या है? मनुषके मूल वैदिक संस्कारोंकी छाप नहीं है? हम यह सब जातिवादके प्रभावसे नहीं लिख रहे हैं परन्तु इतिहासके सजग विद्यार्थीके रूप में! हमें न अकेला सिन्धपर अभिमान है, न भारत पर, न ही संसारके रोशन इतिहासपर, परन्तु केवल सच्चे परमात्माके मूल ज्ञानपर, जिसके प्रकाशमें हमने ये कुछ किरण पाए हैं।

अब आएं मोहनजोदरो पर :-

मोहन-जो-दरो, सिन्धके लाड़काणो ज़िलेके डोकरी रेल्वे स्टेशनसे कोई ७-८ मील पूर्वकी ओर है। भारतके पुरातत्व (Archaeology) विभागके श्री राखलदास बैनर्जीने सन् १९१८ से १९२२ तक दक्षिण पंजाब, बीकानेर, बहावलपुर और सिन्धमें सिकंदरके स्मारकोंकी तलाश कर रहा था। सिन्धमें क्षीर सागर (खीरथर पर्वत) से सिन्धु नदी तक जेकबाबद, सखर और लाड़काणों ज़िलोंमें लगभग २७ बड़े और ५३ छोटे उजाड़ खंडहरोंकी खुदाईकी, परन्तु वे सब बौद्ध-स्मारक निकले। ऐसेही अचानक मोहन-जो-दरो के ऊपर एक बौद्ध स्तूपके ऊपर आ पहुंचा, जिसकी खुदाई करते उसे वहां पत्थरके चाकू मिले जो अढ़ाई तीन हज़ार वर्ष ईस्वी पूर्व (ई०पू०) के थे। बस, यहीं से लेकर इस सिन्धु-संस्कृति (मोहन-जो-दरो) का चन्द्रोदय हुआ। सिन्ध, जिसकी ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें अवहेलना की जाती थी, वह इन बेजान मटीके टीलोंमेंसे ज्वालामुखीकी भूराल

(1) Lectures on the Science of the Language [first series] Pp 211-2

(2) Pictorial Education Quarterly [London], March 1943

(Lava) के समान पृथ्वीकी छातीको चीरकर बाहर निकल आई और सिन्ध कमसे कम सिन्ध नामसे चमक उठी! भारतीय इतिहासका सितारा बलंद हो गया। जो ईसाई लेखक इससे पूर्व भारतको दूसरी संस्कृत्योंकी तुलनामें कुछका कुछ लिख रहे थे उनके कलम हिलने लगे, और ऐतिहासिक तौर पर भी संसारका सिरताज बनगया।

नाम! सिन्धके इन खंडहरोंका नाम क्या है? साधारण तौर प्रसिद्ध नाम "मोहन-जो-दरो" है। परन्तु मोहन नामका कोई राजा सिन्धमें हुआ ही नहीं, न ही 'मोहन' नाम किसी भी ऐतिहासिक वर्णनमें पाया जाता है। इसलिये ठीक यह लगता है कि यह नाम "मुअनि" (मरे हुए लोगों) जो (का) दरो (टीला) होगा, जैसे कि पुराने ज़मानेमें सिन्धी लोग कहते होंगे, परन्तु दूसरे (असिन्धी) सुनने वालोंने उसको उचार भेद से 'मुअनि' से 'मोहन' समझा होगा, और ऐसे ही ऐतिहासिक तौर यह नाम "मोहन-जो-दरो" प्रसिद्ध हो गया। क्योंकि हिन्दू अवादीमें 'मुअनि' से 'मोहन' अधिक ठीक होगा, यह समझकर अपनाया गया। इससे मिलती जुलती मिसाल गुजरातमें इसी संस्कृतिके नगर लोथल (Lothal) में है जो लोथ (लाश=मरा हुआ)+थल (स्थल)=लोथ+स्थल=लोथल अर्थात (वही) मरे हुए लोगोंका स्थल (स्थान)। इधर राजस्थान में भी थेलो कहते हैं। इस लिये लगता है कि बिगड़ा हुआ नाम मुअनि अथवा मुअनिजोदरो है। मूलमें कैसा नाम था, यह ज्ञात नहीं।

इस अवशेषकी खुदाई सन् १९२२ से आरंभ होकर १९२७ तक चली। यह सारा विवरण (मिली हुई वस्तुओंके चित्रों सहित) हर वर्ष सरकारके इस विभागकी ओरसे वार्षिक विवरण "Annual Report of the Archaeological Survey of India" में प्रकाशित होता रहता था। इन सब विवरणोंको एकत्रित और विभिन्न देशोंके विशेषज्ञोंके विवरण आदि सब मिलाकर ग्रन्थाकारमें उस समयके महानिदेशक श्री मार्शल (Sir John Marshall) ने तैयार किया जो लण्डन से M/s Arthur Probsthain नामक प्रसिद्ध फर्म ने तीन बड़े जिल्दों (volumes) में प्रकाशित किया। ग्रन्थका नाम था "Mohenjo-Daro and the Indus Civilization."। इस के पश्चात मोहन-जो-दरोकी दोबारा खुदाई हुई और यह काम श्री मैके (Earnest V. Mackey) के निरीक्षणमें हुआ जो बादमें इसी विभाग के महानिदेशक भी नियुक्त हुए थे। यह सार विवरण भी भारत सरकार की ओर से दो बड़े जिल्दों में प्रकाशित हुआ था।

इसके पश्चात सिन्धके नवाबशाह ज़िलेमें सुखपुर गांव से कोई डेढ मील दूर 'चाहूं दरो' की खुदाई Museum of Fine Arts, Boston (U.S.A) की ओर से इसी श्री मैके के निरीक्षणमें की गई। जिसका विवरण भी ग्रन्थाकारमें उक्त म्यूज़ियमकी ओर से "Chanhun daro Excavations" नामसे प्रकाशित हुआ था। यह भी मोहन-जो-दरो की भांति ही एक महत्व पूर्ण प्राचीन अवशेष है।

मोहन-जो-दरो का सर्वसाधारणको ज्ञान तब हुआ जब इस विषय का एक लेख सर जान मारशलने लंडनके साप्ताहिक पत्र "Illustrated London News" में चित्रों सहित सन् १९२४ में प्रकाशित किया। संसारके विद्वानों तथा विशेषज्ञोंमें कोलाहल मच गया। वे इससे पूर्व जो भारत को असभ्य और गंवारों का देश मानते थे. उस देशकी मिट्टीसे यह अति उन्नत और पाराकाष्ठा को प्राप्त यह संस्कृति जिसको अक्सर विशेषताओंसे संसारकी कोई भी संस्कृति तुलना नहीं कर सकती, ज्ञात हुई तो इतिहासकी सब कल्पनाएं और विश्वास लंगड़े पड़ गए। समझ ही न पाए कि यह कैसी मुसीबत खुदाने खड़ी करदी कि उनके मजहबी अनुमानोंको लड़खड़ा दिया। हज़ारों वर्षोंका तो प्रश्न ही नही था। परन्तु किसी प्रकार न्यूनाधिकका हिसाब लगाकर वही ६००० वर्षोंके चक्रमें इसको जकड़ दिया। यह भी ठीक, कुछ तो उन्नति हुई।

यहां भारतके समाचारपत्रों और पत्रिकाओंमें भी लेख छपे; किन्तु सबसे मुख्य भाग कलकत्तेके अंग्रेज़ी मासिक "Modern Review" ने भजा। विशेषकर भारतीय विशेषज्ञ जो कुछ कह अथवा लिख रहे थे, माडर्न रिव्यूके सुयोग्य सम्पादक श्री केदारनाथ चैटर्जी, प्रकाशित कर रहे थे। आर्केआलाजीके विवरण विद्वानोंके सिवाय कोई पढ़ता नहीं था, माडर्न रिव्यू बड़ी सुंदर पत्रिका थी, साधारण अथवा विद्वत समाजतक उसकी पहुंच थी। मोहन-जो-दरोकी सुगंध इसप्रकार फैल गई। इसलिये हम भी उपयुक्त समझते हैं कि माडर्न रिव्यूमें आए उन विद्वानोंके लेखोंका संक्षेप दें जिससे यह वर्णन प्रमाणिक भी होगा तथा प्राय: सब विषयों पर विद्वानोंके बहूमूल्य विचारोंका भी समावेश हो जाएगा। सर जान मार्शलने प्रथम लेख लंडनके प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रमें प्रकाशित कर संसारको मोहन-जो-दरोसे अवगत कराया उसके कुछ अंश प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि उसने खुदाईका स्थल स्वयं तबतक देखा भी नहीं था, क्योंकि वह कार्य श्री राखलदास तथा श्री माधवस्वरूप कर रहे थे, जिन्होंने दो वर्षका किया कार्य उसे दिखाया, जो बलोचिस्तान और हड़पा की तुलना करके देखनेपर अतिप्राचीन समझनेपर तथा सब चीज़ोंके जांचनेपर उसने लेख लिखा था। उस अनुसार:-

"मोहन-जो दरोकी आश्चर्यजनक खोजने ५००० वर्ष पूर्वकी बिलकुल अज्ञात संस्कृति प्रकाशमें लाई है, जो सिन्धुकी उपत्यकामें फली फूली। हो सकता है कि मिस्र (ईजिप्ट) के विशाल मन्दिरोंके समान कोई भव्य वस्तु न भी मिले, फिर भी न मिस्र न ही सुमेर ऐसी कोई सुन्दर वस्तु तुलना करने कि लायक दे सके हैं जैसे यहां (मोहन-जो-दरो) के मकानोंकी औसत निर्माण कला तथा अन्य सुविधाएं।

"पानीके निकास (Drainage) की व्यवस्था विशेष उन्नत तथा असाधारण (Extraordinary) है। प्रत्येक मार्ग, गली तथा कूचेकी सब नालियां ढंकी और बड़ी सूक्षमतासे तैयार की गई ईंटोंसे बनी हैं कि इससे अधिक अच्छी और कोई हो नहीं सकती। चूने के गारे (Lime Mortar) का

प्रयोग नहीं होता था, न ही निकटमें कोई चूनेका पत्थर है, जो पकाकर बनाया जा सके; न ही डामर(अलकतरा) अथवा राल(Bitumen) जैसी कोई वस्तु सिन्धमें है, जैसे मेसोपाटाम्यामें सीमेंटका काम दे सकने वाली चीज़ है। इसलिये यहां ईंटोंका जोड़ (Joint) ऐसी कुशलतासे मिलाया गया है कि पानीके निकासमें कोई कठिनाई न हो।

"...... यह सिन्धु संस्कृति पश्चिम एशियामें अनगिनत शताब्दियों (Untold Centuries) से उन्नत हो रही तथा पनप रही है, जिसका फैलाव बड़े दायरेमें था, जैसेकि सिन्ध, पंजाबका बड़ा भाग, बलोचिस्तान लगभग समुचा, राजस्थान तथा और भी दूर पूर्वके देशोंमें। इन्डो-सुमेरियन नाम थोड़े समयके लिये घड़ लिया गया है केवल प्राचीन सुमेर और सिन्धुके समीपवर्ती सम्बंध दिखानेके लिये। एक बात जो परेशान करती है वह है उनकी कारीगरीकी असमान्ता। जैसेकि चकमक पत्थर (Flint)के पतले परत (Flakes) टुकड़े जिनसे चाकू तथा रुंवे (Scrapers) का काम लिया जाता था वे सारे प्रदेशमें से सैंकड़ोंकी संख्यामें मिले हैं (अर्थात पत्थरयुगके औज़ार) जो बिलकुल अवनत दरजेके हो सकते है। परन्तु उनके साथ साथ ही सुन्दर और नज़ाकत वाले सोनेके आभूशण, नीले रंगसे चित्रित बरतन तथा ठप्पे, सूक्षम नकाशी वाली (Engraved) मोहरें जो केवल निपुण और विशिष्ट विज्ञ (कारीगर) ही बना सकते हैं और विशेषकर मकानोंकी निर्माणकला तो अद्वितीय (Far Superior) है, भी सम्मिलित हैं।

"प्राय: घर (मकान) अच्छे बड़े कमरोंमें बंटे हैं जिनमें अपने कुएं, स्नानगृह, ईंटोंके फ़र्श तथा ढंकी हुई नालियों से हैं, जो फिर बाहर मार्गोंके नालियोंसे जुड़े हुए हैं। ऐसे विशाल मकानों और सुविधाओंको ध्यानमें रखकर कहा जा सकता है कि सिन्धु लोगोंका सामाजिक स्तर मेसोपोटाम्या और इज्प्टिसे बहुत उन्नत (much in advance) है।

"सोनेके ज़ेवर (आभूषण) ऐसे सूक्षम बने तथा उत्कृष्ट ढंगकी पालीष किये हुए हैं कि जैसेकि वे आजके लंडनकी बाँड स्ट्रीट (Bond Street) के जौहरीकी दुकानसे तैयार होकर आए हैं, बनिस्बत पांच हज़ार वर्ष पूर्वके गड़े हुए घरोंसे!

"दो बनी हुई मूर्तियां मिली हैं, एक कच्चे संगमरमरकी तथा दूसरी चूने के पत्थरकी, जिस पर महीन सुन्दर सफेद पलस्तर (लेप) किया हुआ है। मूर्तिमें पुरुषको दाढ़ी है, परन्त मूंछ साफ़, आंखोंमें कौड़ियां हैं तथा उसका वेश लाल गेरुएं रंगसे चित्रित है।

"यह सभ्यता जो प्रकाशमें आरही है वह मेसोपोटाम्या संस्कृतिके समूहमें से एक है, ऐसा नहीं है। परन्तु सिन्धूके किनारेपर स्वतंत्र रूपमें अनगिनत पीढ़ियों (Generations) से उन्नत होती रही है, जैसे कि उत्खनन से प्रतीत होता जा रहा है"।[1]

इस लेखके प्रकाशनके पश्चात भारतसे बाहर सुमेरिअन विशेषज्ञों (Sumeriologists) का

(1) Illustrated London News, 20th. September, 1924

ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और दूसरे ही सप्ताह इसी ही साप्ताहिकमें प्रो० साइस (Sayce) ने सूसामें श्री मार्गन (De Morgan) को प्राप्त हुए मोहन-जो-दरो जैसी वस्तुओंकी ओर तथा फिर दूसरे अंक (४-१०-२४) में British Museum, London के श्री स्मिथ (Sydney Smith) तथा श्री गैड (C.J. Gadd) ने मेसोपोटाम्याकी वस्तुओंकी ओर ध्यान आकृष्ट कराया। इसके पश्चात उन वस्तुओंकी तुलना करनेकी जैसे कि होड़ सी लगनी आरंभ हो गई। क्यों कि ऐसी वस्तुएं पहलेही भारतसे बाहर मिल चुकी थीं और अब भारतमें मिलना एक विचित्र बात थी, जिसने विद्वानोंका ध्यान खींचा और फिर जो काल (युग) सुमेरियन तथा असीरियन अवशेषोंके लिये निर्धारित किया गया था वह मोहन-जो-दरोके लिये भी निश्चित किया गया।

इसके पश्चात जब सर जान मार्शलका ग्रन्थ तीन भागोंमें लंडनसे प्रकाशित हो गया तो उसकी समालोचना 'माडर्न रिवियू' (कलकता) में इस प्रकार छपी थी:-

"हड़पा और मोहन-जो-दरोमें हुई खुदाइयोंसे यह हक़ीक़त प्रकट हुई है, जैसाकि उसके सम्पादक (श्री मार्शल) ने अपनी विद्वतापूर्ण भूमिकामें लिखा है कि "पांच हज़ार वर्ष पूर्व पंजाब और सिन्धको अपनी समुन्नत सभ्यता थी जो अपने समयके (contemporary) मेसोपोटाम्या और ईजिप्टसे बिलकुल मिलती जुलती परन्तु कुछ बातोंमें उनसे भी श्रेष्ठ (superior) थी"। (Vol. I, P.V) सिन्धु संस्कृतिकी आयु तथा श्रेणी Chalcolithic Age है। ऐसा युग जिसमें पत्थरके उपकरण तथा बरतन, तांबे और कांसे (Bronze) के साथ साथ प्रयोगमें होते हैं; और पश्चिम एशिया अथवा ईजिप्टके समकालीन है।" परन्तु भिन्नताकी भी कुछ खास बातें हैं जैसा कि श्री मार्शल लिखते हैं कि "कुछ थोड़ी, जैसेकि, कपड़ेके लिये कपासका प्रयोग उस कालमें केवल अकेला भारतमें होता था, जो बात पश्चिमी दुनियामें दो अथवा तीन हज़ार वर्ष पश्चात देखनेमें आती है। फिर प्राचीन ईजिप्ट और मेसोपोटाम्या अथवा पश्चिम एशियामें ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है जिससे मोहनजोदरोके निवासियोंके बने सुंदर स्नान-गृहों और विस्तत घरोंसे उसकी तुलना की जा सके। उन देशोंमें देवताओंके मंदिरों, महलों और राजकीय समाधियों (Pyramids) पर बेशुमार धन लूटा जाता था बाकी प्रजा ऐसेही बिलकुल सादे मिट्टीके झोपड़ियोंमें रहती थी। परन्तु सिन्धमें चित्रका बिलकुल भिन्न रूप है, जहां सुन्दर इमारतें केवल नगरवासियोंके सुखके लिये ही बनती थीं"। (Vol. I, P. VI) इसी प्रकार सिन्धकी कला पर उनकी अपनी अकेली तथा निराली छाप है। दूसरे किसी भी देश से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। उनके खिलौने जिनमें भेड़, कुता और अन्य पशु अथवा मोहरोंपर नकाशी, जिनमें दो ककुद (Hump) और छोटे सींगवाले बैल, ये सब कलाके कमालका फल है। उपरोक्त दो मुर्तियों (बुत्तों) की कारीगरी पर क्लासिक (Classic) ग्रीस भी गौर्व अनुभव कर सकता है।"

"This is a work of which a Greek of the fourth century B.C. might will have been proud." (P. 46)

"उनका धार्मिक विश्वास शैव मत तो कैल्कोलिथिक युग (Calcolithic Age) अथवा उससे भी प्राचीन हो सकता है और आज भी संसारके जीवित मजहबोंमें ऊंचा स्थान रखता है। (Vol. I, Pp. VI-VII)

"एक बात जो बिलकुल स्पष्ट और निःसंदेह है वह यह कि मोहन-जो-दरो और हड़पामें प्राप्त सभ्यता कोई आरंभिक कालकी भी नहीं है, परन्तु भारत भूमि पर प्राचीन और स्थाई है, जिसके पीछे मनुषके कई हज़ार (न कि केवल ५ हज़ार) वर्षोंकी साधना है। इसलिये भारतको ईरान, मेसोपोटाम्या और ईज्प्टिके एक प्रधान क्षेत्रफलमें गिना जाएगा जिसमें सभ्यताका प्रारंभ और फैलाव हुआ। (वही पृ० VIII)।

"बलोचिस्तानके चित्रित बरतन और हड़पाकी मोहरें मोहन-जो-दरोके प्रागैतिहासिक कालकी मिली सामग्रीसे भी पूर्व सबको विदित थी। परन्तु श्री राखलदाससे पहले किसीने भी इसके प्राचीन कालीन होनेका साहस नहीं किया, जैसा कि श्री मार्शल कहते हैं, कि बिलकुल इसी माप वाली ईंटे कुषाण कालीन स्तूपों और कैल्कोलिथिक निर्माण कार्यमें भी प्रयोगमें मिलती हैं। श्री मार्शलको दूसरी वस्तुओंसे तुलना करके यह माननेको बाध्य किया"।[1]

सुज्ञ श्री हक्सले (Aldous Huxley) ने तो कमाल करके लिखा है। जो लोग कहते हैं कि युद्धके सिवाय सभ्यता टिक नहीं सकती अथवा इतिहास युद्धका निरंतर-स्थिर रहना बताता है उनको श्री हक्सले, मोहन-जो-दरोमें कोई भी शस्त्र न देखकर उतर देता है :-

"Recent archaeological research has shown that this correlation between war and civilization has not been invariable. The civilization of the Indus Valley was as rich and elaborate as those of Sumer and Egypt. But it was a civilization that knew nothing of war. No weapons have been found in its buried cities, nor any trace of fortifications. This fact is of the highest significance. It proves that it is possible for men to enjoy the advantages of a complex urban civilization without having to pay for them by periodical mass-murders."

सन् १९४४ की खुदाईसे मोहन-जो-दरो तथा हड़पासे बड़ी दीवारें निकलीं जिनको किलाबन्दी (कोट) माना गया, जैसाकि पाकिस्तान पुरातत्व विभागकी ओरसे प्रकाशित और श्री वीलर (Dr. Mortimer Wheeler) की एक छपी पुस्तका (Mohenjo-Daro, P. 14) में लिखा गया है। परन्तु उसी श्री वीलरने सन् १९५० की खुदाईके बाद यह निर्णय दिया कि नहीं, मोहन-जो-दरोके लोग शांतिप्रिय थे, उन्हे किसी प्राचीर (चारदीवारी=Fortification) की

(1) The Modern Review, April 1932

आवश्यक्ता नहीं थी। इसलिये यह मोटी दीवार नहीं अपितु अनाजका राष्ट्रिय भण्डार (Great Granary) था। और यह मोहन-जो-दरोको राजकीय बैंक तथा खज़ानेका काम देता था।-

"Thus it served both a State Bank and Treasury of the ancient city of Mohenjo-Daro." (Ibid, Epilogue, P. 15)

परन्तु पेन्सीलवेन्या (Pennsylvania) विश्वविद्यालय म्यूज़्यम (U.S.A) की ओरसे उसके Curator श्री डेल्स (George F Dales) के नेतृत्वमें (१-११-६४ से १-३-६५ तक, विदेशी सहायतासे उस भागकी खुदाई हुई है, जिसमें वह दीवार ज़मीनसे २० फुट नीचे तक देखी गई है। यद्यपि नमी के पानीके कारण अभी पूर्णत: तलेतक नहीं पहुंचे हैं, परन्तु वह कच्ची दीवार जो पक्की दीवारके सहारे खड़ी है, जिसे श्री वीलर अनाजका भण्डार कहता है उसे श्री डेल्स बाढ़से सुरक्षाकी दीवार कहता है।[1]

श्री राय (C.R. Ray) विक्टोर्या म्यूज्यम, करांचीके क्यूरेटरने "Indian World" पत्रिकामें लिखा था कि:-

"मोहन-जो-दरोके लोगोंकी सभ्यता और संस्कृति की महत्ता तभी समझी जा सकेगी जब हम प्रागैतिहासिक कालके लोगोंका इतिहास सङ्कलित कर सकेगें, वह भी तब जब उन भूले बिसरे हुए लोगोंके इन मिले हुए असंख्य अवशेषों (Antiquites) को पूरी तौर पर समझ और पहिचान सकेंगे। मुझे मोहन-जो-दरोकी खुदाईमें भाग लेने तथा अभ्यास करनेका सौभाग्य प्राप्त है इसलिये इस संस्कृति की रूपरेखा उपस्थित करता हूं :-

"इतिहास लेखकोंकी ओरसे ऐसा समझा जाता था कि आर्य लोग भारतमें ४००० वर्ष पूर्व अर्थात लोहयुगमें आए और यहांके जंगली, काले तथा अर्धसभ्य लोगोंको जीत कर स्वयं बसकर बैठ गए। आर्योंसे पूर्व यहां कोई भी सभ्यता नहीं थी, जिसका वर्णन किया जा सके। इस कल्पनाको अब रद्द करना पड़ेगा। मोहन-जो-दरोकी उपलब्धि सिद्ध करती है कि आर्योंके आगमनसे पूर्व (आर्य कहींसे आए नहीं किंतु मोहन-जो-दरो वाले स्वयं आर्य थे) सिन्धमें बहुत उत्तम श्रेणीकी और अति उन्नत सभ्यता विद्यमान थी जो उस समयके एलाम, मेसोपोटाम्या, बेबीलोन्या और ईज़िप्टके आर्योंसे भी बहुत बढ़कर थी।

"मोहन-जो-दरोके लोगोंने अपना नगर सिन्धुके पश्चिम तटपर पूर्वनिर्धारित योजना (Pre-arranged-plan) के अनुसार बसाया, जो योजना एन्जिनीअरों (Engineers) ने तैयार की थी। उनका जमीनके नीचे (underground) पानीके निकास (Drainage) की व्यवस्था जो बिलकुल पूर्ण (elaborate and complete) तथा स्वास्थ्यके दृष्टिसे निर्दोश (perfect from the hygienic point of view) थी। नगर, राज्य अथवा नगरपालिकाके आधीन सुव्यवस्थित

(1) Illustrated London News, dated 29-5-65

चलता था। नगरवासियोंके आपसमें सम्बंध मित्रता पूर्वक थे। नगर में काम करने वाले व्यापारी, किसान, तांबे चांदीके शिल्पी और स्वर्णकार, पत्थरका काम करने वाले संगतराश, चित्रण वाले बरतन बनानेवाले, कुंभकार, जुलाहे, पंसारी, बढ़ई, राजमिस्त्री (Mason), हाथीदांत-हड्डी तथा सीपका काम करने वाले, माहीगीर, शिकारी, पुजारी, अध्यापक, सैनिक, तेली, नाई, गली कूचोंकी सफाई करने वाले इत्यादि सम्मिलित हैं। हर परिवार को अपना विशाल घर था जिसमें ऊंची छत वाले बहुत कमरे, दरवाज़े, खिड़कियां थीं। प्रत्येक घरका मुख-द्वार गली की ओर था, फाटकके साथ साथ सेवकके लिये खुली छोटी कोठी, उसके पश्चात सुसज्जित बैठक (Drawing Rooms), अन्तःपुर (Harem) जिसमें सोनेके लिये कमरे तथा रसोईघर थे। प्रत्येक घरमें पीने आदिके लिये कुंवां था। दो मंज़ले मकान भी थे क्योंकि ऊपर चढ़नेके लिये सीढ़ियोंके डंडे भी मिले हैं, और बिलकुल आजके जैसेही हैं। एक बहुत बड़ा घर, जो कदाचित महल था वह भी खोद निकाला गया है। महल के चारों ओर लगातार कमरे थे और बीचमें एक बड़ा कमरा (Hall) बड़े खंभो (Pillars) के साथ था। हाल के समीप फर्श बंधा तालाव (Swimming pool अथवा Tank), जिसकी ओर चारों ओरके कमरों तथा बरामदोंका मुख था। तालावमें नीचे उतरनेके लिये दो सीढ़ीयाँ हैं- एक मुख्य हालसे तथा दूसरी सामनेकी ओर से उतरने के लिये। तालाब सदैव ताज़े पानीसे भरा रहता था और जब खराब होता था तो बड़ी नाली द्वारा निकसित किया जाता था। प्राय: महल की स्त्रियां उसमें आनंद लेतीं तथा स्नान करती थीं जिस प्रकार रोमन स्त्रियां करती थीं। सब से विचित्र बात है उस महलमें स्नानकी कोठियां, जिनमें से बहुतकी दीवारें, फर्श तथा नालियां आज भी पूर्णत: सुरक्षित स्थति में हैं।

"पुरुष धोती पहनते थे, सिर पर पगड़ी, कमीस, कोट और जूते पहनते थे। स्त्रियां भरत-काम वाली साढ़ियां, घघे (a kind of gown), पेशगीर और कुरते आदि पहनती थीं। इसमें संकोच नहीं कि स्त्रियां खूब फैशन वाली थीं जो बात उनके विविध आभूषणों तथा श्रांगरके मिले साधनों से मालूम पड़ती है। वे अनेक प्रकार के हार (Necklace), एरिंग (Earring), लाकेट (Locket), फुली (नाककी) तथा नथें, अंगूठी, चूड़ियां आदि पहनती थीं। आभूषण सोने, चांदी और तांबे के बनते थे। इसके सिवाय हीरे-जवाहर, पुखराज, हाथीदांत और सीप आदि। बांहीं (हाथी दांतकी चूड़ियां) आजकी तरह कलाईसे केहुनी तक पहनती थीं। नथुनी के साथ सोनेकी ज़ंजीर भी होती थी जो कान तक जाती थी, जो रिवाज आज भी सिन्धी तथा बेंगाली स्त्रियोंमें है। स्त्रियां अपनी चोटियां करती (बाल संवारती) तथा भिन्न भिन्न प्रकार से बांधती थीं। सोने और चांदीकी बालोंकी पिन भी लगाती थीं। आंखोंका सुरमे (काजल) से श्रांगार करती थीं। तांबे के दर्पण (आरसी) और हाथीदांत अथवा काष्ठकी द्वमुखी कंगियां काममें लाती थीं। आरसीका वह नमूना बेंगालमें आजतक विवाहके समय काममें आता है।

"बच्चे आजकी तरह खेलते कूदते थे। खिलौने भी बहुत मिले हैं जो पकी मिट्टी के बने हैं जिनमें पशु, पक्षी, पुरुष, स्त्रियां आदि हैं। लड़कियोंके लिये भी छोटे छोटे बरतन, दोरीसे खींचकर चलाने वाले खिलौने, रथके साथ पक्षी जो छोटे बच्चे चलाते थे इत्यादि सब बहुत सुंदर हैं। मिट्टीके खड़खड़ाहट करने वाले खिलौने (झिझिणा) जो भिन्न भिन्न रंगोंसे सजे हुए हैं वे आम (साधारण) थे जो नमूने बेंगालमें आज भी बनते हैं। बजाने की सीटी तो विशेष है जिसके शक्लमें आज तक फर्क नहीं आया है। पकी मिट्टीका बना मुर्गा अथवा पक्षी जिसके पूंछके पास सुराख है, वह मैंने बजाकर देखी तो उस समय भी बिलकुल ठीक बज रही थी।"[1]

श्री दत्त (G.S. Dutt) ने एक लेख "Indus Civilization Forms and Motifs in Bengali Culture" दो किस्तोंमें लिखकर यह दिखानेका प्रयास किया था कि सिन्धु संस्कृतिकी कुछ चीजों और चिह्नोंकी बेंगालसे तुलना की जा सकती है।[2]

२६, मै १९४३ को श्री रो (B. S. Townroe) जो British Central Housing Committee तथा ब्रिटेन के बहुतसी टाऊन प्लेनिंग समितियोंके सभ्य थे, उसने इन्डिया सोसायटी, लण्डनके सन्मुख "City Development in India and Briton, some comparison" विषयपर एक व्याख्यान दिया था। सभापति श्री वुडहेड (Sir John Woodhead) थे। श्री टाऊनरोने कहा था कि मोहन-जो-दरोकी नगर निर्माण कला उन्नतिकी पराकष्ठा पर पहुंची हुई थी जिसके सामने हमारी कला लज्जित होती है।":-

"Those who bolster up their wishful hopes of a new world, planned according to their own individual beliefs of what will by the best for future generation, are infected at times with the slow poison of totalitarianism. They forget that many of their much boasted ideas are at least 5000 years old... Buried cities in the Indus Valley at least :000 years old, when excavated, showed they were well planned and drained. Every large house had a bathroom. The Old Vedic Treatises afford striking proof of the knowledge and common sense of the early people of India in regulating their building development and wisdom in their municipal administration.

"When we think of the great urban civilization in the Indus Valley of 5000 years ago, we gain humility in facing the issues of today. From India we can learn both patience and wisdom in dealing with the

(1) Modern Review, September, 1939

(2) Ibid, Nov. 1939 and Feb. 1940

redevelopment of our bombed cities in Europe and North Africa and the Far East in the years to come."[1]

मोहन-जो-दरो की खुदाई-के पश्चात अब यह प्रश्न खड़ा हुआ कि भारतमें होने के नाते यह सिन्धु संस्कृति आर्य है अथवा द्राविड़, अर्थात सिंधी आर्य हैं अथवा द्राविड़ (अनार्य)। सन् १९२४ में ही भारती भाषाशास्त्री श्री सुनीतिकुमार चेटर्जीने दो बड़े लेख लिखकर इसे द्राविड़ अथवा अनार्य सिद्ध करनेका प्रयत्न किया। उसकी मुख्य दलील यह थी कि क्योंकि आर्य लोग मृतकको जलाते थे, परन्तु मोहन-जो दरोमें गाड़ी (दफन) हुई लाशें मिली हैं, यह रिवाज अनार्योंका था इसलिये सिन्धु संस्कृति वाले लोग भी अनार्य थे।[2] यद्यपि इस दृष्टिसे पूरा लेख ग़लत था, क्योंकि श्री सुनीतिकुमारको यह ज्ञान नहीं था कि मनुष उत्पति कैसे और कब हुई, न ही यह उसका स्वयंका विषय था। उसने भी केवल विदेशी अंग्रेज़ी साहित्य पढ़कर यह राय बनाई थी, जिसप्रकार उनके पश्चिमी गुरु तथा शिष्योंने किया। उन लोगोंका भी दोष नहीं था, उन्हे बचपनसे ही धर्म विरोधी विषभरी शिक्षा मिली थी। शिक्षा सब विदेशी विचारोंसे प्राप्त की हुई थी जो अभी तक चली आ रही है। जहां तक हो सकता था या है ये लोग अपने धर्मको नीचा दिखानेका प्रयत्न करते रहे। अंग्रज़ोंके बाप दादे अथवा पुरखे सबके सब मूल इंगलैण्ड के निवासी न होते हुए और कहीं बाहरसे आकर बसे तो भी वे केवल उल्लेख करते तथा गर्व अनुभूत करते हैं। परन्तु हमारे देसी लेखक और विद्वान उसके विपरीत अपनेको आर्य तो क्या हिन्दू कहलानेमें भी लज्जा अनुभव करेंगे। सो उन्होंने इस बातको लेते यह भी नहीं सोचा कि मोहन-जो-दरोके चिह्न इंगलण्डसे पैसिफिक सागर परयंत फैले हैं, ठेठ अमेरीकाके लाल हिन्दुओं तक। तो फिर वे अनार्य नहीं हुए न ही अपनेको कहलाते हैं। उलटा अपने इन्हीं चिन्हों पर गर्व करते हैं। और ये हमारे देसी विद्वान वाद विवादको बढ़ाते गये और विदेशियोंको नये नये प्रमाण बताते गए। अब तो आर्योंका बाहरसे आना अथवा आर्य-अनार्यका रोग ऐसे नासूर (Ulcer) का रूप धारण कर चुका है कि यह अब असाध्य सा लग रहा है। सो हमने लिखा है कि पश्चिम एश्याके उत्खननके पश्चात किसी भी पश्चिमी लेखकने इसे अनार्य नहीं कहा, उलटा पश्चिम एशिया इतिहासके बड़े विद्वान श्री (H. R. Hall) ने उसे केवल द्रावड़ लिखा था, वह भी इससे दस वर्ष पूर्व। परन्तु हमारे देसी विद्वानने इस पंक्तिको तावीज़ मानकर उसे सत्य सिद्ध करनेके लिये पूरे सात पृष्ठ लिखकर व्यर्थका बहस किया। वास्तवमें उन्हें तो स्वयं इस बात पर गर्व करना चाहिये था कि हमारी भारतीय संस्कृतिके आर्य-द्रावड़ लोग विदेशोंमें जाकर उपनिवेश बना बैठे, जिनके अवशेष अब मिले है और आर्य-द्राविड़ अथवा उत्तर-दिक्षिण भारतमें कोई भेद नहीं है (सिवाय जल-वायुके प्रभावके)। सो श्री हालने यह भी स्पष्ट लिखा है कि "वे सुमेर्यन

(1) Ibid, Nov. 1944 (2) Ibid, Dec. 1924

लोग भारतवासी थे।"[1]

हम यह मानते हैं कि भारतमें उत्तर तथा दक्षिणके निवासी केवल आर्य हैं। उत्तर-दक्षिणमें कोई भेद नहीं है। इसका सुंदर उदाहरण तो कला (Art) के महाविद्वान श्री कुमारस्वामीने उसी समय दिया था जो स्वयं सुनीतिकुमारजीने लिखा था कि "ग्रीसके चित्र उत्तर तथा दक्षिण भारतमें समान रूपमें पाए जाते हैं।" सुनितिकुमार जी के ही शब्द हैं कि:-

"And Anand Coomarswamy has shown in "Some Ancient Elements in Indian Decorative Art" in the 'Ostasiatich Zeitschrift' quoted in the Modern Review [August, 1914] that a number of decorative motifs and cult figures from the Aegean region are found even now in both Northern India and Southern India in a way which is quite striking."

तो फिर उत्तर और दक्षिण भारत अथवा आर्य-द्रावड़का भेद कैसा? 'मृतकको जलाना और गाड़ना' वाली बातको लेकर श्री अविनाश चन्द्र दास ने अपनी पुस्तक "Rigvedic India" में श्री सुनीतिकुमारको उत्तर दिया था, परन्तु वह तो उससे भी बेकार था[2] और श्री सुनीतिकुमारने फिर उसका प्रत्युतर उसी अंक में दिया था। बात सब वही थी। उन्होंने अपनी बात को सिद्ध करनेके लिये जो भी प्रमाण दिये थे वे सब वेदोंके अशुद्ध और ग़लत अंग्रेज़ी अनुवादके थे। उन्होंने स्वयं वेद मूल रूपमें न पढ़े न देखे थे। उन्हें क्या मालूम कि वेद वास्तवमें क्या है? वास्तवमें बात यह थी कि प्राचीन कालमें शव (मुर्दे) केवल जलाये जाते थे और यह प्रथा यूरोपके प्राचीन ग्रीस, टयूटान (Teutons) और स्लाव (Slav) आदि लोगोंमें भी थी जैसे कि सुनीति कुमारजीने भी स्वयं लिखा है। और यह सब इस अवस्थामें संभव है जहां लकड़ियों की बहुत्यात हो। भारतमें अथवा दूसरे स्थानोंमें जहां जहां भारतवासी गये फैले, वह प्रथा साथ लेते गए। परन्तु उन्हीं आर्योंके चरण जब ऐसे ठोठ शून्य स्थानों पर पड़े होंगे, जहां लकड़ी पर्याप्त न होगी, वे विवश थे, न कर सके। अथवा समुद्र यात्रामें बहकर कहीं जा पड़े तो वहां साधन न होनेके कारण पानीमें बहा देना, और ऐसेही जंगलमें दूर फैंक देना अथवा अधिक अच्छा था गाड़ना, जिससे दुर्गंध बाहर न फैले। बादमें यह रिवाज भी हो गया और ऐसा प्रायः ऐसे स्थानों पर हुआ। मनुष आलस्यका घर है, करता रहता है। फिर वही लोग हज़ारों वर्षोंके पश्चात विवश होकर दूसरे स्थानपर प्रवास कर गये, कुछ लौटकर भारतमें नये रूपमें आये होंगे

(1) "Sumerians were an Indian race which passed, certainly by land, perhaps also by sea, through Persia to the Valley of the two rivers."

(The Ancient History of the Near East, Pp. 173-4)

(2) Modern Review, March 1925

तो वे बिगड़े संस्कार कहां जाएंगे ? उस समय तक वे उनके स्वयं के (देश की संस्कृति को भूलकर) जाति के रिवाज बन चुके थे, अपने साथ लाये। जिस किसी भी शहरमें रहे, जहाँ भी बसे वैसे ही करने लग गये, चाहे उनके पुरखे इसी देशमें प्राचीन ढंगसे करते रहे। नहीं तो क्या अब भी ऐसा है क्या कि उत्तर भारतके हिन्दू मृतकका अंत्येष्टि संस्कार करते हैं और दक्षिण भारतके दफ़न करते हैं ? द्रावड़ जो ठहरे। द्रवाड़ नामसे कोई एक भी इस प्रकारका उदाहरण नहीं मिलेगा। ऐसे तो उत्तरमें कुछ हिन्दू हैं जो मुसलमानों से हिन्दू बने हैं और कुछ मुसलमान हैं जो शव को जलाते हैं क्यों कि वे हिन्दू से मुसलमान बने हैं। उनकोभी सदियां बीत गई। बस रिवाज हो गया। हम अरबोंसे किस प्रकार आशा रख सकते हैं कि वे मुर्दोंको जलाएंगे जबकि वहां सूने रेतीले मैदान हैं और वृक्षोंका अधिकतर अभाव है ? चाहे वे वास्तवमें भारतीय आर्य हैं (जैसाकि हम आगे दिखाएंगे)। ये तो हज़ारों वर्षोंके चक्र और रिवाज हैं। न मालूम कब कहां क्या हुआ था। कैसे कहा जाय कि ये पृथाएं कब और विवशता वश कैसे पड़ गई। मगर यह सब होगया। प्राचीन मेक्सीकन लोग शवको जलाते थे, फिर अस्थियों और राखको एक बरतनमें रखकर एक स्थानपर रख उसके ऊपर समाधि बनाई जाती थी (सिंधके हिन्दुओंमें अब तक यही पृथा है)। श्री कार्ली (Carli) के अनुसार "निस्संदेह यह मृतकको जलानेका ढंग, बाकी राखको एक स्थानपर इकट्ठा करना, फिर उसके ऊपर समाधिका तैयार करना, ये सब बातें ईजिप्ट और भारतके रिवाजों की याद दिलातीं हैं"।[1] फिर इस बात पर विचार करते श्री प्रेसकाट स्वयं लिखता है कि "मृतक शरीरको जलाना कोई विशेष बात नहीं है, शवको किसी न किसी प्रकार समाप्त तो करना ही है। परन्तु जब हम देखते हैं कि बादमें बची राखको एक बरतनमें इकठा किया जाता है ...... तब तुलना बहुत बढ़ जाती है। इतनी सूक्षम समानताका पाया जाना कोई साधारण बात नहीं है। यद्यपि केवल इस एक बातका मिल जाना अपने आपमें कोई प्रमाण नहीं है, परन्तु जब इसे दूसरी बातोंके साथ मिलाकर देखा जाय तो पूर्वके देशों (भारत) के साथ परस्पर सम्बंधका विश्वास बढ़ जाता है।[2]

इंगलैंडके वेस्ट सफोल्क (West Suffolk) ज़िलेके ऐंग्लो सैक्सन कालका श्मशान खुदाईसे मिला है जिसमें हज़ारोंसे अधिक (अस्थियोंसे) भरे छोटे घड़े मिले हैं, जिससे सिद्ध होता है कि ये प्राचीन लोग भी मृतिको जलाते थे।[3]

सो मोहन-जो-दरोसे भी जलाना और गाड़ना, दोनों बातें मिली हैं। आज भारतके किसी बड़े नगरमें ईश्वर न करे भूंचाल आ जाय और नगर बरबाद हो जाय तो हज़ार वर्षके पश्चात उसकी खुदाईमें से जो कबरें मिलेंगी तो वह कौनसी संस्कृति समझी जाएगी ? अथवा आज

(1) Carle in Prescott: Conquest of Mexico, P. 585, footnote 37
(2) Ibid, P. 587 (3) Illustrated London News, dated, 19-4-1977

भारतका निर्माण कार्य सबका सब पश्चिमके अनुकरण पर हो रहा है और भारतीयता विदाई ले चुकी है, तो इसीप्रकार हज़ार वर्षके पश्चात इसी नगरकी खुदाईमें से जो इन्ही मकानों के भग्नावशेष मिलेंगे तो भारतके इस नगरकी सभ्यताको भारती कहा जाएगा अथवा रोमन, अंग्रेजी अथवा अमेरीकन ?

तातपर्य यह है कि आजके विज्ञानीने सृष्टि-उत्पतिका रहस्य जाना ही नहीं है। इतिहास लेखककी तो बात ही नहीं है। वह बिचारा तो विवश होकर डार्विन छाप (Darwin Brand) अनुमान करता जान छुड़ाता चलता है। यदि उसमें फंसता है तो उसे ईसाइयत छोड़नी पड़ेगी अथवा आर्योंकी महांताको सर पर रखना पड़ेगा, जो बात वे नहीं चाहते। सो मुर्दे गाड़नेके कारण मोहन-जो-दरो संस्कृतिको आर्य अथवा द्रावड़ कहना केवल धोखा है। यह मान सकते हैं कि यह शुद्ध प्राचीन आर्य संस्कृति नहीं है अपितु उसमें बादका बिगड़ा रूप मिला हुआ भी है। जिस प्राकर आजका हिन्दू पश्चिमी शिक्षा प्रणालीको ग्रहणकर प्राचीन आर्य धर्म से बहुत बहुत दूर होता जा रहा है और न जाने क्या बनता जा रहा है। यही बात मोहन-जो-दरोके लिये भी समझनी चाहिये। आखिर भी व्यापारी केंद्र था। भारतका वैभव साथमें था, इस अनुसार ऐसा सुन्दर और सुलझा हुआ निर्माण कार्य होता था। कोई नई अथवा वैभवकी बात हमारे लिये कौनसी है उसमें? पश्चिमके लिये हो सकती है। संस्कृत साहित्यमें यह वास्तुकला(Architecture) पराकाष्ठा को पहुंची हुई थी। केवल आजके नगरोंके बड़े मार्ग देखें। अर्थशास्त्रमें है कि "मार्ग बड़ा, पक्का तथा कछुएकी पीठके समान बनाना चाहिये"। बताइये, संसारके सब बड़े मार्ग इस प्रकार बनते हैं वा नहीं ? अर्थात बीचमें थोड़ा ऊपर और दोनों बाजू थोड़ा ढालुआं होते हैं जिससे कि पानी ठहर न सके और किनारोंसे बह जाय ! इस लिये कहते हैं कि हमें मोहन-जो-दरोपर विशेष गर्व नहीं है। यह सब कमाल भारत देख चुका है। जो भी भारतको अपना मातृ और पितृ देश समझकर सोचेगा उसके लिये सब प्रकाश सामने दीख पड़ेगा। इसलिये न तो वेदमें इतिहास ढूंढनेका प्रयास करना चाहिये न ही आर्य-अनार्य-द्रावड़ आदि भेद खड़े करके ग़लत वाद खड़ा करना चाहिये। न तो वेदमें इतिहास है न ही आर्य-द्रावड़ अलग अलग हैं। यदि द्रावड़ हैं तो वे आर्य ही हैं। भला, वेदमें कहीं द्रावड़ शब्द आया है ? कोई अनार्य शब्द है ? वेदमें अथवा किसी भी संस्कृत ग्रंथमें कहीं भी आर्योंका बाहरसे आना लिखा है ? वेदमें कहीं ऐसा लिखा है कि वेदोंको वेदव्यास अथवा किसी अन्य ऋषिने बनाया ? इसके विपरीत ऐसा नहीं लिखा है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है ? तो फिर सब कुछ इसके विपरीत कहना और समझना केवल अज्ञान नहीं है ? वेदमें अथवा संस्कृत साहित्यमें आर्य और द्रावड़का भेद नहीं है। और यदि अलग नाम एक ही स्थानपर मिलते हैं तो इससे यह स्पष्ट नहीं कि आर्य और द्रावड़ एक साथ रहते अथवा बिलकुल वही अर्थात द्रावड़ भी आर्य ही थे? कहीं भी केवल उसके विपरीत

कोई संकेत मात्र भी न मिलना कि आर्य लोग बाहरसे आए, सिद्ध नहीं करता कि आर्य भारतके मूल निवासी हैं और उनके संसारमें फैलनेके पश्चात भिन्न भिन्न जल-वायुके प्रभावसे जुदा जुदा नाम, देश, जातियां, भाषाएं, रूप-रंग, न जाने क्या क्या और सब अलग हो गया ? संसारके किसी भी भागमें कोई भी है किसीभी नामसे सम्बोधित होता है, सबका रक्त एक है। ब्रिटिश विज्ञानी प्रो० हक्सले ने ठीक लिखा है कि "भारतके आर्य, यूरोपके सफेद लोग (White Men) हैं और इंगलैंडसे बेंगाल तक सबका खून एक है। हिन्दू, ग्रीक और टयूटानिक जातियां सब एक रिश्तेके हैं।[1]

श्री सुनीतिकुमारके पश्चात श्री राखलदास बैनर्जीने भी मोहन-जो-दरोको द्रावड़ संस्कृतिका केंद्र सिद्ध करते सन् १९२७ के "माडर्न रिव्यू" में तीन लेख लिखे थे, जिसमें दक्षिण भारतके अवशेषों, बलोचिस्तान, मोहन-जो-दरो आदि और पश्चिम एशियाके उर (Ur) सहित तुलना करके सबमें समान्ता दिखाई थी। उसने भी मृतकोंके गाड़ने वाली बातको इसी प्रकार अनार्य कहकर सिन्धु-संस्कृतिको द्रावड़ कहा था। इस पूरे लेखसे केवल द्रावड़ मनोवृति निकालदी जाय तो फिर पूरा लेख बड़े महत्वका था। वेद विज्ञानसे अनजान हमारे इन विद्वानोंको यह ध्यानमें ही नहीं आया कि हालकी खोजनाने यह सिद्ध किया है कि आस्ट्रेल्या के आदिवासियों और दक्षिण भारतके आर्यों (जिन्हे द्रावड़ कहा जाता है) की बहुत सी रीति रिवाजोंमें भी समान्ता है।[2]

भाषा शास्त्रियों ने भी सिद्ध किया है कि आस्ट्रेल्याके आदिवासियों, पश्चिम एशियाके सुमेर्यन

---

(1) So far as India is concerned, the internal evidence of the old literature proves that the Aryan invaders were "White Men", and that the high caste Hindus are what they are in virtue a Aryan blood which they have inherited. I am unable to discover good grounds for the severity of criticism, in the name of the Anthropologists, with which professor Max Muller's assertion that 'the same blood runs in the veins of the English soldiers as in the veins of the dark Bengalis', and that there is a legitimate relationship between Hindu, Greek and Teuton, has been visited. So far as I know anything of Anthropology, I should say that these statements may be correct literally, and probably are so substantially, I do not know of any good reason for the physical difference between a high caste Hindu and a Dravidian." (Man's Place in Nature, Pp. 281-2)

(2) Gilbert Slater: Dravidian Elements in Indian Culture, P. 97

और भारतके द्रावड़ों (आर्यों) की भाषामें भी समानता है।[1] बाकी सीधी तरहसे यह नहीं कहते कि सारे संसारके प्राणी मूलत: एक ही वंशपरम्पराके हैं अथवा आर्य-द्रावड़ सब एक हैं। क्या, संस्कृत और द्रावड़ भाषाओंमें कोई समानता नहीं है?

आस्ट्रिक (Austric) द्रावड़ोंमें पृथा है कि वे क़बरके ऊपर एक सीधा खड़ा पत्थर गाड़ते हैं। तो फिर यूरोपके लोगो! ईमानदारीसे सीने पर हाथ रखकर कहिये, कि आज भी आप क्या करते हैं? हर कबरके ऊपर अब भी एक पत्थर इसी प्रकार नहीं गाड़ते हो? कोई हिन्दू ऐसा करता है? तो द्रावड़ आप ठहरे या भारतवासी? और इस बातको छुपानेके लिये भारती लोगोंको राजनैतिक सत्ताका दुरोप्योग कर उनको ही आर्यों से द्रावड़ बना डाला! कोई है भारतवासी जो द्रावड़ कहलाता हो? विदेशी धन पर पले किसी ग्रोहको छोड़कर बाकी कौन द्रावड़ है यहां? यदि है तो किस बुरे अर्थमें? यहां तो ब्राह्मण भी द्रवड़ होता है! समय बीतते, जल वायु के भेद अथवा भौगोलिक अवरोधके कारण आदान-प्रदान रुक जाने से, कुछ रस्में बदरस्में बनगईं। बोलचालमें फर्क आ गया, बस! जाति अलग हो गई? यह तो देखिये संस्कृतके शुद्ध विद्वान उत्तर भारतमें हैं या दक्षिण भारतमें? वेदकी एक एक मात्राकी शुद्धि-अशुद्धि जताने वाले केवल दक्षिण भारत के 'अनार्य-द्रावड़' ब्राह्मण हैं!

वास्तवमें इस शरारतका आरंभ जो जान-बूझकर भारतवासियोंमें भेद डालनेके लिये किया गया वह अक्सर ईसाई पादरियोंने किया। और श्री काल्डवेल (Caldwell) ने भाषा-शास्त्रके धोखे से "Comparative Philology of the Dravidian or South Indian Languages" नामक पुस्तक सन् १८५६में प्रकाशित करनेसे किया। यह पहला ईसाई पादरी था जिसने यह 'द्रावड़' शब्द गढ़ निकाला जो बादमें दक्षिणकी भाषा तथा लोगोंके लिये प्रचलित हो गया। क्यों कि बुराई शीघ्र तथा अधिक फैलती है। यद्यपि बादमें दूसरे भाषा शास्त्री आर्ज ग्रीअर्सनने साफ लिखा कि "यह द्रावड़ शब्द स्वयं संस्कृत शब्द द्रमिल (Dramila) अथवा दमिल (Damila) का बिगड़ा रूप है और केवल तामिलके लिये ही प्रयोग होता है।" यह दबा हुआ सत्य काल्डवेल भी (शायद भूलसे) लिख बैठा था, जो उसके उपरोक्त पुस्तकमें ही है कि "यह (द्रावड़) शब्द असलमें तामिल है और केवल तामिल लोगों तक सीमित है" (2nd. Ed. P. 5-7)। तामिल और तेलेगू व्याकर्ण शास्त्री भी यह शब्द दक्षिण भारतके सभी भाषाओंके लिये प्रयोग नहीं करते (Ibid, P. 8)। और ग़लत होते हुए भी लिखता है "संस्कृत लेखकोंने द्रावड़ शब्द दक्षिण भारतवासियोंके लिये प्रयोग किया"। (Ibd, P. 5) परन्तु बुरे अर्थ (अनार्य आदि) में नहीं।

अब इन्होंने द्रावड़ भाषाका नया नाम गढ़ लिया तो द्रावड़ जाति भी खड़ी करनी पड़ी। राजनैतिक सत्ताके बलपर झूठ तथा बेईमानी पलते हैं, यह भी हुआ। सारी पुस्तक ग़लत तुलनाओं

(1) Pre-Aryan and Pre-Dravidian in India, P.X

श्रोर निराधार तर्कों पर खड़ी है। स्वयं उसे भी द्रावड़ शब्दके मूलका ज्ञान नहीं था जैसा कि वह स्वयं स्वीकार करता है। (P. 12) फिर द्रावड़ोंको (मूलतः भारतके न कहकर) सिथ्यन लोगोंसे जोड़ता है। परन्तु लिखता है "सिथ्यन लोगोंका एक टोला पहले बलोचिस्तानसे होकर आर्योंसे पहले भारतमें आया! दूसरा टोला भी आर्योंसे पूर्व आया। परन्तु पहले आए हुए द्रावड़ थे, मगर दूसरे टोले वाले द्रावड़ होते हुए भी द्रावड़ नहीं थे।" लेकिन इसकी पुष्टिमें कोई प्रमाण नहीं, कोई व्याख्या नहीं। उस ज़मानेमें अंग्रेज़ीमें (न समझने योग्य होने पर भी) किसीने कुछ लिखा तो वह विद्वान (Scholar) समझा जाता था। फिर लिखता है कि 'द्रावड़ीका पुरानी इन्डो-यूरोपीय भाषाओंसे सम्बंध है'। परन्तु आर्योंसे पूर्व भारतमें प्रावहोंके आनेका लिखते भी न जाने कैसे लिखता है कि "द्रावड़ोंका शारीरिक गठन (Physical Type) वैसा आर्यों जैसा है।" (Ibid P. 558) "यह गठन काकेशस है अथवा आर्यों जैसा"। (Ibid, P. 561) सच तो यह है कि जो कुछ भी उसने लिखा है उसे मनुष्य-विज्ञान-शास्त्र (Ethnology) से कोई सम्बंध नहीं। फिर भी लिखता है "द्रावड़ और आर्य बिलकुल अलग हैं।" आर्यों जैसे हैं किन्तु आर्य नहीं, अंग्रेजों जैसे हैं किन्तु अंग्रेज़ नहीं हैं। लेकिन एक मनुष्य-विज्ञान शास्त्री (Ethnologist) श्री कैम्पबेल (Sir George Campbell) ने उसका सब बना बनाया ठार कर दिया। उसने लिखा "मैं उत्तर और दक्षिण भारतकी समाजमें कोई विशेष भेद नहीं देखता... द्रावड़ नामकी कोई भी भिन्न जाति नहीं हैं। ... निःसंदेह दक्षिण भारतवासी गठन, रीति-रिवाजों और नियम-व्यवहारमें केवल एक आर्य समाज (Aryan Society) है।[1]

यह चोट लगनेके पश्चात कालडवेल महाशय कहने लगा कि "श्री कैम्पबेलके 'Physical Type' के विषयमें ये विचार ऐसे ही दृढ हैं जैसे मेरे। केवल इसके समानता दिखानेका कारण भिन्न है"। स्पष्ट था कि भाषासे मनुष-जीवन शास्त्रका महत्व अधिक था। कालडवेलकी मानसिक शरारत क्या थी वह बात भी स्पष्ट है। उसी ही समय श्री गोवर (Gover) ने दक्षिण भारतके लोक गीतों पर एक पुस्तक "Folk Songs of Southern India" लिखकर उसमें द्रावड़ोंको आर्य सिद्ध किया था। परन्तु पादरी कालडवेलकी मनोवृति ही बद थी उसने दुःख और शिकायत प्रकट करते

(1) I draw no wide ethnological line between the northern and southern countries of India, not recognising the separate Dravidian classification of the latter as properly ethnological..... A change takes place where passing southward we exchange the Maratha for Telegu or Canarese...But looking at the people we see no radical change of features...... I have no doubt that the southern society in its structure, its manners and its laws and institutions is an Aryan society." (Ethnology of India, P. 15)

लिखा कि "श्री गोवर द्रावड़ोंको राजनैतिक दृष्टिसे ऐसा मानते हैं"।[1]

परन्तु श्री बाशम (A.L. Basham) ने अपने एक लेख "Some Reflections on Dravidian and Aryans" में जो कुछ लिखा उसने तो सबका सफाया कर दिया। वह लिखता है "इतिहास लेखकोंने मोहन-जो-दरो और हड़पाको द्रावड़ कहा है, परन्तु मोहन-जो-दरोमें देखी गई धार्मिक बातें, दक्षिण भारतकी विशेष नहीं हैं, न ही दोनोंकी खोपड़ियां एक दूसरेसे मिलती हैं। इसलिये न कोई द्रावड़ जाति है न ही आर्य।[2] और हम भी एसा ही मानते हैं कि "केवल मनुष्य जाति"।

सो श्री राखलदासने दूसरी प्रकारसे और सब अच्छा लिखा था। परन्तु इस लेखमालाके समापन पर ये शब्द बड़े रोचक लिखे कि "तो भी ये द्रावड़ वर्तमान द्रावड़ोंसे नितांत भिन्न हैं।"[3] (सत्य भी सिद्ध न हो, गलत तो वैसे ही लिखा है)।

क्यों? ये द्रावड़ कहां और किस प्रकार उगकर निकले? ऐसा तो नहीं था न कि दक्षिण भारतके द्रावड़ सीधे ग्रीनलैंडसे आर्यों ने आयात (Import) किये थे? कैसा भद्दा मज़ाक है! अपनी ग़लत बातको सही सिद्ध करनेके लिये कैसे भद्दे दलील गढ़ लिये जाते हैं! हमारे लेखक इसी प्रकार नाम मात्र बातोंपर धोखा खा जाते हैं। क्योंकि उन्हें बहुतसे मूल तथ्योंका ज्ञान नहीं होता। दक्षिण भारतमें कुछ समाधियां हैं जिनको श्री राखलदासने केवल 'Pandu-Kuli' नाम सुनकर अनुमान कर लियाकि ये महाभारतके पाण्डवोंके मंदिर हैं। परन्तु कोइम्बटूरके श्री वैंकटरामनने तुरंत इस बातका खण्डन करते लिखा "यह गलत है, तथा 'पाण्डुकुली' शुद्ध तामिल शब्द है जिसका अर्थ है 'पाण्डवों का गढ़ा' न कि मंदिर। परन्तु यह 'पाण्डुकुली' शब्द स्वयं भी 'मांडव कुली' का बिगड़ा रूप है जिसका अर्थ है कब्र (समाधि)"।[4]

मुबई के पादरी हेरास (F. Heras) ने एक बड़ी पुस्तक लिखकर मोहन-जो-दरोको

(1) "He (shri Gover) considers it of great moral and political importance to prove that the Dravidians are Aryans and not a Scythian race. The Scythian theory shuts up the door of sympathy and fellow-feeling betwwen the Dravidian peoples and their English conquerors." (Ibid, p 535)

(2) "There is no Dravidian race and no Aryan race." (Bulletin: Institute of Historical Research [Madras], 1963, P. 225)

(3) "But it is quite possible that the people who brought it (burial system) from another land were quite different from the modern inhabitants of Dravida."

(4) Modern Review, January 1928

"Proto-Mediterranean" दिखानेका प्रयास किया तथा लिपिको पढ़नेका असफल प्रयत्न किया।

जर्मनीके पुरातत्ववेता (Archaeologist) श्री प्रूफर (Olaf Prufer) ने सर रतन टाटा ट्रस्ट, मुम्बईकी ओरसे बर्मासे पंजाब और कोहिस्तान (सिंध) तक लगभग २० स्थानोंकी खुदाई दो वर्षमें की, जिसमें उसे पैल्योलिथिक कालकी चीजें तथा कोहिस्तानसे हड़पा-संस्कृतिके अवशेष मिले[1] इसके पश्चात संसारके अनेक भाषाओंमें इस विषय पर साहित्य प्रकाशित होता रहा और हो रहा है। परन्तु वह केवल वादविवाद है तथ्य नहीं।

यह (मोहन-जो-दरो) एक बड़े साम्राज्यका नगर है न कि सर्वथा केवल सिन्धी संस्कृति। अकेली संस्कृति किसी क़बीले (टोले) विशेषकी होती है, जो बादमें शक्ति पकड़कर कौम भी बन सकती है, जैसाकि हमने ऊपर लिखा है। हम मोहन-जो-दरोको विशेष महत्व इसलिये नहीं देते, क्योंकि ऐसी सुलझी हुई संस्कृति केवल मोहन-जो-दरोमें नहीं है। किन्तु ऐसे अवशेष सारे भारतमें बलोचिस्तान से बेंगाल तक मिले हैं। यदि भारतसे बाहर देखेंगे तो इंगलैंड-जर्मनीसे पैस्फिक महासागर और अमेरीका पर्यंत ऐसे अवशेष मिले हैं। फिर भी हम इस साम्राज्यका दायरा भारतसे पश्चिम एशिया तक सीमित रखते हैं। शेष और स्थानोंपर भारती अथवा इन्हीं पश्चिम एशियाके आर्योंने फैलकर विस्तार बढ़ाया है। उनके अब मिट जानेके कारण केवल यादगार (अवशेष) मिल सकते हैं। सारे भारतमें पश्चिम, पूर्व, दक्षिण तथा मध्यमें ये अवशेष मिले हैं। दक्षिणमें कुछ कम हैं इसलिये कि भौगोलिक सुविधाए कठिन थीं। उत्तरसे दक्षिणकी ओर जाने आनेमें भौगोलिक कठिनाइयां हैं, यह अनुभव किया जा सकता है। तो भी भारत हर कालमें केवल भारत रहा है, न कि उत्तर-दक्षिण अथवा और कुछ। सब अवशेष खण्डहर, नगर यदि कुछ विज्ञानिक वादोंको छोड़कर निर्णय लिया जायगा तो हमारी दृष्टिमें केवल प्राकृतिक आक्रमण, अथवा बाढ़के प्रकोपोंसे त्याग दिये (deserted) गये हैं। छोड़ दिये गये, खाली किये गये तो वर्षोंके पश्चात वे लोग फिर आए और अपनी पैतृक भूमिको फिर बसाया और इसप्रकार लगातार होता रहा। क्योंकि प्राकृतिक कोप भी इस प्रकार होते ही रहते हैं। इसका ज्वलंत प्रमाण मांझंद (सिन्ध) का नगर था। बाढ़ आती, नगरका कुछ भाग खाली होता, पीछे हटता फिर बसता, लेकिन किसी मांझंद निवासीने अपने बाप दादोंकी भूमिको नहीं छोड़ा। मगर मोहन-जो-दरो-में इसके विपरीत, बाढ़का खतरा आता रहा, धड़ाके होते रहे, हिरासमें आकर नगरवासी जो कुछ उठा सके ले गए, शेष वहीं पड़ा रहा, नीचे दब गया। इसप्रकार अनेक बार हुआ अनेक बार फिर बसा गया। इसप्रकार तह के ऊपर दूसरा तह जमता गया, और नगर भी बार बार बसता गया। ज़मीनमें फ़र्क आ गया। अंतिम बार लोगोंने तंग आकर नगरको सदाके लिये अलविदाय किया और सामने ही पश्चिकी ओर बढ़ते गये। क्योंकि पूर्वकी ओर

(1) The Orient [Hong-kong], August 1953

बचनेका रास्ता नहीं था। बलोचिस्तानसे ईरान गए। दूसरे भागोंमें तो वैसे ही साधारण तौर समुद्र मार्गसे गए और फैले जिसका वर्णन आठवें अध्यायमें करेंगे। सो इस प्रकारका अपने जन्मस्थानका लगाव मनुष्यके स्वभावमें सदासे है। आजका सिन्धसे भागा सिंधी (यद्यपि भारत वैसे ही उसका देश था और है) जिस मिट्टीसे हाथ भरकर अपने बालपनमें चाटे हैं वह मिट्टी उसके रक्तमें है। वह जबतक जीवित रहेगा उसकी आँखें उसे देखनेको तरस्ती रहेंगी। और यदि सिन्ध उनके हाथ आ जाय तो जीवनके बाकी दिन अवश्य वहां अपने गांव और उसी स्थान पर जहां उसका मूल घर था वहां काटना चाहेगा। केवल १०-२० गज़ दूर वाला स्थान भी उसके लिये इतना प्यारा नहीं होगा जितना अपना असली घर जहां उसका बचपन बीता। यह लगाव हर मनुषमें रहता है। परदेसमें होगा तो भी मरना अपनी मिट्टीमें चाहेगा, यह केवल स्वभाविक नियम है। यही बात उन प्राचीन लोगोंकी भी है। जो फिर उसी स्थानपर बसे, फिर कारण बना तो छोड़ निकले, शांति होने पर फिर आए। इसप्रकार हज़ारों वर्ष बीत गए। हर नई आबादीको ही सैकड़ों वर्ष हो जाते हैं। इसप्रकार तहके ऊपर तह (Layers) बनते गए। यद्यपि ऐसा हर स्थान पर नहीं होता है, केवल नदी तट पर जल और यातायातकी सुविधा वाले नगरोंमें ही बहुधा होता है। मोहन-जो-दरो भी अच्छा पट्टन (छोटा बंदर) था, बड़ा नगर था, हो सकता है छोटी राजधानी भी हो। क्यों कि बड़ी इमारत और उसका तालाब, महल सा लगता है। मोहरें सब सिक्के प्रतीत होते हैं। प्राचीन कालमें अक्सर व्यापार अदला-बदली (Barter-system) से होता था। सिक्के अवश्य थे किन्तु उनका चलन कम था। आजसे आधी शती पूर्व भी ऐसा ही था। कौड़ी, पाई, पैसा, ड्ोकर, टका, आनी लाचार पाउली, बस। बड़ा सिक्का (रूपया आदि) मुश्किल से प्रयोगमें होता था, केवल बड़े सौदे-व्यापारमें। कितनाभी वैभव हो तो भी जीवन सादा था। इसलिये ये मोहरें कोई तावीज़ थे! अथवा और कोई निरर्थक साधन, ऐसा कहना सब दिमाग़ी फ़ितूर है। इसका कारण केवल यही है, जैसाकि ऊपर लिखा गया है कि वेदोंको समझा ही नहीं गया है। स्वयं हिन्दू भी वेदोंकी महान्ताको नहीं जानते। क्योंकि समझनेकी योग्यता ही नहीं रही है उनमें। अनजानेमें ग़लत अनुमान ही लगाए जाते हैं। तपस्याका कार्य है। बड़े बड़े विद्वान भी गलत-गुमराह अनुवादोंका सहारा लेकर अपनी हांक रहे हैं। वेदोंको समझनेके लिये जीवन लगाना है। तो फिर प्रोफेसर और स्कालर कैसे बना जाएगा, अगर जीवन केवल वेद को समझने में चला जाय। इसलिये सब इसप्रकार चल रहा है। और यह सब तबतक समझमें नहीं आ सकेगा जब तक शुद्ध वैदिक ज्ञानकी ओर अपनेको मोड़ा नहीं गया है। नहीं पढ़े हुए लेख भी तब समझमें आ सकेंगे जब वैदिक साहित्यका शुद्ध दृष्टि और मनसे अध्ययन किया जाएगा।

अब मोहन-जो-दरो का विस्तार लिखते हैं!

हड़पा! वास्तवमें मोहन-जो-दरोसे पूर्व तो हड़पाके अवशेष मिले थे। मोहन-जो-दरो तो बहुत

बादमें मिला था। परन्तु तबतक स्वयं हड़पाका भी महत्व नहीं था। जब मोहन-जो-दरो खुला और समझा गया तब हड़पा और नल (बलोचिस्तान) भी समझमें आ गये। हड़पा ज़िला मंटगोम्री (पंजाब) में रावी नदीके निकट है जिसकी जानकारी तो बहुत पहले थी, इसलियेकि वहांसे कुछ चीज़ें और मोहरें, बैल का बुत आदि सन् १८७५ में ही मिले थे, जिसका उल्लेख श्री अलेकज़ेंडर कन्निघमने किया था। उसकी कुछ चीजें ब्रिटिश म्यूज़यम, लण्डनके लिये भी हस्तगत की गई थीं। सन् १९२०-२१में श्री दयाराम साहनीने बड़े पैमाने पर इसकी खुदाई करवाई। परन्तु विशेष कार्य दो वर्ष पश्चात हुआ और मालूम हुआ कि वह बड़ा नगर था और बड़े क्षेत्रफलमें फैला है। उसके बहुत तह (strata) हैं। परन्तु उसमें से मिली चीज़ोंको इतना महत्व नहीं मिला। इधर सन् १९२२-२३ में मोहन-जो-दरोकी खुदाई हुई। उसमेंसे जब वैसी चीजें मिलीं तभी हड़पा और बलोचिस्तानकी वस्तुएं भी श्री राखलदास बनर्जीके ध्यानपर उभर आईं, जो मोहन-जो-दरोकी खुदाई करवा रहा था। बस फिर इसकी तुलना आरंभ हो गई और हड़पाको भी महत्व मिल गया, जो पहले ढंका हुआ था।

सिन्धमें! मोहन-जो-दरो जैसे अवशेष तो सिन्धमें अनेक हैं किन्तु खुदाई बहुत कमकी हो पाई है। विशेष ये हैं :-

चाहूं दरो। सन् १९३५-३६में अमेरीकन पुरातत्ववेता श्री अर्नेस्ट मैकेने, म्यूज्यम आफ फाईन आर्टस, बास्टन' की ओरसे, भारत सरकारकी सहमतिसे चाहूंदरोकी खुदाई कराई। यह नवाबशाह ज़िलेके सकरंड कस्बेके निकट 'जमालकर्यो' गांवसे आधा मील दक्षिणमें है। कुल तीन टीले ६ एकड़ ज़मीनमें फैले हैं। सिंधू नदीसे १२ मील दूर पूर्वी तटपर है। सिन्धू पहले तीन मील दूर बहती थी, जिसका पेट अभी विद्यमान है। मोहन-जो-दरो इससे ८० मील दूर उत्तर पश्चिमकी ओर नदीके बांए किनारे पर है। सबसे ऊंचे और बड़े टीलेकी खुदाई १७ फुट तक हुई है, जिसमें से एक दूसरेके ऊपर चार नगरोंके चिह्न मिले हैं। ऊपरके तहमें से हाथके बने बरतन मिले हैं जो किसी घुमकर प्राचीन कबीलेके हैं (जैसेकि कहा जाता है), आयु का पता नहीं। ये श्री मजुमदारकी ओरसे झांगड़ दरो (चाहूं से ४३ मील उत्तर की ओर) में से मिले बरतनों जैसे हैं। इसका समूचा विवरण पुस्तकाकारमें " Chanhu Daro Excavations, 1935-36 " नामसे उपरोक्त म्यूज़्यमकी ओरसे प्रकाशित हुआ था। इसमें मोहन-जो-दरो तथा हड़पाका भी थोड़ा समावेश है।

कोट दृजी! यह खैरपुर (रियासत) नगरसे १५ मील दक्षिण और कोट दृजीके उत्तरमें है। ६०० फुट लम्बा, ४०० फुट चौड़ा और ४० फुट ऊंचा खंडहर है। इस दरोमें से पहलेही काफी चोरी हो चुकी है, मिट्टी और पत्थर भी लिये गये हैं। खुदाईका काम प्रथम वार नवम्बर १९५८में आरंभ हुआ और एक महीने तक चला, अच्छा प्रकाश पड़ा। फिर १९५७के आक्टोबरमें खुदाई

हुई, जिसमें से मोहन-जो-दरोके अवशेष मिले। विशेष बात यह है कि यहांसे कोट (किलेकी दीवार) के अवशेष मिले हैं जिसकी बुनियाद पत्थरके ब्लाकों पर है। मिट्टीके बरतन और दूसरी बहुतसी चीज़ें मिली हैं। बरतनोंकी कारीगरीमें थोड़ा फर्क है, जो स्वभाविक है। एक ज़िलेकी दूसरे ज़िलेसे भी कोई बात मुश्किलसे मिलती है। पत्थरके औज़ार और तीरों के नेज़े (Points) भी मिले हैं, जिनमें से कुछ बहुत सुंदर हैं। कुछ चीजें मोहन-जो-दरोसे अधिक अच्छी भी हैं। इसलिये पाकिस्तान आर्केआलाजीके अध्यक्ष श्री खानके अनुसार "कोट-दुजी" में मोहन-जो-दरोसे पूर्वके चिह्न हैं।[1]

आमरी! यह मांझंद तहसीलमें लकी तीर्थसे ६५ मील दक्षिण तथा सन गांवसे ९ मील उतरकी ओर है। इसका उपर्ला भाग मोहन-जो-दरो जैसा और समयका है तो निचला इससे भी प्राचीन। इसके चिह्न उधर मध्य प्रदेशमें मिली चीज़ोंसे मिलते हैं। इस खंडहरसे भी पकी मिटीसे बने खिलौने, पत्थरके दाने (beads), चित्रित बरतन मिले हैं। जितनी उसकी तपास हुई है उस अनुसार यह खंडहर पत्थर युगसे भी पूर्वका है (जिसका समय वैज्ञानिकोंको भी मालूम नहीं)। सरकारकी रुची न रहनेसे अधिक खुदाई न होनके कारण यह रहस्य ऐसेही दफन पड़ा है।

झुकर! यह खंडहर लाड़काणासे ६ मील पश्चिममें बेड़ियो चांडियो स्टेशनसे डेढ मील दूर है। श्री मजुमदारको इसकी खुदाईसे तांबेका बना एक टूटे भालेका अग्रभाग मिला था। इसके ऊपरेल तह बादके हैं। नीचे मोहन-जो-दरोके चिह्न हैं।

नारो-जो-दरो (ढोरो)! यह खैरपुर (मीर्स) के टंडो मस्तीखान स्टेशनके पूर्वमें दो मीलके घेरेमें रेतीके टीले फैले हुए हैं। इनके दक्षिण पूर्व छेड़े पर यह दरो है और कोटदुजीसे ७ मील उतर पश्चिमकी ओर हैं। खिलौनोंकी गाड़ियां, चूड़ियां, मिटीके बरतन मिले हैं। इसके सिवाय 'लोहमो-जो-दरो' आदि अनेक दरे (Mounds) ऐतिहासिक महत्वके सिंधमें हैं। इन सबका उल्लेख श्री एन० जी० मजुमदारने " Explorations in Sind, 1935" में किया है, परन्तु खुदाई कौन करे। हिन्दुओंको अपने धर्म तथा संस्कृतिकी चिन्ता नहीं। न ही कोई सिंधी पुरातत्व को जानता है। सरकार "सरकारी गति" से ही कार्य करती हैं। मोहन-जो-दरोके समान यहांसे सोना चान्दी मिलनेका लालच हो तो कुछ हो सके, जो न भी मिले। इसलिये ये सब और दूसरे अनेक ऐसे ही पड़े हैं।

भारतमें! सिंधसे बाहर भारतमें भी अनेक स्थान इस सिन्धु-संस्कृति जैसे मिले हैं, जिनमें से कुछ ये हैं:-

लोथल! यह गुजरातके अमदावाद जिलेमें ढोलका तहसीलके सरगवाला गांवके पास है। निकटमें दो मीलकी दूरी पर सौराष्ट्रकी भोगावो नदी बहती है, जो साबरमतीमें जा पड़ती है।

(1) Preliminary Report on Kot-Diji Excavations, P. 15

यह एक छोटा मोहन-जो-दरो है। किसी कालमें छोटासा बंदर भी होगा जैसाकि उसके दिके (platform) तथा गोदी (dock) से मालूम होता है (जिस प्रकार सिंधका भंभोर में)। इसकी बरबादी पानीके बाढ़से हुई है। परन्तु त्यागनेके पश्चात बार बार बस्ता रहा है। ऐसे चार तह (stratum) देखनेमें आते हैं। उपलब्ध माल सामान सब मोहन-जो-दरो जैसा है। समान कारीगरीसे बनी मोहरें भी मिली हैं। ५ लाख पत्थरके तथा हज़ारके लगभग सोनेके दाने (beads) मिले हैं। मकानोंकी बनावट तथा रचना (plan) सब समान है। छोटे छोटे खिलौने तो सब लगभग इसप्रकारके हैं कि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि ये मोहन-जो-दरोसे यहां अथवा हड़पाको जाते थे अथवा हड़पासे यहां आते थे या यहांसे वहां जाते थे। मोहरोंकी बनावट और कारीगरी सब जगह एक समान सुंदर है जैसेकि ये सब सिक्के एक ही टकसाल (Mint) में तैयार हुए हैं। सबसे महत्वकी वस्तु है एक ओज़ार जो सम्भवत: कोन मापनेका काम देता होगा। और दूसरी एक हाथीदांतकी पट्टी है जिस पर छोटी छोटी लकीरें खुदी हैं, वह शायद फुटपटी है जिससे लम्बाई नापी जाती होगी। यह एक बिलकुल निराली चीज़ अकेले यहांसे मिली है।[1] इसके सिवाय एक गलेका हार(Necklace) मिला है जिसमें जो अति सुंदर और बारीक दाने पिरोए हुए हैं वह तो स्वर्णकार (सुनार) के अदभुत (extraordinary) कारीगरीका एक नमूना है। फिर दोनों छेड़ोंपर अर्ध गोल उन लड़ोंको ढ़ांकने तथा सुंदरताके लिये मढ़े हैं, वह तो उसकी बुद्धिकी क्षमता ही है।[2] और जैसा ऊपर लिखा है, बीचमें सुराख किये हुए बड़े भाड़ी पत्थर जो लंगरके तौर पर प्रयोगमें लाये जाते थे, यहांसे भी मिले हैं और दिके (dock) वाले स्थानसे ही मिले हैं।[3]

एक विशेष बात यह है कि खुदाईमें से एक घरके रसोईघरमें से ३-४ चूल्हे एक साथमें बने मिले हैं, जिनका रिवाज अबतक सिंधमें है।[4] पत्थरका एक मूसल (Pestle) और मसाला पीसनेका पत्थर भी मिला है जिस जैसा आज भी प्रयोगमें होता है।[5] तांबे, कांसेकी चीजें तथा कांसेकी आरसी (Mirror) बिलकुल मोहन-जो-दरोके अनुरुप ही मिली हैं, जैसेकि वहांसे उठकर यहां पहुंची हैं।[6] यद्यपि तांबे और कांसेकी जो भी चीजें मिली हैं वे मुर्चा (Rust) लगा तथा बिगड़ी अवस्थामें हैं।[7]

अब जबकि केवल पांच हज़ार वर्ष पुराने खंडहरोंसे धातुकी वस्तुएं (सोनेको छोड़कर) इस अवस्थामें मिलती हैं तो जहांसे ऐसी नहीं मिली हैं उनका समय कितना अधिक प्राचीन होगा ?

(1) Indian Archaeology [A Review], 1959-60, P. 17, Plate XIII
( ) Ibid, 1956-57, P. 6, Pl XV/C
(3) Ibid, 1961-62, Plate XIX/A
(4) Ibid, 1962-63, Plate LVIII
(5) Ibid, plate LX
(6) Ibid, 9163-64, plate XXI
(7) Ibid, 1957-58, plate XXI/B-B

केवल इस कारण उनको कम उन्नत नहीं कहा जा सकता। जहांसे ऐसी वस्तुएं मिली ही नहीं हैं, क्योंकि लंबे समय बीतने पर वे जल (Rusty) कर नष्ट हो गईं, तो इसमें उस संस्कृतिका क्या दोष! वास्तवमें पत्थरयुग वाले स्थानसे किसी भी धातुका न मिलनाही उसके अति प्राचीनताका लक्षण है कि इस बीच ये सब गल सड़कर नष्ट हो गये, और बाकी पत्थर बच गया। दबे गड़े नगरोंमें कुछ इसप्रकार बचना, नष्ट होना, स्वभाविक तो है ही। फिर उसी समय दाइमाबाद (ज़िला अहमदनगर) से परवर नदीके बाएं किनारे पर से वैसेही धातुकी वैसीही अवस्थामें चीज़ें मिली हैं किन्तु उसको मोहन-जो-दरोके समान स्तर पर नहीं रखा जाता।[1]

काली बंगन! यह गंगानगर (राजस्थान) ज़िलेमें विशेष महत्वका खण्डहर है और घघर (पुरानी सरस्वती) नदीके बाएं तटपर १२ मीटर ऊंचा टीला है। इसमेंसे भी बिलकुल मोहन-जो-दरो और हड़प्पा जैसे अवशेष मिले हैं। निर्माण कार्य तथा योजना सब समान है। एकही प्रकारकी वस्तुएं भी मिली हैं। विशेष बात यह है कि इसमें से मिले बरतन (Pottery) सिन्धमें कोटडूजीमें मिले बरतनोंसे अधिक समानता रखते हैं। खिलौने भी वैसे ही हैं।[2]

इसके सिवाय रूपर (Rupar) ज़िला अम्बाला, पंजाब[3], रंगपुर (Rangapur) ज़िला झालावार, सौराष्ट्र[4] में से विशेष तौर तथा भारतके प्रत्येक भागमें पश्चिमसे पूर्व और उत्तरसे दक्षिणतक साधारण तौर इस (सिन्धु) संस्कृतिके अवशेष मिले हैं। सारे सौराष्ट्रमें ही कोई ३० स्थानोंसे मोहन-जो-दरो जैसे बरतन मिले हैं।[5] अकेले भादर नदी (सौराष्ट्र) की तराईमें से १२ स्थानोंपर मोहन-जो-दरोके चिह्न मिले हैं।[6] सारे कच्छ, सौराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाबमें ये अवशेष मिले हैं। उत्तर और मध्य प्रदेश, बंगाल, महाराष्ट्र और दक्षिण भारत एक ही समान संस्कृतिके अधीन थे। भले, दक्षिणमें कम अवशेष मिले हैं तो इसके कारण हैं, तो भी हैं अवश्य। इसीप्रकार भारतसे बाहर भी यही विशाल संस्कृति कार्य कर रही है। पश्चिममें बलोचिस्तान-ईरानसे लेकर सारे पश्चिम एशियामें इसके अवशेष मिले हैं, बिलकुल यूरोपमें भी। तो फिर यह अकेली सिन्धु संस्कृति कैसे हो सकती है। भारतका ही एक महान साम्राज्य होगा न!

गंडेस्ट्रप (Gundestrup) जर्मनीसे गाल देवता Cerunnus का चित्र एक चांदी की बड़ी कड़ाही (Caldron) पर खुदा हुआ मिला है, जिसके जैसा सर्वथा समान रूपका मोहन-जो-दरोकी एक मोहरपर चित्रित है।[7] इधर पूर्वमें पैस्फिक महासागरके ईस्टर द्वीप (Easter Island) में एक अति प्राचीन संस्कृतिके अवशेष मिले हैं। विशालकाय पत्थरोंके अनेक बुत (Statue) स्थान

(1) Ibid, 1958-59, P. 17, Plate XXI/B
(2) Ibid, 1960-61 Pp, 31-33 (3) Ibid, 1953-54, P. 6
(4) Ibid, P. 7 (5) Ibid, 1957-58, P. 19 (6) Ibid, 1957-58, P. 19
(7) National Geographic Magazine, May 1977

स्थानपर ऐसेही गड़े हुए हैं। जिनमेंसे छोटेसे छोटेका वज़न ५० टन होगा। वैज्ञानिक चकित हैं कि इतने बड़े पत्थर वे लोग बिना मशीन (Crane) के किस प्रकार उठा सके होंगे।[1] अमेरीकाके लाल हिन्दूओं (Red Indians) के Jaguar, माया, अज़टेक आदिमें भी इतने बड़े पत्थरके बुत हैं। हो सकता है कि सिन्धु संस्कृतिवाले लोग पहले ईस्टर आइलण्ड गये, इसके पश्चात अमेरीकामें भी गये होंगे। इसके बाद नार्वे (Norway) के श्री थोर (Thor Heyerdhal) ने इस विषयपर "Aku Aku" नामक पुस्तक लिखी जो नार्वेज्यन आदि भाषाओंमें छपी और सन् १९५८में अंग्रेज़ी संस्करण अमेरीकासे प्रकाशित हुआ है। उसमें लिपिका चार्ट भी दिया हुआ है।[2] उसकी लिपिके विषयमें हमें कुछ शंका हुई तो हमने पादरी सेबास्शन (Sebastian Englert) को ईस्टर आइलण्डमें इसकी प्रमाणिकताके विषयमें लिखकर पूछा, जो ही वास्तवमें वहांके आदिम निवास्योंमें रहकर खोजकर रहा है (था)। उसने अपने पत्र ३-१०-१९६४ में दूसरे विवरणके साथ हमें यह भी लिख भेजा कि "मोहन-जो-दरो और ईस्टर आइलण्डमें आश्चर्यजनक समानता है"। :-

"There is doubtless, a surprising similarity between Easter Island ancient script and that of Indus Valley (Mohenjo-Daro and Harappa)."

आर्कआलाजीकल सर्वे, भारत सरकारके श्री छाबड़ाको ये लेख पढ़ने समझनेके लिये वहां बुलाया गया था. जिसने भी वहांसे लौटनेपर इसप्रकारकी ही राय दी थी। कैसे भी इस संस्कृतिकी छाया इतनी दूर पूर्व तक भी है। और हमारा विश्वास है कि अमेरीकाके प्राचीन निवासी माया लोगोंकी लिपिसे भी सिन्धु लिपिकी समानता है।[3] और इधर उत्तरमें श्री मैकाऊन (D.E. Mc Cown) के अनुसार तुर्किस्तानके आक्सस (Oxus) नदीकी घाटीमें से भी इसी प्रकारके अवशेष मिले हैं।[4] और बिलकुल अभी रशियामें ऐसे मोहरें भी मिली हैं, जिनसे स्पष्ट है कि ये लेन देनेके सिक्के (Coins) हैं।

सिन्धु संस्कृति और सम्राट् सगर!

अब जब कि सिद्ध होता है कि यह प्राचीन संस्कृति अकेली सिन्धकी थाती नहीं है अपितु किसी विशाल साम्राज्य तथा अभिन्न भण्डारका प्रधान अंग है, जो मुख्य नगर अथवा राजधानी भी हो सकता है, और उसका फैलाव संसारके अधिक भाग तक है और यह किसी एक ही सम्राटके छत्रछायाके अधीन होगा (यह रामायण-महाभारतसे भी पूर्व की बात है) तो इसलिये पहले इसको भी देखें।

(1) Ibid, February 1944

(2) Aku Aku- The Secret of Easter Island, P. 224

(3) National Geographic Magazine, February 1922

(4) Budh Prakash- Rgveda and the Indus Valley Civilization, P. 4

ऐसे महत्वपूर्ण और विशाल साम्राज्यका वर्णन किसी भी संस्कृत ग्रन्थमें नहीं है। इसलिये ये अवशेष और भी अधिक प्राचीन सिद्ध होते हैं। लोगोंकी स्मृतिसे ही मिट चुकी बात होकर रह गई। यहांतक कि लोककथा भी न रही। नहीं तो कहीं तो इसका उल्लेख मिला होता। तो भी यह कौनसा साम्राज्य है?

हम श्री वाडेल (**L.A. Waddell**) के इस विचारसे कुछ सहमत हैं, जिसने मोहन-जो-दरोकी कुछ मोहरोंको किसी प्रकार भी पढ़कर, पश्चिम एशियाके प्राचीन अगदे (Akkad) के सम्राट सार्गन (Sargon) और अयोध्या (भारत) के सम्राट् सगरकी समानता सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है (था)।[1] अब भारती इतिहासमें कोई ऐसा पराक्रमी सम्राट् हुआ है क्या? और वह अयोध्याका सगर हो सकता है क्या? तो पहले इसका इतिहास देखें।

श्री पीर्जीटर (F.E. Pargiter) के अनुसार मनु महाराजके इक्षवाकु वंशकी अयोध्या वाली शाखाकी ४१वीं पीढ़ीमें सगर राज हुए।[2] यह उस समयकी बात है जब सिंध नामका प्रदेश 'सिन्धू' नामसे अस्तित्वमें नहीं था। क्योंकि सिंधको नाम देनेवाला राजा सिंधु-द्वीप सम्राट सगरसे आठवीं पीढ़ीमें हुआ, जिसमें ही राजा दशरथ और भगवान राम हुए। स्वयं सम्राट सगर हरिश्चंद्रकी आठवीं पीढ़ीमें हुआ था। दक्षिण मालवामें राजा भद्रश्रेणयके समयमें हैहय वंश शक्तिशाली हुआ तथा पूर्वकी ओर बढ़ने लगे। इस वंशका चौथा राजा अर्जुन कार्तवीर्य बहुत शक्तिशाली था, जो माहिषमतीमें राज्य करता था। बादमें हैहय वंशवालोंने तालजंघ वंश वालों और उत्तर पश्चिमके दूसरे वंशवालोंकी सहायतासे अयोध्यापर आक्रमण करके राजा बाहूको राज्योच्युत कर दिया। राजा बाहूका पुत्र राजा सगर था, जिसने ज़ोर पकड़कर सब विरोध्योंको पराजित कर, अपना राज्य हस्तगत किया।[3]

विष्णुपुराणके अनुसार "इक्षवाकु वंशी राजा वृकके पुत्र बाहू (बाहुक) के राज्य पर हैहय और तालजंघ (ये दोनों यदुवंशी राज्य थे। हैहय यदुकी चौथी तथा तालजंघ १५वीं पीढ़ीमें हुए जो अब भी हैहय [वर्तमान कलचुरी और तालजघ] कहलाते हैं) ने आक्रमण किया। वह पराजित होकर अपनी रानियों सहित वनमें जाकर रहा जहां और्व ऋषिके आश्रममें उसकी मृत्यु हुई। और्व ऋषिने बाहूके पुत्र सगरको वेद-शास्त्र पढ़ाए, अस्त्रविद्या सिखाई, विशेषकर भार्गव नामक अग्नेय-अस्त्र (Rocket) का प्रयोग सिखाया। एक दिन उस (सगर) ने अपनी मातासे ऋषि आश्रममें रहनेका कारण जानकर क्रोधमें भरकर अपना पैत्रिक राज्य वापस लेने तथा हैहय और तालजंघ वालोंका नाश करनेकी प्रतिज्ञा की। उस अनुसार उसने सब हैहयोंको जीता तथा उन उत्तर पश्चिमके दूसरी जातियों-शक, यवन, काम्बोज और पह्लवोंको भी (जिन्होंने राजा बाहूका राज्य छीननेमें हैहयोंकी सहायता की थी) मारकर बरबाद कर देता परन्तु उन्होंने अपनी रक्षाके

(1) Indo-Sumerian Seals Deciphered, P. 63
(2) Ancient Indian Historical Tradition, P, 147
(3) Ibid, P. 153

लिये उसके कुलगुरु वशिस्ठकी जाकर शरण ली, जिसने सगरको रोका और कहाकि तुम उनका पीछा मत करो, मैंने तेरी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये उनको आर्योंके दायरेसे बाहर निकाल दिया है (नहीं तो मनुस्मृति १०,४३-४४ के अनुसार वे मूलमें आर्यं क्षत्री थे)। सगरने कुलगुरुका कहना मानकर उन जीती हुई जातियोंमें से यवन लोगोंको सिर मुण्डाकर रहने, शकोंको आधा सिर मुण्डाकर रहने, पारदोंको बाल बढ़ाकर बड़े रखने तथा पहल्वोंको दाढ़ी रखनेकी आज्ञाकी और इसी प्रकार अन्य गुटवालों (Allies) के साथ भी वैसा व्यवहार किया। बादमें ब्राह्मणोंने भी उनका साथ छोड़ दिया जिससे ये म्लेच्छ हो गये।। राजा (सगर) अपनी राजधानीमें लौट आया और सप्त-द्वीपी पृथ्वी पर राज्य करने लगा।[1]

भागवतपुराणके अनुसार इसका सार यह है:- "सगर चक्रवृति सम्राट था। उसके पुत्रोंने पृथ्वीको खोदकर समुद्र बनाया था। सगरने अपने गुरुकी आज्ञा मानकर तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बरबर जातियोंका नाश नहीं किया, परन्तु उनका रूप बदल दिया। कुछके सिर मुण्डवा दिये, कुछकी दाढ़ी रहने दी, कुछको खुले बालोंसे रहने दिया तो कुछका आधा सिर मुण्डवाया। कुछको सिले हुए कपड़े नहीं अपितु अनसिले कपड़े पहननेकी आज्ञा दी, कुछको केवल लंगोटी बांधकर रहनेकी आज्ञा दी। इसके पश्चात राजा सगरने और्व ऋषिके उपदेशानुसार अश्वमेध यज्ञ किया। (परन्तु) उसका यज्ञका घोड़ा जो छोड़ा गया था वह राजा इन्द्र ले गए। सम्राट सगरके पुत्रोंने घोड़ेको ढूंढनेमें सारी पृथ्वी खोद डाली तो उतर-पूर्व समुद्रके कोणमें उन्हें कपिल मुनिके पास वह घोड़ा बंधा दिखाई दिया। वहां पहुंचते किसी घटनामें वे सब फंस गए। सगरको दूसरी रानी केशिनीसे असमंजस नामक पुत्र था जिसके पुत्रका नाम अंशुमान था जो अपने दादा सगरकी सेवामें रहता था। असमंजस योग-साधना करनेवाला था किन्तु कुसंगके कारण वह भंग हो गया, जिससे उसके मस्तिष्क पर बुड़ा प्रभाव पड़ा। भाईबंधु उससे प्रेम नहीं करते थे। काम ही उल्टे करता था, कभी तो बचोंको पकड़कर सरयू नदीमें फेंक देता था, इसलिये सगरने पुत्रको राज्यसे बाहर निकाल दिया। इसपर योग बलका प्रभाव तो था ही, किसी प्रकार उसने वहां जाकर अपने भाइयोंको छुड़ाया। वे लौटकर राजधानीमें आए। किन्तु नगरवासी चकित रह गये तथा सम्राट् सगरने भी बहुत पछताया। फिर राजकुमार अंशुमानको घोड़ा लानेके लिये भेजा। घोड़ा आया तो सम्राट्ने यज्ञकी बाकी विधि पूरीकी और बादमें राज्य अपने पौत्र अंशुमानको सौंपकर स्वयं त्यागी बन गए।[2]

उपरोक्त वर्णनमें यवन यूनान (ग्रीस) के निवासी हैं, शक मध्य तुर्किस्तानके प्रसिद्ध हैं। पारद ईरानके पार्थ्यन तथा पहल्व भी ईरानके पहल्वी हैं।

हज़ारों वर्षोंका यह वर्णन है, बहुतसी हेरफेर तथा कम अधिक हुआ होगा तथा संक्षेपमें

(1) विष्णुपुराण [गीता], ४, ३, ३५-४६ (2) भाग्वत पुराण [गीता], ८,५-३०

होनेके कारण मुख्य बातोंका ही उल्लेख किया हुआ मिलता है। परन्तु स्पष्ट है कि सम्राट सगरने अयोध्या वापस लेली और वह अयोध्याका सम्राट् था। उसकी अपार शक्ति बढ़नेके कारण वह सम्राट बना तो चक्रवृति भी बना। उतरपश्चिमके जातियोंको जीता परन्तु उनका उन्मूलन न कर उनको केवल बेडोल बना दिया। और जो कुछ भी किया सब प्रत्यक्ष सिन्ध-पंजाबसे पश्चिमकी ओर यूनान तथा उत्तरमें तुर्किस्तान तक दिखाई देगा। बड़े बालों वाली जातियां भी देखने को मिलेंगी, सिर मुण्डी भी दीखेंगी, मूछें साफ केवल दाढ़ी वाले दृष्टिगोचर होंगी, तो प्राचीन कालके मिले अवशेषोंमें सिले हुए कपड़ोंको छोड़कर अनसिले कपड़े (कमरसे नीचे लूंगीकी तरह तथा बाकी शरीरपर एक चादर) ओढ़े हुए भी देखनेको मिलेंगे। कौमी रिवाज किसी विशेष कारण से ही प्रचलित हो जाते हैं, ऐसे ही नहीं। ये सब हज़ारों वर्षोंके पके संस्कार हैं।

किन्तु महाभारतका वर्णन इससे भी विशेष महत्वका है। उस अनुसार "इक्ष्वाकु वंशमें सगर नामक एक प्रसिद्ध राजा था। वह सुंदरता, धैर्य तथा बलमें भरपूर और प्रतापी था परन्तु उसे संतान नहीं थी। उसने हैहय तथा तालजंघ नामक क्षत्रियोंका सहार कर सब राजाओंको अपने वशमें किया। उसे दो पत्नियां थीं-वैदर्भी और शैब्या (ध्यान रहे कि दक्षिण अरबकी रानीका नाम भी शैबा था, जिससे अरबका सबा राज्य प्रसिद्ध था)। उसने कैलाशपर तपस्याकी। उसे वर मिला कि एक रानीमेंसे उसे ६० हज़ार अति अभिमानी पुत्र होंगे, परन्तु वे एकही समय नष्ट हो जाएंगे। किन्तु दूसरी रानीसे केवल एक ही शूरवीर पुत्र होगा जिससे तेरा वंश चलेगा। राजा लौटकर घर आया। रानियां गर्भवती हुईं। वैदर्भीने एक तुंबीको और शैब्या ने एक सुंदर पुत्रको जन्म दिया। राजाने वह तुंबी फेंकनी चाही, परन्तु आकाशवाणी हुईकि ऐसा मत कर। इन पुत्रोंको मत फेंक। इस तुंबीसे एक एक दाना (बीज) निकालकर गरम घृतसे भरे माटी की छंटी घाघरोंमें अलग अलग रख और चौकना रहकर उनकी रक्षा कर। राजाने ऐसा ही किया। काफी समय के बाद उन घाघरोंमें से ६० हज़ार महाबली पुत्र निकल आए। वे सब भयंकर स्वभाव वाले थे, आकाशमें भी घूम फिर सकते थे। उनकी संख्या अधिक होनेके कारण वे देवताओं सहित सबकी अवहेलना करते थे। इसके काफी समय बाद पराक्रमी राजा सगरने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञका घोड़ा उसके पुत्रोंके संरक्षणमें पृथ्वीपर विचरने लगा। जब वह जलशून्य तथा भयंकर दिखाई देने वाले समुद्र (शायद मरुभूमि) के तट पर आया तो पूरी खबरदारी रखते हुए भी घोड़ा अचानक गुम हो गया। तब उस घोड़ेको 'चोरी हो गया' ऐसा समझ, कुमारोंने वापस आकर पिताको सूचना दी। राजाने कहा, तुम सब समुद्रों, वनों और द्वीपों सहित सारी पृथ्वी पर सब ओर जाकर घोड़ेको ढूंढो। वे फिर फैल गए और ढूंढते ढूंढते फिर आकर आपसमें मिले, परन्तु घोड़ा नहीं मिला, फिर लौट आए। राजा क्रोधित हो गया। किन्तु सबको फिर भेजा और कहा वापस नहीं आना, फिर घोड़ेकी तलाश करो। इस यज्ञके घोड़के सिवाय वापस

नहीं आना। राजकुमार फिर ढूंढने लगे। एक स्थानपर उन्हें धरतीमें दरार देखनेमें आई। वहां पहुंचकर कुमारोंने कुदाल और हेंगी (Rake) से समुद्र (?) को खोदना आरंभ किया। एकही समय कुमारोंके खोदनेसे हर तरफसे फटनेके कारण समुद्रको पीड़ा होने लगी। सगर-पुत्रोंके हाथों मरने वाले असुर, नाग, राक्षस और दूसरे कोलाहल करने लगे। सैंकड़ों हज़ारों ऐसे प्राणी देखनेमें आए जिनके सिर फटे पड़े थे, शरीर टुकड़े टुकड़े हो गये थे, चमड़ी उधड़ गई थी, तथा हड्डियां टूट गई थीं। इसप्रकार वरुणके निवास स्थान समुद्रकी खुदाई करते करते बहुत समय बीत गया परन्तु घोड़ा हाथ नहीं आया। तब क्रोधित हो सगर-पुत्र समुद्रके उत्तर-पूर्व प्रदेशमें पातालको फाड़कर अंदर घुस गए और वहां घोड़ेको विचरते देखा। वहां तेजस्वी कपिल मुनि बैठे थे। घोड़ेको देख वे खुश हुए और महात्मा कपिलका अनादर कर उस घोड़ेको पकड़नेके लिये दौड़े। मुनिने क्रोधित हो क्रोध अग्निसे सबको जलाकर भस्म कर दिया। उन्हें भस्म हुआ देख नारद मुनिने राजा सगरको जा बताया। परेशान हो उसने स्वयं घोड़ा ढूंढ़नेका विचार किया। फिर असमंजसके पुत्र (अपने पोते) अंशुमानको कहा कि "मेरे कारण मेरे पुत्र महर्षि कपिलके क्रोधाग्निका शिकार बने हैं। नगरवासियोंके भलाईके कारण ही मैंने तेरे पिताको देश निकाला दे दिया। यज्ञमें विघ्न पड़नेके कारण मैं दुखी हूं। तुम घोड़ेको पकड़कर मेरा उद्धार करो। यह सुन अंशुमान दुखसे उस स्थान पर पहुंचा जहां पृथ्वी फटी हुई थी। वह उसी रास्तेसे समुद्रमें प्रवेश कर गया और मुनि सहित घोड़ेको देखा। मुनिने प्रसन्न हो घोड़ा दे दिया। राजाने यज्ञका समापन किया। इसके पश्चात अपने पोते अंशुमानको राज्य सौंप राजा स्वयं तपस्या करने चले गये।

धर्मात्मा अंशुमानने भी अपने दादे सगरके समान समुद्रसे घिरी पृथ्वी पर राज्य किया। उसे एक पुत्र दिलीप हुआ। सम्राट् दिलीपने गंगाको हिमालयसे नीचे लानेका यत्न किया, किन्तु सफल नहीं हुआ। उसके बाद उसका पुत्र भगीरथ हुआ जो गंगाको नीचे उतारनेमें सफल हुआ (इसी लिये गंगा नदीको भागीरथी भी कहा जाता है)।[1]

उपरोक्त वर्णनमें मुख्य बातें ये हैं:- १- सम्राट सगर के ६० हज़ार पुत्र २- उनका गंधर्वों और राक्षसोंको पीड़ित करना ३- जल रहित समुद्र ४- वहां घोड़ेका गुम होना ५- सारी पृथ्वी ढूंढना ६- दूसरी वार पृथ्वीमें दरार देखना ७- उसे मिलकर खोदनेसे असुरों, नागों, राक्षसोंका मरना ८- फिर उत्तर-पूर्वकी ओर पातालको फाड़कर अंदर कपिल मुनि और घोड़ेका दीखना। ९- मुनिकी क्रोधाग्निसे सबका जलकर भस्म होना। १०- अंतमें अंशुमानका उसी फटी पृथ्वी पर पहुंचकर अंदर घुसकर, मुनिकी कृपा पाकर, घोड़ेको वापस लाना।

उपरोक्त सब बातें लगभग असम्भव हैं। क्योंकि कोई चमत्कार (करामत आदि) सब पाखण्ड है और परमात्माका अपमान भी। सृष्टि नियमके विरुद्ध स्वयं परमात्मा भी कुछ नहीं कर सकता

(1) महाभारत [गीता] वनपर्व १०६, ७-२२ तथा २०७

तो मनुषकी क्या हैसियत है! इसलिये, क्योंकि उपरोक्त बातें असम्भव हैं इसलिये किसी रहस्यकी ओर संकेत है। यह कोई दूर उत्तर-पश्चिमकी ओर सगरके साम्राज्यका मामला है जिसमें सेना भेजकर, समुद्र-मरुभूमि पार कर कहीं जाकर यज्ञका घोड़ा हस्तगत किया गया है। इसके सिवाय निर्जल समुद्र मरुभूमि नहीं हो सकता। क्योंकि मरूभूमिके लिये संस्कृत में अनेक शब्द हैं। किन्तु यहां तो स्पष्ट 'समुद्रं स समासाद्य निस्तोयं भीमदर्शनम' उल्लेख है। स्पष्ट है कि यह बयाबान (मरूभूमि) नहीं किन्तु सूखा (जलशून्य) समुद्र है। और चक्रवृति उपाधिसे सम्राट सगरके विशाल साम्राज्यका अनुमान किया जाए तो दूर पश्चिम ग्रीस तक भी समझा जासकता है, जिसके लिये ही हमने ऊपर भी लिखा है कि इस दूर पश्चिम एशियाका पुराणोंके इतिहाससे घनिष्ट सम्बंध है तो फिर हमारा भी अनुमान है कि यह वर्तमान भारतसे बाहर कहीं भी हो सकता है। भारत और संसारका भौगोलिक इतिहास ऐसा विचित्र रहा है कि अति प्राचीन कालका कोई शुद्ध चित्र भी नहीं खींचा जा सकता। सब केवल अनुमान ही है। यह विचित्रता नहीं है कि प्राचीन संस्कृत साहित्यमें उत्तरकुरुका वर्णन मिलता है। पांचालका वर्णन तो आता है, परन्तु कुरु-पांचालकी जोड़ी तो बहुधा आती है। मेरु-पर्वतका वर्णन आता है, परन्तु आज पर्यंत किसे भी संतोष नहीं कि उत्तर-कुरू और मेरू पर्वत है अथवा नहीं। यदि है तो कहां। मेरूके लिये तो श्री ला (Bimal Charan Law) ने लिखा है कि कुछ लोग इसे काल्पनिक कहते हैं।[1] यद्यपि इसपर लिखा और बहस सब विद्वानोंने किया है, परन्तु कोईभी कुछ सिद्ध नहीं कर सका है कि दोनों हैं कहां। टाल्मी (Ptolemy) ने "Ottorocarrae" का उल्लेख किया है जिसके अनुसार यह चीनी तुर्किस्तानकी तारिम तराईमें हो सकता है। परन्तु मेरुपर्वत पामीरके उपर्ले मैदानके पास ढूंढना पड़ता है। और संस्कृत साहित्यमें मिलता है कि उत्तरकुरु मेरुके उत्तरमें है और जम्बूद्वीप (जिसमें भारतभी सम्मिलित था) वह उसके दक्षिणमें है. तो फिर उत्तरकुरुकी स्थति वहीं ठीक लगती है अर्थात भारत और कुरु किसी जमानेमें एक थे। क्योंकि उत्तरकुरु नाम चीनी तुर्किस्तानमें मिलता है तो (दक्षिण) कुरु प्रदेश भारतमें है। परन्तु मेरुपर्वत तो संस्कृत साहित्यमें आर्योंके धार्मिक भूगोलका मेरुदंड है। तो फिर किसप्रकार कहा जाएकि इस अति प्राचीन कालमें भौगोलिक स्थति कैसी थी। अर्जुन भी उत्तर-कुरु तक गया था।[2] जब अपने घरका मेरुपर्वत और उत्तरकुरु ही भारती इतिहासमें स्पष्ट दृष्टि गोचर नहीं होते तो यह जलशून्य-समुद्र कैसे समझमें आएगा। अनुमान किया जाय तो वह इसराईल और जार्डनके बीचका Dead Sea भी कहा जा सकता है। यद्यपि ग़लत भी नहीं है, परन्तु इसके साथ दूसरी बातोंका बंद बिठाना

(1) "Some call it a mythical region."

(Historical Geography of Ancient India, P. 133)

(2) महाभारत, सभापर्व, २८-७

शेष हैं। डेड-सीका अस्तित्व कबसे हैं यह भी विज्ञानकी समस्या है। दूसरी बात यह कि ६० हज़ार पुत्र न भी माने जाएं, केवल संतानके समान सेना समझी जा सकती है। परन्तु यज्ञके घोड़ेके साथ सेनाकी टुकड़ी जाती है न कि इतनी बड़ी सेना। इसके सिवाय इस विवरणमें स्पष्ट असुरों तथा म्च्छोंका वर्णन है जो पौराणिक वर्णनसे अधिक संगत है। शक, पहलव आदि इतने प्राचीन नहीं हैं। मनुस्मृति और पुराणोंका वर्णन क्षेपक भी हो सकता है और सम्बंधित स्वार्थियोंने अपनेको कुलीन सिद्ध करनेके कारण मिला दिया होगा; और यह साधारण बात है जो बहुतसे संस्कृत ग्रन्थों, विशेषकर पुराणों तथा महाभारत आदिमें है। वेद, वेदाङ्ग, दर्शन-शास्त्र, व्याकरण आदिमें सम्भव नहीं था इसलियेकि ऐसी योग्यता उन मिलावट करनेवाले विदेश्योंमें नहीं थी। वेदमें तो एक मात्रा अथवा चिह्नका भी सम्भव नहीं था क्योंकि इसकी एक एक मात्राका संतुलन निश्चित किया हुआ है। इसलिये उपरोक्त वर्णनके अनुसार कि 'सगर पुत्रोंके समुद्र खोदनेसे असुर-म्लेच्छ कोलाहल करने लगे,' और संगत है। असुर प्रदेश प्राचीन असीर्या (Assyria) है और म्लेच्छ भी वहीं हैं, परन्तु बिगड़े रुपमें। म्लेच्छ Mlechh करके लिखा जाएगा तो केवल 'Malech' भी होगा। अंतिम ch का उच्चार क (k) होता है, जो बादमें बिगड़कर 'मलेक' (एक देवताका नाम) हो गया, और आजकल मलक (ملك) अर्थात शाह, बादशाह अथवा हाकिमके अर्थ में प्रचलित है। प्राचीन पांचाल भी इस पश्चिम एशियामें फिनीश्या (Phoenicia) का रूप धारण किया हुआ प्रतीत होता है।

यह तो हुई अति प्राचीन कालकी तथा महाभारतसे भी बहुत बहुत पूर्वकी बात। परन्तु द्वारका तो महाभारत कालकी है, श्री कृष्णका उससे विशेष सम्बंध है। मगर वह द्वारका समुद्रमें डूब गई। साधारण लोग अबकी नई द्वारकाको ही वही द्वारका समझकर चल रहे हैं। यदि खोज न होती तो इस बातका पता भी नहीं पड़ता। ऐसे तो अफ़गानिस्तानके ऊपर भी एक द्वारका है जिसे अब 'दरवाज़'.कहा जाता है और कुछने श्री कृष्णकी द्वारकाकी तुलना इससे भी की है। इससे भी बिलकुल निकट समय की बात है कि अरबोंने देबल बंदर पर आक्रमण किया। परन्तु वह देबल बंदर कहां और किस स्थान पर था, कोई भी विद्वान यह विश्वासके साथ नहीं बतला सकता। उत्तरकुरुका भी यही हाल हुआ होगा। या तो यह माना जाए कि हज़ारों लाखों वर्ष पूर्व हिमालय पर्वत नहीं था तब उत्तर तथा दक्षिण कुरु एक थे, भारतकी सीमा वहां तक थी और जब हिमालय बाहर उभड़ आया अथवा कोई भाड़ी धरती-कम्प हुआ होगा तब तुर्किस्तान वाला सारा प्रायः सूखा मैदान समुद्र होगा, उस हेर फेरमें वह सूखकर जलशून्य समुद्र बन गया, हिमालय बाहर निकल आया और इस रुकावटके कारण उत्तरकुरु व्यवहारिक तौर तो अलग हो गया परन्तु लोगोंकी स्मृतिमें तो वैसाही बना रहा और बादके संस्कृत साहित्यमे भी केवल उसका उल्लेख होता रहा। वही बात मेरुपर्वतकी भी होगी। महाभारत और पुराणोंमें लिखने वालोंने

कोई सब आंखों देखा विवरण नहीं लिखा है। बहुतसा वर्णन अनुश्रुति रूपमें था। समय समय पर उसमें कुछ परिवर्तन भी हुआ होगा जो साधारण बात है। इसलिये केवल शाब्दिक अर्थोंको पकड़कर सोचा जाएगा तो बस घोटाला ही है। कुछ अधिक गम्भीर होना पड़ेगा। किसी प्रकार भी परिश्रम और सत्य-मार्गपर खोज की जाएगी तो रहस्य सुलझ सकेगा। परन्तु जबतक आर्य-द्रावड़ तथा अर्योंका बाहरसे आनेकी मालीखोल्या जान नहीं छोड़ेगी, इतिहासकी सभ गुलत्थियां ऐसी ही पड़ी रहेंगी।

इसलिये इस सारी कार्यवाईका क्षेत्र पश्चिम एशिया तथा दूर-पश्चिम हो सकता है। नहीं तो भारतकी सीमामें जल-शून्य कौनसा ऐसा समुद्र है, जिसमें घोड़ा इसप्रकार गुम होजाए? कच्छकी मरुभूमि तो निकट समयकी बात है। अब सम्राट सगरको दूसरी तरह और दूसरे स्थानपर देखें।

श्री वाडेल (Waddell) ने मोहन-जो-दरो लिपि पढ़नेका प्रयत्न किया। वह किस कदर फलदायक है, वह तब कहा जा सकेगा जब ऐसी धारणा (जिसप्रकार श्री वाडेलकी हैं कि भारती आर्योंकी छाप इस पश्चिम एशियाकी संस्कृति पर है अथवा दूसरी प्रकार) धारणकर सब विद्वान इस काममें जुटजाएं तो अवश्य, बिलकुल सही रास्ता निकल आएगा। मोहन-जो-दरो लिपि पढ़नेकी उसकी कुछ सफलता, आकर्शक अवश्य है, अगर उसके सब पुस्तकोंका अध्ययन किया जाए। तथा आर्य-अनार्य झमेला त्यागकर, केवल यह विश्वास करके कि सृष्टि-उत्पतिके मूल पुरुष आर्य हैं, जिन्होंने ही बादमें बढ़नेके कारण अपने मूल स्थान आर्यावृत देशसे निकल कर संसारको जा बसाया। इसलिये वे आफ्रीकाके काले हैं अथवा अमेरीकाके लाल, यूरोपके सफेद हैं अथवा चीनके पीले, सब मनुष्य एक ही प्राचीन आदिम मनुष्य जाति है जो सृष्टिमें परमात्माने उत्पन्न की, तब जाकर केवल दस वर्षके भीतर सृष्टिके पूरे इतिहासका स्पष्टिकरण होगा। नहीं तो शताब्दियां बीत जाएंगी, अन्तमें हासिल यह होगा कि, न जाने क्या, सम्भवतः, होसकता है इत्यादि। बात टेढ़ी है, हमारे लिखनेसे ही ऐसा नहीं हो सकेगा। परन्तु क्योंकि सच्च केवल यही है, इसलिये अमल करनेसे ऐसा अवश्य होगा। परन्तु मनुष मज़हबी झमेलोंमें ऐसा जकड़ा हुआ है कि उससे शायद ही पूरी तौर पर स्वतंत्र हो सके।

श्री वाडेलाका परिश्रम बड़ी प्रशंसाका पात्र है। कमसे कम उसका अयोध्याके सम्राट् सगरको Agade (Akkad) का सर्गन (Sargon) सिद्ध करना सफलताकी एक कड़ी है। ऐसा नहीं है कि सम्राट सगरने चक्रवृति होनेके कारण पश्चिम एशियामें स्वयं राज्य किया हो। उसके प्रतिनिधियोंने अथवा राज्यपालों अथवा तो बादमें उसके वंश वालोंने वहां जाकर राज्य स्थापनाकी हो; ऐसा कहा जा सकता है। सौराष्ट्रमें से सैन्धव राजाओंके लेख मिले हैं, जो निकट समयके हैं, जिन्होंने अपनेको 'जयद्रथ-वंशी' भी लिखा है, तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि पांच हज़ार

वर्ष पूर्व महाभारतकालके सिन्धी राजा जयद्रथके वंशज ये सोराष्ट्रके सिन्धी शासक होंगे। सिन्धके नाते, और अपने नये वंशका महत्व जतानेके लिये उन्होंने इस नामका उपयोग किया। इसी प्रकार अयोध्याके सम्राट् सगरकी बात भी हो सकती है अथवा तो उसकी सेनाएं इतनी दूर आगई होंगी। भारत पितृ-भूमि होनेके नाते सबका उसके साथ आदान प्रदान तो होता रहता था। स्वयं थे ही भारती, कोई नई बात नहीं हो रही थी। उनका ही बसाया प्रदेश था, सम्बंध भी था। भारतमें कभी ऐसी परिस्थिति बनी होगी कि वे अपना देश छोड़ इतनी दूर परदेस गए होंगे, सबकुछ हो सकता है। और पश्चिम एशियाके इतिहासमें देखेंगे तो बस! केवल यही मिलेगा। एक वंश चला, दूसरे पूर्वसे आए, उनको निकाल बाहर किया स्वयं शासक बन बैठे। फिर तीसरे आए, दूसरोंको निकालकर स्वयं सत्ता धारी बन जम गये। महाभारत युद्धके पश्चात ऐसा ही हुआ। देशमें महाभारी युद्धका परिणाम बड़ी उत्थल पुत्थल (Upheaval) ही होगा।

सो इसीप्रकार उससमय कमसे कम पश्चिम एशिया तक चक्रवृति सम्राट सगरकी सता अथवा प्रभाव होगा। काफी लम्बे समय तक उसने शासन किया। उससमयके, इस सगर वंशके सम्राटोंके कालमें जो संस्कृति थी, उसकी छाप अयोध्यासे पश्चिम एशिया तक पाई जाती है। लगता है मोहन-जो-दरोमें उसके प्रतिनिधि (Viceroy) का शासन होगा जिसने वहां अपना केंद्र बनाया हो। इसलिये ये सब संस्कृतियां जो नीचेके तह (Layer) से मिली हैं, मोहन-जो-दरोसे मिलती जुलती हैं। कुछ स्थानिक भेद भी आया होगा। इसलिये ओल्ड टेस्टामेन्ट (बाईबल) का ऐतिहासिक वर्णन अति प्राचीन है। उसे किसी प्रकार भी ४००४ वर्षकी सृष्टि उत्पतिमें नहीं रखा जा सकता। कारण हमने ऊपर दर्शाये हैं, कमसे कम श्री शा (Shaw) का ४३२००० वर्षका समय तो जुटानाही पड़ेगा। बाईबलमें जिन बड़े पित्तरों (Patriarchs) का वर्णन है वे कोई व्यक्ति विशेष नहीं हैं किन्तु वंश समझने चाहियें। जिसप्रकार पौराणिक पीढ़ियां। कौन सेंकड़ों हज़ारों राजाओंका भिन्न भिन्न वर्णन लिखेगा ? ऐसे तो विस्तीर्ण ग्रन्थ बन जायगा। इसलिये केवल विशेष राजाओंके नाम वंशावलियोंमें दिये गये हैं। जिसप्रकार रेल्वे समय-सारिणी (Time-Table) में मेल गाड़ियोंके केवल मुख्य स्टेशनोंके स्टाप होते और जताए जाते हैं, लग भग ऐसा ही यहां भी समझना चाहिये। लिखने वालोंको हज़ारसे आगे गिनती नहीं आती थी, उसमें इतिहासका क्या दोष। अथवा तो समझने वालोंने यह सब समझाही ग़लत है।

बेबीलोन्यामें जल-प्लावनसे पूर्व (Predeluvial) के दस युगोंका वर्णन किया गया है, जो कुल १२० सरी है, जिसके वर्षोंका योग ४ लाख ३२ हज़ार है और यही काल (Period) आर्योंके कलयुगका है। यद्यपि ये दस युग वहां दस-सम्राट् करके लिखे हैं, जिस प्रकार ओल्ड टेस्टामेन्टके दस पित्र (Patriarchs), परन्तु वे सब वंश हैं, अर्थात हरएक वंशावली (chronology) का मुख्य पुरुष (Patriarch)। और यह भी ध्यान रहे कि प्राचीन कालमें

मनुष्यकी औसत आयु सौ वर्षसे ऊपर होती थी। यह विचार करके ओल्ड-टेस्टामेन्ट तथा पुराण-महाभारतके वर्णनोंकी तुलना और खोजकी जाएगी तो सब स्पष्ट हो जाएगा।

सो श्री वाडेलका कमसे कम अजोध्याका सगर और अजदे (Agade-Akkad) का सर्गन कुछ सम्भव लगता है। अयोध्याका (य का ज होकर) अजोध्या तथा प्रचलित अजोधा तो है ही। ज का अपभ्रंश ग होता है जिस प्रकार Age और Ago में। इसलिये अजोधाका Agade और Akkad होना तथा सगरका सर्गन होना सब साधारण बात है। इसी परिणामके आधार पर उसने मोहन-जो-दरो लिपिके पढ़नेका प्रयास किया है और एक मोहर (अथवा सिक्के) पर 'अजोधाका राजा सगर' (Sargon of Agade) पढ़ा है।[1] पश्चिम एशियाके इतिहासमें सर्गन (Sargon) असीर्या राज्यका शासक है जिसने मिश्र (Mushri) अर्थात इजिप्टको जीता था। पश्चिम एश्याई इतिहासके प्रसिद्ध विद्वान श्री हाल (H.R. Hall) ने सर्गनका समय ७२२ ई०पू० लिखा है, बावजूद इसके कि बैबीलोन्यन विद्वान नबोनीडस (Nabonidus) ने इसका समय ३८०० ई०पू० लिखा है। परन्तु हाल महाशय इसको केवल इस आधारपर अस्वीकार करता है क्योंकि ज़मीनमें से खोद निकाली गई चीज़ें उसे यह सब मानने नहीं देतीं।[2] ज़मीनकी खुदाई (Archaeology) की आयुका निर्णय नहीं हो सकता, सब केवल अनुमान हैं। इसलिये लिखित प्रमाणको छोड़कर अनुमानको प्रधानता क्योंकर दी जा सकती है। किन्तु यह करते भी विद्वान किसी निर्णय पर सहमत नहीं हैं। कौनसी कौम कहांसे आई, उनका मूल क्या है, इतिहासमें यह सब 'शायद', 'लगभग' और 'अटकलबाज़ी' आदि पर निर्धारित है। किसीके भी यथार्थका पूरा ज्ञान नहीं है। न नरसिंह (Naram-Sin) की न खमूरबी (हमूरबी) की न तो सर्गनकी। न ही यह विश्वास है कि कौन मूलतः कहांसे आया। इसलिये निर्णय फिर भी हमारे ऊपर दर्शाए सिद्धांतके अनुसार ही होगा कि 'संस्कृत साहित्यकी ओर वापस चलो'। सो श्री हालके अनुसार:- "बैबीलोन्या (दक्षिणमें Sumer तथा उत्तरमें Akkad) और असीर्या संस्कृतिका मूल सामी (Semitic) नहीं है। ...... यहूदी राज्यका बटवारा (Partition) और पैलेस्टाईन (फिलिस्तीन) की रक्तपातवाली युद्ध जिस समय हुए उस समय असीर्यन (असुरोंकी) शक्तिने फिर ज़ोर पकड़ा। इससे पूर्व खमूरबी (Khammurabi—जिसे साधारणतया हमूरबी कहा जाता है) ने बैबीलोन्यासे २०० मील उत्तर-पश्चिम वर्तमान कलात शर्कत अशुर (Ashur-असुर) पर आक्रमण कर उसे जीता। बादमें वह अशुर खमूरबीके वंशकी राजधानी बना और असीर्यन राज्य स्थापित किया (पृ १९३)। अशुर(असुर) रबीके समयमें तिलगथ पराशर प्रथम (Tilgath-Pilesar I) का बहुतसा राज्य उसके हाथसे निकल गया। इसके पश्चात एक शती

(1) The Indo-Sumerian Seals Deciphered, P. 63

(2) The Ancient History of the Near East, P. 29

तक इस राज्यके बारे में कुछ मालूम नहीं। इसके बाद तिलगत पिलेसर दूसरेका नाम मिलता है (जिसके कालमें प्रसिद्ध राजा सालोमन हुआ जिसके नामसे 'तख्त सुलेमानी' प्रसिद्ध है, जिसके साथ शेबा (सबा-अरब) की रानी ने विवाह किया था) जिसके लेखसे उसके पोते अदद-निरारी द्वितीय (Adad-Nirari II) का नाम मिलता है। उसके बाद तुकुल्ती-एनुर्त द्वितीय (Tukulti-Enurta II) हुआ। यह वीर था परन्तु छोटी आयुमें ही मर गया। इसके बाद उसका पुत्र अशुर नासिरपाल (Ashur-Nasir-Pal II) हुआ जिसने अपने पूर्वजोंकी गई सीमाएं फिर जीत लीं। यह सचमुच असुर ही था, बड़ा निर्दयी था। इसने अशुरका त्यागकर कला: (Calah) में राजधानी स्थापित की, ऐसा बड़ा राज्य उसके पुत्र शलमनेसर (Shalmaneser III) को प्राप्त हुआ। उसके समयमें इसराईलके अहाब (Ahab) ने हमादके अर्खुलेनी (Arkhuleni of Hamath) और दमशकके बेन्हदाद (Benhadad) से मिलकर करकर (Karkar) के समीप असीर्यासे खूनख्वार युद्ध किया। शलमनेसरने अपने छोटे पुत्र शम्शी (Shamshi-Adad) को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया जो ग्रहयुद्धमें मारा गया तो पुत्र अदद-निरारी तीसरा उत्तराधिकारी बना। उसने कुरुश कबीलेको जीतकर फिर सीर्या (Syria) की ओर मुख किया, फिर पैलेस्टाईन पर आक्रमण किया। उस समय उसके ही निकटमें उरर्तु (Urartu अथवा Ararat) शक्ति पकड़ रहा था, जिसने उनका बहुत राज्य जीत लिया। अशुर-दान (Ashur-dan) उत्तराधिकारी बना। उनकी मूल राजधानी अशुरमें विद्रोह हुआ। राजा मारा गया। छ: वर्ष ग्रहयुद्ध चला। अंतमें उसके उत्तराधिकारी अदद-निरारी चौथेके समय शांति हुई। इस बीच उनके ही बंबीलोन्याने विद्रोह किया और अपने राजा नबु-शुम्शकूं (Nabu-Shumshkun II) के नेत्रत्वमें अपनी स्वतंत्र सत्ता फिर स्थापित की। इसके पश्चात अदद-निरारी पांचवां उत्तराधिकारी बना। इसके समयमें कुल्खी (Calah) के सैनिक केन्द्रमें विद्रोह हुआ। सेनापति पुलु (Pulu) सिंहासन पर बैठ गया क्योंकि अशुर निरारी मारा गया। इससे असीर्याके राज्यमें नया मोड़ आया।

सेनापति पुलुने अपना नाम बदलकर असीर्याके वीर राजा तिलगथ-पिलेसर (त्रितीय) का नाम रखा। यह वीर था। इस नामसे सेना तथा जनतामें नया जीवन आगया। इसने बहुतसी लड़ाइयां लड़ीं और देश जीते। यह मिस्र (Egypt) की सीमा तक भी पहुंचा जिस कारण वहांसे फरऊन (Pharaoh) के देश त्यागकर जानेसे राज्य फिर दो भागों (उत्तर और दक्षिण) में विभक्त हो गया जिसे प्रथम राजा शशांक (Bubastite Shishak) ने मिलाकर एक किया था। अमेन्हेतप (Amenhetep III)दक्षिणमें रहा, वहां उसी समय असीर्याका उत्तराधिकारी शलमनेसर पांचवां बना।

इजिप्टके भड़काने और सहायताके भरोसे पर इसराईलके होशेआ (Hoshea) तथा टाइर (Tyre) के राजाने कर (Tribute) देना बंद कर दिया। शलमनेसरने तत्काल कार्यवाही की जिससे टाइरने तो आत्म समर्पण किया परन्तु होशेआ मरते दम तक नहीं झुका।

समार्या (इस्राईल) दो वर्ष तक घिड़ा रहा, देश सारा बरबाद हो गया, ईजिप्टसे भी सहायता नहीं पहुंची। इस बीच शलमेनेसर मारा गया और सर्गन (Sargon) उत्तराधिकारी बना। समार्याको जीतनेके बाद होशेआको अंधा किया गया। देश और जनताने आत्मसमर्पण किया। बाईबल (Kings) में भी यही वर्णन है। नया सर्गन (Sharrukin) समार्याके जीतते समय वहां मौजूद नहीं था। घरमें स्थति ठीक न होनेके कारण वह राज्यका लाभ नहीं ले सका। शलमनेसरके पश्चिममें भिड़े रहनेके कारण अरामियों और चाल्डियन राज्योंको अवसर दिया जो दक्षिण ईजिप्ट पर अधिकार करनेके लिये मेसोपोटाम्यामें घुसनेका प्रयत्न कर रहे थे। अब उन्होंने यूफ्रेटस (फरात) नदी वाला व्यापारी मार्ग (Trade Route) रोके रखा तथा चाल्डियाके राजा मर्दुक-पाल (Merodach baladan अथवा Marduk-pal-iddina) बित याकिन (Bit-Yakin) के निवासी, जो तिगलथ-पराशर चतुर्थके उकिन्ज़िर (Ukinzir) और उसके नगरकी बरबादीके समय बच गया था, ने फिर सर उठाया और इसवार तो बैबीलोन्याकी राजत्ताके लिये उक्नज़िरके उत्तराधिकारीके तौर तैयार होकर आया था। मर्दुक स्वयं तो इतना शक्तिशाली नहीं था परन्तु एलम (Elam)के राज्यने, जिसने वर्षोंसे मेसोपोटाम्याके मामलोंमें कभी हस्ताक्षेप नहीं किया था, वह असीर्यांकी शक्ति बढ़नेसे घबड़ा कर, जो न केवल बैबीलोन्या अपितु एलामके पीछेसे ज़गरोस (Zagros) के पार मीडियामें भी ज़ोर पकड़ रही थी, सम्मिलित हो गया। इसलिये एलामी राजा खुम्बनिगश (Khumbanigash) मर्दुकके साथ (alliance) से असीर्याका सामना किया और मेसोपोटाम्यामें टाईग्रस (दजला) नदीके लाड़(नीचे-दक्षिण)में दुर-इलु (Dur-ilu) के किले को घेर लिया। सर्गन लौटकर असीर्या आया। मर्दुक बंबीलोन्याका राजा बन गया। इधर पश्चिम ईजिप्टके राजा शब्रक (Shabaka) की सहायतासे इस्राईल और यउबुदी (Ya'ubudi) के नेत्रत्वमें हमाद दमश्कने फिलिस्तीन (Palestine) और गाज़ा (Gaza) के हनून (Hanun) ने विद्रोह किया। सर्गनने सब कार्यक्रम स्थगित कर सबका मुकाबला किया, जिसमें और सब तो दब गये मगर ईजिप्टकी पूरी पराजय हुई। सर्गनकी शिक्षित सेनाओंके सामने एथ्योप्या (Ethiopia) ईजिप्ट वाले टिक न सके। सिबु (Sib'u) अर्थात शबात भाग गया, हनून पकड़ा गया। ईजिप्ट (Egypt) ने उपहार आदि देकर अपने ऊपरका आक्रमण रुकवा दिया। सर्गन भी यह मिस्र (Pir'u king of Mushri) की ओर से कर समझकर चुप हो गया। पैलेस्टाईनमें फिर बद्दू (Beduin) रानी समसी (Samasi) तथा दूर दक्षिणमें अरबके सबा के राजा अज़मर (Athmar) ने भी उपहार भेंट किये (प्रसिद्ध शैबा इसी सबा की रानी थी, जिसने राजा सालोमनसे भेंटकी बादमें विवाह भी किया)। उधर इसराईल पिस गया। उसके २७२९० आदमी पकड़े गये (बाईबलमें इसीको ही "Captivity of Israel" कहा गया है), जिनको दूर मीडिया (Media) और गोजां (Gozan) सीमा पर बसाया गया इसके बदलेमें उनके समार्यामें बैबीलोन्या, कूथा: (Cuthah), आवा (Ava),

हमाद और सेफरवैम (Sepharvaim) से सीर्या और बेबीलोन्याके बंदियोंके मिले-जुले टोले लाकर बसाए, जिनमें से ही बाकी बचे इसराइल्योंके मेल मिलापसे बादके समार्टन (Samaritan) जाति का जन्म हुआ।

इसप्रकार ईजिप्टको राफया (Raphia) की युद्धमें पराजित कर, इसराईलका विनाशकर, सर्गनने दूसरी ओर ध्यान दिया। विशेषकर उरर्तु (Urartu) की ओर, जिसका राजा श्रीधर (Sarduris III) का उत्तराधिकारी रूसास (Rusas I) असीर्या युद्धकी तैयारी कर रहा था, जिसमें उसे एक नई शक्ति मुश्की (Mushki-Anatolia) का राजा मेटा (जो फ्रीज्या [Phrygia] के मेडास [Medas] राजा नामसे प्रसिद्ध हैं) सहायता कर रहा था। रूसासने हार मानकर आत्महत्या करली। इन सब विजयोंके कारण, सर्गन उस कालका एक महान सम्राट् प्रसिद्ध हो गया। उसने अंतिम दिनोंमें राजधानीसे थोड़ी दूर उत्तरकी ओर दुर-शरुकीन (Dur-Sharrukin) नामक एक भव्य प्रासाद बनवाया (जिसे आजकल खुर्साबाद कहा जाता है जिसकी खुदाई भी हो चुकी है)। स्वयं वहां दो वर्ष रहा। उसके पश्चात उसका पुत्र सिन-अखी-इर्बा (Sin-akhi-irba) उत्तराधिकारी बना जो आम तौर से सेनाचेरिब (Sennacherib) नामसे प्रसिद्ध है।[1]

सर्गनकी महानताका उल्लेख करते श्री हालने लिखा है:-

"Few monarchs of the ancient world are so well known to those of us moderns who are interested, in these subjects as "Sargon of Agade" and we may say that to the Babylonians he was their hero of heroes, their Meres, Charlemange, or Alfred the Great. A foundling brought up by a water carrier, according to tradition, he ended as ruler of all Western Asia His doings, were taken as an ensample of life for later kings, and if the omens had been such and such when Sargon went forth to battle, under similar omens the later kings of Babylonia or Assyria would also march to victory. He is the historical Sharrukin, and with Narm-Sin (नरसिन्ह) and Shargali-sharri typified the establishment of the Semites as the dominant race in Babylonia." (Ibid, P. 186)

इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि जिसप्रकार हमने ऊपर सम्राट् सगरको चक्रवृति लिखा है इसीप्रकार ये बेबीलोन्याके सम्राट Sargon भी अपनेको चक्रवृति "King of the Four Quarters of the World" कहलाते थे।[2] स्पष्ट है कि यह संस्कृत उपाधि केवल भारती आर्य सम्राट् ही धारण कर सकता है।

(1) The Ancient History of the Near East, Pp. 444-481 (2) Ibid, P. 187

उपरोक्त सारे वर्णनका भारतके सम्राट् सगरसे कोई सीधा सम्बंध नहीं दीखता, सिवाय इसके कि दोनों सगर और सर्गन अपने वंशके माहन विजेता सम्राट् थे, और विजय भी महत्व वाली। सर्गनने ईजिप्त जैसे साम्राज्यको हिला दिया। इसराईल पर बड़ी विजय पाई तथा उसकी २८ हज़ार प्रजाको बंदी बनाया। इसीप्रकार सम्राट् सगरका चार और विजित जातियोंको वहां बसाना तथा असुंदर (deface) करना आदि; दोनोंके अपने अपने ढंगके कार्य हैं। केवल सगरके समान हज़ारों वर्षोंके पश्चात और कोई अपने पूर्वजके महान कृत्योंके कारण सगर नामसे विख्यात हो सकता है। अगर आजसे दो हज़ार वर्ष पूर्व हुए सम्राट तथा विक्रमादित्यके नाम पर अभिमान करने वाला तथा विदेशी अकबरसे टकड़ लेनेवाला "हेमचन्द्र विक्रमादित्य" हो सकता है, स्वयं उपरोक्त इतिहासका वीर पुलु बादमें अपने पूर्वज तिलगथ-पिलेसरके नामसे राज्य करने वाला हो सकता है, तो सगरका सर्गन होकर राज्य करना कोई बड़ी बात नहीं है। आश्चर्य इसपर होगा कि वह भी इतने हज़ारों मील दूर? हां। यह सब सम्भव है। अगर दूर पूरबके जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, इन्डोनेश्या, थाइलंड आदिमें निकट समयमें भी हिन्दू साम्राज्य स्थापित हो सकता है, अमेरीकामें जाकर उसको बसाकर लाल हिन्दू (Red Indians) भी कहला सकते हैं, अफ्रीकामें एथ्योप्या और ईजिप्टमें जाकर महान परिमण्डल (Pyramids) बनाने वाले आर्य राज्य कर सकते हैं तो फिर इस पड़ौसी पश्चिम-एशिया अथवा यूरोपमें नहीं पहुंच सकेंगे? इसलियेकि यह तथाकथित सुधरे हुए यूरोपीय जातियोंके पूर्वजोंका प्रदेश है? नहीं। संसारमें ऐसा कोई भी देश नहीं जहां ये भारतवासी आर्य न पहुंचे हों। और नए नामोंसे नई जातियोंको नाम न दिया हो। यूरोपको यूनान (Greece) पर अभिमान है। उसका शुद्ध नाम क्या है? Ionion! और उचार क्या है? यवन! तो क्या संस्कृत साहित्यमें यवन नामका उल्लेख नहीं मिलता? ग्रीस (यूनान) के रस्मो-रिवाज प्राचीन आर्यों जैसे नहीं हैं? यह सब आर्योंका संसारमें फैलना नहीं है? ईजिप्टका देवता 'Oannes' क्या है? अगर वह जल-देवता है तो वह वैदिक 'वरुण' देवता नहीं हुआ क्या? अगर अयोध्याका सगर अजदे (Agade) का सर्गन नहीं हो सकता तो फिर बैबीलोन्याको काशीके (Kassites) राजाओंने कैसे जीता?[1] तो फिर मित्तन्नी (Mitanni) राजा दशरथ वहां कहांसे आया?[2] और उनके देवता मित्र, वरुण, और नासत्य तथा, अश्विनी किस प्रकार हुए?[3] नहीं तो राम और शशांक ईजिप्टके राजा कैसे बने?[4] और फिर पश्चिम एशियाके लिये ईजिप्शन इतिहासके महाविद्वान श्री बज (Sir Ernest A. Budge) की यह राय किस अर्थकी है जो श्री हालने स्वयं उद्धरित की है कि "ईजिप्टका सम्राट् Akhenaten सूर्य देवताकी पूजा करता था, जो वैदिक थी और दूसरे देवता मित्तन्नी (Mitanni) से प्रभावित थे।" :-

(1) Ibid, P. 201 (2) Ibid, P. 341 (3) Ibid, P. 201 (4) Ibid, P. 16

"Sir E.A. Budge has recently contributed an interesting novelty to the discussion of Akhenatin's religion by comparing the language of his hymns of that of the VEDAS, and especially the 'hundred rays' of the Aten to the long golden arms (the rays) of the VEDIC sun-god Surya (सूर्य) or Savitri. (Tutankhamen, Amenism, Atenism-1923), We remember that Mitani had an Indo-Iranian element in its population which venereted the Indian gods Mitra, Varuna, Indra and the Nasatya-twins or Ashvins, and that the neighbouring Kassites had a storm-god Maruttash(मरुत) as well as a Buriyash(=Boreas), and worshipped Suriyash the sun'. A very interesting characteristic of the hymns to Aten, 'says Sir Ernest, is the writer's instance on the beauty and power of light, and it may be permitted to wonder if this is not due to Mitannian influence, and the penetration into Egypt of Aryan ideas concerning Mitra, Varuna, and Surya or Savitri, the sun-god...... As the Vivifier and Quickener, he raises his long arms of gold in the morning, rouses all beings from their slumber, infuses energy into them and buries them in sleep in the evening." (Hall: Adenda, P. 598)

निसंदेह हमारा सगर और सर्गनकी समानतापर आग्रह नहीं है। हमने भी इसलिये लिखा है कि एक सही दिशाकी ओर कदम उठाया गया है। इस दिशा और सीमाके अंदर सच्ची ईमानदारीसे यत्न किया जायगा तो मोहन-जो-दरोकी लिपि अवश्य पढ़ी जायगी और इस रास्ते पर चलनेसे इतिहासके अनेक उलझी हुई समस्याओंका भी निराकरण हो सकेगा। क्या सगरका सर्गन तथा अजोधाका अजादे होना सम्भव नहीं है? तो फिर क्यों नहीं इस दिशाकी ओर कदम बढ़ाया जाय तो इस नहीं तो किसी और प्रकारसे हल निकल आएगा। इतिहास कोई विज्ञान तो है नहीं कि उसको वैज्ञानिक ढंगसे ही सच्चा साबित क्या जा सके। वह भी तब जब उसका ज्ञान कहीं उपस्थित न हो। वह हैं। केवल विश्वास और श्रद्धासे उसे देख समझकर छानबीन करनी है। इतिहास लिखनेवाला अपनेको किसी विशेष जातिका अंग न समझे। समझा तो गया। पुस्तकोंको घोटता जाएगा। बस। नई नई बातें बताएगा, कोई निर्णय नहीं कर पाएगा। क्योंकि उसकी मानसिक भावनाओं पर किसी जाति और मजहब विशेषका प्रभाव हावी है। एक प्रमाण देते हैं। अलेगजेंडरका इतिहास लिखने वालोंने इतना सब लिखा हैं, पर उस इतनेमें भी कितना झूठ और अविश्वास भड़ा है? क्योंकि उनपर यूनानका कौमी प्रभाव हावी था, दूसरी कमजोरियां हैं इत्यादि। इनमें पांच लेखक तो विशेष हैं: एर्यंन, डायोडोरस, प्लूटार्क, कर्टियस और जस्टिन। प्रो० फ्रीमनके शब्दोंमें "दुर्भाग्यसे (इन) पांचोंमें से

कोई भी समकालीन लेखक नहीं है। और फिर इनमें से केवल एर्यन (Arrian) का नाम किसी प्रकार समालोचककी कोटिमें रखा जासकता है। (बाकी) डायोडोरस (Diodoras) विश्वसनीय हो सकता है किन्तु उसकी मूर्खता (Impenetrable stupid) का पार पाना कठिन है। प्लूटार्क (Plutarch) जैसेकि वह स्वयं अपने लिये लिखता है, कोई इतिहास लेखक नहीं था। ऐतिहासिक तथा युद्ध सम्बंधी घटनाओंका ठीक ठीक वर्णन देनेसे अधिक उसका काम शिक्षाप्रद ऐतिहासिक कहान्योंका संग्रह करना था। जस्टिन (Justin) एक सुस्त, लापरवाह और थोड़ेमें काम चलाने वाला था और कर्टियस (Quint Curtias) तो एक रोमांचकारी लेखक था"। (Historical Essays, Pp. 183-4) परंतु स्वयं यूनानी लेखक स्ट्रेबो (Strabo) ने तो इन सबको धोकर साफ कर दिया है। श्री मैक्रिडल (Mc. Rindle) ने अपने मैगेस्थनेज और एर्यनके सम्पादित ग्रन्थमें लिखा है :-

"Strabo [P. 60] says, "Ganerally speaking, the men who have written on the affairs of India, were A SET OF LIARS. Deimachas holds the first place in the list. Megasthenes comes next; while Onesikritos and Nearchas, with others of the same class, manage to stammer out a few words [of truth]. Of this we became the more convinced whilst writing the history of Alexander. No faith whatever can be placed in Deimachas and Megasthenes. They coined the fables." (Ancient India, p. 18-19)

परन्तु हरीदत्त (Herodotus) जैसा बड़ा इतिहास लेखक, उसका क्या हाल है और यूनानके दूसरे लेखक कितने विश्वासके पात्र हैं वह सब श्री हालकी उपरोक्त पुस्तक की भूमिका (Pralegomena) में से मालूम होगा।

केवल डेड-सी से मिले प्राचीन लेख (Dead Sea Scrolls) ईमानदारीसे सम्पादित करके प्रकाशित किये जाएं तो बाईबलके बहुतसे रहस्योंका उदघाटन हो जाएगा। वर्तमान सब ईसाई धारणांएं धरामसे नीचे आकर पड़ेंगी। केवल सच्चाई चाहिये, मज़हबी पक्षपात न हो।

सो मोहन-जो-दरो और पश्चिम एशियाकी समानता से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि वह कोई सम्राट सगरकी संस्कृति थी। नहीं! एक प्रचलित साधारण संस्कृति थी। भारत उन्नत और महान देश था। उसके महान साम्राज्यकी यह संस्कृति थी। खुदाईमें से जो कुछ मिला है उसके आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है। अकेले मोहन-जो-दरोमें कोई नई जाति रहती थी, केवल वह उस कालकी उन्नत संस्कृति थी, ऐसी बात नहीं है। भारत हज़ारों नहीं लाखों वर्षोंसे उन्नत देश है। उसके पास ईश्वरीय ज्ञानका भण्डार था (और है) जिससे उसने लाभ लिया और जहां भी गया साथ लेता गया। संसारके सब मानव केवल वही एक समान ईश्वरकी मनुष्य

जाति है। बादमें बिगड़ने तथा केन्द्र (आर्यावर्त) से नाता टूटनेसे वहां भी बिगाड़ आया। तो भी मूलकी छाप संसारके कोने कोनेमें आज भी विद्यमान है। इसलिये हमें अकेले भारतपर अभिमान नहीं है अपितु संसारके प्रत्येक मनुष्य तथा जाति पर है, क्योंकि हम सब एक हैं। हां। भारतने ईश्वरी ज्ञानकी विशेष रक्षा की है इसलिये उसने पूरा लाभ प्राप्त किया है तो महान भी होकर रहा है। संतान जो माता पिताका सन्मान करेगा, आज्ञा पालन करेगा, उस अनुसार आचरण करेगा, निसंदेह वह सदैव सुखी रहेगा। निरादर करेगा, आचरण भृष्ट होगा तो स्वय भी भृष्ट और नष्ट हो जायगा। भारत और संसारके इतिहासमें केवल यही तथ्य समाया हुआ है। दिमाग़में से मजहब रूपी भूत भगाने से यह तथ्य सब सत्य समझनेमें आएगा।

इस प्रकार हमने संक्षेप में मोहन-जो-दरो पर प्रकाश डाला है। इससे सम्बंद्धित विषय कुछ ऐसे थे जिन पर बहस करने की गुंजायश थी, इसलिये विषय भी बढ़ गया है, किन्तु यह आवश्यक भी था।

एकश्रृङ्ग (Unicorn)! अर्थात एक सींग वाला पशु। मोहन-जोदरोसे मिली मोहरोंमें यह हिरन (मृग) रूपी पशु परन्तु सिरके अग्रम भागपर एक सींगके साथ चित्रित मिलता है। ऐसा जानवर इससमय संसारमें कहीं नहीं पाया जाता। यह भारतसे अधिक यूरोपमें बहुत प्रसिद्ध था और बहुधा चित्रित भी किया जाता था। संस्कृत साहित्यमें केवल महाभारतमें इसका वर्णन एकश्रंग नामसे मिलता है, जो सात पितरोंमें से एक है। यह तीन अमूर्त पितरोंमें से है। ये सब ब्रह्म सभामें ब्रह्मकी उपासना करते हैं।[1] बाकी जीवित रुपमें इस समय कहीं नहीं मिलता। हो सकता है कुछ और दूसरे अति प्राचीन विशेष प्राणियोंके समान शिकार अथवा किसी और प्रकारसे इसका वश समाप्त हो गया हो। इसलिये प्राय: विद्वान भी इसे केवल पौराणिक (Mythological) पशु करके समझते हैं अथवा अलंकार रूपमें।

महाभारतमें इसकी पूरी कथा ऋष्यश्रृङ्ग नामसे इसप्रकार है:-

"ब्रह्मऋषि विभाण्डकका अंत:करण तपस्यासे पवित्र हो गया था। वह प्रजापतिके समान तेजस्वी और अमोघवीर्य महात्मा था। उसके प्रतापी पुत्र ऋष्य श्रृङ्गका जन्म कैसे हुआ, सुनिये— "जैसे विभाण्डक मुनि परम पूजनीय था, वैसाही उसका पुत्र भी बड़ा तेजस्वी हुआ। वह बाल्यावस्थामें भी वृद्ध पुरुषों द्वारा सम्मानित होता था। कश्यप गोत्री विभाण्डक मुनि देवताओंके समान सुन्दर थे। वह एक बहुत बड़े कुण्डमें प्रविष्ट होकर तपस्या करने लगा। उसने दीर्घकाल तक महान् क्लेश सहन किये।

"एक दिन जब वह जलमें स्नान कर रहा था तो, उर्वशी अप्सराको देखकर उसका वीर्य स्खलित हो गया। उसी समय प्यासते व्याकुल हुई एक मृगी वहां आयी और पानीके साथ उस

(1) महाभारत [गीता], सभापर्व १२/४७-४८

वीर्यको भी पी गई, जिससे उसे गर्भ हो गया। वह पूर्व जन्ममें एक देवकन्या थी। ब्रह्माने उसे वचन दिया था कि तुम हिरनी होकर एक मुनिको जन्म देनेके पश्चात इस योनिसे मुक्त हो जायगी। इसलिये विभाण्डकके पुत्र महर्षि श्रृष्यश्रृङ्गका जन्म मृगीके पेट से हुआ। वह सदा तपस्यामें संलग्न रहकर बनमें ही निवास करता था। उस महात्मा मुनिके सिरपर एक सींग था, इसलिये उस समय उसका 'ऋष्यश्रृङ्ग' नाम प्रसिद्ध हुआ। उसने अपने पिताके सिवा दूसरे किसी मनुष्यको पहले कभी नहीं देखा था, इसलिये उसका मन सदा स्वभावसे ही ब्रह्मचर्यमें संलग्न रहता था। इन्हीं दिनों राजा दशरथका मित्र लोमपाद अङ्गदेश का राजा हुआ। उसने जान-बूझ कर एक ब्राह्मणके साथ मिथ्या व्यवहार किया, इसी अपराधके कारण ब्राह्मणोंने राजा लोमपादको त्याग दिया था, इसलिये इन्द्रने उसके राज्यमें वर्षा बंद कर दी। इस अनावृष्टिके कारण प्रजाको बड़ा कष्ट होने लगा। तब राजाने तपस्वी, मेधावी और इन्द्रसे वर्षा करवानेमें समर्थ ब्राह्मणोंको बुलाकर इस संकटके निवारणका उपाय पूछा। सबने अपनी अपनी राय दी। उन्हीं ब्राह्मणोंमें एक श्रेष्ठ महर्षि भी था, उसने राजासे कहा राजेन्द्र! तुम्हारे ऊपर ब्राह्मण कुपित हैं; इसके लिये तुम प्रायश्चित करो। साथ ही मैं तुम्हें यह सलाह देता हूं कि अपने राज्यमें महर्षि विभाण्डकके पुत्र वनवासी ऋष्यश्रृङ्गको बुलाओ। वह स्त्रियोंसे सर्वथा अपरिचित है (किसी स्त्रीको उसने कभी देखा ही नहीं है) और सदा सरल व्यवहारमें ही तत्पर रहता है। महाराज! वह महातपस्वी ऋष्यश्रृङ्ग यदि आपके राज्यमें पदार्पण करेगा तो तत्काल ही मेघ वर्षा करेगा, इस विषयमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। यह सुनकर राजा लोमपाद अपने अपराधका प्रायश्चित करके ब्राह्मणोंके पास गया और जब वे प्रसन्न हो गये, तब पुनः अपनी राजधानीको लौट आया। राजाका आगमन सुनकर प्रजाजनोंको बड़ा हर्ष हुआ। तदन्तर अङ्गराज मन्त्रकुशल मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे सलाह करके एक निश्चय पर पहुंच जानेके बाद मुनिकुमार ऋष्यश्रृङ्गको अपने यहां ले आनेके प्रयत्नमें लग गया। विचार करके एक उपाय जान लिया। तत्पश्चात राजा लोमपादने दूसरोंको लुभानेकी सब कलाओंमें कुशल प्रधान-प्रधान वेश्याओंको बुलाया और कहा- 'तुम लोग कोई उपाय करके मुनिकुमार ऋश्यश्रृङ्गको यहां ले आओ। महाराजकी यह बात सुनते ही वेश्याओंका रंग फीका पड़ गया। एक ओर तो उन्हे राजाका भय था और दूसरी ओर वे मुनिके शापसे डरी हुई थीं; अत: उन्होंने इस कार्यको असम्भव बताया। उन सबमें एक बूढ़ी स्त्री थी, उसने राजा से इसप्रकार कहा, महाराज! मैं उस तपोधन मुनिकुमारको लानेका प्रयत्न करूंगी; परंतु आप यह आज्ञा दें कि मैं इसके लिये मनचाही व्यवस्था करसकूं। यदि मेरी इच्छा पूर्ण हुई तो मैं मुनिपुत्रको यहां लानेमें सफल हो सकूंगी। राजा ने उसकी इच्छाके अनुसार व्यवस्था करनेकी अनुमति दी। उस वेश्याने राजाकी आज्ञाके अनुसार और अपनी बुद्धिसे भी उनका कार्य सिद्ध करनेके लिये नाव पर एक सुन्दर आश्रम बनाया। वह आश्रम भांति-भांतिके पुष्प और फूलोंसे

सुशोभित कृत्रिम वृक्षोंसे घिरा हुआ था। उन वृक्षोंपर नानाप्रकारके गुल्म और लतासमूह फैले हुए थे। वृक्षोंके कारण वह आश्रम अत्यन्त रमणीय और मनोहर दिखायी देता था। तदन्तर उसने अपनी उस नावको काश्यपगोत्रीय विभाण्डक मुनिके आश्रमसे थोड़ी ही दूरी पर बांध दिया और गुप्तचरोंको भेजकर यह पता लगा लिया कि इससमय विभाण्डक मुनि अपनी कुटियासे बाहर गये हैं। मुनिको दूर गया देख उस वेश्याने अपनी बुद्धिमती पुत्रीको, कर्तव्यकी शिक्षा देकर मुनिके आश्रमपर भेजा। उसने वहां जाकर निरन्तर तपस्यामें लगे ऋष्यश्रृङ्गके समीप उस आश्रममें पहुंचकर उसको देखा। तत्पश्चात वेश्याने कहा-मूने! तपस्वी लोग कुशलसे तो हैं न? आप लोगोंको पर्याप्त फल-मूल तो मिल जाते हैं न? आप इस आश्रममें प्रसन्न तो हैं न? मैं इससमय आपके दर्शनके लिये ही यहां आया हूं। क्या तपस्वी लोगोंकी तपस्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है? आपके पिताका तेज क्षीण तो नहीं हो रहा है? ब्रह्मन्! आप मजेमें हैं न? ऋष्य-श्रृङ्गजी? आपके स्वाध्यायका क्रम चल रहा है न?

ऋष्यश्रृङ्ग बोले-ब्रह्मन! आप अपनी समृद्धिसे ज्योतीकी भांति प्रकाशित हो रहे हैं। मैं आपको अपने लिये वन्दनीय मानता हूं और स्वेच्छासे धर्मके अनुसार आपके लिये पाद्य-अर्घ्य एवं फल-मूल अर्पण करता हूं। इस कुशासनपर आप सुखपूर्वक बैठें। इसपर काला मृगचर्म बिछाया गया है, इसलिये इसपर बैठनेमें आराम रहेगा। आपका आश्रम कहां है? और आपका नाम क्या है? ब्रह्मन! आप देवताके समान यह किस व्रतका आचरण कर रहे हैं?

वेश्या बोली-काश्यपनन्दन! मेरा आश्रम बड़ा मनोहर है। वह इस पर्वतके उसपार तीन योजनकी दूरीपर स्थित है। वहां मेरा जो अपना धर्म है, उसके अनुसार आपको मेरा अभिवादन नहीं करना चाहिये। मैं आपके दिये हुए अर्घ्य और पाद्यका स्पर्श नहीं करुंगा। मेरा यह नियम है, जिसके अनुसार मुझे आपका आलिङ्गन करना चाहिये। इसके पश्चात ऋष्य-श्रृङ्गने कहा ब्रह्मन! मैं तुम्हें पके फल दे रहा हूं। ये भिलाव, आंवला, करूषक (फालसा)? इंगुद (हिंगोट) धन्वन और पीपलके फल प्रस्तुत हैं। तदनन्तर वेश्याने उन सब फलोंको छोड़कर स्वयं ऋष्यश्रृङ्गको अत्यन्त सुन्दर और अमूल्य भक्ष्य पदार्थ (फलादि) दिये जिसे देखकर मुनिकुमारकी रूचि बढ़ी। साथ ही सुगन्धित मालायें तथा विचित्र एवं चमकीले वस्त्र दिये, अच्छी श्रेणीके पेय पिलाये, जिससे वह बहुत प्रसन्न हुए। वह उसके साथ खेलने और ज़ोर-ज़ोरसे हंसने लगा। वेश्या मुनिकुमारके पास ही गेंद खेलने लगी। वह अपने अङ्गोंको मोड़ती हुई झुक जाती और ऋष्यश्रृङ्गको वार-वार अपने अंगोंमें भर लेती थी। साथही अपने अङ्गोंसे उसके अङ्गोंको इसप्रकार दबाती, मानो उसके भीतर समा जायगी। वृक्षके डालियोंको झुकाकर वह लज्जाका नाट्य-सा करती हुई उसे लुभाने लगी। ऋष्यश्रृंगकी आकृतिमें किञ्चित विकार पाकर उसने बार-बार उसके शरीरको अलिंगनके द्वारा दबाया और अग्निहोत्रका बहाना बनाकर वह उसके द्वारा देखी जाती हुई धीरे-धीरे वहांसे

चली गयी। उसके अनुरागसे उन्मत्त मुनिकुमार अचेत से हो गये।

दो घड़ीके बाद विभाण्डक मुनिभी आ पहुंचे। निकट आनेपर उन्होंने अपने पुत्रको अकेला उदासीन भावसे चिन्तामग्न होकर बैठा देखा और पूछा-तात! सब कार्य ठीक कर दिया? आज तुम पहले जैसा दिखायी नहीं देते। बताओ, आज यहां कौन आया था?

पुत्रने कहा-पिताजी! यहां एक जटाधारी ब्रह्मचारी आया था। वह न तो छोटा था और न बहुत बड़ा ही। उसके शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान थी और बड़ी-बड़ी आखें थीं, वह स्वयं देवताओंके समान सुशोभित था। उसका रूप बड़ा सुन्दर था। उसके नेत्र स्वच्छ, चिकने एवं कजरारे थे। वह बड़ा गोरा था। उसकी जटाएं बहुत लम्बी, साफ सुथरी और नीले रंगकी थीं। उनमे बड़ी मधुर गन्ध फैल रही थी। वे सारी जटाएं एक सुनहरी रस्सीसे गुंथी हुई थीं। उसके गलेमें एक ऐसा आश्चर्य रूप आभूषण था, जो आकाशमें बिजलीकी भांति चमक रहा था। उसके गलेसे नीचे (छातीपर) दो मांसपिण्ड (स्तन) थे, जिनपर बाल नहीं उगे थे। वे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। उसने सारे शरीर पर सुन्दर आभूषण पहने हुए थे। उसका मुख भी देखने योग्य था। उसकी जटा सटी हुई और अच्छी प्रकार बंधी हुई थी। उसके पास एक विचित्र गोलाकार फल (गेंद) था, जिसपर वह अपने दाहिने हाथसे आघात करता था, वह फल पृथ्वीपर जाकर बार-बार ऊंचेकी ओर उछलता था; उससमय उसका रुप अद्‌भुत दिखायी देता था। देवपुत्रके समान उस ब्रह्मचारीको देखते समय मेरे हृदयमें बड़ा प्रेम और आनन्द उमड़ रहा था और मेरी उसके प्रति आसक्ति हो गयी है। वह बार बार मेरे शरीरका आलिङ्गन करके मेरी जटा पकड़ लेता और मेरे मुखको झुकाकर इसपर अपना मुख रख देता था, इस प्रकार मुखसे मुख मिलाकर उससे एक ऐसा शब्द किया, जिसने मेरे हृदयमें अत्यन्त आनन्द उत्पन्न कर दिया। उसके दिये फल भी हमारे फलोंसे अच्छे थे। उसने मुझे पीनेके लिये अत्यन्त स्वादिष्ट जल भी दिया था। उस जलको पीते ही मेरे हर्षकी सीमा न रही। उसके चले जानेसे मैं अचेत हो गया हुं। मैं चाहता हूं, शीघ्र उसके पास ही चला जाऊं अथवा वही यहां नित्य मेरे पास रहे। पिताजी! मैं उसीके पास जाता हूं, देखूं, उसकी ब्रह्मचर्यकी साधना कैसी है? वह आर्यधर्मका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी जिसप्रकार तप करता है, उसके साथ रहकर मैं भी वैसी ही तपस्या करना चाहता हूं।

(हम यह सब विस्तारसे इसलिये दे रहें हैं क्योंकि यह विवरण आगे चलकर दूसरे तथ्योंमे सिद्ध करना है)। विभाण्डक मुनिने कहा-बेटा! इसप्रकार अद्‌भुत दर्शनीय रूप धारण करके तो राक्षस ही इस वनमें विचरा करते तथा ऋषि-मुनियोंकी तपस्यामें सदा विघ्न डालते रहते हैं। ऐसा कहकर उसने पुत्रको उससे मिलने-जुलनेसे मना कर दिया और स्वयं उस वेश्याको ढूंढने वनमें गया। तीन दिन तक न मिलनेपर वह लौटकर आश्रममें आये। फिर फलोंके लिये वनमें गये तो वह वेश्या फिर आई। उसे देखकर ऋष्यशृङ्ग हर्ष-विभोर हो उठा और तुरंत उसके पास

दौड़ गया। निकट जाकर कहा-ब्रह्मन! मेरे पिताजी जबतक लौटकर नहीं आते, तभीतक मैं और आप-दोनों आपके आश्रमकी ओर चलदें। ऐसी युक्तिसे नावमें लेजाकर वेश्याने नाव खोलदी। फिर सभी युवतियां भांति-भांतिके उपायों द्वारा उनका मनोरंजन करती हुई अङ्गराजके समीप आयीं।

राजाने नावको जलसे बाहर निकालकर एक स्थानपर स्थापित कर दिया और जितनी दूरीसे वह नौकागत आश्रम दिखायी देता था, उतनी दूरीके विस्तृत मैदानमें उन्होंने मुनिके आश्रम-जैसेही एक विचित्र वनका निर्माण कर दिया, जो 'नाव्याश्रम' के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

राजा लोमपादने विभाण्डक मुनिके पुत्रको महलके भीतर रनवासमें ठहरा दिया और देखा, सहसा उसी क्षण इन्द्रदेवने वर्षा आरम्भ करदी तथा सारा जगत जलसे परिपूर्ण हो गया। लोमपादकी कामना पूरी हुई। उसने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री शान्ता ऋष्यश्रृङ्गको ब्याह दी। फिर विभाण्डक मुनिके क्रोधके निवारणका भी उपाय कर दिया। जिस रास्तेसे महर्षि आनेवाले थे, उसमें स्थान-स्थानपर बहुतसे गाय-बैल छोड़ दिये और किसानोंद्वारा खेतोंकी जुताई आरम्भ करादी। और उनको कह दियाकि जब मुनि तुमसे पूछें तो हाथ जोड़कर कहना 'ये सब आपके पुत्रके ही पशु और खेत हैं'।

इधर महात्मा विभाण्डक फल-मूल लेकर अपने आश्रमपर आये। पुत्रको न देख क्रोधमें भर गये। उन्हें संदेह हुआ कि कहीं राजा लोमपादकी तो यह करतूत नहीं है। तब वे चम्पानगरीकी ओर चलदिये, मानों अङ्गराजको नष्ट करदेंगे। रास्तेमें गोपगणोंने कहा-मुनिवर! 'यह सारा धन आपके पुत्रका ही है। ऐसे मधुर वचन सुनते मुनिका क्रोध शांत हो गया वे प्रसन्नता पूर्वक राजधानीमें जाकर अङ्गराजसे मिले। राजाने पूजा-सन्मान किया। अपने पुत्रको ऐश्वर्य और अपनी सुन्दर बहू शान्ताको देख मुनि प्रसन्न हो गये। महर्षिने अपने पुत्रको वहीं छोड़ दिया और कहा—बेटा! पुत्र उत्पन्न हो जानेपर इन अङ्गराजके सारे कार्य सिद्ध करके फिर वनमें ही आ जाना। ऋष्य-श्रृङ्गने पिताकी आज्ञाका अक्षरशः पालन किया। अन्तमें वह पुनः उसी आश्रममें सपत्नी चले गये।[1]

सभापर्व (११-२३) के अनुसार ऋष्यश्रृङ्ग ब्रह्मसभा में भी उपस्थित थे। शान्तिपर्व (२९६/१४-१६) के अनुसार यह काश्यप गोत्र वेदोंका विद्वान था।

यही कथा (थोड़े परिवर्तनके साथ) वालमीकी रामायणमें भी है। जब राजा दशरथने पुत्रोत्पतिके लिये यज्ञ कराना चाहा तो इसी ऋष्यश्रृङ्गकी कथा उन्हें सुनाई गई। वहां अङ्गराजका नाम रामपाद लिखा है।[2]

विष्णुपुराणमें आठवें मन्वंतरमें होनेवाले सप्तर्षिमें एकश्रृङ्गर्षि भी है (इस अनुसार यह

(1) महाभारत [गीता], वनपर्व, ११०/३२-५८ तथा अध्याय १११

(2) रामायण [गीता], बाल काण्ड, सर्ग ६-१०

रामायणसे भी प्राचीन है।[1] विष्णुपुराणमें एक ध्यान देने जैसी बात लिखी है कि 'हर चतुर्युगीके अंतमें वेदोंका लोप हो जाता है। उस समय सप्तर्षिगण स्वर्गसे पृथ्वीपर आकर वेदोंका प्रचार करते हैं। (वही, श्लोक ४५)।

भागवतपुराणमें भी आठवें मन्वंतरमें होने वाले सप्तर्षियोंमें ऋष्यश्रृङ्गका नाम आया है (उस अनुसार वह अति प्राचीन ऋषि और महान वेदविद्वान थे)[2]

उपरोक्त वर्णनमें यह बात स्पष्ट है कि ऋष्यश्रृङ्ग हिरनी (जिसका रहस्य न मालूम क्या है) से उत्पन्न हुआ। सिर पर एक सींग था। मनुष्य रूपमें यह महान तपस्वी था। उसका पिता सदैव वनमें रहता था, उसने बचपनसे ही माता को नहीं देखा, इसलिये उसे किसी स्त्री रुप का भी आभास नहीं था। युवा लड़की का मनमोहक सौंदर्य देख वह विचलित हो गया और उसके वशमें आकर फंस गया। इसका दूसरा नाम एकश्रृंग है। यह इसका भारती वर्णन है। अब विदेशी वर्णन देखें।:-

श्री फोशर (Foucher) की पुस्तक "The Beginning of Buddhist Art" में एक रोचक विवरण इस एकश्रंग (Unicorn) के विषय में है। वह लिखता है कि :-

"What we are told of him (Rshyashringa) reminds us of the fables detailed in our relations of animal stories in the so-called 'Bestiaria' of the Middle Ages concerning the Unicorn which only a young girl is able to capture. And she (says their source, the Physiologus) commands the animal and it obeys her; and she leads it away to the King's Palace.' Why there rather elsewhere? This unexpected trait forms, on the contrary, an integral part of the adventure of the shy anchorite Unicorn, when the King's daughter very naturally leads to her father or whom the courtesan has wagered that she will bring back to the court. And, again, the piquant detail that this later mounts astride on the shoulders of wise rishi awakens invincibly the memory of the celebrated 'Lady of Aristole'."

अर्थात- यूरोपके मध्य कालीन पशुओं सम्बंद्धी दंत-कथाओं बेस्शर्या (Bestiaria) में ऐसा ही वर्णन मिलता है कि इस यूनीकार्न (एकश्रृङ्ग=ऋष्यश्रृङ्ग) को केवल युवा कन्या ही पकड़ सकती है। और वही (जैसा कि उनके मूल फिज़्यालोगस से मालूम होता है) उस पशु पर अधिकार कर सकती है। और वह (Unicorn) भी उसका आदेश मानता है। वह उसे राजाके महलमें ले जाती है। महलमें ही क्यों, दूसरे स्थानपर क्यों नहीं? यह बात, इस बात का पूरक हैं कि

(1) विष्णुपुराण [गीता], ३-२-१७

(2) भाग्वतपुराण [गीता] ८-१३-१५

शरमीले सन्यासी एकश्रृङ्गको राजाकी पुत्री अपने पिताके महलमें ले जाती है अथवा वेश्या, जिसने प्रतिज्ञा की है कि वह उसे वापस दरबारमें ले आएगी"।

कितनी समानता है इस कथा और महाभारतकी कथा में, वह इतिहास और मोहन-जो-दरोके लिये सोचने जैसी तथा महत्वकी बात है। फिर भी आइये इसका और विवरण भी देखें :-

१७वीं शतीके एक लेख अनुसार 'वह पशु बड़ा भयानक और बलवान है, जो आजकल दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु प्राचीन कालमें वह आम (साधारण) था। पुराना नाम Monoceras अथवा Monoceron भी मिलता है। ग्रीकमें वह Monokeras है अर्थात एक सींग वाला। बहुत बलवान होनेके कारण हाथीसे भी मुकाबला करता है। पुरानी अनुश्रुतीके अनुसार वनकी राजाईके उमीदवार सिंह तथा एकश्रृङ्ग दोनों हैं।

श्रों स्पेनसर (Edmund Spenser) ने अपनी रचना "Faerie Queene" में लिखा है:-

" Like as a Lyon, whose imperiale powere,
A prowd 'rebellious Vnicorne' defies."

उपमाके तौरपर ग्रीशम ऋतुके लिये सिंह तथा वसंत ऋतुके लिये यूनीकार्न समझा जाता है।

यह प्रसिद्ध है कि जितना यह बहुत बलवान और भयानक पशु समझा जाता है, सम्भोगके समय वह उतनाही सहनशील होता है। शिकारी इसे पकड़ नहीं सकते थे। परन्तु कुमारी कन्याके सामने वह अपनेको सोंप देता था, भले वह उसे लेजाकर पाले तो वह उसकी गोदमें सिर रखकर लेट जाता था। यूरोपमें इस मध्ययुगमें उसका कपड़ेके चित्रण आदिमें बड़ा प्रचार था। फ्रांसमें तसवीर बना हुआ पिछवईके कपड़े (Tapestry) में एकश्रृङ्गी शिकार (Unicorn Hunt) का प्राय: प्रचलन था। ये चित्र इससमय न्यूयार्क म्यूज्यममें टंगे मिलते हैं। १६वीं शतीके लोग उसे कामुक (erotic) तथा मज़हबी निशानी समझते थे। वह बहुत तेज़, न पकड़े जानेवाला परन्तु कुमारी कन्याके हाथों पकड़ने वाला समझा जाता था। जब पकड़ा जाता तो उसे सफल विवाहका लक्षण (consummated marriage) समझा जाता था।[1] १५वीं शती के भरत काममें भी इसका रूप चित्रित किया जाता था। ऐसा चित्र स्टाकहोमकी हिस्टारीकल म्यूज़यममें मौजूद है।[2] इसी धारणासे चित्रित यूनीकार्न "The Lady with the Unicorn" कपड़ा (tapestry) इससमय पैरिसके क्लनी (Cluny) संग्रहालयमें रखा हुआ है।[3] और यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि ग्रेट-ब्रिटनके राजकीय चिह्न (Royal Arms of Scotland) में भी दो एकश्रृङ्ग (unicorn) लगे रहते हैं। अमेरीकाके न्यू मेक्सीकोके प्यूबिलो (Pueblo) हिंदु

(1) Life International, 'Medieval Life'
(2) Ciba Review [Bastle], Oct. 1951, P. 3177
(3) Geographical Magazine [London], Dec. 1947

एक लोकनृत्य करते हैं जिसमें वे एक टोपी पहनते हैं जिसमें एक लम्बा नकली सींग सर्वथा एकश्रृङ्ग जैसा लगा होता है।[1]

जिस प्रकार भारतमें पंचतंत्र और हितोपदेश पशुओंकी कहानियोंका संग्रह है उसी प्रकार यूरोपमें विशेष कर इंगलंडमें १२ से १४ शतियोंके बीच ऐसी कहानियोंके संग्रहको बेस्टयरी (The Bestiary) कहा जाता था जिसमें कहानी और चित्र दोनों होते थे। इनका मूल यूनानी (ग्रीक) है जहां दूसरी शतीके लगभग अलेगजेंडर्या (Alexandaria) में उन कहानियोंका संग्रह किया गया था, जिस पर ही The Bestiary का आधार है। जिसके लेखकके नामका ज्ञान नहीं है परन्तु वह Natural Historian अर्थात Physiologus नामसे प्रसिद्ध है। जिसके सहारे ईस्प (Aesop) की कहानियां बनी हैं और ऐसा समझा जाता है कि यह बेश्यरी भी उसीका रूपान्तर है। श्री हार्टन (J.P. Harthan) ने एक लेखमाला "Animals in Art" के एक लेख सख्या ६ "Mediaeval Bestiaries" में Unicorn (एकश्रृङ्ग) पर कुछ प्रकाश डाला है। उस अनुसार "यद्यपि दूसरे ऐसे पशु जो वास्तवमें देखनेमें नहीं आते हैं, परन्तु इन परियोंवाली कहानियों (fables) में उनका उल्लेख है, लगभग विस्मर्णीय हैं। केवल Phoenix (एक पौराणिक पक्षी) तथा Unicorn स्मर्णीय हैं वे भी इसलिये कि शेक्स्पीअरने उनका उल्लेख किया है, यूनीकार्न को महत्व मिला। उसकी बनावट तीन जानवरों से है - राईनासेर्स, तिब्रतका बारहसिंगा तथा मेसोपोटाम्याका जंगली गधा। केश्यस (Cleslas) के लिखे अनुसार वह भारतका पशु है, जिसकी विशेष बात एक सींग है। प्राचीन (Classical) साहित्यमें इसका वर्णन मिलता है। गालेन (Galen) तथा हिपोक्रेट (Hippocrates) के लेखकोंने इसका उल्लेख ही नहीं किया है। अरिस्तू (Aristotle) ने इसका उल्लेख किया है। मध्यकालमें ही वह अधिक प्रसिद्ध हुआ है तथा कलामें भी इसका प्रयोग हुआ। इस अनुसार यह सुन्दर और संस्कारित (refined) प्राणी है जो किसीको क्या हाथीको भी अपने सींग से चीर फार दे। कोई कुमारी कन्या सुंदर वस्त्रोंसे सज्जी जंगलोंमें उसकी खोहके पास भेजी जाती थी। कुमारिकाको देखकर यूनीकार्न स्वयं उसके समीप आ जाता, अपना सिर उसकी आंचलमें धरकर सो जाता। उस समय ताकमे रहे शिकारी उसे घायल करके राजाके पास दरबारमें ले जाते थे। सुन्दर लड़कियों के लिये उसका आकर्षण, युद्धमें भयानक और पवित्र, दूधके समान सफेद चमड़ी आदि बातोंके कारण राजाओं ने उसे अपना राजकीय चिह्न बनाया। रंगीन भरत-काममें उसे विशेष महत्व मिला। उसके सिवाय दवाइयोंमें भी उसका उपयोग निकट समय तक होना कहा जाता हैं। राजा लोग अथवा सरदार (Kings and Knights) उसको बड़े मूल्य पर खरीदते थे। काम-शक्तिके लिये उसका विशेष

(1) National Geographic Magazine, August 1957

प्रयोग होता था। उस कालमें कोई दवाई बनाने वाला इसके सिवाय बहुधा चल नहीं सकता था।[1]

उसी उपरोक्त Life International पत्रिकामें और आगे लिखा है कि :-

"By far the fiercest, fastest and most famous of the monsters was the unicorn, found mostly in India and Ethiopia...... The 3 foot horn was not only a deadly weapon useful for spreading elephants but was also a sure means of avoiding capture, for a hunted unicorn simply headed for the nearest high cliff and dived off, taking the shock of the fall on its horn and escaping unhurt. Because of its speed and ferocity a unicorn could never be captured alive, but apparently dead unicorns were easily come by, for the scrapings of the horn were a common and infallible antidote to be without it. Some authorities have suggested that the unicorn is only an exaggerated version of the one-horned Indian rhinoceres, but in 162l a portuguese Jesuit named father Jerome Lobo actually saw several unicorns in Abyssinia. Unfortunately, he regretted, 'the prodigious swiftness with which the creature runs from one wood into another has given me no opportunity of examining it."

इसमें पादरी जिसे Unicorn कहता है वह वास्तवमें Rhinoceres ही है जिसको उसी स्थान पर एक फुट लम्बा सींगके समान होता है। दौड़ते हुए देखकर उसने इसका अनुमान किया है, इसलिये विश्वास योग्य नहीं है।

उपरोक्त सारे विवरण से यह सिद्ध होता है कि आरंभसे यह कोई अलंकारक बात है, जिस प्रकार सोम लता। हिरनीसे जन्म लेनेसे एक सींग होना वह भी हिरनके रूपमें और उसीका इंगलैंडके राजकुलका राज्य-चिह्न होकर स्थापित होना (जिसप्रकार सिंहका राजपूतोंमें) बड़ी रहस्यमय बात है। यदि मोहन-जो-दड़ोमें देखा जायगा तो प्रायः मोहरें इस एकश्रृङ्ग अथवा ऋष्यश्रृङ्ग की, हिरण (कहीं बैल जैसा) एक सींगके साथ (दोनों कामके प्रतीक) हैं। एक बड़ी मोहर जिसमें एक मूर्ति योगी रूपमें है, हो सकता है यह भी ऋष्यश्रृङ्ग मुनि की हो। उसे तीन मुख हैं अर्थात तीनमें से एक प्राणी बना। वह शिव भी नहीं है, एक अलङ्कार है! किसी प्रकार भी यह बात रामायण कालसे भी बहुत पुरानी है अर्थात ५० हजार वर्षोंसे भी प्राचीन। जबतक अनुसंधानसे पूरा सत्य प्रकाशमें नहीं आता तबतक अनुमान भी व्यर्थ है। परन्तु कैसे भी हमारी इस बातकी फिर भी पुष्टि होती है कि मोहन-जो-दड़ो २५ हजार वर्षसे भी प्राचीन है।

(1) Geographical Magazine, September 1949

लिपि! मोहन-जो_दड़ो लिपि अभी तक पूरी तरह पढ़ी-समझी नहीं गई है, इसलिये इसपर अधिक लिखा नहीं जा सकता। अति प्राचीन कालकी लिपि है, जिसका कोई वारिस (उत्तराधिकारी) ही नहीं बचा है। स्वभावीक इस बात के समझनेके लिये शताब्दियों का परिश्रम भी अपर्याप्त है। ऐसी बहुतसी प्राचीन लिपियां हैं जो न पढ़ी गई हैं और न ही समझी गई हैं। देर-अला (Tell Deir 'Alla) जार्डनके ज़रक: बाईबलकी (Jabbak) नदी और जार्डनके पूर्वी किनारे परकी खुदाईसे पक्की मिट्टीकी अङ्कित तीन मोहरें मिली हैं, परन्तु उनकी लिपि भी अभी तक समझनेमें नहीं आई है।[1] एक और स्तम्भ मिला है जिसका लेख विशेषकर लिपि लीडय्यन है किन्तु भाषा अभीतक समझनेमें नहीं आती।[2] इसलिये यह कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। अधिक विवाद लिपिवाले अध्यायमें करेंगे। केवल सरसरी तौर पर इतना लिखते हैं कि इस विषय पर अनेक प्रयत्न हुए हैं। एक राय यह है कि कुछ वर्णों के मेलसे एक शब्द बना हो, जिनसे ये लेख लिखे गये हैं। सुमेर्यन लिपिके मूल चित्र-लिपिको भी पूरा नहीं पढ़ा गया है। ऐसे चार वर्ण एक भूरे रंगके पत्थर पर खुदे हर्मीटीज़ संग्रहालयमें रखे हुए हैं जिन्हें रूसी विद्वान वैमन (A.A. Vaemon) ने पढ़ा है। उसने बाइनोक्यूलर (Pocket-Lens) द्वारा अक्षरोंको बड़ा करके देखकर इसका हल ढूंढा है। एक त्रिकोनके समान कोई अक्षर था। लेन्स द्वारा वह बड़े कानों वाली एक बकरी का सिर स्पष्ट दीख पड़ा और दूसरेमें बड़े सींग वाले हिरणका सिर। उसका कहना है कि अकेला एक अक्षर (syllable) एक पूरा शब्द है, जिसका अर्थ भी स्वतंत्र है।[3] इसी ढंगसे माया (Red Indian) लिपिके लिये भी अपनाया गया है। अक्षर बड़े (enlarge) करके देखने और सोचने समझनेसे उनका भी कुछ हल निकल आया है। मुख्य तौर मोहन-जो-दरो की लिपि ही है जो पढ़ी नहीं जा सकी है। इसके पढ़ने से लाभ केवल यह हो सकेगाकि कुछ राजाओं के नाम पढ़े जा सकेंगे, जो इतिहासकी कड़ीमें अवश्य काम आएंगे। इसी प्रकार ईस्टर आइलंड लिपिका भी यही हाल है, जो भी नहीं पढ़ी गई है। इंगलंडके श्री रिडले (Michael Ridley) ने वर्दवान (बंगाल) से मिली एक मोहरको मिनोअन (Minoan), क्रीट (Crete) की लिपि को सुलझाते इस ईस्टर आइलंडका एक अक्षर बड़ा करके चित्रितकिया है तो वह एक पक्षी अथवा मछली जाहिर होकर दीखती है।[4]

श्री वाडेल (L.A. Waddell) जैसाकि ऊपर लिखा गया है, अपनी दो पुस्तकों

(1) Illustrated London News, 17-4_1965

(2) "A pillar bearing an inscription mainly in Lydian script, but possibly in another (unknown) language." (Ibid, 21-3-1964)

(3) सोवियत संघ [मासिक], अंक १०० (१९६४)

(4) The Seal of Aetea [Calcutta], chart

"Indo-Sumerian Seals Deciphered" और "The Aryan Origin of the Alphabet" में अच्छा परिश्रम किया है। यद्यपि वह सगरको सर्गन नहीं किन्तु सर्गनका सगर मानता है। तो भी वे धन्यवादके पात्र हैं।

डा० प्राणानाथने इसे संस्कृत ढंगसे पढ़नेका यत्न किया और इस विषय पर "Indian Historical Quarterly (1932)" में लेख भी लिखे। परन्तु उसमें वेदमें देवताओंका वर्णन तथा उनकी पश्चिम एशियाके देवताओं से तुलना करना, यह ग़लत प्रयास था इसलिये संस्कृतकी ओर कदम बढ़ाते भी पीछे कदम था। स्वामी शंकरानन्दने अपनी पुस्तक "Indus People Speak" में तथा श्री सुधन्सुकुमार रे आदि अनेक लेखकों ने प्रयत्न किये हैं, परन्तु सब निरर्थक हैं। श्री रे (Ray) ने तो उलटा "बंगाल वालोंने ईजिप्ट वालों को जीता "इसको लेकर बंगालमें होनेवाले (ग्रह उद्योगके) कपड़े पर रंग छींटने (Bratar) के अधार पर लिपिको पढ़ा है, जो बिलकुल ग़लत है।[1]

पाकिस्तानसे श्री अबुजलाल निदिवीने उर्दू मासिक "माह नो" (१९६१) में प्रयत्न किया। उसने भी केवल गपोड़े ही मारे हैं और जाकर 'नक्श सुलेमानी' नामी तावीज़ों पर पहुंचा है। परन्तु कभी कभी ग़लत कोशिश भी कोई फल लाती है। क्या मालूम इससे भी कोई कभी तथ्य निकल आए। हैद्राबाद सिन्धमें "मीरों के कुबे" में गुलाम शाह कल्होड़ोके कुबे (समाधि) में नीचे-ऊपर फर्शमें बड़े बड़े पत्थर जड़े हुए हैं, जो किसी प्राचीन हिन्दू भवन में से उखाड़कर लगाए गए हैं। उन पत्थरोंमें से प्रत्येक पर एक एक अक्षर खुदा हुआ है, जिनमें से कुछेक प्राचीन लिपियों से मिल आते हैं। किन्तु सब नहीं। श्री भगवद्दत जैसे संस्कृत साहित्य तथा इतिहासके प्रकाण्ड पंडितने तो सिन्धु-लिपिको तंत्र ग्रन्थ "ललित विस्तार" के आधार पर आसुरी लिपि माना है।[2] श्री राजमोहन नाथने इसको तंत्र और वेदके सहारे सिद्ध करनेका असफल प्रयास किया है।[3] डा० फतहसिंहने एक संस्कृत पुस्तका इस विषय पर लिखकर उसमें भी वेद और तंत्रों के आधारपर अच्छा प्रयत्न किया है, किन्तु असफल।[4] मुबईके पादरी हेरास (Henry Heras) ने इसको द्रावड़ तथा निवास्योंको प्रोटो-इंडो-मेडीटरेन्यन माना है।[5]

भारतसे बाहरके विदेशियों ने बहुत बड़े प्रयत्न किये हैं। वे जो कुछ समझकर चलते है उस विचारसे उन्होंने बड़े प्रयास किये हैं। श्री हृज़नी (Bedrich Hrozny) का प्रयास औरों से

(1) Prehistoric India and Ancient Egypt

(2) भारतवर्षका बृहद इतहास, भाग १, पृ० २२२

(3) A Clue to the Indus Valley Script and Civilization

(4) सिन्धु लिपि रहस्योद्घाटनम्

(5) Studies in Proto-Indo-Mediterranean Culture, Vol. 1

अधिक परिश्रम वाला तथा सुलझा हुआ लगता है।[1] इसको तथा श्री वाडेलको ध्यानमें रखकर, यदि इस एक ही विषय पर एक अंतरराष्ट्रीय सेमीनार बुलाकर उसमें विचार विमर्श किया जाय तो भी कोई अच्छा हल निकल आएगा। परन्तु शर्त यह है कि पहले यह स्वीकार किया जाय कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है जिसमें किसी प्रकारका इतिहास नहीं है, आर्य भारतमें बाहरसे नहीं आये अपितु भारतके मूल निवासी हैं। संसारके सभी जातियों का मूल यहां भारत में है, संसारके ज्ञानका प्रकाश-स्तम्भ भी केवल भारतमें है। इस विश्वासके सिवाय हर प्रयत्न निशफल जायगा।

ईजिप्टोलाजी के विद्वान श्री पेट्री (Sir Flinders Petrie) ने जून १९२२ की "Ancient Egypt" पत्रिकामें एक अच्छा सुझाव दिया है। उसने ईजिप्ट और सिन्धु लिपियों के बीच गहरा सम्बंध दिखाया है। यह बड़ा विद्वान है इसके रायको महत्व दिया जा सकता है।

श्री गड्ड (C.F. Gadd) ने जान मार्शलके मोहन-जो-दरो वाले ग्रन्थ के अध्याय २२ "Sign List of Early Indus Script" में सिन्धु-लिपिके सम्बंधमें लिखा है कि :-

१- लिपि चित्रलिपि मालूम पड़ती है।

२- मोहरों पर खुदे शब्द प्रमुख व्यक्तियों के नाम प्रतीत होते हैं।

३- ये किसी आर्य भाषाके नाम हैं।

इसप्रकार ये सब प्रयत्न हैं, परन्तु सबके सब असफल हैं। लिपियों के दूसरे विशेषज्ञ श्री ड्रिंजर (David Dringer) ने सिन्धु-लिपिका एक-एक वर्ण अलग करके कोष्ठक बनाकर वर्णन किया है, किन्तु कोई बहस नहीं की है, इसलिये कि स्वयं लिखता है कि 'अबतक सब प्रयत्न निष्फल हुए हैं'।[2]

इस लिपि विशेषज्ञके निराश होनेके पश्चात लगता है, यह उत्साह अब ठंडा पड़ गया है, और कोई इसे छूता नहीं। भारतमें कुछ निरर्थक प्रयत्न किये जा रहे हैं। परन्तु सत्य ऐसा लगता है कि इसका रहस्य अब भारती लिपिमें नहीं अपितु भारतसे बाहर किसी लिपिके संरक्षणमें है और यदि ऐसा हो तो भी उसका मूल केन्द्र फिर भारतमें ही होगा, और केवल इस भारतीय दृष्टिसे समझा जा सकेगा। नहीं तो केवल पानी बिलोना है। श्री फेअरसर्विस (Walter A. Fairservis) जो अमेरीकन म्यूज़यमकी ओरसे दो मुहिमों (Expedition) का नेता बनकर सिन्धु घाटी के खण्डहरों (पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान) की खुदाई कर चुका है, उसने ऐसा लिखा हैं कि "पश्चिम एश्या (मेसोपोटाम्या) से यह संस्कृति चलकर सिन्धमें पहुंची, परन्तु वह

(1) Ancient History of Western Asia, India and Crete

(2) "All the attempts at decipherment having hitherto failed, the only thing we can do at present is to attempt an external classification of the signs." (The Alphabet, P. 83)

अभी छोटी बच्ची थी। वह सिन्धमें आकर जवान बनी तब फिर अपनी (उस) संस्कृतिकी छाप लौटकर पश्चिम एशियापर डाली।[1] इसप्रकार उलटा समझकर फिर सीधा समझो तो भी ठीक है। परन्तु गाड़ी इसप्रकार नहीं चलेगी। इतिहासको पश्चिमसे पूर्वकी ओर नहीं बल्कि पूर्वसे पश्चिमकी ओर मोड़कर अभ्यास करना है। सूर्य पूर्वसे ही उदय होता है इसलिये ईश्वरका ज्ञान रूपी सूर्य भी पूर्व (भारत) में मिलेगा, तब जाकर कुछ पल्ले पड़ेगा। मनुष्य जबतक विकासवादके बंदरकी सन्तान बनकर खोज करेगा तबतक कुछ भी सत्य प्राप्त नहीं होगा। बेचारा बंदर क्या खोज सकेगा जिसे ईश्वरने बुद्धि ही नहीं प्रदानकी है। परन्तु जिसे परमपिता परमात्माने उत्पन्न किया है, बुद्धि भी प्रदान की है, वह जब इसप्रकार समझकर सोचेगा, खोजेगा तो सत्य भी उपस्थित मिलेगा। आइये! भारतकी ओर वापस मुड़कर चलिये?

अन्त (End)! मोहन-जो-दरोका अंत कैसे और कब हुआ इसके लिये कोईभी विश्वसनीय निर्णय नहीं दिया जा सकेगा सिवाय कुछ अनुमानोंके जो ठीक भी हो सकते हैं। यह राय कि वह द्रावड़ संस्कृति थी जिसे आर्यों ने नष्टकर दिया, एक शेतानी जाल है, जो हिन्दुओं को अपने धर्मसे गुमराह करनेके लिये बिछाया गया था। निःसंदेह हिन्दू इस जालमें फंस और पूरी तौर पर जकड़ चुके हैं और स्वयं भी ऐसे गीत गा रहे हैं। अतः एक यह राय भी है कि बाढ़ आनेके कारण मोहन-जो-दरोका अन्त आया होगा किन्तु इसके लिये पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं। अति प्राचीन कालीन संस्कृतिके लिये किस प्रकार कोई अन्तिम निर्णय दे सकता है। तो भी श्री एम० आर० साहिनीकी राय है जो उसने अपने एक निबंध "Bio-Geological Evidence Bearing on the Destruction of the Indus Valley Civilization" में व्यक्त की थी कि "कुछ नदियों का रुख प्रायः बाढ़का होता है और बहुधा कोई स्थिर बहावसे भी नहीं बहती हैं। सन् १९४०-४१में पानीके बटवारेके समय फील्डवर्क करते समय ऐसा देखनेमें आयाकि किसी प्राचीन कालमें सिन्धमें कोई बड़ी भाड़ी बाढ़ आई है, जिसका कोई रेकार्ड (record) इससमय उपलब्ध नहीं है, परम्परा अथवा इतिहासमें। इस बातका उल्लेख मैंने अपनी पुस्तक "Man in Evolution" [१९५२] में किया है। दक्षिण सिन्धमें "Budh Takkar" नामक पहाड़ी सिन्धु नदीके समीप एक ऐसा स्थान है जहां बहुत मोटे लट (Silt) का तह जिसमें ताजः जलकी सीप (Oyster) और कौड़ी आदि हैं, मौजूद है। यह कच्चा (alluvial) समुद्र समतल (sea-level) से १३० फुट ऊंचा तथा नदीके वर्तमान पेटसे ७० फुट ऊंचा है। ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि नदीका समतल विगत ३-४ हज़ार वर्षोंमें कोई इससे ऊचा था। इसलिये लट (alluvium) की यह अवस्था किसी अभूतपूर्व बाढ़के कारण हो सकती है और ऐसी बाढ़ नदीके मीलों वाली आसपासकी भूमिमें

(1) Natural History [New York], November 1958 P. 512

सबकुछ नष्ट कर सकती है।[1] इस बातकी पुष्टि (बर्माशेल ग्राइल कंपनीके) श्री नागप्पा (Y. Nagappa) ने भी की थी जिसने भिरक गांवके सामने पहाड़ी पर चार फुट लट (alluvial) का तह देखा था, जो वर्तमान नदी समतल से ७५ फुटकी ऊंचाई पर था। (वही)

उसी समय श्री डेल्सने अपने लेख 'The Decline of the Harappans' में जो "Scientific American" (May 1966) में छपा था और "American Review" में पुन: प्रकाशित हुआ था, उसमें विस्तारसे छपा है। उस अनुसार "मोहन-जो-दरोकी गहरी खुदाईसे नमी तथा पानीकी मौजूदगी बाढ़का कारण हो सकती है। सन् १९४० में भारती विज्ञानी (Palaeontologist) श्री साहिनीने हैद्राबाद (सिन्ध)के समीप सिन्धूके समतलसे कई फुट ऊपर लट (alluvial) के तह जमे हुए देखे थे, जिससे उसने अनुमान किया था कि यह केवल बाढ़ नहीं होगी, परन्तु ज़मीनका दूसरा भी कोई परिवर्तन (upheaval) मुख्य बात होगी। इसलिये ज़मीन, जो नीचे-ऊपर हुई है, उसने नदीके बहावको समय-समय पर कहीं रोक डाली है। इस रोकके कारण बड़ी झीलें भी बनी हैं। इस उत्पातने किसी भी प्रकार मोहन-जो-दरोका अन्त लाया होगा। परन्तु सन् १९६० तक यह राय बहरे कानोंपर रही। उसी वर्ष पेन्सीलवन्या (Pennsylvania) विश्वविद्यालय म्यूज़यम की ओरसे, पश्चिम पाकिस्तानमें अरबी समुद्रके किनारेका सर्वेक्षण आरंभ किया गया। फील्ड पार्टीने मोहन-जो-दरो जैसी अनेक ऐसी बस्तियां (खडहर) ढूंढ निकालीं जो वास्तवमें साफ साफ बंदर थे, परन्तु इस समय वे समुद्र किनारेसे ३० मील अंदरकी ओर थे। इन स्थानांतरित (Displaced) बंदरोंमें से स्पष्ट था कि यह सारा समुद्री पट्टा पिछले चार हज़ार वर्षों में काफी ऊंचा हो गया है। उसी वर्ष एक और वैज्ञानिक (Hydrologist) श्री रैक्स (Robert L Raikes) दक्षिण बलोचिस्तान और सिन्धके लाड़ प्रदेशमें बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण (Survey) कर रहा था। इसे भी ऐतिहासिक खोजमें रुची थी। उसने भी मोहन-जो-दरो सस्कृतिकी बरबादीका कारण जानना चाहा। दोनों ओरस सहमति होनेपर वह भी हमारे साथ सम्मिलित हो गया और मोहन-जो-दरो मुहिम (expedition) के साथ Engineering Adviser के तौरपर काम कर रहा है।

"अत: जिसप्रकार श्री साहिनी (१९४०में) हैद्राबादके समीप लट (alluvial) देखकर शंकित हुआ था उसी प्रकार श्री रैक्स भी सन् १९६४में यह लट देखकर यह जानना चाहा कि मोहन-जो-दरोंमें जो लट (alluvial), जो तलसे ३० फुट ऊंचा था, वह काहेका है? Boring करके जो पड़ताल की गई, उसने सिद्ध कर दिया कि वह लट समतलके नीचे भी है। रैक्सकी खोजने न केवल श्री साहिनीके अनुमानको ठीक समझा अपितु सेवहण नगरके पास भी इस उत्पातका अनुमान किया है, जिसने मोहन-जो-दरो तक यह बरबादी लाई (तथा मन्छरकी झील भी इसी उथल-पुथलका परिणाम है)। ज़मीनमें इस प्रकार

(1) Proceedings: 42nd Indian Science Congress [Baroda] 1955, Pp. 442-3

होता रहा है। सन् १९४५में इस किनारे पर समुद्रमें से अचानक मिट्टीके कुछ छोटे द्वीप बाहर निकल आये। बावजूद इसके मोहन-जो-दरो आदि खंडहर बाढ़के कारण नहीं बने हैं परन्तु छोड़ दिये गये हैं। जो शताब्दियों तक ऐसेही रहे और यह बात 'आर्योंके आक्रमण' वाले गपोड़ेके लिये समुचित (उत्तर) है।[1]

दूसरी बात जो आर्य आक्रमण को बिलकुल निरर्थक बना देती है वह है पुराने अस्थि पिंजरों तथा खोपड़ियों की माप-जांच (Anthoropology)। आर्केआलाजीकल सर्वे आफ इन्डियाने एक पुस्तकमें "Human Skeletal Remains from Harappa" प्रकाशित की है जिसके लेखक इस विषयके विशेषज्ञ श्री एन० के० बोस हैं। इस रिपोर्ट में २६० के लगभग ऐसे अस्थिपिंजरों, जो उस विस्तारमें से प्राप्त हुए हैं, की माप तथा दूसरी जांच करके निर्णय दिया है कि जहांतक "Cephalic Index" का प्रश्न है तो मोहन-जो-दरोके लोग सर्वथा आजके वर्तमान सिंधियो जैसे थे और इसीप्रकार हड़पाके वर्तमान पंजाब तथा लोथलके वर्तमान गुजरात जैसे।:-

"It is interesting that at least so far as the cephalic index is concerned, the population of Mohenjo-Daro is quite similar to the present day longheaded population of Sindh. The same similarity is found between the ancient population of Harappa and the present day population of the Punjab. The skulls from Lothal are on the average round-headed (cephalic index: 79-68) which is remarkably close to the cephalic index of the present day inhabitants of Gujarat."

यहां यह ध्यान रहे कि हिन्दू संस्कृतिके शत्रु देसी अथवा विदेशी ऐसाही मानते हैं कि पहले यहां द्रावड़ (अनार्य) रहते थे, जिनकी अग्रत संस्कृति (मोहन-जो-दरो) को आर्यों ने आक्रमणकर नाश कर दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि आर्योंने उनका नगर नाश किया, लोगों को मारा (यद्यपि मोहन-जो-दरोसे कोई भी हथ्यार नहीं मिला है) तो अब मिले अस्थि पिंजर केवल उन (द्रावड़ों) के होने चाहिये जो मूल निवासी थे। तो फिर वे आजके लोगों से किसप्रकार समानता धरते हैं? स्पष्ट है कि यह आर्य-द्रावड़ नामका भूत केवल धोखा है और उपरोक्त पुस्तकमें भी इस धोखे को केवल धोखा ही सिद्ध किया गया है। और स्पष्ट लिखा है कि, 'इसलिये यह बात कि, मोहन-जो-दरोमें विदेशी जन संख्या बसती थी जो बाहर से आई (अर्थात आर्य) आदि, वह ग़लत है।:-

(1) "Instead they give the appearance of having been abruptly abondoned after which they stood empty for centuries. Such a pattern is certainly compatible with the (Aryan) invasion hypothesis."

(American Review Quarterly [Delhi], October 1966)

"Nor is it likely that the cultural decline of the Indus Valley people was due to enemy action and external destruction by foreign invaders (the Aryns)."

आगे चलकर स्पष्ट लिखा है कि "जो शव (अस्थिपंजर) इसप्रकार विस्तारमें फैले अथवा ढूहों (mounds) से मिले हैं उनका भी इस बात से कोई सम्बंध नहीं है कि कोई आर्य आक्रमण हुआ। इसलिये यह आर्यों के आक्रमणके लिये हथियार(बहाना) के तौरपर प्रयोग नहीं किया जा सकता।" :-

" The popular explanation in recent years for the end of Mohenjo-Daro and the Indus civilization has been the invasion of the Indo-European Aryans into the Indian subcontinent. There is little positive evidence to support this theory. It is not even known when the Aryans entered the area and as yet they cannot be identified archaeologically......" (Ibid, P. 26)

न केवल इतना परन्तु जैसा कि पिछली खुदाइयों में से ३० अस्थिपंजर (skeleton) ईंटों के मलबे के नीचे मिले थे वैसे ही ५ अस्थि पंजर उन्हें इस नई खुदाई से भी मिले, परन्तु उनको यह महाशय अनिर्धारित काल (undetermined date) का कहकर फिर दुहराता है कि "इसलिये इसे भी बाहरी आक्रमणके क़ारण हुई नरहत्या नहीं कहा जा सकता।" और नगरके नाश होनेका कारण वह भौगोलिक बतलाता है।:-

"They certainly cannot unconditionally be used to support a theory of general massacre at the hands of foreign invaders." (Ibid)

इसी प्रकार का विस्तृत बहस श्री डी०के० सेन ने एक निबंध 'Ancient Races of India & Pakistan-A study of methods' में किया, जो उसने 'Indian Science Congress (52nd. Session, 1964-65, Calcutta)' में पढ़ा था, जो आर्केआलाजी विभागने अपनी बुलेटिन "Ancient India" (न० २०-२१) में पुनः प्रकाशित किया था। उसके आरभमें ही उसने कहा कि 'मैंने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि अस्थिपंजर और खोपडियों के माप आदि के विषयमें किये गये निर्णय ग़लत तथा जातियों के विषयमें निर्धारित निरर्थक रायों के आधार पर किये गये हैं, इसलिये वे विश्वसनीय नहीं हैं।" (पृ० १७६) यदि मोहन-जो-दरोमें द्रावड़ संस्कृति थी, आर्यों ने उन्हें भगा दिया तो ये दक्षिणमें जाकर बस गये। तो उस उन्नत संस्कृतिका फिर वहां पुनः प्रसारण और निर्माण किया होगा। तो फिर कमसे कम उस प्राचीन संस्कृतिके कुछ तो अवशेष दक्षिण भारतमें मिलने चाहियें? यदि कहा जाय कि इसके लिये वैसे साधन वहां उपलब्ध नहीं थे तो यह नियम तो सब प्राचीन जातियों के साथ लागू है! परन्तु नहीं, ऐसा भी नहीं

है, क्योंकि श्री मार्टीमर वीलर ने स्पष्ट लिखा है कि :-

"There is in South or 'Dravidian' India no known culture significantly comparable with that of early Sumer and no ancient civilization on any equivalent cultural plane."[1]

तो फिर दक्षिणके महान भव्य मंदिर जिनकी कलाके सामने ईजिप्ट भी फीका पड़ जाता है, वह किया है, द्रावड़ अथवा आर्य ?

हमारी रायमें किसी भी संस्कृतिकी परख धातुओं पर करनी हैं तो सही तरीका यह है कि:- 'लोहेको प्राकृतिक तौर पर सड़कर गल जानेमें जितने हज़ार वर्ष लगें वे उस 'Pre Iron-Age' से जोड़े जायं'। किन्तु भारतमें तो ऐसा प्रश्न ही नहीं है। क्यों कि संस्कृत में लोहेका नाम तो आदिसे विद्यमान है।

उत्तर प्रदेश (गंगा-यमुना घाटी) में से तांबे के जो औज़ार (Harpoons) मिले हैं, वे संसारमें उतम दरजे के हैं, क्यों कि वे केवल "Upper Palaeolithic Period" में अथवा बादमें मध्य-पत्थर-युगमें ही बनाए जाते थे। परन्तु तांबेके रूपमें वे यहां भारतमें मिलनेसे वैज्ञानिक इसे अति प्राचीन कालीन माननेके लिये मजबूर हो गये हैं। क्योंकि श्रीमती पिगट (S. Piggot) ने लिखा है कि :-

" Associated with these axe types in several hoards confined to the valleys of the Jamuna and Ganga is a remarkab'e series of copper harpoons, which can be arranged in a typological series evolving from primitive types which clearly copy prototypes in bone or horn. These harpoons must represent a local development among river-side communities whose economy centred round fish-spearing and whose primitive equipment was transformed into metal when the knowledge of metallurgy spread among them. The implied existence of harpoons of forms similar to those known in many mesolithic cultures of Europe and Western Asia is of some interest."[2]

इस प्रकार हमने देखा कि मोहन-जो-दरो (सिन्धु संस्कृति) न आर्य है न ही द्रावड़, परन्तु दोनों है अर्थात भारती आर्य है। उसके विनाशमें किसी बाहरी शक्तिका हाथ नहीं लेकिन कोई प्राकृतिक कारण हैं। हमने बड़े विद्वानों तथा वैज्ञानिकों के प्रमाण देकर यह सब सिद्ध किया है। भारतके लिये यह संस्कृति नई नहीं है, भारत बहुत बहुत महान रह चुका है, संसारका गुरूजो ठहरा!

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय तीसरा

(1) Ancient India, No. 4, P. 89 (2) Prehistoric India [1950], P. 237

● Shri Boirnstierna Court, says:-

"The Cosmogony (सृष्टि ज्ञान) of the whole world has been derived from India. That the Greeks derived theirs from the Hindus may be seen in the accounts which Damascius has given of the doctrine of Orpheus.

"If we reflect upon all these testimonies respecting Moses (महेश?) and codsider the place (Heliopolis-हरिपुर) where he studied, and if we also recollect that the religion of the Egyptians was derived from India, we thus find a clue from whence Moses must partly have obtained his cosmogony and also his religious system, which, like the Vedas, was constructed upon monotheistic principles.

"The present cosmogony prevalent in the Christian and Mohamedan countries is also of Indian origin. The Buddhistic cosmogony is as follows:- "In the beginning the earth was uninhabited, at which time the inhabitants of Heaven or of Bhuvana used to visit the earth. These glorious beings consisting of men and women through the purity of their spirit, had never yet cherished any sensual desires, when Adi Buddha (the Supreme God) infused into them the desire to take the fruit of a tree resembling the almond which excited the sensual appetite in them and they afterwards disdained to return to Bhuvana and thus became the parents of the human race That this is the source from which the Bible and the Quran derived their common system of cosmogony, there can scarcely be any doubt. It is thus perfectly clear that every system of cosmogony whether ancient or modern, owes its origin to the Hindus."

(Theogony of the Hindus, Vol. III, P. 79)

● Rev. Ward, says:-

"No reasonable person will deny to the Hindus of former times the praise of very extensive learning. The variety of subjects upon which they wrote, prove that almost every science was cultivated among them. The manner also in which they treated these subjects, proves that the Hindu learned men yielded the palm of learning to scarcely any other of the ancients. The more their philosophical works and law-books are studied the more will the enquirer be convinced of the depth of wisdom possessed by the authors (Hindus)." (Antiquity of Hindusthan, Vol. IV)

अध्याय ४

संस्कृत साहित्य में सिन्ध * Sindh in Sanskrit Lit.

रामायण और महाभारतपूर्वका ऐतिहासिक वर्णन जो पुराणों में है उसमें ही आर्यों की वंशावलियां दी हुई है। परन्तु उनका सम्पादन अनुश्रुतियों के सहारे बहुत पीछेका किया हुआ है, जिसके पश्चात उसमें विधर्मियों तथा विदेशियों ने बड़ा घृणित प्रक्षेप किया है।

यहां हम प्रथम रामायण और महाभारतको देखेंगे। इससे पूर्वके दूसरे साहित्यमें जो कुछ उल्लेख मिलते हैं वे यथास्थान देते चलेंगे।

रामायण! यह ऐतिहासिक वर्णनका प्रथम ग्रन्थ है जिसकी रचना महर्षि वालमीकी ने की है। रामायणका काल हम लिखना नहीं चाहिते, क्यों कि वह विश्वासके योग्य न भी समझा जाए परन्तु हमारी गणनाके अनुसार रामायण कालको इस समय ८६९०८० वर्ष बीत चुके हैं। महाभारतके अनुसार भगवान रामचन्द्र त्रेता और द्वारपुर युगोंके संधिमें हुए।[1] द्वारपुरके ८६४००० वर्ष तथा कलयुगके बीते हुए ५०८० वर्ष कुल ८६९०८० वर्ष होते हैं।

बिचारा ईसाई गाड (God) जिसकी स्वयंही आयु छः हज़ार वर्ष है, वह स्वयं जन्मा था अथवा कहीं से मंगवाया गया था, कौनसा धंधा करता है, उसके पूर्वज क्या करते थे, स्वयं जन्मा तो उसे किसने जन्म दिया और क्यों जन्म दिया, ऐसा तो नहीं कि स्वयं विकास करते करते प्रथम-प्रथम बंदर से उत्पन्न हुआ आदि यह सब न तो स्वयं ईसाइयोंको मालूम है न ही उनके ऐतिहासिक ग्रंथ बाईबलमें कुछ लिखा है। उस गाड की शिक्षा-योग्यता क्या है कहां तक Graduate है, किस आधार पर वह दुनियाको पैदा करनेका अधिकारी बना ? ये सब बातें बाईबलमें न मिलनेके पश्चात हम कह सकते हैं कि दुनियाके विषयमें यह नितांत बालक है। इसे स्वयं अपनी खुदाईका ज्ञान नहीं है कि वह किस प्रकार, कब और क्यों बनी। जिसके कोषमें हज़ार से अधिक कोई अंक ही नहीं है। उसे क्या मालूम कि दुनियाकी आयु कितनी है। उसके बाद समय-समय पर होने वाली घटनाओं और नबियों (patriarchs) की आयु कितनी ? हम यह कुछ परिहास के तौर पर नहीं कह रहे परन्तु दिलसे और सोच समझकर लिख रहे हैं। नहीं तो हमें बाईबल तथा कुरानके लिये इतनाही सन्मान है जितना हिन्दुओं के पुराणोंके लिये। परन्तु जब हम दुनियाके महत्वपूर्ण सवालों के उत्तर पाने में अपने को निराश पाते हैं, तब यह विवश होकर लिखना पड़ता है। इसलिये बेचारे ईसाई विद्वान जो तंग दायरे से ऊपर उठ चुके हैं और अपने God से तंग आकर किसी नये God की तलाश में हैं और जबतक वह उन्हें मिले तबतक

(1) महाभारत [गीता] वनपर्व, १४९/७-२६-२७

वे विकासवाद (Evolution Theory) के सहारे किसी नकली खुदाकी कल्पना करके वैज्ञानिक संसारको चला रहे हैं। सर्वशक्तिमान, सृष्टिके नियामक परम पिता परमात्माको समझनेका प्रयत्न वे भी कर रहे हैं। किन्तु जिन हिन्दुओं के पास इसका ज्ञान है उन्हों ने उसे पत्थरों में पलटकर, भव्य इमारतोंमें बंदकर रखा है। जिनके पास इस कैदमें से छुड़ा कर उस परमात्माका सच्चा स्वरूप प्रकटकर दिखानेकी चाबी है, वे भी अब वह शक्ति खो चुके हैं। इसलिये कमसे कम ईसाई विद्वान सच्चाईको समझते भी मज़हबी तंग दायरेमें कैद हैं। कुछ स्वतंत्र भी हुए हैं तो भी उन्हें बिलकुल सच्च मगर कल्पनाकी सीमासे बाहर होनेके कारण, यह इतनी लंबी आयूका सवाल वह भी शताब्दियों के बाद उनके सामने आनेके कारण, वे उसे किसी धार्मिक विश्वासपर स्वीकार करनेको तैयार नहीं हैं। उनका भी दोष नहीं है। स्वयं हिन्दू ही इस बातको नहीं जानते तो इन बेचारे ईसाई विद्वानों को क्या कहा जाय। ये विद्वान वैसे क्यों न मनुष्यकी उत्पति स्वयं लाखों वर्षों की बताएं, उसपर विज्ञानिक वाद विवाद भी करें, परन्तु संस्कृत अथवा वैदिक साहित्यके सहारे यह सब मानना उनके लिये कठिन है। इसके स्थानपर भारतके विद्वान भी यह सब ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रखते। क्योंकि उनकी शिक्षा ही इस ईसाई मिशनरी और मशीनरी के वातावरणमें हुई है। दूसरे कारण भी हैं। हम जानते हैं कि यह समस्या सचमुच इतनी पेचीदा भी है कि इसके सुलझने सुलझाने में भी अब शताब्दियों की आवश्यकता है। समय था कि यूरोपीय लोग वेदोंको गंवारों के गीत कहते थे। अब वेही ज्ञान-विज्ञान का भण्डार समझने में आते हैं। भारतवासी जंगली अनुमान किये जाते थे, अब वे भी सभ्यताके प्रेरक माने जाते हैं। समय था कि यूनान और मिस्र महान संस्कृतियों के अगुआ समझे जाते थे। परन्तु अब मोहन-जो-दरो संस्कृति सबका आगेवान है। इसी प्रकार समय आएगा कि ये सन्-संवत तथा इतनी लम्बी आयु (Ages) भी स्वीकार की जाएंगी। महाभारतमें ऐसी ही एक बात भी आती है जो भी हज़म करनेमें कठिन है, तो भी सुनाते हैं, कि "श्री रामने इस पृथ्वी पर ११ हज़ार वर्षों तक राज्य किया"।[1] और हमही यह स्पष्ट करते हैं कि यूं नहीं परन्तु श्री रामचन्द्रके वंशजों ने इतने समय तक राज्य किया। महाभारत युद्धके पश्चात कलियुगमें ही युद्धों का कुछ वर्णन धीरे-धीरे देखते हैं। क्योंकि बड़े बड़े वैज्ञानिक इस भारत युद्धमें मारे गये। ज्ञानके अभाव तथा कमी के कारण यह सब हुआ। लोगों की आयु कम हो गई तो वंश भी छोटे होते गये। क्योंकि एक दूसरेसे शत्रुता के कारण दूसरे ने ज़ोर पकड़कर पहले राज्यपर अधिकार कर लिया तो वह वंश समाप्त होकर नया आरंभ हो गया और इसप्रकार होता रहा। यह सब विशाल दृष्टिसे देखना और समझना है, नहीं तो सब गपोड़े हैं, क्योंकि इनकी आयु (period) का दायरा तंग तथा अनुमानों पर स्थर किया गया है। हम विशाल दें भी परन्तु बीच-बीचकी कड़ियां क्रमश चलाना असम्भव है।

(1) महाभारत, वनपर्व, १४८/९०

प्रथम यह बात समझने की है कि 'ईजिप्ट की सभ्यताके खंडहर अत्यन्त उन्नत संस्कृतिके उत्तराधिकारी हैं। यदि छः हज़ार वर्ष पूर्व यह संस्कृति इतनी उन्नत थी और इधर संसारकी आयु ही छः हज़ार वर्ष हांकी जाती है तो फिर इस प्रश्नका उत्तर कौन देगाकि ऐसी संस्कृतिके उत्तराधिकारी अथवा पूर्वजोंको अपने सम्राटोके शवों (Mummies) को हज़ारों वर्षों तक सुरक्षित अवस्था में रखने के लिये काम में आनेवाली सामग्री के सोचने, समझने, अन्वेषण तथा प्रयोग करनेमें कितने हज़ार वर्ष लगे होंगे? ऐसा तो नहीं हुआ कि उन्हे ईसाई God ने जन्मते ही उनको समझा बुझा दिया कि 'तुम मेरे महबूब बेटे हो, मेरे सच्चे बेटे तो अभी चार हज़ार वर्ष बादमें जन्म लेनेवाले हैं। तबतक तुम मरो और शौक़से मरो, लेकिन कमसे कम अपने सम्राटों के शव सुरक्षित रखना' और उसका नुस्खा (formula) भी उनहें दे दिया। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि वह नुस्खा (formula) ४ हज़ार वर्ष बाद भी स्वयं अपने बेटे ईसा मसीहको नहीं बताया। क्या यह इतिहास से परिहास (मज़ाक) नहीं हैं? तो फिर यह सत्य नहीं है कि आजसे ६ हज़ार वर्ष पूर्व ऐसी सुन्दर तथा उन्नत संस्कृति को उस अवस्था तक पहुंचनेके पूर्व हज़ारों लाखों वर्ष और भी लगे होंगे? आज यूरोपको बना बनाया हज़ारों वर्षोंके परिश्रम से तैयार संस्कृत साहित्य द्वारा विज्ञानका भण्डार मिला है, जिसके आधार पर वह आज इतने नये-नये आविशकार कर सका है और कर रहा है। तो उन विज्ञान के मूल जन्म दाता आर्यों, संस्कृत साहित्य के निर्माण करने वालों को कोई हज़ारों वर्ष नहीं लगे होंगे? उन महान वैज्ञानिकों को कितनी सदियां लगी होंगी जिन्होंने यह सिद्ध किया होगा कि सोना किया है? मिट्टी से निकालना, समझना, शोध करना, उसके गुणदोष जानना, उसका किस प्रकार और क्या उपयोग करना आदि क्या यह सब कुछ महीनों-वर्षों का कार्य है? बने बनाए पर पलने वालों को क्या कहा जाए, सोचिये तो उन मूल पुरुषोंका सोचें जिन्हों ने हमें यह सब सदियों के गम्भीर अभ्यासपे शोध-साफ करके दिया।

सो कुछ ऐसा भी हुआ है कि कुछ यूरोपी तथा उनके भारती चेलोंने रामायण को महाभारतसे भी बादका दिखानेका प्रयत्न किया है। उनको क्या कहा जाये। उनकी अज्ञानता के साथ हमें कोई ईर्ष्या नहीं है। २-३ प्रमाण प्रस्तुत करके मूल विषय पर आएंगे।

जर्मन प्रो॰ जैकोबी (Jacobi) तथा विन्टर्नटिज़ (Winterntiz) ने लिखा है कि "महाभारतके वर्तमान रूपमें आनेसे पूर्व रामायण का ग्रंथ अपना वर्तमान रूप धारण कर चुका था"।[1]

(1) "The Ramayan must already have been generally familiar as an ancient work, before the Mahabhart had reached its final form."

(History of Indian Literature, P. 503)

जंकोबी की तो राय है कि "महाभारतकार पर रामायण काव्य का ही प्रभाव है।"[1]

परन्तु महाभारतमें ही महर्षि वालमीकी का एक श्लोकि 'अति प्राचीनकालीन समझकर' दिया गया है।[2] राम उपाख्यान भी सारा ही महाभारतके वनपर्वमें दिया हुआ है।

इस अवस्थामें रामायणको महाभारतके पश्चातका मानना मूर्खता है। निकटमें ही एक ऐसे बिचारे ने, जो पुरातत्वका विद्वान भी कहलाता है, रामायण-महाभारतके विषयमें भ्रांति पूर्ण लेख लिखकर वाद खड़ा किया था। भला जिसे अपने धर्म शास्त्रका पूरा ज्ञान नहीं, जिसके भाग्यमें रहे केवल पुराने खंडहरों के पत्थर तो वह सोचेगा भी इसी सीमित खोपड़ीसे न।

कुछ वर्ष पूर्व किसी एक पश्चमी लेखकने रामायणमें वर्णित महान आदर्श, जीवनको देखकर संदेह किय था कि रामायण सत्य नहीं हो सकता क्यों कि मनुष्य इतना महान-आदर्श, त्यागी, सदाचारी और मर्यादावाला हो नहीं सकता; संसारमें कोई मिसाल नहीं है, इसलिये रामायण हुआ ही नहीं, यह केवल कवि कल्पना है। लेकिन दूसरे ही श्वासमें वह कह बैठाकि 'बावजूद इसके इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि भारतमें ऐसा आदर्श, जिसके महानताकी सीमा ही नहीं है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, अवश्य रामायणके रचियता के सामने होगा अथवा कवि (महर्षि वालमीकी) ऐसा महान होगा जिसने इस महान आदर्शकी कल्पना की है"।

भला, भाई-भाईकी हत्या करनेवाले, पुत्र पिताका कातिल, मजहबके नाम पर पाशवता, परस्त्रियों का अपहरण कौर बलात्कार, मजहबके नाम पर ही बालक, बूढ़े, युवक स्त्रियों की हत्या, राजगदी के लोभ में किसी प्रकार का भी नीच व्यवहार करना, सुंदर और भव्य इमारतों और मंदिरों का तोड़ना, धनादिकी लालचमें मजहब के सहारे तबाही मचाना आदि बातें निकट इतिहासमें लगातार देखकर, कौन मनुष्यताकी कल्पना कर सकता है। उपरोक्त गुनाहों के सिवाय और कौनसा गुनाह बाकी है जो इन मजहबों ने नहीं किया है? और इन गुनाहों को इन मजहबों से अलग करें तो मजहबकी बुनियाद हिलने लगेगी।' इस अवस्थामें कौन भगवान राम, लक्षमण और भरतका भ्रात्री प्रेम समझ सकेगा? राजसत्ता फुटबाल के समान दो भाइयों (राम और भरत) के बीच टकड़ा रही है, कोई भी एक दूसरे के सिवाय उसे छूनेको भी तैयार नहीं। पिता-पुत्रका मोह, महान साम्राज्यको त्यागकर, जगलमें १४ वर्षों के लिये भटकना वह भी केवल पिताके वचनको सत्य कायम रखने के लिये, क्या यह सब आजके इन्सानके दायरेकी बात है? कल्पना ही सही कोई सच्ची मिसाल तो बताइये इन मजहबों के इतिहासमें। हजरत अली के दो पुत्रों की

(1) "Jacobi is so sure about the Ramayan being the older poem, that he even takes for granted that the Mahabharat only became an epic under the influence of the poetic art of Valmiki." (Ibid, P. 506)

(2) महाभारत, वनपर्व, १४३/६७

बेदर्द मोत, अथवा औरंगजेबका अपने पिता को तड़पाकर मारना; जरा इन दो ऐतिहासिक घटनाओं की कल्पना तो कीजिये! ऐसा इतिहास पढ़ने - जानने वाले भला रामायणकी महानताका आदर्श किस प्रकार समझ पाएंगे, जिसके एक-एक पृष्ठपर मनुष्यकी मनुष्यताका चित्र चित्रित है। और ये सब उस महान आर्य जाति के लोग हैं जो अपने इस महान आदर्शी जीवनकी छाप संसारके सदाचार पर छोड़ गये हैं। ईश्वरका उत्पन्न किया अहा आदि - मनुष्य इस प्रकारका था! बंदरसे बने इन्सानकी कल्पना कर लीजिये!! विद्वानों का कहना है कि "संसारमें कैसा भी अधम कोटिका इन्सान हो, एकबार हृदयसे रामायणको पढ़े और समझे तो ससारकी कोई शक्ति नहीं जो उसे ज़लील रहने दे। उसे मनुष्य नहीं अपितु देवता बनना ही पड़ेगा। और इधर हैं मजहब, जो अवल तो इन्सानियत की खोपड़ी खींच लेते हैं, बाकी ईमान तो वैसे ही चला जाता है। रामायण का गिड़ा हुआ पात्र राजा रावण, जिसे केवल परस्त्रीका राजनैतिक बदला लेनेके कारण धोखेसे अपहरण करनेके कारण राक्षस कहा जाता है, यहां तककि उसकी पत्नी तथा भाईने भी क्षमा नहीं किया, वह आज लाखों वर्षों के पश्चात भी इस नामसे कुख्यात है, यद्यपि आज रावण जैसा आदर्श पुरुष होना भी असम्भव है। इस आय राजा रावणका चरित्र तो देखें, भगवती सीता को वह छू भी नहीं सका! और यही बाद का हिन्दू आदर्श है जिसका प्रतीक सिन्धके इतिहासमें राजा हमीर (उमर) सूमरो का था, जिसने पतिवृता नारी मारुई को बंदीकालमें सत्ता तथा साधन होते हुए भी हाथ नहीं लगाया और अंतमें उसे सन्मानके साथ उसके घर पहुंचा दिया।

रामायण कोई विशेष इतिहास ग्रंथ नहीं है परन्तु वृतांत ग्रंथ है, इसलिये उसमें घटना वश सिन्ध सम्बंधी कुछ उल्लेख आए हैं। :-

"सिन्ध राजा दशरथ के आधीन था। जिस समय कैकेयी भरतको राज्य दिलानेके लिये रूठकर जा बैठी तो राजा दशरथ उसे मनानेको गया, उस समय वर्णन करते उसे कहा 'जहांतक सूर्यका चक्र घूमता है, वहां तक सारी पृथ्वी मेरे अधिकारमें है। सिन्ध, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण भारतके सब प्रदेश, अङ्ग, वङ्ग, मगध, मत्स्य, काशी और कौशल, इन सभी समृद्धिशाली देशों पर मेरा आधिपत्य है।

"कैकेयी! उनमें पैदा होनेवाले भांति-भांति के द्रव्य, धन-धान्य और बकरी-भेड़ आदि जो भी तुम मनसे लेना चाहिती हो, वह मुझसे मांग लो"।[1]

भगवती सीता के गुम हो जाने पर उसकी खोजमें भेजे गये वानरों (वनवासी-जिनको धोखेसे बंदर कहा जाता है) को सिन्धू नदी की ओर भी ढूंढ़नेके लिये कहा गया था।[2]

(1) रामायण [गीता] अयोध्या काण्ड, सर्ग १०, श्लोक ३६-३८

(२) वही, किष्कन्धा काण्ड, सर्ग ४०, श्लोक २१

अयोध्या नगरीकी समृद्धिका वर्णन करते वहां सिन्धूके किनारे होने वाले दरयाई घोड़ोंका होना भी लिखा है, जो इन्द्रके समान उत्तम थे।[1]

भगवती सीताको ढूंढनेके लिये वन (वानर) सेनाको आदेश देते सुग्रीवने सुषेण आदिको पश्चिमकी ओर जाते कहा- "सिन्धु नदी और समुद्रके सङ्गमपर सोमगिरि नामी एक बड़ा पर्वत है, जिसकी एक सौ शिखर हैं...... उसपर बड़े बड़े वृक्ष हैं। उनकी चोटियों पर सिंह नामक पक्षी रहते हैं।[2]

रामायणसे हमारा अभिप्रय केवल वालमीकी रामायणसे है। तथा पढ़नेसे अभिप्राय समझनेसे हैं न कि पाखण्ड रूपी पाठ करने अथवा रटनेसे। केवल तोतेकी तरह पाठ करना रटना निरर्थक है। इस प्रकार पाठ करने से तो वेद पाठ करते भी कुछ नहीं बनेगा। सो ऐसा है आर्योंका महान ग्रंथ रामायण, और उसमें सिन्धका उल्लेख।

महाभारत! (संक्षेप) महाभारत कालको पांच हज़ार वर्ष बीत चुके हैं। महाभारतमें ही आता है, कि "जब कलियुग और द्वापुर की संधिका समय आया, तब कोरव और पाण्डवोंकी युद्ध हुई।[3] फिर दूसरे स्थानपर भगवान कृष्ण अपने भाई बलरामको समझाते कहता है "प्राप्तं कलियुगं" अर्थात समझलो कि कलियुग लग गया।[4] कलियुग ईसाई संवतसे ३१०१ वर्ष पूर्व हुआ अर्थात कुल ५०८० वर्ष। डा० देवसहाय त्रिवेदी ने "महाभारत युद्ध काल" पर लिखते इस विषयपर विद्वता पूर्ण बहस की है तथा अबुलफजल के "आईन अकबरी" के प्रमाणसे भी इसी बात की पुष्टि की है।[5] प० भगवद्दतजी ने लिखा है कि "महाभारतके पाठसे मालूम होता है कि महर्षि वेदव्यासने अपने चार शिष्यों और पुत्र शुकको भारत संहिता पढ़ाई थी। उस भारत संहितामें वैशम्पायन चरकके चारक श्लोक और लोमहर्शणका उपोदघात जब जुड़ गये तब वह महाभारत संहिता कहलाई। वह महाभारत संहिता आश्वलायन मुनिके समयमें इसी रूपमें विद्यमान थी। वह काल परिक्षितके पुत्र जनमेजयके थोड़ा बाद और अधीसीमसे थोड़ा पूर्व था"। और उनके अनुसार 'आश्वलायन ईसासे २८०० वर्ष पूर्व हुआ है'।[6]

महाभारत क्या है? महर्षि वेदव्यासके शब्दोंमें "मैं ने इस काव्यमें सम्पूर्ण वेदोंके अत्यंत गुप्त रहस्यों तथा दूसरे सभी शास्त्रों का सार सम्मिलित किया है। केवल वेदों का ही नहीं परन्तु

(1) वही, बालकाण्ड सर्ग ६, श्लोक २२

(2) वही, किष्किन्धाकाण्ड, अध्याय ४२, श्लोक १५-१६

(3) महाभारत [गीता] आदिपर्व, अध्याय २, श्लोक १३

(4) महाभारत, शल्य पर्व, अध्याय ६०, श्लोक २५

(5) अवन्तिका [हिन्दी मासिक], डिसेम्बर १९५४

(6) भारतवर्षका बृहत इतिहास, भाग १, पृ० ९४

उनके अङ्गों और उपनिषदों का विस्तार से निरूपण किया है। इस ग्रंथमें इतिहास और पुराणों को मथकर उनका असली रूप प्रकट किया है। भूत, वर्तमान और भविष्य, तीनों का भी वर्णन किया गया है।[1]

इतिहासमें यह महाकाव्य भारतके प्राचीन कालका सार रूपमें इतिहास तथा उस समयके सारे संसारका संक्षेपमें इतिहासका भण्डार ग्रंथ है। भारत तथा संसारके इतिहासके ये दोनो (रामायण-महाभरात) नेत्र हैं। रामायण आदर्श इतिहासकी नींव है तो महाभारत सुदृढ़ इमारत है। जबतक संसार है तबतक ये महानकाव्य ग्रंथ तथा उनके रचियता महर्षि वाल्मीकी और महर्षि वेदव्यास ईश्वरीय ज्ञानका सरल दर्शन कराने वाले प्रकाशस्तम्भ होकर रहेंगे। वेदों को न पढ़नेसे साधारण मनुष्यका जीवन चल जायगा क्यों कि वेद को समझना तो दूरकी बात सही शुद्ध पढ़ने की योग्यता भी आजके मनुष्यमें क्षीण है। मगर इन दोनों के न पढ़ने-समझने से मनुष देवता तो क्या इन्सान भी नहीं बन सकता। हमने तोते के समान रटने को ही सब धर्म समझ रखा है, मगर वह भी समझा नहीं है। महाभारत केवल कौरव-पाण्डव के युद्ध का वर्णन नहीं है, जैसाकि प्राय: समझा जाता है, किन्तु इस बहाने इससे अधिक और इतिहास तथा जीवनकी उन्नतिके रहस्य समझाए गये हैं। यद्यपि इसमें प्रक्षेप भी बहुत हुआ है, इसलिये सावधानीसे शोध करके समझना है।

- सिन्धु नदी! जब पांचाल नरेशने, भरतवंशी सम्राट संवरण पर आक्रमण कर उसे जीता तब वह अपने परिवार और मंत्रियों साहित सिन्धु नामक महानंद के किनारे जंगलमें, जो पर्वत से लेकर नदी के किनारे तक फैला हुआ था, निवास किया, जहां उसे एक हजार वर्ष बीत गये।[2]
- महामुनि नारदने वरूणदेवताकी दरबारका दर्शन करते सिन्धु नदी का वर्णन किया है।[3]
- मार्कण्डेय मुनिने बालमुकुंदके पेटमें सिन्धु का दर्शन किया।[4]
- इसी प्रकार गङ्गा आदि नदियों के साथ, सिन्धुनदी (बड़ी नदी) रूपमें इनका वर्णन किया गया है जो अग्निका उत्पति स्थान है। (वन, २२२/२२)
- गङ्गाकी सात धाराओं में से एक है। (भीष्म, ६/४८)
- काशमीर मण्डलकी जो भी नदियां इस महान्द सिन्धुमें मिलती हैं, उनमें और सिन्धुमें स्नानकर शीलवान पुरुष मरणोपरांत स्वर्गमें जाते हैं। (भीष्म, ६/२१)
- भगवती पार्वती द्वारा स्त्री धर्मका वर्णन करते सन्मान पानेवाली नदियों में सिन्धुका वर्णन है।[5]
- यह दिन-रात स्मरण करने जैसी तथा रक्षा करनेवाली नदी है। (अनुशासन, १६५/१६)
- सिन्धु प्रभव। सिन्धु नदी के उद्गम स्थानमें, जहां सिद्ध-गंधर्व रहते हैं, जाकर पांच रात्रि

(1) महाभारत, आदिपर्व, ६२-६३
(2) (आदि, ६४/३८-४१)
(3) सभा, ६/१६
(4) वन, १८८/१०३
(5) (अनुशासन: २५/८)

उपवास करनेसे बहुत सोने (Gold) की प्राप्ति होते है।[1]

सिन्धु पुलिन्द। इस नामका एक जनपद था जिसकी स्थतिका ज्ञान नहीं है।[2]

सिन्धुद्वीप। एक प्राचीन राजर्षि, जिसने पृथूदिक तीर्थमें तपस्या करके ब्राह्मणत्व प्राप्त किया।[3] यह जहनु राजाका पुत्र था। उसके पुत्रका नाम बलाकाश्व था।[4] इसका दूसरा नाम सिन्धु भी था, जिसपरसे वर्तमान सिन्धु देश का नाम भी पड़ा है। भविष्य तथा भागवत पुराणके अनुसार अयुताश्व सिन्धु द्वीपका पुत्र था।

सौवीर! भारतके जनपदों में सिन्धके साथ सौवीर का नाम भी है।[5] जिसका ऊपर वर्णन आया है।

महाभारत कालमें सिन्धका राजा वृद्धक्षेत्र राज्य कर रहा था।[6] जब युद्ध आरंभ हुआ तो उस समय राजाके वानप्रस्थका समय हो गया था, इसलिये अपने पुत्र जयद्रथको गद्दी पर बिठाकर स्वयं वनमें तपस्याके लिये चला गया।[7] कौरव राजा दुर्योधनने अपने मामा गांधारराज सुबलके पुत्र शकुनिकी मंत्रणासे अपनी बहिन दुःशलाका विवाह सिन्धके राजा जयद्रथसे करा दिय।[8] इस नाते वह महाभारत युद्धमें कौरवोंकी ओरसे लड़ रहा था। महाभारतमें उसके ये नाम भी आते हैं:– सैन्धव, सैन्धवक, सौवीर, सौवीरराज, सिन्धुपति, सिन्धुराज, सिन्धुविराट्, सिन्धुसौवीर, भरता, सुवीर, राष्ट्रय, वार्धक्षत्रि आदि। उसे बलाहक, अनीक, विदारण आदि छः भाई थे।[9]

सौवीर सिन्ध में होते हुए भी लगता है कि कभी उसकी स्वतंत्र सत्ता भी थी, जहां अलग सिन्धी राजवंश राज्य कर रहा था। केवल सिन्धका राजा बड़ा होनेके नाते दोनोंका सम्मिलित महाराज था। सौवीर राजके अलग नाम भी मिलते हैं। "जो सौवीर देशका राजा, गंधर्वों के उपद्रवों के होते हुए भी तीन वर्षोंतक निर्विघ्न लगातार यज्ञ करता रहा। युद्धमें अर्जुनादि पाण्डवों के हाथों मारा गया ...... जो बड़ा शक्तिशाली तथा कौरवों का हितैषी, सौवीर नरेश विपुल भी बुद्धिमान अर्जुनके हाथों युद्ध भूमिमें मारा गया। जो सदा युद्धके लिये तयार रहता था जिसे लोग 'दत्तामित्र' नामसे जानते थे, उस सौवीर निवासी सुमित्रका भी अर्जुनने अपने बाणोंसे दमन कर दिया।[10] महाभारतमें एक ही स्थानपर सौवीर नाम जयद्रथसे भिन्न आया है। "जब जयद्रथकी सेना और सौवीर सेना युद्धमें शामिल होनेके लिये जा रही थीं।"[11]

पाण्डव बनवासमें थे। जयद्रथ सिन्धसे शाल्व देशमें स्वयंवरके लिये जा रहा था तब उसके साथ अंगारक, कुंजर, गुप्तक, शत्रुंजय, संजय, सुप्रवृद्ध, प्रभंकर, भ्रमर, रवि, शूर, प्रताप तथा कुहन नामक सौवीर देशके द्वादश राजपुत्र तथा सेना भी थी।[12] इससे स्पष्ट है कि सौवीरका

(1) वन, ८४/४६ (2) भीष्म, ६/४० (3) शल्य, ३६/३७ तथा ४०/१० (4) अनुशासन, ४/४
(5) महाभारत, भीष्म, ६/५३ (6) वन, २६४/६ (7) द्रोण, १४६/१३
(8) आदि, ६७/१०६-११ (9) वन, २६४/१२ (10) आदि, १३८/२०,२२,२३
(11) भीष्म, ५६/७५-७६ (12) वन, २६४/६-११

बिलकुल अलग अस्तित्व भी था, परन्तु राजा एक था जिसप्रकार इंगलैंडका सम्राट 'ग्रेट ब्रिटन और आयरलैंड' का। जयद्रथ भी सिन्धका, सौवीरका और सिन्धु-सौवीरका भी राजा था और लगता है शिबि राज्य भी उसके अधीन था, क्योंकि बलोचिस्तान इतिहासमें सिन्धके अधीन ही रहा मिलता है। जयद्रथ द्रौपदी के स्वयंवरमें भी सम्मिलित हुआ था। स्वयंवरके समय आये हुए राजाओंका परिचय देते द्रौपदी के भ्राता धृष्टद्युम्नने सैंधवराज जयद्रथका भी नाम सुनाया था[1] युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सैंधवराज जयद्रथ भी सम्मिलित हुआ था।[2] और सोने साजों से सज्जित अनेक सिन्धी घोड़े उपहारके तौर भेजे थे। धृतराष्ट्रके जूआ समय भी राजा जयद्रथ शामिल हुआ था।[3] परन्तु युधिष्ठिरके समान यह भी जूआ खेलनेके लिये सहमत नहीं था। स्वयं धृतराष्ट्रने दुर्योधन के निधन पर विलाप करते कहा है कि "मैं जूआ नहीं चाहता था, विदुर भी दुखी था, और सिन्धुराज (जयद्रथ) भी विरुद्ध था, भीष्म भी अभिलाषा नहीं रखता था। शल्य, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य भी नाराज़ थे। यदि पुत्र दुर्योधन इन सब की राय मानकर चलता तो यह दुर्दशा नहीं होती।[4]

'जयद्रथ वध' नामक विशेष पर्व महाभारतके द्रोण पर्वमें है। जिसमें पूरे २०२ अध्याय हैं और यह वधवाला अन्तिम प्रकरण अध्याय १४६ में है।

जयद्रथ स्वयं बड़ा पराक्रमी था। ऐसा लगता है कि शिवि (सिबी-बिलोचिस्तान) के सिवाय भी दूसरे राज्य उसके अधिकारमें थे। महाभारतमें आता है कि युद्धके पश्चात संजय धृतराष्ट्रको कौरव पक्षके हताहत हुए लोगोंका परिचय दे रहा था तब जयद्रथका वर्णन करते कहा है:—

> सिन्धुराष्ट्रमुखानीह दश राष्ट्राणि यानिह
> वशे तिष्टन्ति वीरस्य यः स्थतस्तव शासने ॥११॥
> अक्षौहिणीर्दशैकां च विनिर्जित्य शितैःशरः
> अर्जुनेन हतो राजन् महावीर्यो जयद्रथ ॥१२॥

अर्थात, महाराज! जिस वीरके अधिकारमें सिन्धु-सौवीर आदि दस राज्य थे, जो सदा आपकी आज्ञा के अधीन रहता था, उस महापराक्रमी जयद्रथको अर्जुनने आपकी विशाल सेनाको पराजितकर, तीखे बाणोसे मार डाला। (कर्ण, ५/११-१२)

जयद्रथके एक पुत्र संजयका वध अर्जुनने द्रौपदी स्वयंवरके समय किया था। इसलिये इसके पश्चात दुःशलासे उत्पन्न पुत्र सुरथ सिंहासन पर बैठा।

उपरोक्त विवरणसे यह बात स्पष्ट है कि सिन्धियों और पाण्डवों की आपसमें शत्रुता थी। महाभारत युद्धके पश्चात वह फिर भड़क उठी। युद्धके पश्चात महाराजा युधिष्ठरने अश्वमेध यज्ञ किया। अर्जुनके संरक्षणमें वह अश्वमेधी घोड़ा प्राग्ज्यौतिषपुरमें पहुंचा। वहां राजा भगदत्तके पुत्र

(1) आदि, १८/२१ (2) सभा, ५१/७ (3) सभा, ५८/२६ (4) द्रोण, ८५/२७-२९

वज्रदत्तको जीतकर वह घोड़ा जब सिन्धमें पहुंचा तब सिन्धियों तथा युद्धमें मारे गये राजपुत्रों ने उसका मुकाबला किया। परन्तु उनकी स्थति ठीक नहीं थी। तब राणी दु:शला (जयद्रथकी पत्नी) अपने पुत्र सुरथके पुत्र (अर्थात पौत्र) को साथ लेकर रथपर सवार होकर युद्ध भूमिमें आई। उसका ध्येय यह था कि सब युद्ध बद करदें। अर्जुनके पास आकर वह रोने लगी। अर्जुनने उसे देखकर धनुष नीचे रखा और बहिनका स्वागतकर पूछा, बहिन! क्या सेवा करु ? दु:शलाने कहा, भाई! यह तेरे भानजेका पुत्र है, देख! यह तुझे प्रणाम करता है। तब अर्जुनेने पूछा सुरथ कहां हैं? बहिनने बतायाकि सुरथने सुना था कि अर्जुनके हाथों उसके पिताकी मौत हुई थी। अब जब उसने यह सुनाकि तुम घोड़के साथ यहां आ पहुंचे हो तो वह पिताके मौतके दुखसे घबड़ाकर मर गया। अर्जुन आया !! यह शब्द सुनकर जमीनपर गिरकर मृत्युको प्राप्त हुआ। इसलिये इस बालकपर कृपा कर। अर्जुन दुखी होकर बहिनको सांत्वना देकर घर भेजा और स्वयं घोड़के पीछे आगे बढ़ गया।[1] अश्वमेध की समाप्तीपर युद्धिष्ठरने अपनी बहिन दु:शलाके इछानुसार उसके पौत्रको सिन्धके सिंहासन पर बिठाया।[2]

यहां एक और बात उलझन वाली यह है कि प्राग्ज्योतिषपुरके पश्चात आश्वमेधी घोड़ा सिन्धमें कैसे पहुंचा और इसके पश्चात मर्णापुर कैसे गया। स्पष्ट है कि या तो यह पूर्वका त्रिगृत देश है अथवा प्राग्ज्योतिष (कामरूप) सिन्धके पूर्वमें भी कहीं उस कालमें होगा, जैसाकि आगे चलकर हम यह दिखाएंगे।

दु:शला उपाख्यान! दसवीं शती अथवा इससे भी बहुत पूर्व एक ऐतिहासिक पुस्तक हिन्दवानी भाषा (सिन्धी-संस्कृत) से अरबी भाषा तथा कूफी लिपिमें अनुदित की गयी थी। अनुवाद करता अबू सालिह बिन शैब बिन जामी है, जिसने सिन्धी-संस्कृतन अनुवादकी तिथि आदि नहीं लिखी है। सन् १०२६में अबूअलहसन अली बिन मुहमद अल जबल्ती जो जुर्जानमें किसी पुस्तकालयका अध्यक्ष था उसने देलमी (Dilamite) सिपहबादके लिये नस्ख (फारसी) में अनुवाद किया था। उस परसे ही एक दूसरे लेखक, जिसके नामका ज्ञान नहीं है, उसने बाद के फारसी नस्तैलीकमें "मुजमल अलतवारीख" नामसे अनुवाद सन् ११२६में किया।[3] यहां इसी पुस्तकसे ही सम्बंध है, जिसकी प्रथम सूचना श्री रेनाड (M. Reinaud) ने दी, जिसने इस पुस्तकके कुछ अंश फ्रेंच भाषामें पुस्तकाकारमें प्रकाशित किये। जिस पर २-३ विद्वानों ने लेख भी लिखे थे। यह लगभग सन् १८५० अथवा इससे थोड़ा पूर्वकी बात है। निकटमें (जून, १९४१) इसी रेनाडके फ्रेंचसे डेकन कालेज (पूना) के श्री हर्शने अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया था।[4]

(1) आश्वमेधिक पर्व, अध्याय ७७-७८ (2) आश्वमेधिक, ८९/३५
(3) Elliot: History of India, Vol, 1, P. 100
(4) Bulletin: Deccan College Research Institute, Vol. II, Nos. 3-4 Pp. 314-324

इसके पश्चात श्री सुनीतिकुमार चैटर्जीने इसीसे प्रेरणा पाकर जुलाइ १९५८में मूल फारसी और फ्रेंचके सहारे एक जुदा लेख इसपर लिखा।[1] इसी लेख का हिन्दी अनुवाद उसी समय "नागरी प्रचारिणी सभा" की पत्रिकामें भी प्रकाशित हुआ।[2]

यह पुस्तक लेखकके मूल पुस्तकका प्रथम अध्याय है, जो उसने संसारके इतिहास हेतु ही लिखी थी। उसमें यह उस मूल अरबी वाला अनुवाद भी जोड़ा हुआ मालूम पड़ता है। यह अरबीसे किया अनुवाद किसी संस्कृतमें लिखी पुस्तकका अनुवाद है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि निकट दौरमें भी इस प्रकार भारतका इतिहास लिखा जाता था। लेखकने महाभारतके उपरोक्त सिन्धी रानी दु:शला उपाख्यानसे लेकर लगभग गुप्तकाल पर्यंतका इतिहास लिखा है। जो न तो पूर्ण अथवा शुद्ध है न ही इतिहास। किसी सुनी सुनाई अनुश्रुतिको किसीसे मिलाजुलाकर येन प्रकारेण सिन्धके नामसे इतिहास लिखा गया है। इसके पश्चात कुछ और भी है। और यह सब हम श्री इल्यट डाऊसनके इतिहाससे उद्धृत कर रहे हैं। उस अनुसार "जत (जाट-Zt) और मेद (Myd) हामके वंशमेंसे हैं। वे सिन्धमें सिन्धु नदी के किनारे रहते थे, जिसे बहर (समुद्र) कहा जाता है। अरब हिन्दुओ को जत कहते हैं। मेद शक्तिशाली थे और जतों को बहुत तंग करते थे। जिससे विवश होकर घरबार उठाकर पाहन (?) नदीके उसपार चले गये। परन्तु नावोंका उपयोग करनेके कारण वे नदी पारकर मेदों पर आक्रमण करते थे, जो भेड़ें चराते थे। कहते हैं कि इसप्रकार जतोंने मेदोंको कमज़ोर कर दिया। बहुतोंको मार डाला और उनका प्रदेश लूटकर बरबाद कर दिया। इसप्रकार मेद जत्तोंके अधीन हो गये।

जतोंके एक बूढ़ेने (मेदोंकी दुर्गति देखकर) अपने कबीले (tribe) को कहा कि यह विजय स्थायी नहीं है। कोई समय था कि मेद तुम्हें परेशान करते थे, अब तुम करते हो। इसलिये सुलह-शान्ति में रहो तो अच्छा है। दोनों पक्षों को सलाह दी कि अपने प्रतिष्ठित पुरुषों को राजा धृतराष्ट्र (Dahrat) के पुत्र दुर्योधन (Dajushan) के पास भेजो और प्रार्थना करोकि कोई राजा भेजे जिसके अधीन दोनों रहें। उन्होंने वैसाही किया। और राजा Dajushan ने अपनी बहिन दु:शला (Dassal), प्रतापी राजा जयद्रथ (Jandrat) की पत्नी को जतों और मेदों के ऊपर शासक नियुक्त किया। दु:शला (Dassal) ने आकर सिन्ध देश तथा नगरों का अधिकार संभाला जिन सबकी सूची तथा राणी की योग्यता और बुद्धिमता (wisdom) का विस्तारसे वर्णन मूल ग्रन्थमें है। परन्तु बावजूद उसकी योग्यता और बड़पन (greatness), समृद्धि और प्रतिष्ठता (dignity) के देशमें कोई भी ब्राह्मण नहीं था। इसलिये उसने अपने भाई को एक पत्र लिखकर सहायता मांगी। जिसने सारे भारतसे ३० हज़ार ब्राह्मण एकत्रित करके माल सामानके साथ अपनी

(1) The Indo-Asian Culture [Delhi], Vol. VII, No. 1, Pp. 50-71

2) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६३, अंक ३-४, पृ० २६७-२७७

बहिनके पास भेज दिये।

थोड़े समयमें सिन्ध समृद्ध और धनी हो गया, जिसका विस्तारसे वर्णन नदियों, नगरादिका सब वहां दिया हुआ है। रानीकी राजधानी अस्कलंद (Askaland) में थी। उसने देशका थोड़ा भाग जतोंको दिया और वहां उनके प्रतिष्ठित पुरुषको शासक बनाकर रखा जिसका नाम जुद्रत (Judrat) था। इसीप्रकार मेदों के लिये भी किया। यह राज्य कोई १५ हज़ार वर्ष तक चला, इसके पश्चात भारत वंशियोंने इस देश परसे अधिकार गंवाया।

इसके बाद पाण्डवों और ब्राह्मणों की बात है, कदाचित् परशुरामकी।

इसके पश्चात सुनघ (Sunagh) तथा ईरानके बहमन और गुस्ताफकी कहानी है। यह सुनघ कदाचित शुङ्ग वंश है। बहमनने कंदाबील और बहमनाबाद (ब्रह्मणाबाद) नगर बनवाए।

इसके पश्चात कशमीर और राजा हालका वर्णन है। इस अनुसार:-

"हाल राजा धृतराष्ट्रके दुहित्र अर्थात जयद्रथ के पुत्र संजय (Sanjwara) के वंशमेंसे था। इसे भारतमें जयद्रथ (Jandrat) और दुःशला वाला राज्य (सिन्धु-सौवीर) उत्तराधिकारमें मिला। यह विशेष प्रतिष्ठा वाला पुरुष था। सुंदर राजधानी तथा दूसरे नगर भी बनवाए। उसका देश (सिन्ध) कपड़ा बनानेमें उत्तम था और अच्छा महीन (fine) कपड़ा तैयार होता था। वह कपड़ा राजाके निजी ठप्पे (stamp) लगनेके सिवाय बाहर भेजा (export) नहीं जा सकता था। वह ठप्पा केसरमें डूबे राजाके पैरका निशान था।

हुआ यह, कि कशमीर राजाकी रानीने वह कपड़ा ख़रीदा, वह पोशाक पहिनकर राजाके पास गई। वह निशान देखकर राजा क्रोधित हो गया। पूछनेपर रानीने बतायाकि उसने वह कपड़ा व्यापारीसे लिया। व्यापारीने बतायाकि वह ठप्पा सिन्धके राजा हालके पैरका है। यह सुनकर कशमीरराजने प्रतिज्ञाकी कि वह राजा हालका पैर काट देगा। मंत्रीने समझाया कि 'वह ब्राह्मणों का देश है, आप उसे जीत नहीं सकोगे। राजाने सुनी अनसुनी करके कूचकर दिया। हालने जो सुना तो घबड़ा गया और ब्राह्मणोंको बुलाया। उन्हों ने कहा एक नकली हाथी बनाकर सेनाके आगे रखिये। जब कशमीरी सेना आई तो हाथीमें से आगके शोले निकलने लगे और बहुत सारी सेना जल मरी। कशमीरराजने विवश होकर संधि की। राजा हालने उसे बहुतसे उपहार दिये। कशमीरराजने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये मोमका एक पुतला बनाकर उसकी टांग काट डाली।

इसके पश्चात Kafand (शायद कश्यप) राजाकी बात है। अंतमें है कि काफंदके बाद उसका लड़का आयंद (Ayind) उत्तराधिकारी बना। उसने सिन्धको चार भागोमें बांट दिया-एक अस्कलंद उसा (Askaland Usa), दूसरा ज़ोर (Zor) जिसके साथ Anj (अंज अथवा उच) भी सम्मिलित था, तीसरा Sanid (सानीद अथवा सामीद) और चौथा हिन्दुस्तान, नदम (Nadam)

अथवा लोहान (Lohana–लोहाणा)। यह बात राजा हालके बादकी है। आयंदके मरनेपर रासल (Rasal) राजा बना। उसने थोड़ा समय ही राज्य किया तो विद्रोह हो गया, स्वयं देश छोड़कर चला गया। रासलने दक्षिणकी ओर जाकर राज्य स्थापित किया। उसे दो पुत्र थे- रावल (Rawal) और बर्कमारीस (Barkamaris)। इसके पश्चात इन दोनोंका किसा है।[1]

उपरोक्त कथाओंमें प्रथम रानी दुःशला वाली कथामें जो ब्राह्मणों के मंगवानेकी बात है इसी प्रकारकी बंगालके सेन वंशके संस्थापक राजा आदिसूर (Adisur) ने भी कनौज से ब्राह्मणों को बुलवाकर धर्मकी स्थापना की थी।

दूसरी कशमीर और सिन्धु राजा हाल वाली कथा राजतरङ्गिणीमें भी आई है। परन्तु वह वहां कशमीरके मिहरकुल के लंका पर आक्रमण की बात है, यद्यपि वह असंभव है।[2]

काफंद वाली कथामें आयंदका सिन्धको चार भागों में बांटना चचनामा (सिन्धका इतिहास) के राजा साहीरससे समानता रखती है।

अंतमें रवाल और बर्कमारीसकी कथा गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) से बिलकुल मिलती है। जिस अनुसार "जनाने कपड़े पहनकर चन्द्रगुप्तने विदेशी शकराजका वधकर अपनी भौजाई (रामगुप्तकी पत्नी) को छुड़ाया था। यद्यपि यह कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है।[3]

यह मूल इतिहास ग्रंथ जिसके आधार पर अबू सालिहने अरबी पुस्तक तैयारकी, लगता है, बिलकुल सिन्धमें, किसी सिन्धी विद्वानकी लिखी हुई थी। नहीं तो सारे महाभारतमेंसे केवल महारानी दुःशला वाला उपाख्यान लेकर उसे सिन्धके इतिहाससे जोड़ना, कोई और क्यों करता? इसके सिवाय हर कथाको सिन्धके इतिहाससे जोड़ना इस बातकी पुष्टि करता है। दुर्भाग्य से मूल अरबी लेखकने भी उस मूल ग्रंथका नाम अथवा विवरण नहीं दिया है, न ही एसा हस्तलिखित इस समय कहीं है। हो सकता है किसी अरब ग्रंथागारके पुराने भण्डारमें सुरक्षित सड़ रही हो।

महाभारतके अनुसार सौवीर प्रदेशका एक राजकुमार संजय था जो पिताके मरने पर छोटी अवस्थामें ही गदी पर बैठा था। सिन्धुराजने आक्रमण कर उसे भगा दिया। उसकी माता महारानी विदुलाने इसपर अपने पुत्रको फटकारा। यह बहुत प्राचीन कथा महाभारतसे भी पूर्वकी है, जो कुन्ति द्वारा महाभारतमें सुनाने पर अमर हो गई है। सारा सनवाद पढ़ने और समझने जैसा है। विशेष यह कि दोनों पक्ष सिन्धी हैं। युधिष्ठरके युद्धसे घबराने पर माता कुन्तिने यह पुरानी कथा श्री कृष्णको इसलिये सुनाई कि वह युधिष्ठर को सुनाकर उसे युद्धके लिये उत्तेजित करे। कुन्तिने कहा "शत्रुओं को संताप देने वाले कृष्ण! इस प्रसंगमें विद्वान लोग

(1) Elliot, The History of India, Vo. I, Pp. 103-112

(2) The Indian Antiquary, Sept. 1886, P.250

(3) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष १३, अंक २, पृ० २३७

विदुला और उसके पुत्रका सन्वाद रूपी प्राचीन इतिहास प्रमाणके तौर पर सुनाते हैं।[1]

● सौवीर राजाने युधिष्ठरके राजसूयज्ञ में हाथियोंसे जुटे हुए ३०० रथ भेंट किये, जो रत्नों और सोने से मढ़े हुए थे।[2]

● अजबिन्दुः यह सौवीर देशका राजा था जिसका लोभ के कारण नाश हुआ।[3] आचार्य कौटलीयने भी इसका इसीप्रकार उल्लेख किया है।[4]

● भोजा– यह सौवीर देश की राजकुमारी थी, जिससे सात्यकिने विवाह किया था।[5] सात्यकि वृष्ण वंशी शिनि कुमार सात्यकका पुत्र था।[6]

● सौवीरी- महाराजा पुरु के पौत्र और प्रवीर के पुत्र मनस्युका विवाह सौवीरी कुमारीसे हुआ था, जिसमें से उसे तीन पुत्र थे।[7] मार्कंण्डेयपुराण (१२७/१०)अनुसार एक सौवीरी राजकुमारी और भी थी जिसका विवाह मरूत राजासे हुआ।[8] मरुत वंशालीका शासक था जो अविक्षितका पुत्र तथा करन्धमका पौत्र था। उसकी माताका नाम भामिनी था।

● सैन्धवायन! यह विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक था।[9]

● सैन्धवारण्य! यह एक प्राचीन तीर्थ था।[10]

● सिंधु! एक असुर जिसे श्री गणेशने मारा[11]

● सिन्धुद्वीप अंबरीष! एक राजा जो विष्णु, वायु और मत्स्य पुराणके अनुसार यह अंबरीष राजाका पुत्र तथा अयुतायका पिता था। भागवत तथा हरिवंश पुराणमें उसे नाभ राजाका पुत्र हा गया है।

● सिन्धुवीर्य! मद्र देशका राजा, जिसकी पुत्री का नाम केकयी था, जिसका विवाह मरुत आविक्षत से हुआ था।

● सिन्धुसेन! एक राक्षस, जिसने संसारके सारे यज्ञ-मंत्रों का हरण कर उन्हें 'रसातल' में छुपा दिया। इसलिये संसारके सारे यज्ञ बंद पड़ गये। आगे चलकर विष्णुने वराहका रूप धारणकर उसका नाश किया और यज्ञ-मंत्र रसातलसे वापस लाये।

(1) अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विदुलायश्च संवादं पुत्रस्य च परंतप॥
(महाभारत, उद्योगपर्व, अ० १३३ से १३६)

(2) सभा पर्व: ५१/७ (3) सभा, ७४/१४ (4) कौटलीय अर्थशात्र १/६/९

(5) द्रोण: १०/३३ (6) आदि, ६३/१०५ (7) आदि, ९४/६-७

(8) सिधेश्वर शास्त्री-प्राचीन-चरित्रकोश, पृ० १०६० (9) अनुशासन, ४/५१

(10) वन, ८९/१५ (11) गणेश पुराण, २/७३-१२६

● रूरु! एक ऋषि कुमार। महाभारत अनुसार यह च्यवन ऋषिका पौत्र तथा प्रमतिका पुत्र था जो घृताची नामक अप्सरासे उत्पन हुआ था। (आदि पर्व, ५/८)

● रौरुकि! एक आचार्य जिसने "रौरुकि ब्राह्मण" ग्रंथकी रचनाकी।

● सिन्धु! तंत्रगंथोंके अनुसार इस जनपदका विस्तार लंकासे मक्का तक था।[1]

आदि पुराण (१६/१५५) में भी ऐसा वर्णन है, परन्तु यह निकट समय के प्रमाण हैं, यदि सत्य हों तो।

पुराणोंमें सिन्ध!

● भागवत पुराणमें जड़भरत मुनिकी कथामें सिन्धु-सौवीर (प्राचीन पाठ सिन्धुपति) के राजा रहूगणका उल्लेख आता है।[2] यह कथा विशेष विश्वास योग्य नहीं लगती, जैन-मत प्रक्षेप लगता है।

● गुजरातके विद्वान श्री उमाशंकर जोषी ने हरिवंश पुराण (विष्णु पर्व, ५६) के आधारपर द्वारकाका वर्णन करते लिखा है कि "वह सिन्धु राजाके देशमें राजाकी विहार भूमि थी। रैवेतक पर्वत उससे दूर नहीं था।" प्रमाण श्लोक भी दिया है।[3]

● स्कद पुराणमें-मध्यकालीन भारतके मुख्य ७५ खण्डोंके ग्रामोंकी संख्या दी गई है। उस अनुसार सिन्धमें २० हज़ार ग्राम तथा अतिसिन्धु (?) में १० हज़ार ग्राम लिखे हैं।[4]

● भविष्य पुराण अनुसार विक्रमादित्यके पौत्र शालीवाहनने सिन्धुस्थानकी मर्यादा स्थापित की।:-

सिन्धुस्थानमित ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्।
म्लेच्छस्थान परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना॥

---

(1) लङ्काप्रदेश भारस्य मकातं परमेश्वरि।
सैन्धवाख्यो महादेश, पर्वते तिष्ठति प्रिये॥ (शक्तिसंगम तंत्र, ३/७/५७)

(2) भागवत ५/१०

(3) विषय सिंधुराजस्य शोभितं पुरलक्षणैः
तत्र रैवेतको नाम पर्वतो नातिदूरतः
विहार भूमिस्तत्रैव तस्य राज्ञः सुनिर्मिता
नाम्ना द्वारावती नाम स्वायताष्टा पदोपमा
केशवेन मतिस्तत्र पुर्यर्थे विनिवेशिता।
(પુરાણોમાં ગુજરાત, પૃ० ૮૫-૮૬)

(4) माहेश्वरी खण्ड, कुमार्का खण्ड, ३९/१२७

● कल्याण! यह एक वैश्य था और सिन्धके पालीग्राममें रहता था। उसकी पत्नी इन्दुमती तथा पुत्र बलाल था। दूसरे जन्ममें वह दक्ष बना। (गणेश पुराण १/२२)

● सिन्धु दैत्य? इसके पिताका नाम चक्रपाणि था। (गणेश पुराण, ७३/५) उसकी माताका नाम उग्रा था (वही, २/१२०) तथा बहिनोईका नाम कल था। (वही, २/११८)

● सिंधुक ! भविष्य तथा भागवत पुराण अनुसार यह आंध्रका प्रथम राजा बलि था जिसके दूसरे नाम शिप्रक, शिशुक और सिंधुक भी थे।

पाणिनीय अष्टाध्यायी में! (संक्षेप)

ईश्वरकी प्रदानकी हुई भाषा जिसमें वेद रचे हुए हैं उसे वैदिक भाषा कहा जाता है। जिसे महर्षि पाणिनिने सुसंस्कृत कर उसके लिये सरल व्याकरणकी आठ अध्यायोंमें इसकी रचना की। पाणिनि मुनिसे पूर्व भी दूसरे आचार्योंने व्याकरण ग्रंथों की रचना की थी, परन्तु यह अधिक सरल है। इस सुसंस्कृत करने के कारण वेद भाषाको संस्कृत भी कहा जाता है। व्याकरणमें समझाते कुछ दृष्टान्त देते कुछ ऐतिहासिक और भौगोलिक बातोंका उल्लेख किया गया है, जो बहुत मूल्यवान है, विशेषकर जनपदों के विषयमें। जनताकी व्यवहारिक भाषाको लेकर कितने रहस्य बताए गये हैं। महर्षि पाणिनिका समय विक्रमी संवतसे कमसे कम १०००-१५००० वर्ष पूर्वका है, जो साधारण तौर ५०० हांका जाता है। परन्तु यह मान्यता विदेशी ईसाई लेखकोंके निराधार अनुमानोंपर आधारित है। हमारी भारतीय परम्परा इससे मेल नहीं खाती। और इस अनुसार ग्रीक अलेगजेंडरका समकालीन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य और नन्द वंश आदि नहीं परन्तु बादके गुप्तवंशका सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था। अर्थात गुप्तवंशका समय ३०० ई०पू० है। विदेशी गपोड़ों और अनुमानोंसे हमें अपनी भारतीय अनुश्रुति और परम्परा पर अधिक विश्वास है। दुर्भाग्यवश हमारे भारती लेखक पश्चिमी शिक्षा पाकर, विदेशी संस्कार ग्रहणकर, उस विदेशी भाषामें ही विदेशी विचार भी प्रकट करते हैं, इसलिये कि वे अपने पश्चिमी गुरुओं की समान कक्षामें खड़े हो सकें। यदि उनका खण्डन करते हैं तो उनका महत्व पश्चिममें नहीं होता। यद्यपि पश्चिम वाले उनको अपना नफर ही तसवर करते हैं। परन्तु उस कालमें वे गोरे यहां शासक थे इसलिये उनको प्रसन्न रखनेके लिये उनकी ही भाषा तथा विचारधारामें सोचते थे। अपने धर्म और सस्कृतिकी अवहेलना कर उनके ही पथ पर चलते थे। परन्तु श्री वुडराफ (Justice Sir John Woodroff) के शब्दों में :-

"Those who speak a foreign tongue will tend to think foreign thoughts; those who think in foreign thoughts will have foreign aims and tend to adopt foreign ways and so forth."[1]

(1) Is India Civilized? P. 51

कुछ विद्वान आगे बढ़े भी परन्तु वेदों की महानताको समझ न सके क्यों कि पश्चिमी लेखकोंने अपनी ओरसे किये वेदों के अशुद्ध अनुवाद उनको पढ़ाकर उनकी जड़ें खोखली कर दी थीं। यह भी दुर्भाग्यकी बात है कि प्राचीन कालसे ही बहुत विदेशी विधर्मी यहां आकर हिन्दू होकर पंडित बनकर यहांकी जनतामें समा गये। उन्हों ने भी वेदोंका अज्ञानता पूर्ण अर्थ करके, धर्मशास्त्रोंमें मिलावटकर, वह सब प्रचलित कर दिया। पश्चिमी पादरियोंको भी वही अनार्य वेदार्थ यहां मिले जिनहों ने उनको "अधिक शुद्धि" के नामपर और भी सत्यानाश कर दिया। साधारण काव्य अथवा नाटक समझना उनके बसकी बात हो सकती थी, किन्तु धर्मशास्त्र और वेद उनकी योग्यतासे परे थे। इसलिये वे ईसाई मतके फ़ैलाने तथा शासनके मदमें मनमानी करते गये। कुछ सचमुच बादमें विद्वान भी बने किन्तु मनोवृति शुद्ध न रही। इसलिये भारती विद्यार्थियों में वह विष निश्चित कार्यक्रमसे उडेलते गए। वेही विद्यार्थी जब बड़े होकर विद्वान भी बने तो वे सोचते क्या होंगे जिनका केवल मासपिण्ड ही हिन्दू था, बाकी सबकुछ तो मजहबी विष और धोखा था। सौ-डेढसौ वर्षों में २-३ पीढ़ियां भी बदल गईं। सम्कार हिन्दू छूटकर अर्ध-ईसाई, बाकी अर्ध न मालूम क्या हो गया। हिन्दू हिन्दू न रहा। जो रहे तथा हैं उनकी श्रधा नहीं, अपितु अंध-श्रद्धा मात्र रह गई है। इसलिये अब ठीक केवल यह है कि जो लोग वेदमें इतिहास नहीं मानते और वेदको ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, उनका कर्तव्य है कि वेदोंका शुद्ध अंग्रज़ी अनुवादकर विदेशों में फलाएं। बस! देशका कल्याण! संसारका भी कल्याण!! हिन्दू वेदादि धर्मको समझने से गए।

पं० वासुदेव शरण अग्रवालने अष्टाध्यायी के आधार पर भारतका ऐतिहासिक विवरण "पाणिनि कालीन भारत" में किया है।

"सिन्धुके पारवाले प्रदेशको महाभारतमें 'पारेसिन्ध' कहा गया है।[1] वह प्रदेश अच्छे घोड़ोंके लिये प्रसिद्ध था। पाणिनि मुनिने सिन्धू पारके चंचल घोड़ियों के लिये "पारे बड़वा" नाम लिखा है। (६/२/४२) सिन्धके पूर्व के घोड़े जो सिन्धू जनपदमें विचर्ते थे वे सैन्धव नामसे विख्यात थे। महाभाष्य (१/१/४) में भी सैन्धव घोड़ोंका वर्णन है। सिन्धू नदीके पश्चिम तथा कुभा (काबुल) नदी के दक्षिणमें प्राचीन आप्रीत (वर्तमान अफ्रीदी पठाण) रहते थे। इनके साथी मधुमंत थे जिनका पाणिनिने सिन्धु आदि गणों के साथ उल्लेख कया है। महाभारतमें भी मधुमंत जनपदका उल्लेख काशमीर और सिन्ध के साथ आया है।[2]

श्री वासुदेव शरणके अनुसार "सिन्धू के पूर्वी तटकी ओर पंजाबमें फैला सिन्धु जनपद (सिन्धु-सागर दोआबा) था जिसका पाणिनि मुनिने वर्णन किया है।[3] तथा इस समय जो सिन्ध प्रान्त है उसका पुराना नाम सौवीर था ...... इसलिये अपने अन्तिम भागमें सिन्धु नदी

(1) सभापर्व, ५१/११ (2) भीष्म पर्व, ६/५३

(3) "सिन्धु तक्षशिलादिभ्योडणञौ" ४/३/९३

सौवीर देशमें (४/१/१४८) प्रवेश करती है तब फिर समुद्रमें मिल जाती है। यह प्रदेश सिन्धुकूल तथा सिन्धु वक्त्र कहलाता था।[1] सिन्धमें जन्मे को सिन्धुक कहा जाता था। सिन्धमें जिनके पूर्वज रहते थे अर्थात जो सिन्धी सिन्धसे बाहर रहते थे उनको सैंधव कहा जाता था। महर्षि पाणिनिने कुछ सिन्धी नामोंका उल्लेख किया है (७/३/१९) जिसके उदाहरण काशिकामें 'सिक्तु सिन्धु' तथा 'पान-सिन्धु' दिये गये हैं। ये दोनों नाम खानेके स्थानिक रिवाजों पर जन साधारणमें प्रसिद्ध थे। अर्थात जहांके लोग सतू खानेके शौकीन थे वे 'सिक्तु सिंधु' और जहांके पान (दूध तथा शर्बत आदि) के शौकीन थे वे 'पान-सिन्धु' कहलाते थे।:-

"सक्तु प्राधानाः सिन्धवः सक्तु सिन्धव, पान प्रधाना सिन्धवः पान सिन्धव"।

हो सकता है कि ये उतर और दक्षिण सिन्धके दो व्यसन भेद थे। उतर सिन्ध दोआबा और डेरा इस्माईल खान तक आज भी सतू वहांका विशेष खाद्य है। स्त्रियां सतूका उपहार भेजती हैं तथा यात्रामें भी सतू यात्री लोग साथ ले चलते है। सिन्धमें इस समय यह लत नहीं हैं। दूसरी ओर सिन्धी आज भी दूध पीने तथा खीर खानेके शौकीन हैं। चरक से भी इस बातकी पुष्टि होती है जहां सैंधवोंको दूध-खीरका शौकीन कहा गया है।[2] इसलिये 'पानसिन्ध' प्रदेशका जो व्यक्ति परदेस जाता था उसे संधव और 'सिक्तु सिंधु' वालेको 'साक्त सैंधव' कहा जाता था।

'सिन्धवपकाराभ्यां कन्' (४/३/३२) के अनुसार वहांका निवासी 'अपकरक' कहलाता था। अपकर सम्भवत मियांवाली ज़िलेका भाखर हो। सिंधु जनपदमें वह दक्षिण मार्गका नाका था जहां सिन्धु नदी पारकर प्राचीन गोमती (वर्तमान गोमल) नदीके किनारे गोमल दरे से गज़नीको रास्ता जाता था। व्यापार तथा यात्रा की दृष्टिसे भक्खर महत्वपूर्ण घाटी थी। (महमूद ग़ज़नवी गज़नीसे सीधा गोमल पारकर देरा इसमाईलखानसे थोड़ा नीचे भखर पर सिन्धू नदी पार करता था और इसी रास्तेसे भारतमें आता था। (पृ० ६३)

सौवीर! इसकी राजधानी रोरुव (सं० रोरुक वर्तमान रोड़ी) थी। रोड़ी (रोहड़ी) के पार सिन्धुके दाहिने तट पर सखर नगर है जिसका पुराना नाम 'शार्कर था'।(४/२/८२) शर्करा अर्थात छोटे छोटे पत्थरों वाला पत्थरीला प्रदेश (पृ० १२७)। महर्षि पाणिनिने सौवीर देशके गोत्रोंका भी उल्लेख किया है, जिनमें फांटाहृति और मिमित विशेष हैं। (४/१/१५०) फांटाहृति गोत्रमें जन्मा फांटाहृत अथवा फांटाहृत्यानी तथा मिमित गोत्रमें जन्मा मेमत अथवा मैमतायनि कहलाता था (इसमें फांटाहृत्यानी की पहिचान वर्तमान के फानहाणी [बलोचों] से की जा सकती है)। एक मैमतायनि आचार्यका नाम चरक संहिताके आरंभमें आयुर्वेदमें रुची रखने वाले ऋषियोंकी सूचीमें है।[3] इसके सिवाय 'अकशाप', यमुंद, भागविति और तार्णबिंदव नामी सौवीरी गोत्रोंका भी

(1) पाणिनि कालीन भारत, पृ० ५०-५२
(2) चरक संहिता, चिकित्सा स्थान, ३०-३१ (3) चरक संहिता, सूत्रस्थान, १/१३

काशिकामें पाणिनि सूत्रोंका प्रमाण देते उल्लेख किया गया है (४/ /१४८-१४९)। इसमें भागवित्तिकी पहिचान वर्तमान बुगटी (बलोचों) से की जा सकती है। इस समय सिन्धीमें जो व्यक्ति-नामोंके अंतमें 'आणी' अथवा 'आनी' (आडवाणी, अगनाणी आदि) जोड़ा जाता है उसका मूल भी अष्टाध्यायी में 'आयनि' रूपमें है। पाणिनिमुनिने सौवीर जनपदके नगरों के नाम बनानेका भी वर्णन किया है।:-

"स्त्रीपु सौवीर साल्वाप्रांक्षु" ४/२/७६

इसका उदाहरण काशिकामें दत्तामित्रका बसाया हुआ दात्तामित्री नगर है। यह उदाहरण पाणिनिमुनिके पश्चातका है। भारतके यूनानी राजा 'दिमितीयँस' का संस्कृत नाम दत्तामित्र कहा जाता है। इसका ही नाम प्राकृतमें दिमित्र अथवा दिमित था। दातामित्री नगर निवासी दानदानका वर्णन नासिक गुफाके लेखोंमें 'दातामितीयक' दिया हुआ है। इसने सिन्ध पर अधिकार किया था और वहां पुष्यमित्र शुङ्गसे इसका युद्ध हुआ था। महाभारतका यूनानी (ग्रीक) दतमित्र यही है जिसने तीन वर्षोंमें गंधर्व (वर्तमान गंधार-कंधार) जीतकर फिर सौवीरको जीता था।[1] महाभारत में आया हुआ यह टुकड़ा लगभग शुङ्गकालके पश्चात मिलाया गया होगा। पूनाके संशोधित संस्करण अनुसार भी यह श्लोक प्रक्षिप्त सिद्ध होता है। (पृ० ६४-६५)

ब्रह्मणाबाद! अष्टाध्यायीमें 'बाह्मणक' एक देशका नाम है 'ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम' ५/२/७१। पतंजलिमुनि 'ब्राह्मणकोनाम जनपद' ४/२/१०४.के अनुसार इसकी पहिचान सिन्धके ब्राह्मणाबादसे की जा सकती है। यूनानी लेखकों ने इसे Brachmanoi (Arrian 6-16) करके लिखा है।

पारस्कर! (६/१/१५१) ऋकतंत्रमें पारस्कर पर्वतका नाम आया है (४/५/१०) परन्तु पतंजलि मनिने पारस्कर एक देश माना है "पारस्करो देशः" (६/१/१५७)। यह सिन्धका (थर) पारकर है (पृ० ६६)।

पतंजलिके महाभाष्यमें! (संक्षप)

महर्षि पतंजलि पाणिनिमुनिके पश्चात हुए हैं। पतंजलि मुनिने भी सौवीर देशके गोत्रोंका वर्णन किया है जिनमें भागवित्ति (४/१/९०) तार्णबिंदव (४/२/२८) और फाँटाहृति (४/१/१५०) विशेष हैं।

सौवीरी स्त्रियोंका पतंजलिने चार बार उल्लेख किया है। (२/४/६२)

ब्राह्मणक नामक जनपद तथा वहांके निवासी ब्रह्मणक्य लोगोंका भी वर्णन है (४/२/१०४)

चीनी यात्री ह्यूनसांगने जो सिन्धमें शूद्र जातिके राजाका वर्णन किया है वह महर्षि पतजलिने स्पष्ट कर दया है कि वे क्षत्री थे। (१/२/७२)

(1) महाभारत, आदिपर्व, १४१/२१-२३

● बौद्ध साहित्यमें ! (संक्षेप)

महागोविन्दसुत्त (१९) अनुसार अति प्राचीन कालमें राजा रेणुके ब्राह्मण मंत्री महागोविन्दने सारे जम्बूद्वीपको सात भागोंमें विभक्त कर प्रत्येककी प्रथक राजधानी स्थापित की थी, जिनमें चौथा सौवीर (सिन्ध) था जिसकी राजधानी रुरुक थी।

प्राचीन पाली साहित्य अनुसार सिन्धु-सौवीर उत्तरापथमें गिना जाता था।

सिन्धु और सौवीर, बौद्ध कालमें, विशेषकर व्यापारिक दृष्टिसे महत्व वाले जनपद थे। सिन्धवा लोगोंका वर्णन अपदानमें है। सारत्थप्पकासिनी (१/९०) में सिन्धु और सोधिक देशके राजा 'सेरि' का वर्णन है। सिन्धू देशको जातक कथाओंमें अच्छे नस्लके तेज़ दौड़नेवाले घोड़ोंके लिये प्रसिद्ध कहा गया है। सिन्धु देशके ऊपर सौवीर देश था। आदित जातकमें सौवीर राष्ट्र और उसकी राजधानी रोरुव (दीघनिकायका रुरुक) का वर्णन है। दिव्यावदान (पृ० ५४४) में भी रुरुक नगरका वर्णन है। महात्मा बुद्धका शिष्य स्थविर तिस्स, जिसकी गाथाएं थेरगाथामें हैं, रुरुक राजाका पुत्र था कन्निंघिमने इसका उल्लेख युआनचांगके अभिजनपुर (वर्तमान अब्रिजी) में किया है।[1]

रुद्रायण ! यह सौवीरका शासक था। मगधराज बिम्बसारका समकालीन था, जिसने इसे कपड़े पर चित्रित बुद्धका एक चित्र भेजा था। रुद्रायणका दूसरा नाम रत्नाधिप था। रानीका नाम चन्द्रप्रभा तथा पुत्रका नाम शिखण्डी था। हीरु तथा भीरु नामक दो मंत्री थे। राजधानी रुरुक थी।[2]

● जैन साहित्यमें ! (संक्षेप)

सिन्धु-सौवीर जनपदमें सिन्ध और सौवीर दोनों सम्मिलित थे। अभयदेवके अनुसार सौवीर सिन्धु नदी के समीप होनेके कारण सिन्धु-सौवीर कहलाता था।

सिन्धु सौवीरकी राजधानी 'वीतभ्य पट्टन' थी। इसका दूसरा नाम 'कुम्भार प्रक्षेप' (कुभार पक्खव) था और यह नगर सिणवल्लि में था जो मरु भूमि थी।[3]

जैन साहित्यमें अगडत नाम आता है जो सिन्धमें भी प्रसिद्ध था।[4]

● वराहमिहिर ने सिन्ध और सौवीरका उल्लेख अलग अलग और साथ में भी किया है।[5]

(1) भरतसिंह उपाध्याय- "बुद्धकालीन भारतीय भूगोल", पृ० ४८०-४८३

(2) दिव्यावदानम्, अवदान ३७ पृ० ४६५-४९२

(3) डा० जगदीश चन्द्र जैन- "जैन आगम साहित्यमें भारतीय समाज"

(4) अगडदत-चरियं (कानजीभाई पटेल [पाटण] सम्पादित)

(5) बृहत् संहिता-कूर्मविभागाध्याय (१४), श्लोक १७-३२)

● राजशेखरने द्राक्ष, देवदारु तथा सैंधव घोड़ोंका उल्लेख किया है।[1]

● भास! नाटककार भासने एक अतिसुन्दर नाटक सौवीरी (सिन्धी) राजकुमार अविमारक पर रचा है जो बड़ा रोचक तथा रसप्रद है।

● कालीदास! इस कवि तथा नाटककारने सम्राट् रघुके सिन्धू नदीके किनारे विश्राम करने का उल्लेख किया है।[2] एक और स्थान पर लिखा है कि भगवान रामने अपने मामा युधाजितके कहनेपर अपने भाई भरतको सिन्ध प्रदेश प्रदान किया।[3] शुङ्ग वंशी पुष्यमित्रके पौत्र वसुमित्रने यूनानी सेनाको सिन्धूके किनारे पराजित किया।[4]

● बाण! इसने सम्राट् हर्षके जीवनमें सिन्ध विजय तथा सौवीरराज वीरसेनका उल्लेख किया है।[5]

● कलहण पंडित! इसने अपनी राजतरङ्गिणीमें अनेक स्थानोंपर सिन्ध आदिका वर्णन किया है।

● अमरसिंह! इस व्याकरणाचार्यने सौवीरी बेरोंका वर्णन किया है।

● वाग्भट! इस व्याकरणाचार्यने भी सिन्धु तथा सिन्धुनाथका वर्णन किया है।[6]

● जोनराज! इस इतिहासकार ने भी अपनी 'राजतरङ्गिणी' में सिन्धुप राजाका उल्लेख किया है।

इस प्रकार संक्षेपमें यह सब विवरण दिया है।

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय चौथा

(1) काव्य मीमांसा, (देशविभाग), अध्याय-७
(2) रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक ६७
(3) रघुवश, सर्ग ६, श्लोक ६१
(4) मालविकाग्निमित्र, अंक ५
(5) आचार्य जगन्नाथ पाठक सम्पादित "हर्ष-चरितम्"
(6) वाग्भटलाङ्कर, ४/३७-१२८

● Shri Thornton, says:

"The ancient state of India must have been one of extraordinary magnificence.

"Ere yet the pyramids looked down upon the Valley of the Nile, when Greece and Italy, these cradles of modern civilization, housed only the tenants of the wilderness, India was the seat of wealth and granduer.

"The Hindus are indisputably entitled to rank among the most ancient of existing nations, as well as among those most early and most rapidly civilized. (History of British India, Vol. I, P. 2)

● Colonel Olcott, says:

"The modern school of comparative philosophy traces the migration of the Aryan civilization into Europe by a study of modern languages in comparison with the Sanskrit. And we have an equally, if not a still more striking means of showing the outflow of Arayn thought towards the West in the philosophies and religions of Babylonia, Egypt, Greece, Rome and Pythagoras, Socrates, Plato, Aristotle, Homer, Zens, Hesiod, Cicero, Scotvola, Varro and Virgil with those of VedaVyasa, Kapila, Gautam, Patanjali, Kanada, Jaimini, Narada, Panini, Marichi and many others we might mention, to be astonished at their identity of conceptions, an identity that upon any other than that of a derivation of the younger philosophical schools of the West from the older ones of the East would be simply miraculous. The human mind is certainly capable of evolving like ideas in different ages, just as humanity produces for itself in each generation the teachers, rulers, warriors and artisans it needs. But that the views of the Aryan sages should be so identical with those of the latter Greek and Roman philosophers as to seem as if the latter were to the former like the reflection of an object in a mirror to the object itself, without an actual physical transmission of teachers or books from the East to the West, is something opposed to common sense. And this again corroborates our convictions that the old Egyptians were emigrants from India; nearly all the famous ancient philosophers had been to Egypt to learn her wisdom from the Jewish Moses to the Greek Plato."

(Theosophist, March 1881, P. 1-9)

● Smt. Manning, says:-

"The philosophy of the Hindus is another proof of their superiority in civilization and intellect to the moderns as well as the ancients. The Hindus had the widest range of mind of which man is capable".

(Ancient and Mediaeval India, Vol. I, p. 114)

अध्याय ५

पाश्चात्य साहित्यमें सिन्ध * Sindh in Western Lit.

पश्चिमसे हमारा अभिप्राय यूनान, रोम आदि यूरोपीय साहित्य है। इन लेखकोंने अपनी रचनाओंमें इतिहास, व्यापार, भूगोल आदि विषयों पर लिखा है। प्रसंगवश उन्होंने भारत तथा सिन्धका भी वर्णन किया है।

इन लेखकोंमें कुछवो हैं जिन्होंने भारतके कुछ भागों को देखा था, कुछने सुनी हुई बातों अथवा दूसरे ग्रंथों से लिया है। परन्तु जिन्होंने देखा है उन्होंने पूरी तरह समझा नहीं है। भारतकी संस्कृत अथवा दूसरी प्रान्तिक भाषाओंसे परिचित न होने के कारण उच्चारों, नगरों तथा शासकों के नामोंमें इतनी गड़बड़ी कर रखी है कि उनका पूरी तरह समझना तथा किसी शुद्ध भारती नामसे मिलाना भी कहीं कठिन हो जाता है। जिन्होंने सुनकर अथवा उद्धृत किया है उन्होंने तथ्योंको तोड़ मरोड़ कर रख दिया है। हीराडोटस जैसे प्रसिद्ध इतिहास लेखकको भी भारतका पूरा ज्ञान नहीं था, सिवाय इसके कि भारत (मूलतः सिन्ध) पर्शयन साम्राज्यका एक भाग है, जो बिलकुल ग़लत है। कुछ प्राचीन लेखकोंके हस्तलेख समयकी चपेटमें नष्ट हो गये हैं, जिनके केवल नाम अथवा कहीं उल्लेख मिलते हैं। हेकाटाएस (Hecataeus) जो ५०० ई०पू० का प्रथम यूनानी भूगोलवेता था जिसने एक पुस्तक लिखी थी जिसका मूल नाम तो ज्ञात नहीं परन्तु उसके उल्लेखों के संग्रहका नाम "Survey of the World" है। उसे यूरोप और एशिया का कुछ ज्ञान था, उसने आफ्रीकाको भी एशियाका एक भाग लिखा है। तथा इन्डोई, इन्डस (सिन्ध), काशमीर और सिन्धुके किनारेके कुछ जातियोंका उल्लेख किया है।

हीराडोटस (Herodotus)! यह यूनानी लेखक यूरोपी इतिहासका पितामह माना जाता है। यह एशिया-माइनरके दक्षिण-पश्चिम किनारे पर केर्या (Caria)के हलीकरनसस (Halicarnassus) नगरमें ४८०-९० ई० पू० में जन्मा था। इसकी पुस्तकका प्रसिद्ध नाम "The Histories" है जिसके पांच विभिन्न संस्करण छपे हैं। हमारे यहां श्री आब्रे (Aubrey de Selincourt) का अनुवाद [Penguin, 1959] है। उस अनुसार :-

"ईरानके सम्राट् हस्तास्प (Hystaspes) के पुत्र दारा (Darius)ने अपने साम्राज्यमें २० Satrapies अर्थात Provincial Governments स्थापित किये और प्रत्येक पर कर निर्धारित किया, जिसमें बीसवां सिन्ध था जो सबसे अधिक कर अर्थात ३६० टैलेंट सोना देता था।[1]

(1) "Twentieth: The Indians the most populous of all the nations in the world, paid the largest sum, 360 talents of gold-dust." (Book Three, P. 225)

"अब में उस तरकीबका वर्णन करूंगा जिससे भारतवासी सोना प्राप्त करते हैं। भारतके पूर्वमें रेतीका बड़ा मैदान है (सिन्धके पूर्वमें अवश्य है, भारतके पूर्वमें नहीं)। जहां तक हमें मालूम है, भारत एश्याके बिलकुल पूर्वमें है। इसके आगेका प्रदेश जनशून्य है। वहां बहुत कबीले हैं जो विभिन्न बोल्यां बोलते हैं। कुछ लोग धनी और घुमंतु हैं, दूसरे नहीं। कुछ कच्ची मछली पर निर्वाह करते हैं। इसके पूर्वमें पदेई (Padaei) कबीलेके लोग कच्चे मांसपर निर्भर रहते हैं। उनमें जब कोई बीमार पड़ता है तो उसके सगे संबंधी उसे मार देते हैं, नहीं तो ठहरनेसे उस (बीमार) का मांस बीमारी के कारण खराब हो जाएगा। (वही, पृ० २१७)

"एक और कबीला है, जो कुछ नहीं करते। न खेती करते हैं न तो बने मकानोंमें रहते हैं। शाकाहारी हैं। (वही)

यह विशेष ध्यानसे पढ़ने जैसा टुकड़ा है :-

"सब भारतवासी कबीले जिनका मैं ने उल्लेख किया हैं, बाहर खुले मैदान में पशुओंके समान सम्भोग (copulate) करते हैं। उनकी चमड़ीका रंग ऐथोप्यन लोगों जैसा होता है। उनका वीर्य दूसरी जातियों के समान सफेद नहीं अपितु उनकी चमड़ीके समान काला होता है। वही बात एथोप्यन लोगोंमें भी है। उनका देश ईरानसे दूर दक्षिणकी ओर है, तथा वे कभी दाराके अधीन नहीं हुए।[1]

"और उत्तरकी ओर दूसरे भारतवासी हैं, जो पक्टीका (Pactyica) देशके कैस्पटीरस (Caspatyrus) के समीप में हैं जो बाखतरी (Bactrians) लोगों जैसे हैं। वे बड़े योद्धा हैं और वे ही जाकर सोना प्राप्त करते हैं। क्योंकि भारतका यही भाग है जहां रेगिस्तान है। उस रेगिस्तानमें चींटियोंका एक प्रकार है जो बड़े आकार वाली हैं लोमड़ीसे भी बड़ी, किन्तु कुत्तेसे छोटी। भारतवासी दोपहर के समय सोना प्राप्त करनेके लिये जाते हैं, जिस समय वे चींटियां अपने बिलमें होती हैं। वहां पहुंचनेपर शीघ्र थेलियां भरनी आरंभ करते हैं, और भरकर तुरंत अपने घरोंको भागते हैं, क्योंकि चींटियोंको उनकी गंध आती है जो सूंघकर वे उनका पीछा करती हैं। वे ऐसी वेगवान होती हैं कि संसारमें उनसे गतिमें कोई भी नहीं पहुंच सकता। यदि भारतवासी

(1) "All the Indian tribes I have mentioned copulate in the open like cattle; their skins are all of the same colour, much like the Ethiopians. Their semen is not white like other peoples', but black like their own skin-the same peculiarty is to be found in the Ethiopians. Their country is a long way from Persia towards the south and THEY WERE NEVER SUBJECT TO DARIUS." (Ibid, P. 217)

ऐसा न करें तो उनमेंसे कोई भी बच न पाए। (वही० पृ० २१७-१८)

"दाराने एश्याके बड़े भागकी पड़तालकी। वह यह देखना चाहता था कि सिन्धु, समुद्रमें कहां मिलती है। सिन्धु नीलके बाद दूसरी नदी है, जिसमें घड़ियाल होते हैं। इसलिये स्काइलक्स (Skylax) के नेतृत्वमें एक समुद्री बेड़ा भेजा जो कैस्पटीरस(Caspatyrus) बंदरसे चलकर नदीके बहावसे वह बेड़ा पूर्वकी ओर चलता रहा और आकर समुद्रमें पहुंचा। फिर वह पश्चिमकी ओर मुड़कर किनारे किनारे चलता रहा और ३० मासकी यात्रा के बाद वहां आकर पहुंचा जहांसे ईजिप्टके राजाने फिनीश्यन लोगों को, जिसका मैंने पहले ही वर्णन किया है, लिब्या (Libya) के चारों ओर चकर लगाने (circumnavigate) के लिये भेजा था। वह यात्रा समाप्त करनेके पश्चात दाराने भारतवासियोंको आधीन कर दक्षिण समुद्रका बराबर उपयोग करता रहा। इस प्रकार सिद्ध हो गया कि सारी एश्या, सिवाय पूर्वके समुद्रसे घिरी हुई है और यह स्थति लिब्याके समान है।[1]

ये हमने सिन्ध और हिन्द संबंधी हीराडीटसके उद्धरण दिये हैं। भारतमे इसका कोई सम्बंध न होते हुए भी हमने सिन्धके साथ दिये हैं क्यों कि इसका सिन्धसे सीधा सम्बंध है जैसा कि हम अभी दिखाएंगे।

दाराका सिन्धपर अधिकार केवल ईसाई लेखकोंकी कल्पना है, खोजका इससे कोई सम्बंध नहीं है। न ही दाराके लेखों से ऐसा सिद्ध होता है। हरीदत्त (हीराडोटस)ने इंडिया-इंडसके लिये कौनसा

(1) The greater part of Asia was discovered by Darius. He wanted to find out where the Indus joins the sea-the Indus is the only river other than the Nile where crocodiles are found-and for this purpose, sent off on an expedition down the river a number of men whose word he could trust, led by a Caryandian name Skylax, the expedition sailed from Caspatyrus in the district of Pactyica, following the course of the river eastward until it reached the sea; then, turning westward, the ships followed the coast, and after a voyage of some thirty months reached the place from which the king of Egypt had sent out the Phoenicians, whom I have already mentioned, to circumnavigate Libya. After this voyage was completed, Darius subdued the Indians and made regular use of the southern ocean. In this way all Asia, with the exception of the easterly part, has been proved to be surrounded by sea, and so have a general geographical resemblance to Libya." (Book Four, P. 256)

शब्द मूलमें प्रयोग किया है यह हमें मालूम नहीं हैं परन्तु उसने भी सिन्ध-भारतका ग़लत प्रयोग किया है। प्राचीन कालमें अफगानिस्तान, बलोचिस्तान मिलाकर एक संयुक्त भारत देश था। यदि यह स्वीकार किया जाय और इस अनुमानसे दारा बलोचिस्तान के पश्चिमी सीमा पर पहुंचा हो तो भी विचार किया जा सकता है। परन्तु वहां भी तो रेगिस्तान नहीं है, पहाड़ी प्रदेश है। भारतके पूर्व में भी मरुभूमि नहीं है, इसलिये वह इंडिया किसे कहता है यह तो वो जाने बाकी इस भारतकी विक्रमी संवतके आरंभ तक संसारपर धाक जमी हुई थी। सिकंदरको ही मौतकी शौक थी जो वह भारतमें आया; हार और मार खाकर भाग निकला, यदि आया था तो। जैसाकि हमने अपनी पुस्तक 'भारतवर्ष' में सिद्ध किया है। दारासे पूर्व साइरस(Cyrus) ने पश्चिममें यूरोपमें प्रवेश किया था। दाराने पूर्वजोंके मिले राज्यको सुदृढ किया, सिकंदरने उसके सुंदर महलातोंकों जलाकर खंडहर बना दिया, वह किस प्रकार भारतपर आक्रमण कर सकता था। उस समय भारत पूरा शक्तिशाली था। भारत चाहता तो यूरोप तक सेनाका समुद्र बहा देता, उसे कोई रोकने वाला नहीं था। किन्तु भारत शान्ति प्रिय देश है। इसलिये ईरानका इंडिया (भारत-सिन्ध) पर आक्रमण एक झूठा बुहतान है। (हां दाराकी सिन्धुकी पड़ताल मध्य-तुर्किस्तानसे चीनी रेगिस्तानसे समुद्रके रास्ते लौटना हो सकता है, यद्यपि यह भी असम्भव है। आइये यह देखें:-

दाराका यह प्रमाण उसके कुछ लेख हैं, जिन्हें हथ्यार बनाकर प्रथम श्री जैक्सन (Prof. Jackson) ने इसका वर्णन 'Cambridge History of India', Vol I, में किया था, और आग्रह पूर्ण लिखा था कि भारत पर दाराके शासनके पूरे लिखित प्रमाण हैं, जो उसकी ही आज्ञा से तैयार कराए गये थे।:-

"For the reign of Darius (522-486 B.C.) we have documentary evidence of the highest value in the inscriptions executed by that monorch's command and containing his own statements "

सम्राट् दाराके इन लेखोंका संग्रह मुम्बईके 'सर जमशेदजी जीजीभाई ट्रांस्लेशन फंड' की ओरसे श्री जांगीरजी बरजोरजी वाछाने सन् १८६३ में प्रकाशित किया था। उन लेखोमें बेहिस्तून (Behistun) वाला शिलालेख अत्यंत महत्व पूर्ण है, जिसमें दाराने अपने उन २३ प्रांतों का वर्णन किया है, जो उसके आधीन तथा करद थे। इस लेखमें ९६ पंक्तियां और १९ अंश हैं। छठे अंशमें उसके राज्य विस्तारका वर्णन है, जिसमें वह कहता है :-

१- थातीय दारयवुश खशायथीय
२- इमा दहयाव तथा पतीयाइश
३- वशना अउरमज़दाह अदम शाम खशायथीय आहम

४- पारस, ऊवज, बाबीरुश, अथुरा अरबाय,
मुदराय, तइय दरय हया, सपरद, युना, माद
अरमीन, कतपतुक, परथव, ज़रक, हरीव,
युवारज़मीय, बखतरीश, सुगुद, गदार, सक,
थतगुश, हरउवतीश, मक

५- फरहर वम दहयान २३[1]

अर्थात १- सम्राट् दार्यवुश (दारा) कहता है
२- ये देश मेरे हाथमें आए
३- अउरमज़द (होरमज़र अथवा अहुरमज़द) की कृपासे मैं उनका राजा बना।
४- इसमें उन २३ के नाम गिनाए हैं
५- कुल मिलाकर २३ प्रांत

सं० ४ वाली पंक्तिमें जिसमें २३ प्रांतोंके नाम गिनाए गये हैं इस सूचीमें कहीं भी सिन्ध अथवा हिन्दका नाम नहीं है। इसलिये जैक्सनने विवश होकरि लिखा है कि "यह सत्य है कि इस सूचीमें भारत (सिन्ध) का नाम नहीं है :-

"The first of these inscriptions known as "The Famous Bahistun Rock Inscriptions," admittedly *DOES NOT INCLUDE INDIA* in the list of the twenty three provinces which came to him or obeyed him."

तो फिर इसप्रकार बहकनेका कारण ? फिर भी उसी प्रकार ग़लत अनुमान लगाकर लिखता है कि, "इससे यह अनुमान लगाया जायगा कि "जिस समय यह महत्वपूर्ण शिलालेख लिखाया जा रहा था, उस समय सिन्ध दाराके अधीन नहीं था।

"The inference to be drawn, therefore is that the Indus-region did nor form a part of the empire of Darius at the time when the great rock record was made."

अब कहां गये वे 'documentary evidence'? हां! दाराकी समाधि नक्शे-रुस्तम (Naqsh-i-Rustam) पर एक छोटा लेख खुदा हुआ है, जिसमें ६ अंश (Para) हैं। उसकी पैरा ३ (पंक्ति १४ से ३०) में हींदुश नाम आता है, किंतु उसके लिये कोई भी विद्वान यह विश्वास नहीं दिला सका है कि वह हींदुश ही हिन्द अथवा सिन्ध है (क्यों कि ऐसा है ही नहीं), तो फिर हठात इस हींदुशको हिन्द अथवा सिन्धके साथ क्यों घसीटा जाता है ? इसके लिये भी श्री जैक्सन केवल यह कहता है कि "इस बातकी पुष्ट हीराडोटसके लिखितसे होती है, जिसने दाराके २३

(1) ઇરાની ખોલા રોકો તખતીઓ વીશે, પૃ० ૩૮-૪૯

प्रांतोंमेंसे बीसवां सिन्ध लिखा है", जैसाकि ऊपर लिखा गया है। परन्तु हीराडोटस इंडिया शब्द को भारत अथवा सिन्धसे मेल बिठानेमें कितना असफल हुआ है वह उसके उपरोक्त उद्धरणोंसे सिद्ध हो जाता है कि "इंडिया एश्याके बिलकुल पूर्वमें है ...... इंडियाके पूर्वमें रेगिस्तान है...... फिर वहांके कबीलोंके खाद्य, रीति-रिवाज तथा सब भारती कबीलों के सम्भोगका बेहूदा तरीका" क्या यह सब सम्भव हो सकता है? क्या संसारमें ऐसी कोई मिसाल है कि किसीका वीर्य काला होता हो चाहे एथ्योप्यन लोगोंका! परन्तु सबसे बड़ा घात तो हीराडोटसने स्वयं यह लिखकर किया है कि "उन (भारतवासियों) का देश ईरानसे बहुत दूर दक्षिणकी ओर है।" यही नहीं परन्तु "और वे कभी भी दाराके आधीन नहीं हुए"। तो फिर स्पष्ट नहीं कि हीराडोटसका इंडिया सिन्ध नहीं किन्तु कुछ और है? श्री हगमरेने ठीक लिखा है कि "हीराडोटसको भारतका पूरा ज्ञान ही नहीं था। वह केवल इतना जानता था कि भारत ईरानी साम्राज्यकी पूर्वी सीमा है, इसलिये उसने जो कुछ लिखा है वह केवल सुनी हुई बातें हैं" (वो भी ग़लत)। :-

"All tbat Herodotus know of India was that it was one of the farthest provinces of the Persian Empire towards the east, but of its extent and exact position we had no very intimate knowledge. Most of the features he ascribes to India seem, rather, to have been borrowed from those of the neighbouring mountainous districts."[1]

परन्तु यह भी हकीकत है कि जब ये अंग्रेज़ी पुस्तकें इन किरायेके लेखकोंसे लिखवाई जा रही थीं, जिनको धोखेसे इतिहास कहा जा रहा था तथा हिन्दुओंको पढ़ाया जा रहा था, उस समय भारतमें अंग्रेज़ोंकी सत्ता थी। भारती विद्यार्थी जो बादमें स्वयं प्रोफेसर बन गये, उनके दिल-दिमाग पर वे ही धोखे से लिखे गये इतिहास ठोंसे गये थे। तोतेके समान रटते और प्रमाण देते जा रहे थे, क्योंकि उस समय वे ईसाई लेखक उनके आक़ा (स्वामी) थे। उन्होंने जो पढ़ाया वह सिर आंखों पर था! बादमें जो भी भारती इतिहास लेखक थे उनके लिये वे ईसाई लिखित मूलाधार और प्रमाण थे। उससे थोड़ा भी हटकर, सत्य लिखना उनके बसकी बात नहीं थी। ऐसा होते होते सौ वर्षोंमें दो-तीन पीढ़ीका वह कुष्ठ-रोग अभी तक विरासतमें मिलता आ रहा है। किसीने हीराडोटसकी मूल अज्ञानता अथवा भूलको परखनेकी आवश्यकता नहीं समझी, मूल ग्रीक लिखित (Mss.) किसी भारतीने देखे नहीं, ईरानी मूल लिखितोंके एक-एक शब्दको गंभीरतासे विचारा नहीं, और निद्रालु आंखोंसे, उसी प्रकारकी विष भरी रचनाएं तैयार करते गये। भारती पीढ़ीको वही विदेशी और देसी समर्थन प्राप्त सांचा मिल गया जिसमें से ढलकर यह आजका भारती विद्यार्थी 'Black edition' के रुपमें हमारे सामने उपस्थित है, जिसका मैकालेकेशब्दोंमें "हड्डियां,

(1) Hugh Murray: "Discoveries and Travels in Asia." [Edinburgh, 1820], P. 7

मांस और चमड़ी तो अवश्य हिन्दू है, किन्तु दिल-दिमाग़ तथा वेश, वाणी और विचार ईसाई नहीं तो विदेशी ज़रुर है और इसी सांचेसे ढले हमारे महान देश-भक्त कहलाने वाले भी हैं। हिन्दका हिन्दू कहलाना उसके लिये शर्मकी बात है, किन्तु बांदरके समान नक़ल करके विदेशी बनना और सोचना उसके लिये फ़ख्र (गर्व) की बात है। वे भारतकी महान कारीगरी और कला को देख, वैसी कारीगरी विदेशोंमें देखकर ऐसाही कहेंगे कि फलान विदेशी कलाका भारतकी कलापर प्रभाव यूं नहीं कहेंगे कि विदेशोंपर भारती कला का प्रभाव है। दिल्लीका प्रसिद्ध ज्योतिष स्तम्भ (कुतब मिनार) प्राचीन हिन्दू कारीगरीका स्मारक है, उस जैसा अल्तमशने बनवाना चाहा तो नहीं बनवा सका, ऐसेही बुनियाद तक कचाही रह गया। अभी निमरोज़ (अफ़गानिस्तान) में 'स्याह पोश' को भग्नावस्थामें देख ऐसा कोई नहीं कहता कि अफ़गानिस्तान निकट समय तक भी 'हिन्दू राज्य' था, इसलिये भारती कारीगरीकी छाप है; परन्तु कहा यह जाता है कि कुतुब मीनार पर अफ़गानिस्तानका तो प्रभाव नहीं है? देशसे गदारी केवल राजनैतिक नहीं सांस्कृतिक और सामाजिक तौर भी घातक होती है। भारतके निवासीको अब भी जितना अभिमान ताजमहल जैसी साधारण चीज़पर है उतना दक्षिण के महान हिन्दू मंदिरोंकी कारीगरी पर नहीं है जिसकी छाप स्वयं इंगलंडके पर्लियामेन्ट हाऊस पर भी है।

सो ऐसी ही गलत बात है दाराका सिन्धुके छोड़को देखना। ईरान और भारतके सम्बंध हज़ारों वर्षों से हैं- महाभारत से भी पूर्व। तो फिर ईरानके आर्य सम्राट् को क्या आवश्यकता थी सिन्धका छोड़ देखने की? सो भी जिसके मार्गका ब्योरा ही गलत! जो चला जहाज़ोंमें, प्रथम मुड़ा पूर्वकी ओर तो समुद्रमें जा निकला तो फिर मुड़ा पश्चिमकी ओर, और ३० मासके पश्चात वहां पहुंचा जहां ईजिप्टके राजाने फिनीश्यन लोगोंको भेजा था। फिर इसपर कमाल यह कि 'सिन्ध ईरानसे बहुत दूर दक्षिणकी ओर है। क्या यह हीराडोटस की अज्ञानताकी बात नहीं है अथवा हमारे इतिहास लिखने वालोंकी मूर्खता नहीं है कि ज्योंका त्यों नक़लको सही अथवा गलत बातको पकड़ रखना और मानना? क्या यह इंडिया कुछ और नहीं हो सकता (जैसा कि हम आगे दिखाएंगे)? क्या यह रास्ता कोई और इंडियासे नहीं बैठता तथा लाल समुद्रसे सम्बंधित हो? बस यूं ही भारतको सदैव परतंत्र होता सिद्ध करके दिखानेके लिये किसी ईमानदारीकी आवश्यक्ता भी क्या थी। सत्ताका बल, लाभ लेकर एकबार लिख डालो, पढ़ाकर हिन्दुओंकी खोपड़ीमें भर दो, संशोधन करना पड़ा तो तब देखा जायगा। क्या यह बात गलत नहीं है कि घड़ियाल केवल नील और सिन्धु नदियों में ही होते हैं? क्या जावा, सुमात्रा, इंडोनेश्यामें घड़ियालका शिकार नहीं होता? क्या वे इंडिया और ईजिप्टसे वहां आयात किये जाते हैं? हीराडोटस एक इतिहास लेखक है कोई इतिहासकार नहीं है। इसलिये हर लेखकके सच्चे लिखित पर भी झूठी बहिस आवश्यक है। परन्तु हम तो झूठको भी आंखों पर रखते हैं। स्पष्ट नहीं है कि हीराडोटसका

इंडियाके नाम पर लिखा सब गलत है? कमसे कम भारतके साथ उसका किसी बातका बंद नहीं बैठता। कुछ पर विचार किया जा सकता है। बाकी सब किसी दूसरी इंडियाके साथ मिल जाय तो कोई आपत्ति नहीं। फिर वह लिब्या हो, अरब हो अथवा एथोप्या। यही नहीं, दाराके दिये नामों में से अधिकतर पहिचाने भी नहीं जा सकते। क्या चींटियां भी लोमड़ी जैसी बड़ी हो सकती हैं? सोना इसी प्रकार गठरियां बांधकर रेगिस्तानमें से लाया जा सकता है क्या, जो चींटियां अपने बिलमें से निकाल बाहर फेंकती हैं, जिसप्रकार हीराडोटसने लिखा है? (पृ २१८) यदि नहीं तो बस! यदि हां तो इसका सुझाव यह भी हो सकता है कि हीराडोटसका इंडिया केवल एथ्योप्या अथवा लिब्या आदि आफ्रीकाका कोई प्रदेश हो सकता है जो ईरानसे बहुत दूर और दक्षिणकी ओर है। सम्राट् दाराके बेहिस्तून वाले लेख में एक 'हरउवतीश' प्रदेश भी है। ईसाई लेखकोंने इसकी तुलना आर्कोशिया से की है (इसलियेकि इंडियाके ग़लत अनुमानके निकट पहुंचा जा सके)। क्या यह एथ्योप्याका हरर अथवा हरार नहीं हो सकता? जो पहाड़ीकी ढालपर है, जिसके लिये श्री बर्टन (Richard Burton) ने लिखा है कि:-

"Harar was called by the name of 'Adari' by Somalis and 'Adaray' by the Golla tribe."[1]

क्या ये बड़ी चींटियां भी आफ्रीकाके उगण्डाकी विशालकाय चींटियोंकी पहाड़ियां तो नहीं हैं, जिनके लिये श्री गन्थर (John Gunther) ने अपनी पुस्तक "Inside Africa" में लिखा है कि:-

"A feature of the Uganda landscape is the procession of Giant ant-hils, which line the roads. Jagged and craggy, and often twelve to fifteen feet high, they look like ocherous models of mountain peak."

और ऐसी ही बात निआर्कस (Nearchus) ने भी लिखी है कि "इन चींटियोंकी चमड़ी चीते जैसी होती है।" यद्यपि स्वयं ही लिखिता है कि "मैं ने स्वयं नहीं देखी हैं"। और स्ट्रेबो ने मैगस्थिनेज़के प्रमाण से लिखा है कि:-

"That among the Derdae, a large tribe of Indians living towards the east and in the mountains, there is a plateau approximately three thousand stadia in crcuit, and that below it are gold mines, of which the miners are ants, animals that are no smaller than foxes, are surprisingly swift, and live on the prey they catch."[2]

(1) First Footsteps in East Africa, P. 67

(2) R.C. Majumdar: The Classical Accounts of India, Introduction P. XVI

वहीं अरिस्टोब्यूलसके प्रमाणसे लिखा है :-

"But Aristobulus say that he saw none of the animals of the huge size that are everywhere talked about, except a viper nine cubits and one span long. And I myself saw one of about the same size in Aegypt that had been brought from India."[1]

परन्तु एरियन कहता है कि :-

"Megasthenes avers that the tradition about (Gold digging) ants is strictly true", and very correctly observes: "Megasthenes writes what he had heard from hearsay."[2]

और खुले आम स्त्री-पुरुषका सम्भोग करना कोई काकेश्या का रिवाज तो नहीं है, जैसाकि स्ट्रेबोने मेगस्थिनेज़ के प्रमाणसे लिखा है कि :-

"For example, Megasthenes says that the men who inhabit the Caucasus have intercourse with women in the open and that they eat the bodies of their kinsmen......"[3]

इसका अर्थ यह हुआ कि कैस्प्यन और ब्लैकसी के बीच वाले प्रदेशको भी सिन्ध-इंडिया कहा जाता था, जिसका हीराडोटसने उपरोक्त वर्णन लिखा है। परन्तु हम इसे भी गलत मानते हैं।

कुछ भी, किसी प्रकार भी, हम न तो हीराडोटसकी इंडियाको, न ही दाराके हींदुशको भारत-सिन्धसे जोड़ सकते हैं। क्या यह मज़ाक (उपहास) नहीं है कि दाराने अपने जीवनके मध्याह्न के समय अनेक देशोंको जीतकर उनका वर्णन अपने विशाल लेखमें किया उसमें सिन्धका उल्लेख तक नहीं किया, बाकी जब मरने का समय आया तब सिन्धको जीता भी तो उसका उल्लेख भी अपनी समाधि पर करा गया, जैसाकि जैक्सन जैसे सरकारी लेखकोंको "भारत पहलेसे ही परतंत्र रहता आया है" सिद्ध करके वहां राज्य करनेका एक सुंदर अवसर मिल जाय और वे हिन्दुओंकी विचार धारणा पर यह अंकित कर सकें?

फिरभी आइये थोड़ा इस पारसी (ईरानी) साम्राज्यको भी देखें, जिसके साथ हमें भी बिला वजह संकलित किया जाता है :-

छठी शताब्दी ई०पू० महान आर्य सम्राट् कूश (साइरस Cyrus-श्रीहर्ष) ने मध्य एश्यासे लेकर मेडीटरेन्यन समुद्र पर्यन्त एक विशाल साम्राज्यकी नींव रखी, जिसमें प्राचीन कालके बैबीलोन्या, मेड्या, लीडया आदि राज्य सम्मिलित हो चुके थे। यह कूश एलाम (मूलत: भारती आर्योंके प्राचीन) राज्यका राजकुमार था। इसी लिये दाराने अपने लेखोंमें अपनेको आर्य तथा

(1) Ibid, P. 267 (2) Ibid, P. 268 (3) Ibid, P. 271

आर्य-पुत्र घोषित किया है। इसने पहले मीड्यन राजा Cyaxares पर आक्रमण किया। ५५० ई० पू० मीडियाको जीतकर इसने पर्शयन साम्राज्यकी नींव रखी। परन्तु कहते हैं कि यह आर्य सम्राट् होनेके कारण, इसने ऐसी नीति अपनाई कि वह विजय रक्तपातके बिना हुई। जिसप्रकार असीर्यन और बेबीलोन्यन तथा एलमाईट और कार्थेज वालों ने नरसंहारका आश्रय लिया, यह विजय उनसे निराली थी। न केवल उसकी राजधानी एकबतना (Ecbatana) सुरक्षित रही परन्तु उसे वैसे ही राजधानी रहने दिया गया और वहां साइरसने पुस्तकालय (जिसमें आर्य रमण और आरिषमसकी खुदी (engraved) हुई पटियां (tablets) भी सम्मिलित थीं) स्थापित किया और उसके लिये पर्शयन तथा मीडियन अधिकारी नियुक्त किये। यह विजज तथा परिवर्तन इस शांतिके साथ हुआ कि यूरोप वाले पर्शयन और मीड्यिन राज्यको एक ही समझ रहे थे। इस प्रकार दो राज्योंको मिलाकर, शक्ति बढ़ाकर अब साइरस पूर्व और पश्चिमके मध्यका राजा बन गया। इसने सीमावर्ति लोगोंको भी अपने साथ मिला दिया। मीडियका उत्तराधिकारी, असीर्या, उरर्तु (Urartu) और पूर्वी एश्या माइनरका सम्राट् बननेके पश्चात वह लीडिया के सामने आ खड़ा हुआ, जहां क्रोशस (Croesus) ५६१ ई० पू० से राज्य कर रहा था। इसने स्लीश्या (Cilicia) पर शांति पूर्वक अधिकार जमाकर, ईजिप्ट तथा बेबीलोन्या राज्योंके मार्ग काट दिये, जो लीडियाके मित्र देश थे और वहांसे उसे सहायता मिलनेकी आशा थी। इसने प्रथम क्रोशसको शांतिसे अधीनता स्वीकार करनेको कहा, उसने न माना, इसलिये इसने असीर्यामें सेनाएं एकत्रित कर टाईग्रस नदी पार कर कप्पडोश्या (Cappadocia) की ओर प्रस्थान किया। मार्गमें उसने महत्वपूर्ण और व्यापारिक केंद्र वाला नगर हारां (Harran) पर अधिकार किया जिसपर नबोनीदस (Nabonidus) का राज्य था। अंतत: लीडियाको जीता गया परन्तु उसको ईरानी सत्रपीके अधीन रखा। इसप्रकार एश्या माइनरको जीतकर पूर्वकी ओर बढ़ा और बैक्ट्रया आदिको जीतकर आक्सस नदी पारकर Jaxartes तक पहुंचा जो उसकी सीमा होकर रही। वहां उसने किलाबंदी की जिससे कि घुमंतु कबीलोंसे सुरक्षा हो सके। इसके पश्चात बेबीलोन्या और ईजिप्टकी बारी थी। बेबीलोन्या वाले तो झुक गये, राजाको बंदी बना दिया गया। परन्तु उसके साथ मरते समय तक अच्छा व्यवहार किया गया। इसप्रकार सीर्या भी उसके अधीन हो गया। फिनीश्या उसकी सहायताके लिये उपस्थित हो गया; अपना जहाजी बेड़ा देनेका भी प्रस्ताव किया जिससे कि ग्रीस (यूनान) पर आक्रमण किया जा सके।[1]

यद्यपि कहा यह जाता है कि उसने भारती सीमाओं पर भी आक्रमण किया परन्तु क्लीपूनके लिखितसे मालूम होता है कि ५६० ई०पू में बेबीलोन्या-युद्ध समय दोनों पक्षों (ईरान और बेबीलोन्या) ने अपने प्रतिनिधि सिन्धके राजाके पास सहायता प्राप्त करनेके लिये भेजे थे। जिसपर सिन्धकी

(1) R. Ghirshman : "IRAN" Pp. 129-132

ओरसे एक दूत-मण्डल (Mission) यह निर्णय लेनके लिये वहां भजा। जिसने साइरसके पक्षमें निर्णय किया तथा सहायता भी भेजी गई। ज़नोफन (Xenophon) भी कहता है कि भारती (सिन्धी) राजाने साइरसके पास अपना दूत भेजा। :-

"This embassy, he says, conveyed a sum of money for which the Persian king had asked and ultimately served him in a delicate matters of espionage before the war against Croesus and the campaign in Asia Minor."

मेगस्थनेज़ने तो ऐसा भी लिखा है कि "ईराननें भाड़ेकी सेना (Mercenary) भारतसे प्राप्तकी," तो भी जैक्सनने लिखा है कि "क्यों नहीं साइरसकी भारतपर आक्रमण वाली बात संदिग्ध है, तो भी यह तो प्रश्न नहीं उठता कि उसने (भारतकी सीमाओं) अफगानिस्तान और बलोचिस्तान (जो भारतके ही भाग थे) पर आक्रमण नहीं किया"। (P. 333)

साइरस (कूश) के बाद इस साम्राज्यका उत्तराधिकारी उसका पुत्र कैम्बीसस (Cambyses) बना। उसने ईजिप्टको जीतकर पर्शयन साम्राज्यसे मिला दिया। इसके पश्चात उनके ही वंशका दार्यवुश (Darius-दारा) उत्तराधिकारी बना। साइरसके समान यह भी संसारके इतिहासका महान सम्राट् हो चुका है। इसके समयमें पर्शयन साम्राज्य चोटीको पहुंच चुका था। इसने यूरोप पर आक्रमण कर उसके दक्षिण-पूर्वी भागका थ्रास (वर्तमान बलगेर्या), यूनानका मेसीडोन्या (Mecedonia) आदि जीतकर अपने साम्राज्यमें मिला दिये और स्वयं लौटकर ईरानमें आया। इसके लौटनेके बाद इसकी सेनाएं सारे यूनानको जीतनेके लिये आगे बढ़ीं मगर उन्हें सफलता नहीं मिली। इसलिये वह स्वयं वहां जानेकी तैयारी कर रहा था, तो इस बीच उसकी मृत्यु हो गई। इसमें शका नहीं कि यदि दारा थोड़ा समय और जीवित होता तो सारा यूनान जीत लेता और उसके उतम आर्य राज्य-प्रबंधके फैलनेसे वहां बादका रक्तपात न होता।

इसके बाद दाराके वंशका ही शेरेश (Xerxes-ज़ेरेक्स्स) शासक बना। यह भी दाराके समान यूरोप आदिको जीत एक विशाल साम्राज्य बनाना चाहता था परन्तु वह अपने पूर्वजोंके समान शक्तिशाली नहीं था। अपने जल और थल सेना को लेकर उसने यूनान पर आक्रमण किया। अथेन्सके साथ उनके राज्यों को जीता किंतु थोड़े ही दिनोंके पश्चात सलामीस (Salamis) की युद्धमें उसकी जल सेना पराजित हुई और विजयका बार थल सेनापर छोड़कर स्वयं ईरान लौट आया। लेकिन उसकी भी प्लेट्याकी युद्धमें पराजय हुई। बस! इसके पश्चात पर्शयन साम्राज्यका प्रभाव यूरोपसे घटने लगा। शेरेश के बाद अर्तशेरेश आदि बहुत शासक बने परन्तु उनकी शक्ति दिनों दिन घटती रही। अंतमें दार्यवुश (दारा) तीसरेके समयमें ही यूनानकी पराजयका बदला लेनेके लिये फिलिप्सके पुत्र अलेगज़ेंडर (मेसीडोन्यके शासक) ने ईरानपर आक्रमणकर उसे बरबाद कर दिया।

हमने देखा कि ईरान और भारतके सम्बंध अच्छे थे जैसा कि हमने ऊपर क्लीफूनके प्रमाणसे दिखाया है। पारसी पन्थके विद्वान जेम्स डार्मेस्टेटर ने तो लिखा है कि "विक्रमी संवतसे दो सौ वर्ष पूर्व और पश्चात सारे ईरानमें आर्य (हिन्दू) सभ्यता फैली हुई थी और ईरान भारतका एक भाग ही जैसा था। :-

"'Hindu civilization' prevailed in these parts, which in fact, in two centuries before and after Christ were known as White India, and remained more Indian than Iranian till the Arab conquest."

हमारा यह दिखानेका उद्देश यह है कि इस स्थतिमें दारा भारतपर क्यों आक्रमण करता? यद्यपि राजनीतिमें कभी कुछ और भी सम्भव होता है। तो आइये उसे भी देखलें।

अलगज़ेंडरके जलसेना अध्यक्ष निआर्कसका वर्णन, जैसाकि एरियनने दिया है, कि सिंकदर जब बलोचिस्तानमेंसे होकर भारत पर आक्रमण की योजना तैयार कर रहा था तब स्थानिक लोगोंने उसे बताया कि "कोई भी आक्रमणकारी, इस मार्गसे बचकर वापस नहीं लौटा है सिवाय सेमीरामसके जो भी केवल २० साथियोंके साथ बचकर भाग निकली थी और साइरस भी केवल सात साथियोंके साथ (सिन्ध-हिन्दसे) बचकर लौटा था।":-

"That no one had ever before escaped with an army by this route excepting Semiramis on her flight from India (Sindh), and she, they said, escaped with only twenty of her army, and Cyrus the son of Cambyses (not the Cyrus mentioned by Herodotus, Ctesias and Xenophon), in his turn with only seven."

● अब सेमीरामस का आक्रमण क्योंकि जल मार्गसे था, इसलिये वह सीधा सिन्ध पर था, जहांसे वह पराजित होकर लौटी थी, आइये उसे भी देखलें :-

साधारणतया भारतपर अलेगज़ेंडरका (पराजित हुआ) प्रथम विदेशी आक्रमण गिना जाता है परन्तु प्राचीन पश्चिमी साहित्यमें दूसरे आक्रमणोंका भी वर्णन मिलता है। एक आोसीरिस (Osiris) ईजिप्टका राजा, दूसरा हर्क्यूलस, तीसरा डायोनीसस (Dionysus) अथवा बेकस (Bachus) है। इस अन्तिमका मैगिस्थनेज़के प्रमाणसे केवल स्ट्रेबो न उल्लेख किया है, तथा एर्यननेे भी सूचनाके तौर उल्लेख किया है।[1] इन आक्रमणकारियोंका वर्णन केवल पश्चिमी साहित्यमें ही पाया जाता है। परन्तु ये आक्रमणकारी वास्तवमें थे भी अथवा नहीं इसका विश्वास नहीं है। स्वयं कुछ पश्चिमी लेखकोंको भी इसमें शंका है। फिरभी इनको नितांत ग़लत नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अति प्राचीन बातें बहुत समय बीतने पर देव कथा (Mythology) तथा

(1) Annals of the Bhandarkar O.R.I. [Poona], Vol. XXXI, P. 239

अनुश्रुत्यां बन जाती हैं।

सेमीरामस असीर्या (Assyria) की रानी थी। उसके पतिका नाम नीनस (Ninus) था जिसने निनेवः (Nineveh) नगरकी नींव रखी थी। यह असीर्या और वैबीलोन्या के संयुक्त राज्यका शासक था। पतिके मरनेके पश्चात सेमीरामस उतराधिकारी बनी। प्राचीन साहित्यमें यह भी मूलमें एक 'देवी' है, जिसकी पूजा होती थी और हिट्टी (Hittite) जाति के माबोग (Mabog) मंदिरके वर्णन (जैसाकि यूनानी लेखकोंने किया है) के अनुसार पीतलकी वेदि के बाईं ओर इसकी मूर्ति रहती थी और इसका मूल नाम शमूर्मात (Shammurmat) था जो यूनानियोंने बिगाड़ कर सेमीरामिस कर दिया।

इस प्राचीन महारानीने साम्राज्य विस्तारके विचारसे भारतपर आक्रमण की तैयारीकी। यह १६६४ ई०पू० की बात है। सेमीरामसने सुना था कि भारतमें हस्ति सेनाका महत्व है इसलिये ऊंटोंपर भैंसोंकी खालें मढ़कर नकली हस्तिसेना खड़ी की गई। उसने समझा भारतवासी इसकी यह सेना देख घबड़ा जाएंगे। यहां पहुंचनेपर उसे सिन्धु नदी पार करनी थी इसलिये नौसेनाका भी निर्माण किया। जब सिन्धु नदी के निकट पहुंचे तो उन्होंने देखा कि सामने सिन्धी सेना युद्धके लिये तैयार खड़ी है। सिन्धका राजा स्टारोबेटस (Staurobates) था। असीर्यन सेनापति डेरीक्रयन था परन्तु इस युद्धमें सेनाका संचालन सेमीरामस स्वयं कर रही थी। युद्ध आरंभ हुआ। हार जीत होती रही। अंतमें स्टारोबेटस और सेमीरामस आमने सामने हो गए। सेमीरामस घायल होकर बची सेनासे भाग खड़ी हुई। सिन्धियोंने पीछा किया। सेमीरामस थोड़े सिपाहियोंके साथ बच निकली। कुछ लिखते हैं कि वह इस युद्धमें मारी गई, कुछके अनुसार वह केवल बीस साथियों के साथ अपने देश पहुंची।

यह दारासे पहलेकी बात है। यदि घर आए अतिथ्योंका इसप्रकार स्वागत किया जा सकता है तो दाराकी बात ही क्या है। परन्तु मेगस्थनेज़ ने (जैसाकि स्ट्रेबो कहता है) स्पष्ट लिखा है कि भारत पर किसी भी विदेशीने कभी आक्रमण नहीं किया :-

"Indians...had never been invaded and conquered by a foreign power."

<u>एर्यन</u> (Flavius Arrianus)! यह यूनानका लेखक तथा विचारक था। रोमन सम्राट् Hadrian ने इसे Cappadocia का राज्यपाल (Legatus) नियुक्त किया। बादमें अथेन्सका Archon बना। इसकी पुस्तक "Anabasis of Alexander" है जिसमें अलेगज़ेंडरका जीवन-चरित्र है जो इसने Cassandreia के Aristobulus तथा Lagus के पुत्र Ptolemy (जो बादमें ईजिप्टका शासक बना) के लिखितोंसे लेकर लिखी थी, क्यों कि ये दोनों ईरान तथा भारतमें सिकन्दरके साथ थे। इसकी दूसरी पुस्तक 'Indica' है जो भी इसने मेगेस्थनेज़ तथा Eratosthenes के लिखितोंसे तथा कुछ निआर्कससे लेकर लिखी। उस अनुसार :-

"सिन्धु नदी एश्या और यूरोपकी नदियोंमें सबसे बड़ी नदी है (सिवाय गङ्गाके)। इसके दो मुख हैं। समुद्रके पास यह ईजिप्टके समान दोआबा (Delta) बनाती है, जिसे पाताल (Pattala) कहते हैं।

"अलेगजेंडर लौटते समय जब झेलमसे होकर सिन्धुमें आया तो समझाकि इसने नील नदीका उद्गम (मूल) ढूंढ निकाला है, जब उसने सिन्धुमें घड़ियाल देखे जो उसने नीलके सिवाय और कहीं नहीं देखे थे। इसके सिवाय चनाब नदीके किनारे मट्टर की खेती देखी, जिस प्रकारकी भी ईजिप्टमें होती है। फिर जो सुना कि चनाब नदी भी सिन्धुसे मिल जाती है तब उसका यह अनुमान दृढ हो गया। उसने समझा नील नदीका मूल भारतमें ही कहीं (सिन्ध) है और सारे बयाबानमें से बहनेके पश्चात इसका यह नाम (सिन्धु) गुम हो जाता है और फिर जब दूसरी आबादी वाले स्थानमें बहने लगती है तो फिर एथ्योप्या तथा ईजिप्ट वाले इसे नील (Nile) नदी कहते हैं। यह अनुमान उसका ऐसा पका हो गया था कि यही बात उसने अपनी मां Olympias को भी पत्रमें लिख दी, जो बादमें मालूम होनेपर काटदी।

"सिन्धुमें नीचे चलते इसने पाताल नगरको ले लिया परन्तु तीसरे दिन वहां भी विद्रोह हो गया और नगर खाली हो गया। इसने Hephaestion को आदेश दिया कि वहां किलाबदी करे। पातालके समीप ही सिन्धु दो शाखाओं में बंट जाती है परन्तु नाम दोनोंका वही है। इसने Leonnatus के नेतृत्वमें पैदल सेना पाताल प्रदेशमेंसे किनारे किनारे भेजी और स्वय नदीसे चला। दूसरे दिन तूफान लगा, उसके सब जहाज और नौकाएं लगभग नष्ट हो गईं। कुछ बचीं तो टूटी हुई। इसके बाद सिकन्दरकी दुर्दशाका वर्णन किया है।[1]

स्ट्रेबो (Strabo)! यह यूनानी भूगोलवेत्ता तथा इतिहास लेखक लगभग ६३ ई०पू० में पान्टस (Pontus) के अमेस्या (Amasia) में जन्मा। इसकी पुस्तकमें १७ अध्याय (books) हैं जिनमेंसे १५वें में सिन्धका उल्लेख है। उस अनुसार "इंडियाके बाद आर्याना आएगा जो सिन्धु नदीके बाद (पश्चिममें) पार्सियोंके अधीन है। इस समय इसका दक्षिण भाग सिन्धूके मुख तथा पातालसे प्रारंभ होता है और कर्मान्या तथा ईरानी खाड़ी में समाप्त होता है। पातालीन प्रदेशके समीप ही मोसीकेन्स का प्रदेश है तथा सेबस (Sabus) जिसमें सिन्दोमन्न (Sindomana) नगर है। पातालीन (Patalene) प्रदेशमें पाताल (Patala) नामक एक मुख्य नगर है जिससे इस प्रदेशका नाम पड़ा है"।[2]

कर्टयस (Curtius Rufus Quintus)! यह रोमन सम्राट् क्लौडियस (Claudius-५४१ से ५४५ तक) के समयमें था। इस अनुसार "सिन्धू नदीका जल दूसरी नदियों से अधिक ठंडा है। गंगा और सिन्धू लाल समुद्रमें जा पड़ती हैं। इसके समुद्रका नाम, राजा एरीथ्रस (Erythrus)

(1) Arrian's Life of Alexander [Penguin, 1958] (2) Ibid, P. 261

से पड़ा है इसलिये अनजान लोग ऐसा समझते हैं कि इसका जल लाल रंगका है।[1] सिकन्दर के समय पातालके राजा का नाम मोरस (Moeres) था।

डायोडोरस (Diodorus Siculus)! यह यूनानी इतिहास लेखक सिसिली(Sicily)के अजीर्यम (Agyrium) ग्राममें प्रथम शती ई०पू० में जन्मा। इसके अनुसार "अलेगजेंडर अपने साथियों सहित सिन्धूके मुखसे समुद्रके लिये चला। रास्तेमें दो टापू देख लौट आये और तउअला (Tauala) पहुंचे जो महत्वपूर्ण नगर था"।[2]

जस्टिन (Junianus Justinus)! यह रोमन इतिहास लेखक था और सम्भवत: ऐन्टोनीन्स (Antonines) के ज़मानेमें था। इस अनुसार "सिन्धमें ही अलेगज़ेंडर पर एक स्थानपर विष भरे तीरोंकी वर्षा हुई थी जिस कारण अनेक सैनिकों सहित यह भी घायल हो गया था, बचनेकी आशा नहीं थी। फिर मालूम हुआ कि जंगलमें एक औशधि होती है, जो लाई गई और उसके घोटकर लगानेसे विषका प्रभाव मिट गया। इसके पश्चात वह सिन्धूके मुख पर पहुंचा और समुद्रके किनारे किनारे थलमार्गसे रवाना हो गया।[3]

प्लूटार्क (Plutarch- सन् ४६ से १२०)! यह, बोयोट्या (Boeotia) यूनानके कैरोन्या (Charonea) नगरमें जन्मा था। यह, दार्शनिक अथेन्समें बना और घूमा ईजिप्ट तथा इटलीमें। रोममें राजा हद्रयां (Hadrian) का गुरु भी बना। डेल्फी (Delphi) में अपोलो मंदिरका बहुत वर्षों रक महन्त भी रहा। इस अनुसार "सिकन्दर समुद्र देखनेकी चाहनासे सिन्ध से होकर लौटा। यहीं इसे चार साधू मिले जिनसे सिकन्दरने कुछ प्रश्न किये थे"। (Ibid, Pp 199-204)

Itinerarium Alexandri! यह एक अज्ञात लेखककी छोटी पुस्तका है। लेखक अलेगज़ेंन्ड्र्याका निवासी था। लगभग चौथी शतीका है। इस अनुसार:- "सारी इंडिया उतरसे, जिसमें ईरानके अधीनस्थ भागसे आरंभ कर ईजिप्ट और एथोप्या भी उसमें सम्मिलित हैं, और यह सारा बृहत् इंडिया चारों ओरसे समुद्रसे घिरा है। इस नामसे इंडिया एक महान देश है, जो आपको विदित हो, जिसमें अनेक जातियां बसती हैं, विशालकाय पशु भी हैं जैसे कि हाथी, एक एकड़ लम्बे सांप तथा शेर और जीते पालतु जानवर हैं"। (Ibid, p. 209)

फ्रन्टीनस (Sextus Julius Frontinus)! यह बृटनका(सन् ५७ से ७८ तक) रोमन राज्यपाल था। इसने सिन्धके विषयमें केवल अलेगज़ेंडर का सिन्धूको पार करना लिखा है।[4]

पेरीप्लस (The Periplus of the Erythraean Sea)! रोमन तथा ग्रीक लोग हिन्द महासागरको (रेडसी और पर्शयन गल्फ सहित) एरीथ्रयन कहते थे। पेरीप्लस एक प्रकारकी डाइरी है। इसका लेखक ईजिप्शन-ग्रीक था और सम्भवत: स्वयं व्यापारी था जो Red Sea से भारत तक यात्रा करता था। इसने जो कुछ देखा एक डाइरीमें लिखता जाता था इसलिये इसके

(1) Ibid, P. 103) (2) Ibid, P. 183 (3) Ibid, P. 192 (4) Ibid, P. 213

लिखितका महत्व है। यह लगभग प्रथम शतीका होगा। श्री स्काफ (Wilfred H. Schoff) तथा श्री मैकरिंडल दोनोंने इसके अपने अपने अनुवाद किये हैं। इसमें कुल ६६ परिच्छेद हैं जिनमेंसे ३८-३९में सिन्धका वर्णन है। उस अनुसार:-

३८- "इसके पश्चात मुड़कर सिथ्या (Scthia) का समुद्री किनारा है जो उतर की ओर जाता है। यह सारा नमी वाला, नीचा तथा सीधा मैदान है जहांसे सिन्धू आकर गिरती है। जो एरीथ्रियन समुद्रमें गिरने वाली नदियोंमें सब से बड़ी है।

"समुद्रसे आने वाले लोगोंके लिये यह पहिचानने के लिये कि हम देश (सिन्ध) में आ पहुंचे हैं ऐसा संकेत यह है कि वहां सांप अचानक बाहर निकल कर तैरते दिखाई देते हैं जिनको घड़ियाल कहा जाता है। नदीको सात मुख हैं परन्तु जल छिछला है इसलिये जहाज़रानीके उपयुक्त नहीं है, सिवाय बिचले के, जिसके किनारे पर व्यापारी नगर बर्बरीकम (Barbaricum) है। इससे थोड़ा पहले एक छोटा टापू है जिसके पीछे (किनारे से) अंदर सिथ्याकी राजधानी मीन्नगर है, जो पार्थ्य सरदारोंके अधीन है, जो सदैव आपसमें लड़ते तथा एक दूसरेको निकाल बाहर करते हैं (ध्यान रहे कि पिलिनी ने इन्डो-सिथ्या को सिन्धी-सिथ्या लिखा है)।

३९- जहाज़ बर्बरीकम के पासही लंगड़ डालते हैं, परन्तु उनका माल (Cargo) राजधानीमें शासक के पास नदी द्वारा पहुंचा दिय जाता है। इस बर्बरीकम नगरमें महीन कपड़ा, लाबान, शीशेका सामान, पुखराज, सोने-चांदीके परत तथा थोड़ा शराब आदि आते हैं। यहां से एक प्रकारका गोंद (Bdellium), कुठि (Castus), सूती कपड़ा, रेशमी दोरी, नील (Indigo), पेरोज़: (Turquoise), ज़मरद (पन्ना-Emerlad), नीलम (नीलमणि-Sapphire), चीन की पोस्तीन (Furs) आदि। नाविक वर्षाॠतुमें ही भारतके लिये रवाना होते हैं, अर्थात जुलाई मासमें। यद्यपि यह समय संकट पूर्ण होता है परन्तु छोटा, सीधा (direct) और शीघ्र यात्रा वाला है।[1]

यहां यह बात विशेष ध्यान देने जैसी है कि आजसे दो हज़ार वर्ष पूर्व भी यह विदेशी सिन्धुको 'सिन्थुस' कहता है न कि इंडस! तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सिन्धुका हिन्दू अथवा इंडस नहीं बना ?

निआर्कस (Nearchus)! यह अलेगज़ेंडरकी जलसेनाका अध्यक्ष (Admiral) था और सिन्ध-भारतमें पराजित होनेके पश्चात सिकन्दरकी बची सेनाके साथ सिन्ध से मकरान-बलोचिस्तान के किनारे किनारेसे जा रहा था। इसने जो कुछ लिखा है वह सत्य है अथवा झूठ परन्तु एर्यनने अपनी पुस्तकमें विवरण लिखा है, जिसके लिये श्री मजुमदारने लिखा है कि :-

"It has been condemned as spurious by Dodwell, and impeached in point of veracity by Hardouin and Huet." (Majumdar, P. 313)

पुराने लेखकोंमें स्ट्रेबोने निआर्कसकी डाइमकस (Daimachus), मैगस्थनेज़ और अनीसीक्रटस

(1) Schoff-The Periplus of the Erythraean Sea, Pp. 36-38

Onesicritus) के साथ तुलनाकी है जो अफसाने सुनाने वाले थे। पिलिनी ने तो इस लिखित का होना ही अस्वीकार किया है। फिर भी जो कुछ है वह सिन्धके उस समयके भौगोलिक स्थति जाननेके लिये उपयोगी है।

प्लिनी (Gaius Plinius Secundus) प्रसिद्ध नाम Pliny (23 to 79 A.D.) इसे बड़ा (elder) भी कहा जाता है। यह रोमन विद्वान तथा "Natural History" का लेखक है। उस अनुसार :-

"यह हकीकत थी कि अरबकी रास (Cape) स्याग्रस (Syagrus) से पाताल (सिन्ध) तक का फासला १३३५ मील है।

" ऐसा कोई वर्ष नहीं जो भारत (सिन्ध) हमारे (रोमन) साम्राज्यसे साढे पांचसौ मिलयन स्यट्रसिस (लगभग १,४००,००० स्टर्लिंग) खींच लेता है और उसके बदली में अपना सामान देता है जो यहां सौ सेकड़ा मुनाफे से बिकता है।

"इंडस जिसको वहां के लोग सिन्डूस (Sindus) कहते हैं, काकेशस पहाड़की शाखा पैरोपमीसस (Paropamisus) से निकलती है। उससे एक बड़ा टापू बनता है जिसे Prasiani (पसिणी?) तथा छोटेको Patale कहते हैं।

"बहुत लेखक सिन्धुको भारतकी पश्चिमी सीमा नहीं मानते परन्तु उसमें चार स्तर्पियां-गद्रोसी, अराकोटी (Arachotae), अरी (Arii) और पैरोपमेसीडई भी गिनते हैं जिसकी अन्तिम सीमा कोफिस (Cophes-काबुल) नदी है। यद्यपि कुछ इनको अरीमें सम्मिलित करते हैं।

"तापरबनी से पहले पाताल का टापू है, जो सिन्धू के मुख पर है और त्रिकोन (Delta) है।

"भारतमें भी प्रसिद्ध बंदर पातालमें सूर्य दाहिनी ओर निकलता है और परछाईं दक्षिण की ओर पड़ती है। (Ibid, Pp. 337-349)

टालमी (Ptolemy)! पूरा नाम Calaudius Ptolemaeus है। यह गणितज्ञ, संगीतकार, ज्योतिषी तथा भूगोलवेत्ता था। यह प्राचीन कालीन यूरोपका बड़ा वैज्ञानिक गिना जाता था, यद्यपि उसके लिखित अपूर्ण तथा भूलोंसे भरे हैं। यह लगभग दूसरी शतीमें अलेगजेंड्रयामें था तथा Antoninus Pius के राज्यमें भी था। Banbury के अनुसार "राय (तजवीज) जो इसने अपने घड़े हुए नियमोंमें दिखाई है, वह अनुमान तौर भी व्यवहारमें लाना उसके लिये असम्भव थी। ज्योतिषके विषयमें उसके विचार, जो थोड़े ही थे, वे भी अपूर्ण थे अथवा ऐसे अशुद्ध थे कि वह स्वयं भी विश्वास पूर्वक व्यवहारमें नहीं ला सकता था (संस्कृतसे लेकर पूरी तौर समझ नहीं सका होगा)। उस अनुसार :-

सिन्धूके बाकी बहाव वाले प्रदेशको Indo-Scythia कहा जाता है। इसका मुख पास द्वमुख होनेसे बने भागको पाताल कहा जाता है तथा उसके ऊपर वाले भागको अभीर (Abiria)।

"सिन्धूके दूसरे मुखका नाम Sinthun है और इसकी स्थति 110° 20' 19° 50' है।

स्ट्रेबो तथा एरिटोस्थनीस ने सिन्धूको भारतकी पश्चिमी सीमा कहा है जो ग़लत है परन्तु टालमीने हिन्दूकश तक लिखा है जिसमें अफगानिस्तान, बलोचिस्तात और कंधार भारतमें गिनाए हैं।[1]

अपोलोन्यस (Apollonius of Tyana)! फिलोस्ट्रेटस (Philostratus) से मालूम होता है कि यह भारत-सिन्धमें आया था। इसका जीवन एक आर्य ब्रह्मचारी जैसा था। शराब, मांस तथा विवाहका त्याग किया। जूता नहीं पहनता था। बाल और दाढ़ी भी रखता था। रोमन सम्राट्ने इसका बुत (Statue) भी बनवाया था। रोमन सम्राज्ञी Julia Domna की भी इसमें बड़ी श्रद्धा थी, जिसने इसका जीवन चरित्र भी लिखवाया। यह अपने मित्र बैबोलोन्याके Damis के साथ भारत यात्रा पर आया था। वह यहां बहुतसे ब्राह्मणों का अतिथि बनकर रहा तथा राजाओंसे भी सनमान पाया। उसके जीवन चरित्र अनुसार :-

"बेक्कस (Bacchus) के विषयमें ग्रीक तथा हिन्दू सहमत नहीं हैं। ग्रीक कहते है कि थेबन बेकुस ने इंडिया को जीता, जिसके प्रमाणमें डेल्फी के कोषमें चांदीकी एक भारती तश्तरी है जिसपर "Bacchus, Jove and Semele's son, from India to the Delphian Apollo" खुदा हुआ है।

"परन्तु सेम्ली के पुत्रके लिये काकेशसके हिन्दुओं का कहना है कि वह असीर्या का परदेशी था। किन्तु सिन्धु और गंगा वाले कहते हैं कि वह सिन्धु-पुत्र (सिन्धी) था तथा थेबन बेक्कस उसका शिष्य था।

"सिन्धू की ओर जाते रास्तेमें उन्होंने एक १३ वर्षीय लड़का देखा जो हाथी पर सवार था। तथा सिन्धु पर तीस हाथियोंका झुंड देखा।

"लौटते समय उन्होंने सिन्धुका मुख तथा पाताल नगर, जो सिन्धूसे घिरे हुए टापू पर था, वह भी देखा।[2]

मैगस्थनेज़ (Megasthenes)! इसके जीवनके विषयमें केवल इतना ही ज्ञात है कि यह राजा सैन्ड्राकोटस (Sandrocotus) जिसे सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ मिलाया जाता है, की दरबारमें राजदूत करके भेजा गया था, जहां वह पालम्बोथ (Palimbothra) जिसे पाटलीपत्रसे तुलना की जाती है, में रहता था। यद्यपि वैदिक साहित्य तथा इतिहासके विद्वान पंडित भग्वद्दतने इस पहिचान को प्रमाणोंसे ग़लत सिद्ध किया है। उसके अनुसार सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य बहुत पहले हो चुका था, इसलिये मैगस्थनेज़का चन्द्रगुप्त मौर्य की दरबारमें राजदूत होकर रहनेका प्रश्न ही नहीं उठता। वह मैगस्थनेज़ के इस सारे नाटकका मञ्च मध्यप्रदेशमें बताता है, न कि मगधकी पाटना नगरी।[3] परन्तु ऐसा माननेसे सारे इतिहासके सन्-संवत उलट-पुलट हो जाएंगे, बनी बनाई

(1) Ibid, Pp. 351, 352, 364, 374 (2) Ibid, P. 408
(3) भारतवर्षका इतिहास, भाग १, पृ० २८८

मान्यताएं धड़ामसे पड़ जाएंगे, इसलिये ऐसा कष्ट लेकर कोई भी सत्य तक पहुंचनेको तैयार नहीं है।

मैगस्थनेजकी लिखी पुस्तक इन्डीका "Indika" इस समय उपलब्ध नहीं है किन्तु प्राचीन लेखकों ने उसके कुछ उद्धरण अपनी पुस्तकोंमें प्रस्तुत किये है, उन्हींको एकत्रित किया गया है। लेकिन वे उद्धरण कहां तक विश्वसनीय हैं यह नहीं कहा जा सकता। स्वयं पिल्नी ने मैगस्थनेज तथा डायोडोरस दोनोंके लिये लिखा है कि :-

"It is not worth to study their accounts with care, so conflicting are they and incredible."

जैसेकि डायोडोरसने भारतका नाप पूर्वसे पश्चिम तक २८ हजार स्टेडिया लिखा है, परन्तु मैगस्थनेज़ने १६००० (१८३८) स्टेडिया लिखा है। दूसरे स्थानपर डायोडोरसने लिखा है कि सारे संसारमें नील नदीके बाद सिन्धु बड़ेमें बड़ी नदी है, परन्तु मैगस्थनेज़के प्रमाणसे लिखा है कि नील तथा (यूरोपकी) डेन्यूब नदी दोनों मिलकर भी सिन्धुके समान नहीं हैं। इसलिये श्री मजुमदारने स्वयं लिखा है कि :-

"The fact that classical writers themselves had no great faith in the veracity of Megasthenes and did not put a very high value on his "Indika."

स्ट्रेबोने लिखा है कि :-

"However, all who have written about India have proved themselves, for the most part, fabricators, but pre-eminently so Deimuchus; and Nearchus...... But specially do Deimachus and Megasthenes deserve to be distrusted."

इसलिये जो कुछ भी है उसे ध्यान से पढ़, समझ, विचारकर खोज करनी है जैसेकि उसके कुछ उद्धरण ऊपर आए हैं।

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय पांचवां

Sir Henry Maine, says :-

"India has given the world, comparative philology and comparative mythology. India not only contains or to speak more accurately, an Aryan language older than any other descendant of the common mother tongue, but it includes a whole world of Aryan institutions, Aryan customs, Aryan laws, Aryan ideas, Aryan beliefs, in a far earlier stage of growth and development than any which survive beyond its borders. There are undoubtedly in it the materials for a new science, possibly including many branches". (Village Community, p. 210)

Colonel Olcott, says:-

"We have a right more than suspect that India, eight thousand years ago, sent a colony of emigrants who carried their arts and civilization into what is now known to us as Egypt. This is what Bengsch Bey, the most modern as well as the most trusted Egyptologer and antiquarian says on the origin of the old Egyptians. Regarding these a branch of the Caucasian family having a close affinity with the Indo_Germanic races, he insists that they migrated from India long before historic memory and crossed that Bridge of Nations, the Isthmus of Suez to find a new fatherland on the banks of the Nile. The Egyptians came according to their own records, from a mysterious land (now shown to be on the shore of the Indian Ocean) the sacred Punt; the original home of their God who followed thence after their people who had abandoned them to the Valley of the Nile, led by Ammon Hor, and Hathor. The region was the Egyptian 'Land of the Gods', Pa-nuter in old Egyptian or Holy Land and now proved beyond any doubt to have been quite a different place from the Holy Land of Sinai. By the pictorial Heiroglyphic inscriptions found (and interpreted) on the walls of the temple of the queen Haslitop at Dar-el-Babri, we see that this Punt can be no other than INDIA. For many ages the Egyptians traded with their old home and the reference here made by them to the names of the princes of Punt and its fauna and flora especially the nomenclature of various precious woods to be found in India, leave us scarcely room for the smallest doubt that the old civilization of Egypt is the direct outcome of that of the older INDIA". (Theosophist, March 1881, p.123)

Dr. Cooke Taylor, says:_

"As in Aryavarta, so in Egypt, the religion and Government were also interdependent and intimately blended during the Hindu rule of Egypt. The priestly class was in the forefront in all important matters. The belief in the transmigration of souls was certainly imported from Aryavarta. Agriculture, trades and professions were hereditary as exclusive dedication of families to separate employments ensured perfection in the arts. Women were honoured as in ancient India and respect was paid to old age and rank".

(Manual of Ancient History, P. 17)

अध्याय ६

चीनी साहित्यमें सिन्ध * Sindh in Chinese Lit.

चीनमें बुद्धमतके फैलाव के पश्चात वहां के बहुत श्रद्धालु अपने देवगुरु महात्मा गौतम बुद्धकी जन्मभूमि तथा जीवन दर्शनके लिये समय समय पर यहां आते रहे। जिनमें चार बौद्ध विद्वान भी थे, जो यात्रा करते समय अपना यात्रा विवरण भी लिखते गये, वे हैं- फाह्यान (सन् ४०० ई०), सुङ्गयुन (५१८ ई०) हुएन-सांग (६२९ ई०) और इत्सङ्ग (६७०ई०)।

फा-ह्यान (Shih-fa-Hian)! यह चांङ्ग-इन का रहेनेवाला था। वहां बौद्ध ग्रंथ विनय-पिटक की अपूर्ण अवस्था देखकर उसे दुःख हुआ। इसलिये अपने चार साथियों के साथ भारतमें आया। जहां उन्हों ने सिन्धु (Sin-t'u-ho) नदी पार की। एक वार फिर सिन्धु (Sin-tu) पार की।[1]

सुङ्ग-युन (Sung-Yun)! यह Lo-y'ang नगरके उतर-पूर्व में Wen-I के समीप Tun-hwang गांवका रहने वाला था। इसे भिक्षु Hwei-sang के साथ तातारी Wei वंशकी विधवा Tai-han रानीने बौद्ध ग्रन्थ लानेके लिये ५१८ ई० में भारत भेजा। जहां उन्होंने एक स्थान पर सिन्धु नदी (deep river) पार की। फिर दूसरी वार सिन्धु (Great River) पार की।[2]

ये दोनों तथा I-tsing सिन्धमें नहीं आए। सिन्धु को इन्होंने उपरोक्त नामों से लिखा है किन्तु हुएन-सांग के मूल चीनी भाषा के भूमिका में Sin-to लिखा है।[3]

हुएन सांग (Hiuen-Tsiang)! चीनी भाषा और लिपिके अनेक उचार भेदके कारण शुद्ध उचार कठिन होता है। अकेले इस यात्रीके नामके छः उचार भेद हैं। इसका मूल नाम Chin-shi था। इसके समय में भारत में सम्राट् हर्ष कनौजमें राज्य कर रहा था। इसकी पुस्तकका पूरा नाम Ta-T'ang-si-yu-ki है अर्थात पश्चिमी जगतका बौद्ध इतिहास। क्योंकि भारत चीन के पश्चिममें है इसलिये चीनी भारतको पश्चिम कहते थे जिसप्रकार पारसी हिन्द अर्थात पूर्व।

भारतका नाम! हुएन-सांग लिखता है "हम देखते हैं कि विभिन्न विद्वानोंने शेन-तु (Shen-tu) अथवा ह्यान (Hien अथवा Sien) तु (tou) कहते थे. परन्तु अब हमें शुद्ध उचारसे सहमत होना चाहिये और उसे यिन-तु (Yin-tu) कहना चाहिये। यिन-तु के लोग अपने प्रान्तोंके विभिन्न नाम ही प्रयोग करते हैं (अर्थात मगध, काशी आदि)। विभिन्न प्रदेशोंकी विभिन्न रस्में हैं; इसलिये एक ही नाम प्रयोग करने के लिये जो सबको जचे हम (सारे देश भारतको) यिन-तु कहते हैं, जिसका अर्थ है चन्द्र।[4]

(1) Beal-Buddhist Records of the Western World, Introduction, Pp. XXIII
(2) Ibid, P. LXXXIV (3) Ibid, Book I, P. 12
(4) Watters- On Yuan Chwang's Travels in India, p. 131

परन्तु श्री बील (Samuel Beal) के अनुवादमें इन-तु (In-tu) का अर्थ चन्द्रमा है। जहां इसका कारण भी दिया हुआ है कि "क्योंकि गौतम बुद्ध सब सतोंमें चांदके समान चमकता तथा शीतल है, जो इस देश (भारत) ने उत्पन्न किया है, हम इसे इन-तु (चांद) कहते हैं।[1]

सिन्ध (Sin-tu) इसका क्षेत्रफल ७००० ली है। राजधानी p'i-shen-po-pu-lo है जिसका क्षेत्रफल ३० ली है (कुछ इसका उचार Vichavpur अथवा विसमपुर करते हैं)। भूमि, खेतीके लिये अच्छी है, गेहूं और बाजरा बहुत होता है। सोना चाँदी और तांबा भी बहुत होता है। बैल, भेड़, ऊंट, खचर तथा दूसरे चौपाए पशु पालनके लिये भी भूमि अनुकूल है। ऊंट छोटे तथा एक ककुद (bump) वाले हैं। यहां लाल, सफेद, काला तथा सैन्धा नमक बहुत होता है। विभिन्न स्थानोंपर निकट अथवा दूर यह सेंधा नमक दवाईके तौर पर काम में लाया जाता है। लोगोंका स्वभाव उग्र तथा मौजी (Impulsive) है; परन्तु वे (सिन्धी) ईमानादार, सीधे तथा सच्चे हैं. झगड़ालू भी हैं। बौद्धमतको भी मानते हैं, सैकड़ों सघाराम हैं जिनमें १० हज़ार भिक्षु रहते हैं तथा हीनयान मत के हैं। सुस्त, आराम से रहने के शौकीन तथा व्यभिचारी हैं। जो सच्चे और साधु स्वभावके हैं वे एकान्त स्थानों (पहाड़ों और जंगलों) में रहते हैं। दिन रात अर्हत पदके लिये यत्न करते हैं। तीसके लगभग देव (हिन्दू) मंदिर भी हैं।

"राजा Shu-t'o-lo अर्थात शूद्र वंशका है। यह ईमानदार और सत्यवादी है। बौद्ध मतके लिये श्रद्धा रखता है। जब तथागत इस भूमि पर था तो इस देश से प्रायः गुज़र्ता था। इसलिये अशोक राजाने सैकड़ों स्थानोंपर स्तूप बनवा दिये, जहां उसके चरण घूमे। उपगुप्त (महा अर्हत) इस राज्यमें बहुत ठहरता था तथा बौद्ध शिक्षाका ज्ञान देता और मार्ग दर्शन कराता था। वह जहां भी ठहरा और स्मृतिचिह्न छोड़े वहां संघराम अथवा स्तूप बने हुए हैं और हर स्थान पर हैं।

"सिन्धु नदी के साथ साथ निचले कच्चे मैदान पर हज़ारों परिवार बसे हुए हैं। वे कठोर, उतावले तथा हिन्सक हैं। केवल पशु पालन करते हैं और उसमें से ही जीवन निर्वाह करते हैं। उनमें कोई बुजुर्ग नहीं होता। नहीं धनी हैं न तो निर्धन। उन्हें पशु-धन बहुत है तथा भिक्षुओं के समान कशाय वस्त्र पहनते हैं, महायान बौद्धोंसे झगड़ते हैं।

"पुरानी जानकारी के अनुसार वे अधीर, हिन्सक तथा निर्दयी थे। बौद्धमत के प्रचार से उनमें कुछ विवेक आया। हिन्सा को त्याग दिया, सिर मुण्डवाया, भिक्षुओं वाले वस्त्र पहनकर बौद्धमतका आचर्ण करते है। इसके पश्चात बहुत समय बीत गया, स्वभाव बदला, किन्तु पुरानी रस्में चलते हैं। यद्यपि ये पीत-वस्त्र पहनते हैं परन्तु उनमें सदाचार का ज्ञान नहीं है, उनकी सन्तानमें बौद्धमत के लिये श्रद्धा नहीं है"।[2]

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय छठा

(1) Samuel Beal: Buddhist Records of the Western World, Vol. I, p. 69
(२) Ibid, Vol II, Pp. 272-4

अध्याय सातवां

अरबी-फारसी साहित्यमें सिन्ध * Sindh in Arab Lit.

अरब और सिन्ध-हिन्द के सम्बंध अतिप्राचीन कालसे हैं। इसलामसे भी पहले सिन्धी अरबमें बसे हुए थे। अरबमें भी हिन्दू धर्म विशेष कर शैव मत का प्रचार था। अरब लोग वेद, श्रीकृष्ण तथा शिव-महादेवमें श्रद्धा रखते थे। इसलामका बहिश्त भारतमें ही था न कि सातवें आस्मान पर। इस्लामके पश्चात दूसरी खूनख्वार कौमोंमें भी जब इसलाम फैलाया गया, तब उनका भारतमें आकर कतले आम, व्यभिचार, तोड़फोड़ आदिके पश्चात हिन्दू और इस्लामके झगड़ेका नाम सुना जाता है। परन्तु अरबों और हिन्दुओं में इस्लामके बाद भी ऐसी कोई बात नहीं थी चाहे सिन्ध आक्रमण के पश्चात भी। भारत अरबोंका "पैत्रिक देश" है इसलिये ही अरब लोग भारतको "हिन्दूस्तान जन्नते-निशान" कहते थे, और अब भी। रिवायत है कि जन्नत (स्वर्ग) से चार नदियां निकलती हैं - नील (मिस्रमें), फरात (इराकमें), जेहूं (तुर्किस्तानमें) और सेहूं (भारतकी सिन्धु)। चचनामामें भी सिन्धूको सेहूं कहा गया है।

मीर आज़ाद वलग्रामीने लिखा है कि "जब आदम सबसे प्रथम हिन्दूस्तानमें उतरा और यहीं उस पर वही (इल्हाम) आई तो यह समझना चाहिये कि यह भारत ही वह देश है, जहां खुदाका पहला इल्हाम हुआ"। और क्योंकि नूर मुहम्मदी हज़रत आदमके भाग्यमें सुरक्षित था तो इससे यह सिद्ध होता है कि मुहमद रसूलका आरंभिक प्रकाश इसी भूमि में हुआ। इसलिये मुझे भारतकी ओर से रबानी (ईश्वरीय) सुगंधि आती है।[1] सैयद सुलैमान नदवी ने लिखा है कि अरबों और मुस्लमानोंमें वंश के नाते सैयदोंका दरजा बड़ा है। वर्तमान सैयदोंका बड़ा भाग इमाम हुसैनके पुत्र जैनुल-आब्दीनका वंशज है, जिसकी माता अरबकी नहीं परन्तु सिन्धकी सिन्धयानी थी" (वही, पृ० ४)। यह सिन्धयाणी कौन हो सकती है वह हम आगे चलकर जत और मेद इतिहासमें दिखाएंगे, जो सिन्धसे जाकर अरबमें बसे थे।

सन् १४ हिज्रीकी बात है, एक अरब यात्रीने हज्रत उमरको बताया था कि "भारतकी (हर) नदी मोती, उसका पहाड़ याकूत और उसका वृक्ष अत्तर है।" (वही, पृ० ६४)

इसप्रकार अरब और सिन्धके सम्बध इस्लामसे पूर्व तथा पश्चात भी थे जो सब हम संक्षेपमें लिखते हैं।

जाहिज (جاحظ)! यह अरबी संसारका बड़ा विद्वान था। एक प्राचीन अरबी विद्वानका कहना है कि "जो भी जाहिज़की विद्वताका प्रभाव स्वीकार नहीं करता वह असभ्य है"। इसका पूरा नाम 'उमर बिन बह्र बिन महबूब, अबू उस्मान, उपनाम जाहिज़' था और बसरः का रहने

(1) सुलैमान नदवी— "अरब व हिन्दके ताल्लुकात", पृ० ३

वाला था, जहां सिन्धी प्राय: रहते थे, जिनसे ही इसने सिन्धके विषयमें जानकारी प्राप्त की। अब्बासी कालमें यह साहित्यकारोंका इमाम समझा जाता था।

आठवीं शतीमें मत्तीअ बिन अयास एक विद्वान लेखक तथा कवि था। उसका एक मित्र अबासी खलीफा मन्सूरके समयमें सिन्धमें सरकारी अधिकारी था। एक बार मतीअ उससे मिलने सिन्धमें आया। यहां का जलवायु तथा दृश्य उसे ऐसे भाये कि वह यहां ही रह गया। एक वार मस्तीमें आकर इसने अपनी प्रीतमा रुक: को सम्बोधन करके सिन्धके विषयमें जो कहा है वह पढ़ने योग्य है। वह कहता है "ऐ रुक:! मैं तेरे साथ सिन्धका वर्णन किस प्रकार करुं। मेरे और तेरे बीच में तो बड़ा फासला है। काश! तुम यह देश देख सको। तुम तो यहां की प्रसिद्ध बातोंसे भी अनजान हो। यहां मोर अण्डे देता है तथा हथिनी प्रसूत करती है। यहां तोता भी होता है। पीतल, सुगंधित वस्तुएं और ऊद (अगर) बहुत है। बारहसिंगे और सिंह जंगलों में फिरते रहते हैं।" जाहिज़ने ये छ: शेर उद्धृत किये है जो मत्तीअके काव्यका नमूना है।

जाहिज़ लिखता है कि "एक खास बात तो ऐसी है जो सिवाय सिन्धियोंके और किसीमें नहीं है अर्थात सिन्धी हर प्रकारका भोजन तैयार करनेमें बड़े माहिर (अभ्यस्त) हैं। यह बात भी उनकी विशेष है कि सेठ-साहूकार तथा सराफ़ अपनी थैलियां और कोष (ख़ज़ाना) सिन्धियों और केवल सिन्धियों की सन्तान 'अल सिन्द व औलाद अलसिन्द' के पास ही रखाते हैं। क्योंकि उनके विचार तथा अनुभव अनुसार बही-खाते और पैसे के कारोबारमें सिन्धियोंसे अधिक और कोई भी माहिर नहीं है न ही विश्वासके योग्य तथा दयानतदार होता है। शायद ही कोई ऐसा साहूकार होगा जिसके ख़ज़ानेकी चाबियां किसी रुमी अथवा खुरासानी के पास हों। व्यापारियोंने सिन्धियों को बड़ा भाग्यशाली समझा। बस्र: के सराफों, बर्भारात? के व्यापारियों तथा बंदरों के सौदागरोंने जब देखा कि फ़ुर्ज अबूरुद् सिन्धीने बड़ा धन कमाया है और बड़ी जायदाद बना रखी है तो उन सबने एक एक सिन्धीको अपने पास रख लिया।

"सिन्धी व्यापारी कागजके अभाव में लकड़े की पाटों पर अपना लेखा जोखा रखते थे (जो रिवाज इस समय भी सिन्धी हिन्दुओंमें सिन्धमें है)।

सिन्धी मुर्गे का वर्णन करते जाहिज़ लिखता है कि "दुजाज (मुर्गी) सिन्धी, सिंह, तोता, गेंडा, मोर, हाथी, भारतके विशेष प्राणी हैं। दूसरे देशों विशेषकर इराक को यहीं से ही गये हैं।" दूसरे स्थान पर मुर्गीको दीकसिन्धी भी लिखा है।

"नआल सिन्धीका भी जाहिज़ ने बहुत उल्लेख किया है। लिखता है "मैंने असद को सदैव जूता हाथमें पकड़कर अथवा एड़ी कटे जूते पहनते देखा। असद ने कहा "ये मजूसी (पारसी) लोक ही हैं जो सदा सिन्धी जूते पहनकर घूमते हैं। (वास्तवमें सिन्धके जत ही ये पहनते थे जिन परसे यह नाम जत से जूता पड़ गया)। डा० ख़ाल्दी लिखते है कि "सिन्धी जूतीके

सम्बंधमें जाहिज़के इस विवरणसे इतना तो विश्वास है कि पश्चिम एशिया वालोंको सुन्दर, बड़ी एड़ी तथा सुदृढ तले वाले जूतोंका प्रयोग सिन्धियोंने सिखलाया। यूरोपके स्त्रियोंमें बहुत समयसे बड़ी एड़ीका जो रिवाज है, जिससे छाती उभड़ी रहती है, क्या आश्चर्य कि यह रिवाज फिर अरबोंसे यूरोपमें पहुंचा हो"! ये जुतियां सुन्दर, उनपर रंगीन सूती अथवा रेशमी धागोंसे फूलादि चित्रित किये जाते थे (इस समय भी सिन्धमें यह रिवाज है। कभी तो इस पर सोने चांदीकी तारें मढ़ी जाती थीं)। अरबमें एक समय यह विवादका विषय बन गया था।

सिन्धी कौमोंमें जाहिज़ने बयासर:, ज़त और मेद का वर्णन किया है।

सिन्धियोंकी बुद्धिमत्ताके विषयमें लिखा है कि "सिन्धी, जिसको कानमें सोराख हो (और सोने आदिकी बाली पहनी हुई हो जैसा आज भी सिन्धके हिन्दिओंमें रिवाज है), वह बचपन से ही बयाबान अरबमें पाला गया हो तो वह (प्रसिद्ध अरब विद्वानों) अबू महद्य और अबू मतर्फ़ ग़न्वी से भी अधिक सुन्दर और शुद्ध अरबी बोल सकता है। परन्तु दूसरी कौमोंके बच्चे बयाबान अरबमें परवरिश पानेके पश्चात भी ऐसे नहीं बन पाते।

"सिन्धी गायन कला में भी सुरीले होते हैं। उनकी आवाज़ बड़ी चित्ताकर्षक होती है, वशेषकर सिन्धी स्त्रियोंके आवाज़की लचक और उनकी दिलकशीका तो संसार भरमें जवाब नहीं।

सिन्धी साज़ोंमें जाहिज़ने यकतारा और झांझका उल्लेख किया है।

जिन सिन्धी विशेष व्यक्तियों के साथ जाहिज़का सम्बंध था वे थे इब्राहीम, उसके पिता अबूनस्र सिन्धी बिन शाहिक और मन्तजअ बिन निभान। अबूनस्र सिन्धी, अब्बासी दौरमें मंत्री, टकसालका मुख्य अधिकारी तथा शाम का राज्यपाल (governor) भी रह चुका था।

सिन्धीका बड़ा पुत्र नस्र था जो कहानियां तथा चुटकले सुनानेमें बड़ा दक्ष था। हिशाम अलकल्बी और हशीम अलताई रिवायत करने में प्रसिद्ध थे, परन्तु उनको इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं जो इस सिन्धीको थी।

सिन्धीके छोटे पुत्र इब्राहीमके विषयमें जाहिज़ने लिखा है कि "यह अद्वितीय वक्ता, व्याकरण शास्त्रका विद्वान, हाफिज हदीस, शेर (कविता) का रावी, और स्वयं कवि था। उसके शब्द जानदार और प्रभावी थे। कलम का धनी, बोलता था तो मोती उगलता था। ज्योतिष और आयुर्वेदका आचार्य तथा विद्वानोंमें नायक था। स्मरण शक्ति इतनी सूक्षम थी कि एकबार जो बात सुनता वह सदा के लिये स्मरण रखता। कदाचित् ही कोई ऐसा मनुष होगा जो इस जितना कम सोता था। उसके जैसा सहनशील मैं ने किसीको नहीं पाया। यदि आप कहें कि इब्राहीम (सिन्धी) की जबान दस हजार नंगी तलवारों तथा इतने ही खड़े नेजोंसे अधिक कारगर थी तो विश्वास रखें कि वह बात अतिशयोक्ति नहीं होगी, परन्तु ध्यान देने योग्य होगी।

मन्तजअ बिन निभान सिन्धी इतना प्रसिद्ध नहीं है। यद्यपि अरबोंकी सेवामें यह सिन्धी किसी

अजमी (अरबोंके सिवाय) से कम नहीं था। अरबी कोषमें अस्मई का स्थान विशेष है, जाहिज स्वयं अस्मईका शिष्य था। लेकिन वह जानता था कि गुरुकी प्रतिष्ठा और योग्यतामें इस निभान सिन्धीका क्या, कितना और कैसा भाग है। उसके ही शब्द हैं कि "इराकके विद्वानोंने मन्तजअसे ज्ञान प्राप्त किया। वह सिन्धी था, उसके कानमें (सिन्धी) बालियां थीं, बचपनमें ही बयाबान अरबमें आया था, जब वहांसे निकला तो रुब: से अधिक प्रभावशाली तथा फसीह वक्ता था। अरबी साहित्यकी कोई भी महत्व पूर्ण पुस्तक हाथमें लीजिये उनमेंसे कोई भी मन्तजअ बिन निभान सिन्धीकी लुग़वी रिवायतोंसे खाली नहीं होगी। जुबैदीने तो इतना तक लिखा है कि "मन्तजअकी गणना बसरी (बस्र: के) कोषकारोंके प्रथम श्रेणीमें है"।

जाहिजने एक अबू अलजिल: सिन्धीका उल्लेख किया है और उसकी अरबी कविता के कुछ बंद भी दिये हैं, जिससे उस सिन्धी (मूल हिन्दू) की देश-भक्ति उमड़ आती है। हम उसके केवल दो बन्द देते हैं। सिन्धी कहता है:-

"मेरी जानकी सौगंध यह (भारत) ऐसी पवित्र भूमि है कि जब उसमें जल बरसता है तो उसमें दूध, मोती और याकूत उत्पन्न हो जाते हैं।

"हथियारोंमें तलवारें हैं जिनको कभी चमकानेकी आवश्यक्ता नहीं और ऐसे नेजे हैं कि वे जब चलते हैं तो पूरेकी पूरी सेना को हिला देते हैं।

"तो फिर मूर्खके सिवाय और कौन सिन्ध (भारत) की इस विशेषताओं से इन्कार कर सकता है"।[1]

एक सिन्धी हिन्दू भारतसे अरबमें जाकर, अरबी भाषाका विद्वान बनकर भी अपने देशकी महानताका वर्णन करनेमें अभिमान अनुभव करे यह प्रत्येक भारतवासीके लिये गौरवकी बात है। और आज हमारे किराये के देश भगत विदेशोंमें जाकर उसी देशके गुनगान करने लगेंगे, अपने देशको भूल जाएंगे। देश दुश्मनीका यह भी एक नमूना है।

अबूअत्ताअ अफलह बिन यसार! इसकी गणना अपने समयके विख्यात कवियोंमें है। इसका पिता यसार, बनी असद कबीलेका गुलाम था। अरबी साहित्यकी लगभग प्रत्यके पुस्तकमें इसका कुछ न कुछ कलाम पाया जाता है। इसका कोई दीवान नहीं है किन्तु सिन्धके विद्वान डा० नबीबख्श बलोचने इसका कलाम संग्रहीत करके छपवाया है।[2] जाहिज़ने इसके पांच शेर नकल किये हैं।

सिन्दबाद! यह एक सिन्धी वैद्य था। यहिया बिन खालिद बरमकीके सिन्धसे बुलवाये गये वैद्योंमें से था। अंग्रेजीमें प्रसिद्ध "Sindbad the Sailor" और उसके यात्रा-विवरण इसी सिन्धीसे सम्बंधित हैं।

(1) अरब व हिन्दके तालुकात, पृ० ६४ (2) Islamic Culture [Hyd. Dn.], 1949

बाकी सिन्धी बिन शाहक और, नस्र आदिका वर्णन ऊपर हो चुका है।[1]

यहां एक बात स्पष्ट करदें कि ऊपर जिन सिन्धियोंका जाहिज़ने उल्लेख किया है और इस्लामी नाम दिये हैं वे मूलत: हिन्दू सिन्धी थे जो सिन्ध पर अरब आक्रमणके पश्चात गुलाम (बन्दी) बनाकर अरबमें ले जाये गये थे। वे मुसलमान बने अथवा न बने किन्तु अरबोंमें रहकर अरब बन गये और अपनी योग्यता से अरबीके बड़े विद्वान तथा कुरान के भी गज़बके विद्वान बन गये थे।

दूसरे अरब विद्वान जिन्होंने सिन्धका उल्लेख किया है वे संक्षेपमें लिखते हैं।

इब्न खुर्दाजब:! यह मूल खुरासानका, बादमें बग़दादमें रहने लगा। इसका दादा मूल पारसी (आर्य) था। अबासी खलीफा मुअ्तकदके समयमें टपाल और गुप्तचर विभागका बड़ा अधिकारी था। इसकी पुस्तक "अलमसालिक व अलमुमालिक" अरबी भाषामें भूगोलकी प्रथम पुस्तक है।

इसने सिन्धके कुछ बंदरों और कुछ नगरों की दूरियों का वर्णन किया है। तथा "सिन्धू नदी शक्नान नामी पहाड़से निकलती है। यह सेहून नदीकी एक शाख है। भारतके कुछ प्रदेश इसी नामसे हैं।[2]

सुलैमान सौदागर! यह प्रथम यात्री है जिसका विवरण मिल सका है। किन्तु इसकी सब बातें विश्वासके योग्य नहीं है। श्री यूल (Yule) ने सुलैमानके विवरणके विषयमें लिखा है:- "A medley of disjointed information" और "Notes put together at random" तथा "Being extremely vague." दूसरे स्थान पर श्री यूलने सुलैमानके लिये लिखा हैं "was slight and inaccurate and he had no distinct conception of the magnitude of the country."

सिन्धके विषयमें सुलैमान ने विशेष नहीं लिखा है। भारतका जो वर्णन किया वह अधिकतर सिन्धकाही समझना चाहिये। एक विचित्र बात की है कि हिन्द-महासागरको "बहर हरगन्द" लिखा है। वास्तवमें हरगन्द समुद्रके उस भागको कहा जाता था जो दक्षिण भारतके किनारेसे है।[3]

अबूज़ेद हसन सीराफ़ी! यह यात्री तथा व्यापारी था। इस अनुसार:- "प्राचीन कालमें भारतमें सिन्धी दीनारोंकी बहुत मांग थी और एक (सिन्धी) दीनार (सोनेकी मोहर) तीन अथवा उससे अधिक दीनारों में बिकता था। (वही, पृ० ७०)

बलाज़ुरी! यह अबासी दरबारका एक सभ्य था। भूगोल, इतिहास और साहित्यका विद्वान

---

(1) उपरोक्त जाहिज़का सारा विवरण हमने डा० अबुलनस्र अहमद खाल्दी की लेखमाला से लिया है जो उन्होंने दिल्लीकी उर्दू मासिक पत्रिका "बुर्हान" (जुलाई से नवम्बर १९६१)में लिखे थे।

(2) हिन्दुस्तान अरबोंकी नजर में (उर्दू), भाग १, पृ० २८ (3) वही, पृ० ३

तथा कवि था। इसने सिन्ध आक्रमणका विशेष विवरण लिखा है जो हम राजा दाहरके अध्यायमें लिखेंगे। एक बात यह लिखी है कि "कलात, खुरासान के समीप सिन्धका नगर है।[1]

याकूबी! यह अबासी कालका सरकारी अधिकारी था। यह प्रथम अरब है जिसने संसारका इतिहास अरबीमें लिखा। इसका विशेष "अरब आक्रमण" विवरण राजा चच्चके अध्यायमें लिखेंगे। इसने सिन्धके विद्वान आचार्य सिन्दबाद का भी उल्लेख किया है।[2]

इब्न फिक्य: हिम्जानी! यह भूगोलवेता था। वह लिखता है "सिन्धसे बेद और बांस आता है ...... और सिन्धी मुर्गियां भी। "सिन्ध और हिन्द को इश्वर ने यह विशेषता प्रदान की है कि वहां विभिन्न सुगंधियां तथा जवाहरात जैसेकि याकूत, हीरे आदि बहूमूल्य पत्थर, गेंडे, हाथी, मोर, उग्र, अबर, लविंग आदि विचित्र चीजें उत्पन्न होती हैं।[3]

इब्न रुस्ता! यह हिम्जानी के समय का है। इसके अनुसार "तीज (मकरान) से सिन्धकी सीमा आरंभ होती है।... सिंधु नदी शक्फान पहाड़से निकल कर समुद्र से मिलती है और वही मन्सूर: का दरिया है।...... मुलतान वह नगर है जहांसे सिंधू नदी अलग होती है"।[4]

बुजुर्ग बिन शहरयार! इसने एक प्रमाणसे लिखा है क "मन्सूर: (सिन्ध) में काशमीरके लोग नदी द्वारा कुस्न (एक प्रकारकी जड़ी) की गठड़ियां बांधकर आते हैं"।[5]

मसौदी! यह बगदादका रहने वाला था। यह अच्छा इतिहास लेखक, भूगोलवेता और यात्री था। आयुके २५ वर्ष यात्रामें बिताए। इसे इतिहासका इमाम समझा जाता है। उस अनुसार:-

"अत: सिन्ध, कनौज तथा काशमीरके प्रदेशोंमें अलग अलग स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये।[6]

"मुलतानके पश्चात सिन्धु नदी मन्सूर: से गुजर कर देबलके समीप समुद्रमें पड़ती है।"... फिर लार्वी समुद्र हैं जिसके किनारे भारत और सिन्धके नगर बसे हुए हैं।

"भारतका राजा बलहरा है। कनौज राजा जो सिन्धके राजाओं में से है, बड़वर: कहलाता

(1) वही० पृ० ७६ (2) वही, पृ० १४५ (3) वही, पृ० १६०-१६३

(4) वही, पृ० १६६ (5) वही, पृ० १६७

(6) इस ग्रंथके अनुवादक मौलाना मसौद अली निदवीने कनौज नाम पर टिपण करते लिखा है कि "भारतका प्रसिद्ध नगर जो अवधमें है, उसे छोड़कर सिन्ध और पंजाबकी सीमा पर भी इसी नामका एक प्रदेश था, जिसका अरब यात्रियोंने प्राय: उल्लेख किया है। यहांके राजाओंको बोवर: (भोजराज?) कहा जाता था। दसवीं शतीके आरंभमें यह मुसलमानों के अधिकार में था और मुलतानके समीप था" (पृ० २४०)। मसौदीने स्वयंभी कुछ इस प्रकार लिखा है कि "सिन्धू नदी, सिन्धके ऊपर्ले भागों अर्थात बोवर: के शासन कनौज, काशमीर, कंधार, दक्षिण आदि (पृ० २५५) के प्रसिद्ध स्रोतसे निकली है और मुलतान तक चली गई है जहां उसका नाम मह्रान पड़ गया है। (पृ० २५७)

है। और यह उपाधि कनौजके प्रत्येक राजाकी होती है। और यहां राजाओं के नामका एक नगर बौवर: भी बसा हुआ था। इसी नगरसे पांच नदियों में से एक निकली है, जो सब आगे चलकर जब सिन्धु नदीमें मिल जाती हैं तो उसका नाम महरान-सिन्ध हो जाता है, जिसके लिये जाहिज़का विचार है कि यह नील नदी की शाख है और कुछ ने उसे खुरासन की जेहूं नदी की शाख कहा है। कनौजका यह राजा बौवर: भारतके राजा अलबलहरी के विपरीत है, और कन्धारके राजा की गणना भी सिन्धके राजाओंमें होती है।

"कनौज के राजा बौवर: का राज्य १२० सिन्धी फर्सख समकोण है और सिन्धी फर्सख ८ मील का होता है।

"मन्सूर: के अमीरके पास हिन्दुओं के ८० युद्ध के हाथी थे। उनमें दो विशेष थे। एक मन्फर कलस के लिये एक घटना प्रसिद्ध है कि जब उसका फीलबान मर गया तो उसने कुछ दिन खाना-पीना छोड़ दिया तथा दुखसे उसकी आंखोंसे आंसू आ गये। दूसरी घटना यह है कि एक दिन जब फीलखाने से जंगी हाथी बाहर निकले तो सब से आगे मन्फर कलस, पीछे हैद्र: उसके बाद बाकी सब थे। रास्तेमें मन्सूर: की एक तंग गलीसे जा रहे थे तो अचानक अनजानेमें एक स्त्री उस रास्ते पर आ निकली। हाथियों को देख वह डरी और बदहवास होकर बीच रास्तेमें ही गिर पड़ी। जिससे उसकी साड़ी शरीरसे हट गई। यह देख मन्फूल कलश रास्ते की चौड़ाईमें अड़कर इसप्रकार खड़ा हो गया कि कोई भी हाथी आगे न बढ़ सका। अपनी सूंडसे संकेत किया तथा उसकी साड़ी खींचकर उसके शरीर पर करदी। उस स्त्रीने जब उठकर कपड़े ठीक किये और शान्तिसे चली गई तब मन्फूल कलश तथा दूसरे हाथी आगे बढ़े। (हिन्दू संस्कृतिमें पले पशु भी सुसस्कृत!)।

"सिन्धकी भाषा भारतसे भिन्न है।[1]

मतहर बिन ताहिर मुक़दसी! यह मक्केका, अरबका दार्शनिक तथा कुरान और इतिहासका ज्ञाता था। उस अनुसार:

"जब कोई हिन्दू मुसलमानों के हाथ बन्दी बनकर मज़हब बदलकर फिर हिन्दू होना चाहे तो उसे पाक (पवित्र) करनेके सिवाय नहीं करते।" और वह प्रायश्चित विधि सब वही है जिसका विधान सिन्धी स्मृतिकार देवल ऋषिने किया है।[2]

इस्तखरी! यह भूगोलवेता तथा यात्री था। उस अनुसार :-

"सिन्धके प्रसिद्ध नगरों में मन्सूर: (और सिन्धीमें उसका नाम ब्रह्मणाबाद) है।

"रुर नगर मुलतान जितना बड़ा है। उसमें दो फसलें होतीं हैं। मुलतान और उसके आसपासकी भाषा सिन्धी और अरबी है।[3]

(1) वही, पृ० २२१-२८९ (2) वही, पृ० ३४७ (3) वही, पृ० ३६३-३७५

बिशारी मुकदसी! यह मक्केका निवासी था। उस अनुसार :-

"ससारमें मिश्री, चावल तथा मुश्ककी उपज और हिन्दुओंकी संख्या सबसे अधिक सिन्धमें है। सिन्ध एक व्यापारी प्रदेश है। यहां सोना, जड़ी बूटियां, हथ्यार, मिश्री, चावल, केले, खजूर, अनेक विभिन्न और विचित्र वस्तुओंकी बहुतयात तथा सस्ताई है।...... यहाँ न्याय भी है तो राजनैतिक बुद्धिमता (निपुणता) भी है।...... देश समुद्रके समीप है। शासन प्रबंध हिन्दुओंके हाथमें है।.... देबल समुद्रीय नगर है जहां प्राय: हिन्दू रहते हैं..... शराब और व्यभिचार बिलकुल नहीं है। (वही, पृ० ३७९-३९४)

इब्न नदीम! यह बग़दादका रहनेवाला था। उस अनुसार :-

"सिन्धके लोगोंकी भाषाएं और मत (मज़हब) विभिन्न और लिपियां अनेक हैं।

" इस्तांगर (सिन्धी पंडित वाग्भटका अष्टांग-संग्रह) का अनुवाद इब्नधनने किया। सिन्दबाद हकीम सिन्धी है"।[1]

काज़ी साइद अंदलसी! नस्ल अरबी, पैदाइश स्पेनमें। यह बड़ा विद्वान था। उस अनुसार:-

"इलम हिंदस: (Arithmatic) में 'हिसाब गबार' (अर्थात १ से ९ तककी गिनती) जिसका अबू जाफर मुहमद बिन मूसा ख्वार्जिमीने भाष्य किया था, वह इन (सिन्धियों) से ही हमारे पास पहुंचा है। यह हिसाबकी संक्षिप्त और सरल पद्धति है। इसकी तरकीब बड़ी विचित्र है और इससे सिन्ध वालोंकी बुद्धिमता, अन्वेषणकी योग्यता तथा खोज-शक्तिका प्रमाण मिलता है"।[2]

अब्दुलकरीम शहर्स्तानी! यह शहर्स्तान (ईरान) का निवासी था। बड़ा विद्वान था। इसने मत-मजहबोंका बहुत वर्णन किया है। सिन्ध (सदूसान) में एक बहुत बड़े बुतखाने (मूर्ति-पूजाका मंदिर) का उल्लेख किया है।[3]

शरीफ़ इद्रीसी! यह आफ्रीका के इद्रीसी राजघराने का उत्तराधिकारी था। भूगोलमें विज्ञानका पूरा लाभ लिया। उस अनुसार :-

"सिन्धका लोहा अति उत्तम होता है।

"देबल बंदर पर उमान के जहाज़ लंगर डालते हैं। जिनमें भिन-भिन प्रकार का सामान आता है। सिन्धी बड़े साहूकार हैं और पूरे क पूरा सारा जहाज़ अकेले खरीद लेते हैं। और माल जमा (hoard) करके रखते हैं और फिर बड़े दामों पर बेचते हैं।..... सिक्के (द्रहम) चांदी और तांबेके बनते हैं"।

इब्न बतूत:! तन्ज (मराकश) बरबरका रहने वाला था। मुहमद तग़लकके समयमें भारतमें आया। वह लिखता है कि :-

(1) वही: भाग २, पृ० १ से ८ (2) वही, पृ० ३३-४४ (3) वही, प० ४६

"हिज्री ७३२ (१३३१) के मुहरम मासकी पहली तारीखको हम सिन्धू नदी के किनारे पहुंचे।...... अमीर सेविस्तान (सेवहन) नगरमें था। ..... एक दिन मैं अमीर के साथ सैर करने निकला। नगरसे सात मील दूर एक मैदान है, जिसे 'तारना' कहते हैं। वहां अनगिनत मनुषों तथा पशुओंकी सुंदर मूर्तियां पूर्ण और भग्न अवस्थामें पड़ी हैं। अनाज, गेहूं, चन्ने और मिश्री आदि पत्थर हो गये थे। किले की दीवार और मकानों की दीवारोंका सामान मौजूद है, खण्डहरों और तराशी हुई मूर्तियोंका एक घर है, उसके बीच ...... में एक चबूतरा है जो एक ही पत्थरका बना है। उसपर एक मनुषकी मूर्ति है, जिसका सिर थोड़ा लम्बा तथा मुख एक ओर मुड़ा हुआ है, दोनों हाथ कमरसे बधे हुए हैं। उस स्थान पर बहुत बदबूदार पानी ...... था। बहुत दीवारों पर हिन्दी भाषा और लिपिमें लेख हैं। अमीरने सुनाया कि इस देशके इतिहास लेखकोंका अनुमान है कि यह नगर मसूख (जीवित से पत्थर) हुआ है। चबूतरे पर जो मूर्ति है वह उनका राजा है। इसलिये अब भी इस मकान को राजाका महल कहते हैं। दीवारों पर लिखे लेखों से मालूम पड़ता है कि यह विनाश कोई एक हजार वर्ष पूर्व हुआ है। (वही, पृ० २५५-२६८)

अबू अलफिदा! यह दमशकमें जन्मा तथा राज परिवारका था। यह भूगोलका विशेषज्ञ था। पुराने सब भूगोलवेताओं से इसे संतोष नहीं था। अलबेरुनीके तथ्योंको भी इसने अनुमानिक कहा है। इसने सिन्धके कुछ नगरोंका विवरण दिया है। बेरुन नगरका उल्लेख इसका विशेष ध्यान देने जैसा है जिसके लिये इब्न सईद कहता है कि अलबेरूनी नगर जिसके साथ (प्रसिद्ध अरब विद्वान) अबूरीहां अलबेरुनीका सम्बंध है, वह यहींका है'। सिन्धका एक बंदर है और खारे पानीकी खाड़ी पर स्थित है।[1]

अलबेरूनी! पूरा नाम अबूरीहां मुहमद बिन अहमद अलबेरुनी। सन् ९७३ ईस्वीमें ख्वाज़्म (इस समय खीवा) में जन्मा। १०१७ में महमूद गज़नवी ने खीवा पर आक्रमण करके वहांसे जो बंदी (गुलाम) लाया था उनमें यह भी था। यह महमूदका विरोधी था लेकिन अपनी विद्या-ज्ञानके बल पर उसका कृपापात्र बन गया।[2] मूल ईरानी (कदाचित सिन्धी) नस्लका है। बड़े बड़े विद्वानोंसे ज्ञान ग्रहण किया। स्वयं स्वाध्याय किया, हिन्दू ग्रन्थोंका भी बहुत अध्ययन किया। इसकी पुस्तक "किताब अलहिन्द" बहुत प्रसिद्ध है, जिसका अंग्रेज़ी अनुबाद श्री सचाऊ (Edward. C. Sachau) ने किया है। उस अनुसार :-

"सिन्ध कनौज के पश्चिम में है"। (वही, पृ० १६८)

"ताराग्रह मण्डलका ज्ञान अल फजारी और याकूब बिन तारिकने उस (सिन्धी) हिन्दू से सीखा जो खलीफा अलमन्सूर (७७१ई) के पास भेजे दूतमण्डलका सभ्य था।[3]

(1) Medieval India Quarterly, Aligarh, Vol. II (1957), P. 147
(2) Sachau: Alberuni's India, Preface, P. IX (3) वही, भाग २, पृ० १५

"सिन्धके दक्षिण पश्चिममें हिन्दुओंमें लिङ्ग पूजाके मंदिर हैं परन्तु सोमनाथ सबमें मुख्य है। (वही, पृ० १०४)

हमने ऊपर अलबेरूनीको 'कदाचित सिन्धी' लिखा है इसलिये कि इब्न सईद और अबुलफिदा का ऐसा अनुमान है, जैसा हमने ऊपर लिखा है।

वहब बिन मन्बः! इसने जुलकरीन के विवरणमें लिखा है कि:-

"समर सार अली अलबाली अर्ज़ अलसीन फ़ल्के अलसिन्द"

अर्थात–फिर वह (जुलकीन) स्थल मार्गसे चीनकी ओर बढ़ा जहां उसका सिन्धियों के साथ मुकाबला हुआ। और:- "सम दख़ल अर्ज़ अलहिन्द व अलहिन्द अख्वत अलसिन्द मन् बनी हाम बिन नोह"

अर्थात- इसके पश्चात हिन्दमें प्रवेश किया और भारत वाले भी हाम बिन नोह की सन्तान हैं और सिन्द (सिन्धियों) के भाई हैं।[1]

साधारण तौर जुलकीन और अलेगजेंडर को एक ही मानते हैं, परन्तु अरब उनको अलग अलग मानते हैं।

जुलकीनके बाद 'यासरीह्नम' का नाम मिलता है जो अहबारियों के विश्वास अनुसार हज़्रत सुलेमान (Solomon) बिन दाऊद (David) से ४० वर्ष बाद हुआ। इसके बाद उसका पुत्र शिम्र, फिर असअद अबूकर्ब राजा बना। मसौदीके अनुसार यह इस्लाम से ७०० वर्ष पश्चात हुआ। इसका भी सिन्ध-हिन्द से वास्ता रहा। उबेद बिन शर्य जहुमीने इससे सम्बंधति कुछ शेर नक़ल किये हैं:-

"वनलित बलाद अलसिन्द व अलहिन्द कुलहा"......"व दानत लन्ना अलसिन्द फी अर्ज़हा"[2]

याकूबी ने भारतके एक ब्राह्मन राजाके वर्णनमें लिखा है कि "इसके पश्चात भारतके व्यवस्थामें गड़बड़ी रही। इस लिये लोगोंने मिलकर ज़ारह को राजा बनाया। जो इतना शक्तिशाली बना कि बड़ी भाड़ी सेनाके साथ वह बाबल (बेबीलोन्या) की ओर बढ़ा और इस्राईल पर आक्रमण किया।

परन्तु इब्न असीर में यह बात और ढंग से लिखी है।

यह सब सत्य किया है, खोज का विषय है। (बुर्हा, आक्टोबर १९६२)

फारसी साहित्यमें सिन्ध!

एक फारसी विद्वानने हज़्रत आदम के वंशवृक्ष के नामोंका उल्लेख करते हज़्रत खनूह (पैग़म्बर इद्रीस) के लिये 'इस्कलीनूस' के वर्णन में लिखा है कि:-

(1) बुर्हा, उर्दू मासिक [दिल्ली], आक्टोबर १९६२ (2) अखबार उबैद बिन शर्य, पृ० ४४

"इस्कलीनूस, हज़्रत इद्रीस (एक अति प्राचीन पैग़म्बर) के सेवकों तथा शिष्यों में महान था। "राज़त: अलसफ़ा" में लिखा है कि जब पैग़म्बर इद्रीस सिन्ध के कुछ नगरों की यात्रा से वापस लौटा और फारस की सीमा पर पहुंचा तब इस्कलीनूस को कुछ आदेश देकर बाबुल की ओर भेजा"। (वही)

इसके पश्चात ईरानके राजा केकाऊस के विषयमें मसौदी ने लिखा है कि "कहा जाता है कि केकाऊस ने सिन्ध (बअर्ज़ अलसिन्द) में काशमीर नगरकी नींव डाली। (वही)

उपरोक्त उल्लेख हमने केवल प्रमाणके लिये दिये हैं इसलिये कि उनका सिन्ध से सम्बंध है। ये कहां तक विश्वासके योग्य तथा महत्व रखते हैं वह सब गम्भीर खोजका प्रश्न है। स्पष्ट है कि इन उल्लेखोंसे इतना तो विदित होता है कि ये सब भारतके आर्य थे जिन्होंने अपने साम्राज्यका विस्तार आर्य प्रदेश ईरान तक फैलाया। इसलिये उनका अपनी पितृ भूमि हिन्द सिन्धसे सम्बंध तो रहता था और आजतक ईरान का राजा अपनेको आर्य कहलाता है, जिसप्रकार उसका पूर्वज सम्राट् दारा अपनेको आर्य कहलाता था।

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय सातवां

● **Dr. Enfield, writes:-**

"We find that India was visited for the purpose of acquiring knowledge by Pythagoras, Anaxarches, Pyrrho, and others who afterwards became eminent philosphers in Greece. Some of the doctrines of the Greek concerning nature are said to have been derived from the Indians."

(History of Philosophy, Vol. I, P. 65)

● **Prof Heeren, says:-**

"India is the source from which not only the rest of Asia but the whole of Western World derived their knowledge and their religion."

(Historical Researches, Vol. II, P. 45)

अमेरीका को आर्य हिन्दुओं ने बसाया !

● Bhikhsu Chamanlal, author of "Hindu America", writes:-

"The story of the Indian Buddhist monk Hwui Shan who went from Kabul to Mexico via China in the 5th. century is more thrilling than the story of the South Indian Pioneer who introduced cotton in Japan in the eighth century. Kabul was then part of India. His report on Mexico has been translated and edited by Edward P. Vining under the title of "Inglorious Columbus." He says:

"Nearly fourteen centuries have passed since Hwui Shan—led by his religious faith to carry the feeble light that shone upon his path to illuminate the lives of those who lay in darkness-pressed on from one unknown land to another, preaching the faith by which his life was guided. Of the toils and dangers he underwent, we can catch but a glimpse, through the mists of these fourteen hundred years but we have reason to believe that, of the company of five that started, he alone returned to Asia; that he was an old man when he reached China, and that he probably never saw his native land (India) again. The Chinese believed his story but knew nothing more of the land which was visitded by him. European and American scholars have for many years known something in regard to his statements; but for lack of sufficient careful investigation many have been inclined to discredit them.

"It is the hope of the author that the proof herein presented, that Hwui Shan discovered America a thousand years before it was known to Europeans, will be found sufficient to induce the world to give to the faithful missionary of the Buddhist faith the honour to which he is entitled, so that he may no longer remain an Inglorious Columbus."

(INDIA, Mother of Us All, Pp 117-118)

"Those who first arrived on the continent later to be known as America were the people of India." ("Official History of Mexico")

अध्याय आठवां

भारत से बाहर सिन्ध और सिन्धी

Sindh and Sindhis Outside Bharat

हमारा यह प्रमाणिक विश्वास है कि आदि सृष्टिमें मनुष्य उत्पति केवल एक स्थान पर हुई और वह प्रमाणिक स्थान केवल आर्यावर्त है। उस परम पिता परमात्माका नाम ओ३म है और उसका मनुष्यको दिया ज्ञान वेद है।

मत-मज़हबकी बुराइयोंको छोड़, हम उस सच्चे स्वामी, परम पिता परमात्माको जबतक उस शुद्ध और सत्य रुपमें नहीं समझेंगे, जबतक ईश्वरीय ज्ञान वेदको उस शुद्ध अर्थमें नहीं जानेंगे तथा उस आर्यावर्त भूमिको संसारके सब देशों अथवा आर्यों आर्य-जाति) को सब जातियों का आदि मूल नहीं मानेंगे, जिन सब बातोंके प्रमाण संसारके इतिहासमें अनगिनत मौजूद हैं, तब तक न तो मनुषका कल्याण होना है न ही संसारका सच्चा इतिहास बन सकता है। बड़े से बड़े इतिहास लेखक का ग्रंथ प्रायः ग़लत ऐतिहासिक अनुमानों तथा झूठी मान्यताओं पर आधारित है। इसलिये कि उसने मनुष्यके मूल उत्पतिका रूप जाना ही नहीं है न ही आजका विज्ञान उसकी इस विषयमें कोई सहायता कर सकता है। मज़हबोंके चक्र तथा फरेबमें सत्य को नकली बादलोंसे ढांका गया है जिससे सत्यका सूर्य छिप गया है। यद्यपि उसका तेजोमय प्रकाश और तारागण हमें भटकी हुई राहसे सत्य-पथ पर पहुंचनेका मार्गदर्शन करते हैं, परन्तु हमारे नेत्रोंमें वह ज्योति स्थिर होनी चाहिये। आँखोंमें दीद नहीं तो दीदार क्या होगा? परन्तु हम आंखें बंदकर मज़हबी पाखंड और अज्ञानताके अंधकारमें व्यर्थही कुछ टटोल रहे हैं। आज हमने परमात्मासे अधिक उसके "तथा कथित" एजन्टों और प्रतिनिध्यों को महत्व दे रखा है। आप हर मज़हबके भगवानको बुरा भला कहें कुछ नहीं बिगड़ता, आपको कुछ नहीं होगा। परन्तु उस मज़हबके भगवान के 'तथा-कथित' प्रतिनिधी को थोड़ा ही बुरा भला कहने पर चाहे वह बिलकुल सत्य क्योंन हो तो आपकी जुबान तो क्या सिर कट जाएगा। तो फिर सत्य और शांति कहां रहेंगी? सत्य और शांति के अभाव में स्वयं भगवान भ Casual Leave पर चला जाएगा।

बावजूद इसके जैसाकि हमने अपनी एक पुस्तक "आर्यावर्त" में लिखा है कि संसार की जातियोंकी जननी 'आर्यावर्त' भूमि है, फिर यह बात आपको रुचीकर हो अथवा न हो, परन्तु हमने पुष्ट प्रमाणों से यह सब सिद्ध किया है और अब भी उपस्थित कर रहे हैं कि इसी आर्यावर्त भूमि भारतवर्षके निवासी सिन्धी भी इसी प्रकार संसारमें कहां कहां फैले हैं। प्रमाण पेश हैं। क्योंकि सत्यकी परख अगर आखों देखी बातों पर नहीं हो सकती है तो दूसरे प्रमाणों से भी होती है। रात्रीमें सूर्यकी अनुपस्थतिमें तारे राह दिखाते हैं। आजका सारा इतिहास लगभग इसी

प्रकारका ही है। क्यों कि अति प्राचीन इतिहास जमाने के चक्करों में प्रायः नष्ट हो चुका है अथवा अग्निमें स्वाहा हो चुका है।

प्राचीन कालमें केवल एक बात कि, किसी जमाने में आर्यावर्त (भारत) और आफ्रीका (तथा मैडागास्कर और आस्ट्रेल्या भी) आपसमें किसी प्रकार जुड़े हुए थे, उनमें स्थल मार्गसे आवागमन भी होता था, जिसका प्रमाण भारत और आफ्रीकामें हाथी, सिंह तथा ऐसे ही और अनेक समान प्रकारके पशु हैं जो उस जुड़ी (मिली) हुई पृथ्वी के अलग होने के पश्चात दोनों स्थानों पर नस्ल (वंश) स्थिर किये हुए हैं, जैसाकि हमने ऊपर दिखाया है। इसको छोड़कर बाकी संसारसे सामुद्रक सम्बंध का इतिहास देखा जाएगा, चाहे सांस्कृतिक अथवा व्यापारिक तो इस सबका मूल केन्द्र-बिन्दु केवल सिन्ध और सिन्धु नदी का मुहाना था और है। भड़ोच और सोपारा आदि पश्चिमी किनारे के दूसरे बंदर तो बहुत बादके हैं। इसलिये यह अभिमान नहीं परन्तु ईमानदारी से कहा जाएगा कि महान भारत की यह सिन्धी जाति भी संसारके इतिहास में बड़ा भागीदार है, क्योंकि प्राचीन कालीन भारतीय उपनवेश तथा व्यापारका एक अकेला साधन केवल सिन्धु नदी का मुहाना ही है।

ईजिप्ट और एथोप्या! ये दोनों मूलतः सिन्धकी बस्तियां (Colonies) हैं। श्री पोकाक (Pococke) ने लिखा है कि "सिन्धू नदीके मुहाने पर समुद्रीय यात्रा करने वाले उद्यमी, कुशल और साहसी लोग रहते थे।...... जिन्होंने शताब्दियों पूर्व समुद्रोंको पार कर ग्रीस को जा बसाया।

"सिन्धू नदी के मुहाने से किनारे किनारे कोरी (खारी) तक बसे हुए (सिन्धी) व्यापारी ये यात्राएं करते थे, जिसके फलस्वरूप सभ्यताका फैलाव हुआ और जिनके कलात्मिक महान स्मारक उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते। ये लोग मकरानके किनारेसे ईरानी खाड़ी, उमान, हज्रमोत तथा यमनसे होते हुए रक्त-सागर (Red Sea) तक जा पहुंचते थे। जहांसे आश्चर्यमें डालने वाले स्मारकों वाली भूमि पर पहुंचे और इजिप्ट, नुब्या, ऐबीसीन्या के राज्य स्थापित किये। ये वही (सिन्धी) लोग हैं जिन्होंने शताब्दियां बाद में यूनान और उसके टापुओंमें संस्कृतिको फैलाया":-

"At the mouths of the INDUS dwell a seafaring people active, ingenious and enterprising as when, ages subsequent to this great movement... were driven from their native land to seek the far distant climes of Greece.

"The commercial people dwelling along the coast of that stretches from the mouth of the INDUS of the Coree, are embarking on that migration whose magnificent results to civilization, and whose gigantic monuments of art, fill the mind with mingled emotions of admiration and

awe. These people coast the Persian Gulf, and again adhering to the sea-board of Oman, Hadramaut, and Yemen (Eastern Africa), they sail up the Red Sea; and again ascending the mighty stream that fertilises a land of wonders, found the kingdoms of Egypt, Nubia and Abyssina. These are the same stock that, centuries subsequently to this colonization, spread the blessings of civilization over Hellas and her islands."

(India in Greece, P. 42-43)

दूसरे स्थान पर लिखता है कि "फिलोस्ट्रीटस ने एक ब्राह्मन के प्रमाण से लिखा है कि 'एथोप्या वाले मूलत: भारतवासी हैं जिनको देश निकाला दिया गया था इसलिये कि उन्होंने अपने राजाकी हत्या की थी ।[1]

फिर एक और स्थान पर लिखता है "भारतवासियों के उपनिवेश (Colony) अर्थात एथ्योप्या वाले अपने पूर्वजों के जैसा आचरण करते थे, उनकी बुद्धिमता की रक्षा करते आए और अपनी प्राचीनता मानते थे"।[2]

श्री हीरेन (Heeren) लिखते हैं कि "ऐबीसीन्या वाले (अबूसीन लोग) मूलत: (असलमें) अबूसीन (Abuisin) नदी (जो सिन्धू नदी का प्राचीन पौराणिक नाम था) से देशान्तर (migrate) कर आफ्रीकामें गये"।[3]

यूज़ेब्यस (Eusebius) के अनुसार "एथ्योप्या वाले मूलत: सिन्धू नदी से देशान्तर कर ईजिप्ट के समीप वाले प्रदेश में बस गये ।"[4]

(1) Philostratus introduces the Brahaman Iarchus by stating to his auditor that the Ethiopians were originally an 'Indian race' compelled to leave India for the impurity contracted by slaying a certain monorch to whom they owed allegiance". (Ibid, P. 200)

(2) "The Ethiopians, a colony of the Indians, preserved the wisdom and usage of their forefathers and acknowledged their ancient origin."

(3) The Abyssinians (Abussinians) originally migrated to Africa from the banks of Abuisin, a classical name of the Indus."

(Historical Researches, Vol. II, P. 310)

(4) "Ethiopians emigrating from the river Indus settled in the vicinity of Egypt." 'Meroe'

कुवीअर (Cuvier) के अनुसार "ईजिप्ट सम्राट् अमेनोफिस का काल भारतसे देशान्तर कर एथ्योप्या में आकर बसने का ज़माना है"।[1]

काऊंट जार्नस्टजेर्ना (Bjornstjern) ने लिखा है कि "पुराने भूगोल लेखक आफ्रीका के नुब्या, ऐबीसीन्या, सनौर, दर्फुर और दंगोला को मिलाकर एथ्योप्या कहते थे।"[2]

कर्नल टाड (James Tod) ने लिखा है कि "एक लेखकने अपने एक लेख (Asiatic Journal, Vol. IV, P 325) में आफ्रीका के बहुत से स्थानों के नाम दिये हैं जो पार्क (Park) के दूसरे यात्रा विवरण में दिये गये हैं। ये सबके सब नाम संस्कृत हैं और बहुत से अबतक भारत में प्रचलित हैं"।[3]

श्री टेलर (Cooke Taylor) के शब्दों में "सिन्धू के किनारे से छोटी छोटी बस्तियां आफ्रीका के किनारे से नील नदी द्वारा दक्षिण ईजिप्ट में आकर बस गईं। ईजिप्ट के वर्ण-भेद तथा रीति-रिवाज सब हिन्दू हैं"।[4]

हीराडोटस ने तो एथ्योप्यन तथा भारतवासियों को एक ही करके माना है। भारत वासियों (सिन्धियों) को पूर्व के एथ्योप्यन तथा दूसरे दक्षिण के एथ्योप्यन"।:-

"The Eastern Ethiopians-for there were two sorts of Ethiopians in the army-served with the Indians. These were just like the southern Ethiopians, except for their language and their hair-their hair is straight, while that

(1) "Cuvier assigns the reign of Amenophis as the epoch of the colonization of Ethiopia from India". (Discourses, P. 18)

(2) "The ancient geographers called by the name of Ethiopia all that part of Africa which now constitutes Nubia, Abyssinia, Sanaor, Darfur and Dongola." (Theogony of the Hindus, P. 168)

(3) Tod's Rajasthan, Vol. II, P. 309

(4) "There is certainly evidence of small colonies having come from the mouth of the INDUS to the shores of Africa and penetrated thence to the Nile (Indus was also called Neela [नीला] or Nile) south of the Egyptian frontiers. The Institutions of castes, Egypt had in common with the Hindus. The priests and warriors were the most honourable, next to them ranked the agriculturists, the merchants and mariners and the artisans, the lowest caste was that of the shepherds and every shepherd was an abomination of the Egyptians."

(Manual of Ancient History, P. 11)

of Ethiopians in Libya is the crispest and curliest in the world."[1]

मार्कोपोलोने तो एथ्योप्या और भारतकी सादृश्तामें इतना सम्भ्रान्त था कि उसने ऐबीसीन्या (एथोप्या) को केवल दूसरा अथवा मध्य भारत करके लिखा है। अपने अध्याय ३९ का नाम ही उसने रखा है "The Second or Middle India, named Abascia (or Abyssinia)."[2]

श्री शा Robert Shaw) ने ईजिप्ट (मिस्र) की सभ्यताका मूल भारत दिखाते हुए लिखा है कि "जहां तक नील घाटी के आदिनिवास्योंका प्रश्न है, बहुत से खोज करने वालों की यह राय है कि यदि ईजिप्ट की सभ्यता का मूल बाहर खोजा जायगा तो केवल भारतवासी अथवा भारतवासियोंकी कोई जाति (सिन्धी) ही होगी जहां इजिप्ट वालों के मूल पुरखे होंगे। यह कहना अनुचित होगा कि एथ्योप्या में बसने वाले लोक प्राचीन काल में भारत (सिन्ध) से आये हुए नहीं थे"।[3]

फिर आगे लिखते हैं कि "भारत के कुछ लोगों ने प्राचोन काल में आकर इन प्रदेशोंको बसाया (आबाद किया), यह सिद्ध करने के लिये ऐतिहासिक प्रमाण कम नहीं हैं। सिन्सेलस के अनुसार, एथ्योप्यन लोग जो सिन्ध से देशान्तर कर आए थे वे ईजिप्ट के समीप जा बसे"।[4]

(1) Book Seven, 440 (2) *Travels of Morco Polo [Dent] P. 398*

(3) *"For, with respect to the originators of the civilization and culture of the Nile's valley, many investigators have for themselves concluded that, if they proceed to derive that civilization from outside of that valley itself, then the Indians or some tribe of the Indians of Asia are the only nation whence the ancient Egyptians and their civilization could have originally descended. It would be unreasonable to assert that no political or religious shoot could have been transplanted in the very early ages from India to Ethiopia; and although only shoots in which every foreign trace would be lost in a greater or less number of succesive generations by their being ingrafted into a foreign soil and climate-their mixture by blood with foreigners, so to speak-still, if they came there they should be not unlikely to have descendents, whether or not these became civilizers or culture producers in the country."*

(Origin of the Ancient Civilization of the Nile's Valley, P. 85)

(4) *"That some people from India found their way thither in early times, historical proofs are not wanting. Syncellus [P. 120, Venetian edition] informs us: "Aethiopians, who had emigrated from the river INDUS, dwelt near Egypt." (Ibid)*

प्राचीन यूनानी कवि होमर (Homer) ने भी भारत और एथ्योप्या को एक ही समझकर लिखा है।[1]

सिन्धी भारतवासी प्राचीन काल से ही समुद्रीय यात्राएं करते और परदेस बसाते जाते थे, तथा अपनी संस्कृतिकी छाप छोड़ते जाते थे। यह सब आज भी जीवित प्रमाण हैं। स्ट्रेबोने एक सुन्दर प्रमाण से लिखा है कि 'किस प्रकार एक यूडोक्षस, राजा यूरीगटस के राज्यकालमें यात्रा करता हुआ आया। वह विद्वान था और विभिन्न देशों के विचित्र बातों के जानने की चाहना रखता था। इसने राजासे सम्बंध जोड़ा और विशेषकर नील नदी को तपासना चाहा। हुआ यह था कि एक भारतवासी (सिन्धी) राजा के सामने उपस्थित किया गया जो अरबी किनारे परसे सिपाहियों को मिला था। उन्होंने बताया कि यह एक जहाज़ पर अकेला अधमरा सा देखा गया परन्तु उन्हे ज्ञान नहीं कि यह कौन है और कहांसे आया है, क्योंकि यह भाषा ऐसी बोलता है जो वे समझ नहीं सकते। (फिर) उसे कुछ शिक्षकों के संग में रखा गया जिन्हों ने उसे यूनानी भाषा सिखाई, जो सीखने के पश्चात उसने उन्हें बताया कि किस प्रकार वह भारती (सिन्धी) किनारे से रवाना हुआ, रास्ता भूलकर ईजिप्ट में अकेला ही आ निकला। उसके सब साथी भूख से मर गये। अब यदि उसे देश पहुंचाया जायगा तो वह उन्हे सारा समुद्री किनारा, भारत तक पहुंचनेका दिखाता चलेगा।"[2]

(1) Odessey, Bk. 1, ch. vv, stanza 23-24

(2) "He (Posidonios) also narrates how a certain Eudoxus of Cyzicus ..... travelled into Egypt in the reign of Euergetes II (Physcon); and being a learned man and much interested with the king and his ministers on the subject, but especially for exploring the Nile. It chanced that a certain Indian was brought to the king by the (coast) guard of the Arabian Gulf. They reported that they had found him in a ship alone, and half dead; but they neither knew who he was nor where he came from, as he spoke a language they could not understand. He was placed in the hands of preceptors appointed to teach the Greek language, on aquiring which he related how he had started from the coast of India, but lost his course, and reached Egypt alone, all his companions having perished with hunger; but that if he were restored to his country he would point out to those sent with him by the king the route by sea to India." (Majumdar— Classical Accounts of India, P. 283)

उपरोक्त प्रमाणोंसे यह स्पष्ट है कि सिन्धी भारतवासी आफ्रीका में गये और उन्होंने एथ्योप्या, ईजिप्ट तथा लिब्या के देश आबाद किये। रेड-सी से ही वे वहां पहुंचे होंगे। रेड-सी भारती साहित्यमें 'लोहित सागर' (लाल समुद्र) नाम से प्रसिद्ध है। रामायण (किष्कंधा कांड) में भी इसका उल्लेख मिलता है।

परन्तु इस सबसे भी अधिक महत्वपूर्ण बात श्री हेरास (Rev. H. Heras) ने अपनी पुस्तकमें, स्पेन के सन्त इसीडोर के प्रमाणसे लिखी है कि "भारती लोकों के ईजिप्ट में आकर बसनेकी अधिक पुष्टि स्पेन से हुई है, जो एक प्रसिद्ध पुस्तक में है, जो सातवीं शती के आरंभ में रची गयी थी। उसका लेखक इसीडोर, स्पेनका भिक्षु था,, जो बाद में सेविली का आर्क बिषप बना।" इस लेखक का लिखित कितना विश्वसनीय (authoritative) है, वह सारा हम मूल-अंग्रेजीमें उद्धृत कर रहें है, जैसाकि श्री हेरास ने लिखा है:-

"Further confirmation of the Indian migration into Egypt unexpectedly comes from far off Spain, in a famous work composed in the begining of the 7th. century A. D. The author, St. Isidore, was Spanish monk who became Archbishop of Seville. Isidore 'was no doubt the most famed man of his age and thus deserved the praises lavished on him by his contemporaries, (Dowson-Medieval Religion, P. 99). He was the first Christian writer to undertake the task of compiling a SUMMA of universal knowledge. "His learning and eloquence are celebrated by his contemporaries, and his repution was even greater in the succeeding ages,. (British Encyclopaedia, Art." Isidorus Hispalensis" [ed. 1880]). The reference to the Indian migration into Egypt is found in the most important, best known and most elaborate of all his works *Etymologies*, the real title of which is *Etymologiarum Libri* XX, which was written in his mature age, shortly before his death. A critic who has studied deeply this work does not hesitate in qualifying it "a wonder of erudition in that age.

The first edition of the works of Isidore was published by Michael Souinus in Paris in 1580. The second was published by Gomez-Perez-Grial in Madrid in 1599. This edition has been used as a model for all subsequent editions; Paris, 1601; Colon, 1617; Rome, 1795-1803. This last edition edited by H. Arevale is the best one.

Isidore derived his information from the authors of old, both Greek and Latin, whose works existed then, but many of which have now perished. He often quotes, Lactantius, Pliny and Solinus. Among other sources of information for his *Etymologies* we may mention Pacuvius, Afranius, Fnnius, Livius, Andronocus, Servius, Festus and other early Roman poets and dramatists now lost. Isidore therefore, when writing this work, gathered all possible information from ancient classical authors, some of whom were born in Spain itself, thus communication to his contemporaries the ancient learning and tradition of Rome and Spain.

Isidore himself in the dedication of his work to his friend Braulius, Archbishop of Saragossa, writes— "I am sending thee, Braulius, as I promised, the work concerning the origin of a few thigns, composed after memories of past authors and occasionally annotated in the very style in which our forefathers had written it." He could also have said in this case, what he plainly said concerning another work- "The reader will not read our own, but will reread what was said by ancients"[1]

भारतवासी सिन्धयों के नील नदी प्रदेश में देशान्तर करने की सूचना पश्चिम मेडीटरेन्यन, विशेषकर स्पेन की लोककथा (tradition) देती है। अनुश्रुति जो नितान्त विश्वसनीय समझनी चाहिये क्योंकि उसका स्वयं स्पेन से भी सम्बंध है, जैसा कि हम अभी देखेंगे"।[2]

"यह परिच्छेद उसकी पुस्तक "एटीमालाजी" में है जिसमें भाषाओं, लोगों, राज्यों, सेनाओं, नगरनिवासियों तथा सम्बंधों पर प्रकाश डाला गया है। मूल लिखित एथ्योप्यन लोगों के लिये है जिनके असल नस्लके लिये इसीडोर कहता है कि "वे (एथ्योप्या वाले) प्राचीन कालमें सिन्धूनदी से रवाना हुए और दक्षिण नील नदी तथा समुद्र के बीच ईजिप्त में जा बसे, जो भूमध्य रेखाके समीप था। उन सिन्धियों में से ही दूसरी तीन जातियों ने अलग होकर जन्म लिया जो थीं

(*1*) ***Studies in Proto-Indo Mediterranean Culture, Vol. I, Pp. 399-401***

(2) "The information relating the migration of the Indians into the land of the Nile discloses therefore the ancient tradition of the Western Mediterranean, Spain in particular, a tradition which must be concerned all the more reliable, as it concerned the peoples themselves of Spain, as we shall see presently." (Ibid, P. 401)

हेस्पेयंन, ग्रामन्ती तथा इन्डियन (एथोप्यन)। हेस्पेयंन (स्पेनवाले) पश्चिममें हैं, गरामन्ती त्रिपोलीमें और इन्डियन पूर्व में हैं।"[1]

श्री हेरास आगे लिखते हैं : "लेखक एथोप्यन के ऐतिहासकि मूलको समझाते हुए, जिसको वह सिन्धमें बताता है अर्थात बिलकुल सिन्धू घाटी में, लिखता है कि देशान्तर सिन्धू नदीसे प्रारंभ हुआ और फिर दूसरी नदी की घाटीमें जाकर उन्होंने डेरा जमाया, जैसाकि प्राचीन लोगोंका नियम था"[2]

और इस सब की पुष्टि भारती तथा ईजिप्शन (मिस्री) अनुश्रुतिसे भी होती है कि 'देशान्तर कर जानेवाले सिन्धु अथवा उसके पड़ोससे रवाना हुए और ईजिप्तमें दक्षिणसे प्रवेश किया।"[3]

"अब स्पेनमें यह अनुश्रुति (tradition) क्यों सुरक्षित है? इसलिये कि इसका सम्बंध उनके साथ भी है। जब देशान्तर कर गये वे (सिन्धी) वहां बढ़ गये तो नये प्रदेशकी तलाशमें एक

---

(1) "*The text itself refers to he Ethiopians about whose origin Isidore says; 'They, proceeding from the river INDUS in ancient times, settled in Egypt, between the Nile and sea, towards the south, near the equatorial regions (sub ipsa solis vicinitate). Three nations here derived from them-the Hesperians, the Gramantes, and the Indians: the Hesperians are in the west, the Garamantes in Tripoli, the Indians in the east.*" [*Etymologiarum, IX. 2, 128: Migne, P.L. LXXXII, cols.340–341*]

(2) "*The author explains the historical origin of the Ethiopians, whose cradle is placed by him in the country of INDUS, one would almost say in the* Indus valley (ab Indo flumine). *The migration started from the neighbourhood of this river, and finally they fixed their tents in the valley of another great river the Nile, as was customary with the ancient peoples. Between the Nile and the Red Sea they found ample spaee for living and growing, in a land extremly fertile owing to the yearly inundation of the river. Isidore gives the region of that country where they landed:* in meridie, *in the south; which evidently does not restrict their habitat, but only points out the gateway, so to say, by which they entered into the possession of their new home.*"

(3) "*These details given by the great Spanish writer, which were undoubtedly culled from ancient books recording the local tradition, perfectly agree with what we know about the second Indian migrations from Indian and Egyptian traditions. The emigrants seem to have started from INDUS or its neighbourhood, and entered Egypt from the south.*" (*Ibid*)

दूसरेसे अलग हो गये। जो वहीं रहे वे एथ्योप्यन थे, तथा पूर्व में रहे। फिर दूसरे प्रमाण से लिखता है कि 'हम सदा से यह सुनते आ रहे हैं कि एथोप्या वाले भारती (सिन्धी) हैं। और ऐसा भी सुना है कि नील नदी भारतसे ईजिप्तमें बहती है, अर्थात सिन्धू नदी सीधी ईजिप्त तक पहुंचती है"।[1]

"उनमेंसे दूसरा समुदाय (group) अलग होकर उत्तर आफ्रीकामें गया और लिब्यामें जाकर बसा। लैटिन लेखक उनको ग्रामवासी (Garamantes) कहते थे। श्री इसीडोर कहता है कि उनकी राजधानीका नाम ग्राम था, जिससे उनका यह नाम प्रसिद्ध हुआ।"[2]

इसके सिवाय बाकी तीसरा समुदाय उन (सिन्धियों) से अलग होकर आफ्रीका तथा यूरोप के बीचका (जिब्रालटर) जल-डमरु- मध्य को पारकर हेस्पेर्या (अबेर्यन प्रायद्वीप) को अंतिम मंजिल (पड़ाव-घर) बनाया। इसप्रकार स्पेनके लोग जिनको अपने मूलका ज्ञान नहीं था, उनको इसीडोर से ज्ञात हुआ। अब इस सूचनाकी कदर (प्रतिष्ठा) स्पेन वालों ने की और वे इसे किस प्रकार विश्वसनीय ही नहीं परं यथार्थ समझते थे, वह बात आर्कबिशप ब्रौलयस के शब्दोंसे स्पष्ट है जो उसने इसीडोरको उसके पत्रके उतरमें लिखे थे। ब्रौलयस लिखता है "हम अपने देशमें ही

(1) "That this tradition should have been faithfully kept by the inhabitants of ancient Spain is easily explained if we realize that it was a sort of a family tradition about their own origins. For as St. Isidore explains in the same passage the nucleus of the migrating Indians settled in Egypt, but later, owing undoubtedly to their natural growth, was split up into two groups— one called of the Indians, remained in the East. These were the Ethiopians themselves, to explain whose origin he has given all this genesis of the whole nation. In ancient times all the inhabitants of the Oriental regions, and specially the Ethiopians, used to be called Indians." (We always heard the Ethiopians, used to be called Indians [Servius in *Virgilli* Georgicam]. The Nile was supposed to flow from India to Egypt). (Ibid, P. 401-2)

(2) "Another group migrated towards the west in northern Africa. They settled in Libya. Those of the interior, towards the boundries of Cyrenaica, were known to the Latin classical authors as Garamantes [Virgil, Eglagae, VIII, 44]. St. Isidore says that their capital was called Garama (ग्राम] from which wo.d they derived their name." (Ibid, P. 304)

परदेशी अथवा अतिथि थे। परन्तु तुम्हारी खोज और लिखने से हम अपनेको अपने देशमें अनुभूत करते हैं और समझते हैं कि हम कहांसे आए और कहां हैं। तुमने हमको हमारी अपनी जाति (सिन्धी) की प्राचीनता खोलकर (स्पष्टकर) सुनाई है तथा हमारे प्राचीन इतिहास की कहानी सुनाई है, हमारे नगरों के नाम, प्रदेश, स्थान और दूसरी देवी तथा मानुषी आदि।":-

"*Further group detached itself in the course of time and, crossing the strait between Africa and Europe, made Hesparia, i. e. the Iberian Peninsula, their final home. Thus those people of Spain who did not know of their ancient origins learnt about them through the work of Isidore. How much this information was appreciated and how strongly they believed in this tradition kept for them by this great scholar, some words of Archbishop Braulius, in a letter to Isidore himself, show. Repeating the words of Cicero to Varro [cf. Cicero, Academical Questions, I], on a similar occasion, Braulius says: "We were like foreigners and guests in our own country; and thy writings have led us to our own home, making us understand where from we came and wherein we are, thou has revealed to us the past of our nation and the story of our old ages... the names of our cities, regions, places and other things divine and human."* (*Ibid, P. 403*)

कुछ टीका करने की आवश्यक्ता नहीं है। उपरोक्त सारे विस्तृत वर्णनसे यह बिलकुल सिद्ध है कि भारतभूमि के सिन्धी लोग जो समुद्री यात्रा और व्यापारमें निपुण थे, उन्होंने सिन्धूसे जाकर आफ्रीका महाद्वीपके एथ्योप्या, ईजिप्त और लिब्याको बसाया। वहां आबादी बढ़ जानेसे, आफ्रीका और यूरोप को जोड़ने वाले जल-डमरूमध्य को पार कर वे प्रथम स्पेन वाले प्रदेशमें गये और उसे आबाद किया। बात को बढ़ा चढ़ा कर नहीं लिखा गया है। प्रमाण उपस्थित हैं। हम प्राय: भारतसे जाकर संसारको बसाना मानते हैं, सिन्ध भी उसमें सम्मिलित है। किन्तु यह विशेष सिन्धकी बात है इसलिये अकेली लिखी है। यह भी ध्यान में रहे कि यह कोई निकट समयकी अर्थात हज़ार-दो हज़ार वर्षकी बात नहीं है परन्तु हज़ारों वर्षों की प्राचीन कथा है, जब उन देशों में मनुष मात्र नहीं था तब सिन्धियोंने वहां आकर निर्जन भूमिको जीवन दिया। जहां बाद के विशाल साम्राज्य खड़े हुए। हम यह सब यूंही लिखते, जैसा सत्य भी है, तो कोई समझता तो क्या ठट्टा करता, चाहे वह कितना भी संस्कृत साहित्यमें लिखा हो। देखिये, संस्कृत साहित्यमें आफ्रीका को शंख-द्वीप कहा गया है और ध्यानसे देखेंगे तो आफ्रीका का यही रूप दीखेगा। रेड-सी को लोहित-सागर कहा गया है। आफ्रीका के एक भाग को कुश-द्वीप भी कहा गया है। यही नहीं अपितु उनकी रस्में, रिवाज और मान्यताएं आज भी भारत-सिन्धसे समानता रखती है। हम यहां केवल नन्दी समुदाय (कबीले) की कुछ बातें लिखते है।:-

१) कोई भी पुरुष अपने परिवारमें से विवाह नहीं करता ।

२) उनमें नामकरण संस्कार होता है, जो बालक के ६-७ वर्ष की आयुमें होता है अर्थात वह जब शिक्षा ग्रहण करनेके योग्य हो ।

३) कोई भी अपने घरकी देहली (sill) पर नहीं बैठता।[1] (सिन्धमें अभी तक ऐसा माना जाता है और देहली पर बैठना अच्छा नहीं मानते)।

४) यदि कोई आक्रमणमें मर जाता है तो उसके साथी नदी पर जा, स्नान कर पीछे घर आते हैं ।

५) मासिक-धर्म आने के पश्चात कन्या अथवा स्त्री अकेलेमें रहती हैं। वे न तो भोजन तैयार करती हैं न ही किसी को छूती हैं। सबको यह समाप्त होने पर स्नान अवश्य करना पड़ता है।[2] सिन्धमें भी बिलकुल निकट समयमें भी ऐसा नियम था ।

६) यज्ञोपवीत के समय हिन्दुओं के समान सारा सिर मुण्डवाना पड़ता है। (Ibid P. 80)

७) उनकी मान्यता के अनुसार कोई भी लड़का २५ वर्ष तक नाच आदिमें सम्मिलित नहीं होता था तथा २५ वर्ष से पूर्व विवाह भी नहीं करता था।[3]

यह तो हमने संक्षेपमें दिया है विस्तारसे अपनी पुस्तक आर्यावर्त में लिखा है ।

आश्चर्य की बात यह है कि ईजिप्त की नील (Nile) नदीका नाम न ईजिप्शनहै न ही इसका इब्रानी (Hebrew) से कोई सम्बंध है। केवल ग्रीकमें उसे नीलोस (Neilos) कहा जाता है, जो भी संस्कृत 'नील' है। महाभारतमें 'नीला' नदी का नाम दूसरी नदियों के साथ आता है जो सिन्धू के लिये भी व्यवहृत होता था। इसके सिवाय भी भारत सिन्ध और आफ्रीका का सम्बंध प्राचीन कालसे कितना घनिष्ट था उसका एक प्रमाण देते हैं। नील नदी ईजिप्त (अफ्रीका) में है, परन्तु किसीको भी उसके उद्गम का ज्ञान नहीं था, जिसप्रकार सिन्धुका मानसरोवर अथवा गंगा यमुना का। परन्तु प्राचीन आर्य जाति के पास ही उसका रहस्य मौजूद था। अब तो मालूम है कि 'विक्टोर्या फालस' है जो ज्ञान भी हिन्दुओं के पुराणों से मालूम हो सका। इसअनुसार:-

इस विषय की विस्त्रित सूचना वायु पुराण से मिलती है, परन्तु इस सबकी खोज एक यूरोपी साहसी करनल विलफोर्ड ने की। उसने ही पुराणों के आधार पर नील नदी के उद्गम का मानचित्र भी तैयार किया, जिसके सहारे कर्नल स्पेकी (Colonel John Speke) जो भारती सेनामें अधिकारी था, उसने नील नदीका उद्गम जाननेके लिये सन् १८५६ से १८६१ तक इसकी खोज की। इस कार्य के लिये आर्थिक सहायता लण्डनकी रायल ज्योग्राफीकल सोसायटी ने की थी। उसने स्पष्ट लिखा है कि उसे पुराणों से ही बड़ी सहायता मिली ताकि नील नदी

(1) A.C. Hollis-"The Nandi", P. 17 (2) Ibid, P. 44

(3) The Life of a South African Tribe, Vol. II, P. 100

जो जिन्ज (Jinja) के पास विक्टोर्या झीलसे निकलती है, का उद्गम ढूंढ सके। उसने लिखा है कि- "कर्नल रिग्बी ने मुझे एक मूल्यवान निबंध (Paper) मानचित्र के साथ दिया जो नील नदी तथा चांद के पहाड़ सम्बंधी था। वह निबंध कर्नल विलफोर्ड का लिखा हुआ था जो उसने हिन्दुओंके पुराणों के आधार पर तैयार किया था। यह आश्चर्य की बात है कि हिन्दुओं को ही नील नदी के उद्गम का ज्ञान है। इसलिये मैं समझता हूं कि यह बात स्पष्ट है कि प्राचीन हिन्दुओंको आफ्रीकाके विभिन्न भागोंसे सम्बंध था"।[1]

नील नदी सम्बंधी ईजिप्शन लोगोंकी जानकारी पर ठट्टा करते फिर लिखता है "नील सम्बंधी हमारे सारे ज्ञान का केन्द्र <u>हिन्दू</u> हैं ...... सब मिस्री भूगोलवेताओं की बातें सब पाखण्ड और अनुमान हैं।[2]

इससे अधिक महत्वपूर्ण प्रमाण और क्या हो सकता है? सिन्धी, आफ्रीकामें गये, सारा महाद्वीप बसाया, फैले, भारत के साथ आवागमन जारी रहा, यहां उन्होंने सारा वृतांत सुनाया विद्वानोंने सुना, पुराण बन रहे थे, वह सब दर्ज (प्रविष्ट) हो गया। अब यह नील नदी का रहस्य पुराणों से खोज निकाला श्री विलफोर्ड ने! जो उसने उस समय की "एश्याटिक रीसर्चिज" जिल्द ३, ८, ११, १३ और १४ में लेखमाला के रूपमें प्रकाशित कर रखा था। वह सारा वर्णन तथा उसपर टिप्पण श्री बी० जी० वाघेला तथा डा० जी० एम० शुक्लने "East Africa Today" नामक जर्नल (१९५८-५९) में दिया है और पुस्तकाकार जैसा एक सुन्दर बहूमूलल्य संग्रह है। उस अनुसार :-

(1) Colonel Rigby gave me a most interesting paper with a map attached to it about the Nile and mountain of the moon. It was written by Lt. Wilford from the Purans of the ancient Hindus. It is remarkable that the Hindus has christened the source of river Nile. This I think shows clearly that the ancient Hindus must had some kind of connection with different parts of Africa." (Journal of the Discovery of the Source of Nile, P. 13)

(2) All previous information concerning the hydrography of these regions originated with the ancient Hindus ...... and all those busy Egyptian geographers who disseminated the knowledge with a view to be famous for their long-sightedness in solving the mystries, which shrouded the source of Nile (the holy river), were so many hypothetical humbugs." (Ibid).

"सन् १८५० तक पूर्व अफ्रीका के भीतरी भागकी जानकारी किसी भी यूरोप निवासी को नहीं थी। सन् १८४६ में एक जर्मन पादरी क्रूप (Krupf) ने कीन्या पहाड़ के शिखर को बर्फ से आच्छादित देखा, वह भी ६० मील दूर से। जब ऐसी बातें यूरोपमें बताई जाती थीं तो हरेक ऐसे लोगों पर हंसी उड़ाता था। क्यों कि वे कल्पना ही नहीं कर सकते थे कि भूमध्यरेखा के समीपस्थ पूर्वी अफ्रीकामें भी बर्फ से आच्छादित पहाड़ हो सकते हैं। इसलिये उन्होंने क्रुपकी भी अवहेलना करदी।

अमर सरोवर (Identification of Amar Sarovar)!

परन्तु हज़ारों वर्ष पूर्व भारतके आर्योंको इसका पूरा ज्ञान था। समुद्रसे घिरा तथा उससे दूर भीतर जिसे आजकल 'विक्टोर्या लेक' कहा जाता है वह प्राचीन भारतवासियों का "अमर सरोवर" (Lake of Gods) था। वेस्ट मिनिस्टर के डीन श्री विल्यम विन्सेन्ट ने, पेरीप्लस के नोट्स में १५वीं शतीका एक मानचित्र दिया है। वह मानचित्र वेनिस के मउरो (Fra Mauro) का सन् १४५६ में बनाया हुआ था, जो उसने वेनिस के एक व्यापारी से सुनी हुई जानकारी के आधार पर बनाया था, जिसने सन् १४२० में एक भारती जहाज़ में चढ़कर अफ्रीका के चारों ओर यात्रा की थी। उस मानचित्रमें नील नदी तीन स्रोतोंसे जल ले रही है, जिसमें से एक का नाम हमर (Hamar) है, जो स्पष्ट 'अमर' का बिगड़ा हुआ रूप है। एक नदी जो विक्टोर्या सरोवर (हिन्दुओं का अमर सरोवर) में गिड़िती है, इसका नाम सन् १९२७ में अमर नदी था जैसा कि कीन्या के इतिहास लेखक श्री रास (Ross) ने लिखा है। उस अनुसार :-

"In modern view, the Amara River is a considerable stream flowing through the 'Masai Reserve' of Kenya, and finally struggling through leagues of papyrus into the Victoria Nyanza, and thus contributing to the Nile. The P.W.D of the Colony built a light steel bridge across the upper reaches of this river to allow of Masai cattle crossing in times of floods."[1]

जिसको दूसरों ने अज्ञानता वश "चन्द्रमा के पहाड़" अथवा 'चांदी का पहाड़' कहा है वह हिन्दुओं का 'चन्द्रगिरि' अथवा 'सोमगिरी' है। वह इस समय का Mounto 'Revenzori' अर्थात 'चन्द्रका पहाड़' है, जो यूनानी लेखकों का ग़लत अनुवाद है। स्पष्ट है कि भूगोलका ज्ञान दूसरे ज्ञानके समान प्राचीन लोगोंने भारतवासियों से प्राप्त किया। टाल्मी ने चन्द्रगिरि का शाब्दिक अर्थ 'चान्द का पहाड़' किया। चन्द्र अर्थात चांद और गिरि अर्थात पहाड़। संस्कृत में चन्द्रका अर्थ प्रकाश तथा आकृष्ण करने वाला भी है। यह इसप्रकार है जिसप्रकार टाल्मीने जावा द्वीप समूह को 'यव का द्वीप' अर्थात Barley Island लिखा है। संस्कृतमें यह 'यव द्वीप' है। यव का जव होकर

(1) Kenya from Within, P. 18-19

यह 'यव द्वीपसे जव द्वीप' होकर वर्तमान में जावा कहलाता है। परन्तु संस्कृत से केवल नकल करते टाल्मी ने यव का अर्थ जव (barley) किया है जो ग़लत है। भारतीय आर्यों ने इसका नाम यव द्वीप इसलिये रखा था कि इसका भौगोलिक रुप यव के दाने जैसा है, जिसप्रकार आफ्रीका का शंख-द्वीप। ठीक इसीप्रकार उन्होंने चन्द्रगिरि को 'चान्दका पहाड़' नाम दिया जो केवल मूल संस्कृत का शाब्दिक अनुवाद था न कि भावार्थ। वास्तवमें न 'चांदका पहाड़' होता है न ही यव का द्वीप। इससे बढ़कर यह बात है कि जावा द्वीप-समूह में यव की खेती होनी ही नहीं है, जसाकि टाल्मी ने लिखा है। स्पष्ट है कि इन प्राचीन लेखकों ने केवल संस्कृत साहित्यका सहारा लेकर भूगोल लिखा है, स्वयं कोई खोज नहीं की है। जिस प्रकार वर्तमानमें संसारका सारा ज्ञान-विज्ञान संस्कृत साहित्य के आधार पर खोज कर आविष्कार किये गये हैं अथवा किये जा रहे हैं। कोई भी नया आविष्कार ऐसा नहीं है जिसका मूल संस्कृत साहित्यमें न हो। क्यों न वह बीज रूप में हो। ठीक इसीप्रकार यहां भी समझना चाहिये।

इसलिये स्पष्ट है कि, जैसाकि ऊपर आरंभ में लिखा गया है कि सिन्धियों ने आफ्रीका को जाकर बसाया, वहांसे ईजिप्त तथा लिब्या से स्पेन को भी आबाद (colonize) किया। वे भारतमें आते जाते रहते थे। कोई लम्बी यात्रा नहीं थी। देशों की जानकारी यहां देते रहते थे जिसप्रकार यात्राओंका ब्योरा सुनाया जाता है। यहां के प्राचीन पंडित भारत-सिन्ध के उन उपनवेशोंका विवरण पुराणोंमें शुद्ध हिन्दू नामों तथा प्रकार से प्रविष्ट कर गये, जिसके सहारे नील नदीका उदगम ढूंढ निकाला गया। बादमें कच्छ-सौराष्ट्र के अनेक हिन्दू वहां जाकर बसे। सारे देश तथा किनारे पर उनका पूरा अधिकार था। बिलकुल निकट समय की बात है कि आफ्रीका के सारे किनारे की चुङ्गी (customs duty) इन हिन्दुओं के हाथ में थी। अंग्रेजोके पहुंचते समय उनको भीतरी भाग खोजनेमें इन्हीं हिन्दुओं ने सहायता की थी। किनारेके प्रत्येक बंदर की चुङ्गी उन्हीं के अधिकारमें थी। जंजीबार का मुख्या लधो दामो था, पेम्बा(Pemba)पर उसके भतीजे पेसू का अधिकार था तो मोम्बासामें लखमीदास था तो किल्वा (Kilwa) में चुङ्गी किशनदास संग्रह (collect) करता था। स्वयं कर्नल स्पेकी (Speke) को पंगनी (Pangani) के श्री टीकमदास ने सहायता की थी।[1]

यद्यपि यह सब बहुत पीछे की बात है। और हमारा अभिप्राय केवल यह दिखाना था कि आफ्रीका भारतवासियों के लिये नया देश नहीं है। केवल उनकी धार्मिक तौर दुर्बलता के कारण वहां सत्ताधारी होते हुए भी वे देश पर अधिकार जमा न सके। वे बनिये के बनिये ही रह गये, धन जमा करते रहे, धर्मकी अवहेलना की। आज वहां इस्लाम और ईसाइयत फैली हुए हैं, नहीं तो वहां आज हिन्दू साम्राज्य होता जैसा आरंभमें सिन्धी साम्राज्य था।

(1) East Africa Today [edited by Vaghela & Shukla], Pp. 457-9

कैसे भी इस हकीकत को कोई काट नहीं सकता कि एथ्योप्या, ईजिप्त तथा लिब्या के पश्चात स्पेनको भी सिन्धियों ने आबाद (Colonize) किया। यूरोपके ईसाई लेखक अथवा इतिहास लेखक यह बात सत्य होते हुए भी नहीं लिखते, क्यों कि इसमें उनके निर्बल विचारों के अनुसार उनकी हीनता (Inferiority) का प्रदर्शन होता है।

इन प्रमाणों के सिवाय जबरदस्त प्रमाण यह भी है कि पुराने यूनानी लेखकों ने सिन्धु के मुहाने पर बरबर बंदरका प्रायः उल्लेख किया है। इधर पूर्व आफ्रीका अर्थात एथोप्या के सोमालीलैंड पर बरबर नाम का बंदर अब भी है और अंदरमें बरबर लोग रहते हैं। और जैसाकि हम आगे चलकर दिखाएंगे कि वह बरबर वर्तमान सिन्ध का भंभोर का बंदर है जिसके अवशेष अभी खुदाईमें से मिले हैं।

परन्तु इससे भी महत्वपूर्ण बात श्री शा (Robert Shaw) ने लिखी है। हमने ऊपर लिखा है कि सिन्धके सिन्धी एथोप्या में गये, फिर ईजिप्त में जाकर उसे Colonize किया, फिर स्पेन में भी गये। अब श्री शा लिखते हैं कि "ईजिप्तके सम्राट् सेसोस्त्रिस (Sesostris) तथा उसके वंशजों के समय में ईजिप्त ने अपनी नई आबादियां (Colonies) बसाने के लिये (अपने जनसमुदाय) भेजे, जिनमें अथेन्स, स्पार्टा, पेलेस्टाईन (फिलिस्तीन) तथा रोम भी हैं":-

"In the time of this latter (Sesostris) and his descendents down to the childern of this man Neilos (but Herodotus calls him Pratcus), Egypt sent out many colonies- of these the Athenians, the Lacedemonians or Spartans, the Colchians and Caphtorim of Palestine are not the least remarkable. Not only the Dorians and Ionians among the Greeks, but the Romans of the stock of Æneas are derived from the Egyptians, though, perhaps not all from Sesostris. According to Rollin, Cecrops, an Egyptian, founded the kingdom of Athens in 1556 B.C., which, by Eratosthenes' recording, would be the 5th. year of Sesostris, at which time he was carrying on his campaigns beyond the borders of Egypt."[1]

अति प्राचीन काल के, सन् संवतका तो ज्ञान नहीं है जब सिन्धी ऐबीसीन्या में थे और इस पिछले दौर के मध्यमें बौद्ध कालके भिक्षु वहां पहुंचे। ऐबीसीन्यामें इस समय ईसाई मत है जो वहां सन् ३३० ई० में पहुंचा। परन्तु इससे पूर्व वहां बौद्ध प्रभाव था। अक्स्यूम में एक प्राचीन स्तम्भ है जिसके लिये वस्तुकला के विशेषज्ञ श्री फर्गूसन (James Fergusson) का कहना है कि यह भारती प्रभावका प्रातीक है। निर्माण ईजिप्शन है परन्तु शैली हिन्दू है। नौखण्डका स्तम्भ

(1) History of the Scotts of Gaels, P. 115

ऐसा ही है जैसा भारतके बौद्ध-गया का मंदिर अथवा बौद्ध मंदिर (Pogoda)"।[1]

मौर्य सम्राट् अशोकका ईजिप्त (मिस्र) में धर्म-प्रचारक भेजना उस परम्पराका एक अंग ही था।

जावा द्वीप-समूहमें!

सिन्धू नदीका मुहाना जब भी जहां भी था, वहांसे सिन्धी समुद्रोंकी छातियोंको चीरकर दूर दूर देशों में जा पहुंचे। जावा-सुमात्रा द्वीपों में भी वे प्राचीन कालसे बसे हुए हैं। और यह सिलसिला अब तक भी है। न जाने कितने सिन्धी वहां अभी हैं अथवा तो वहांके बनकर रह रहे है। कुछ तो सिन्धको भी भूल गये होंगे। क्यों कि उन्हें हजारों वर्ष बीत गये हैं। सिन्धी जावामें से इतना धन कमाते थे कि सिन्धी में अभी तक कहावत है कि "जेके व्या जावा-से सिवोई थ्या सावा" अर्थात जो भी सिन्धी जावा (यव द्वीप) में गया वह शीघ्र ही धनवान बन गया। वहीं से आगे बढ़कर चीन जपानमें भी जाते थे। सिन्ध की लोक कथाएं प्राय: 'चीन विलायत' को जहाज भरकर व्यापारके लिये जाते हुए लोगों' के विषयमें सुनी जाती थीं। (भारतके देश और धर्म भक्त सुबाश चन्द्र बोस जब यहां की स्वतंत्रता संग्रामसे निराश होकर वहां 'आज़ाद हिन्द फौज' का निर्माण किया तब वहां के सिन्धियों ने उन्हें बहुत धन तथा सोनेके आभूशण दिये थे)। वहांसे ही सिन्धी किसी प्राचीन कालमें दूर पैस्फिक महासागर स्थित ईस्टर द्वीपमें भी पहुंचे। प्राचीन कालसे ही सिन्धी वहां बसे हुए हैं, केवल खोज करनी है। श्री फर्गुसन ने ठीक लिखा है कि "ग्रीस और रोम मर चुके हैं, वे गुज़र चुके। इस समय हम आधुनिक यूरोप के युगके मध्यमें रहते हैं, जिससे बाहर निकल कर उसके मुकम्मल होनेका सोच ही नहीं सकते। परन्तु भारत एक मुकम्मल (सम्पूर्ण) संसार है जिसके उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें समुद्र, पूर्व में जंगल और केवल पश्चिममें ही एक रास्ता बाह्य ससारसे व्यवहार रखने के लिये है, जो है, सिन्धू नदी। इसी नदी मार्गमे इस (भारत) ने जातियों के पीछे जातियों तथा अनगिनत लोगों को बाहर भेजा है।[2]

(1) "The great monolith at Axum is of Indian inspiration; 'the idea Egyptian, but the details Indian. An Indian nine-storied pagoda translated in Egyptian in the first century of the Christian era'! He notes its likeness to such Indian temples as Bodh-Gaya, and says "It represents that curious marriage of Indian with Egyptian art which we should expect to find in the spot where the people came in contact." (History of Architecture, Vol. I. P. 142-3)

(2) "Greece and Rome are dead and have passed away, and we are living so completely in the midst of modern Europe, that we cannot get (*Cont.*)

फिर दूसरे स्थान पर लिखता है कि "हमें सदैव यही बताया जाता रहा है कि भारतवासी समुद्र यात्रासे घृणा करते हैं (जो बिलकुल गलत है) तथा लम्बी सामुद्रिक यात्राएं भी नहीं करते हैं। फिर भी यह असम्भव नहीं लगता कि जावा के बसाने वाले गंगा से नहीं परन्तु सिन्धू नदी से आए, जो लंका के गिर्द चक्कर काटकर लाखों की संख्यामें समुद्रसे घिरे दूर घर में आए।"[1]

आगे चलकर सिन्ध और सिन्धी के ११वीं शतीके सुन्द नामक राज्यका वर्णन करते लिखता है "उस समय हम इस द्वीप (जावा) को राज्योंमें विभक्त पाते हैं जिसमें से एक की राजधानी बटाव्या से ४० मील पूर्वमें पजाजाराम थी जिसमें द्वीप का सारा पश्चिमी 'सुन्द' वाला भाग था। वे सुन्द (सिन्धी) वास्तुविद्या (architecture) में निपुण नहीं थे। इसलिये उसमें कोई भी इमारत नहीं है सिवाय कुछ बेडौल हिन्दू स्मारकों के"। :-

"*At this time we find the Island divided into two kingdoms; one, having its capital at Pajajaram, about 40 miles east of Batavia, occupied the whole of the western or SUNDA part of the island. The Sundas (Sindhis) However, were not a building race. It contains no building except the rude Hindu remains above referred to.*" (*Ibid, P. 420*)

चीनी यात्री फाहियान (Fah-Hian) ने जावा निवास्योंका वर्णन करते लिखा है कि "इस देशमें नास्तिक और ब्राह्मण बसे हुए हैं, बौद्ध मत का विशेष ज्ञान नहीं हैं।[2] इस प्रमाण

outside to contemplate it as a whole. But India is a complete cosmos in itself; bounded on the north by the Himalyas, on the south by the sea, on the east by jungles inhabited by rude tribes, and only on the west having one door of communication, across the Indus, open to the outer world. Across that stream, nation after nation have poured their myriads into her coveted domain, but no reflex waves ever mixed her people with those beyond her boundries." (History of Indian and Eastern Architecture, Vol. I, Introduction, P. 4)

(1) We have always been led to believe that the Indians hated the sea, and dreaded long sea voyages, yet it seems not impossible that the colonists of Java came not from the valley of the Ganga, but from that of the INDUS; passed round Ceylon in thousands and tens of thousand on their way to their distant sea-girt home." (Ibid, P. 414-5)

(2) Beal: Buddhist Records of the Western World, Introducation, P. LXXXI.

और इसी प्रकार वास्तुविद्या से अनजान लोगोंका वर्णन करते श्री फर्गूसनने लिखा है कि "सातवीं शती से पूर्व इस द्वीप समूह में बौद्धमतके प्रवेशसे भी पूर्व यहां ब्राह्मण रहते थे जो बात त्रितरष्ट (Tritresta or Tritastri) ब्राह्मण की अनुश्रुतियों से ज्ञात होती है जो श्री रैफिल्स (Sir S. Raffles, Vol. II. P. 77) ने एकत्रित की हैं। वे ब्राह्मण वास्तुविद्या से अनजान थे (उसी प्रकार जैसा ऊपर सिन्धियों के लिये लिखा गया है)। सारे द्वीपमें गोल पत्थर अनघड़ अवस्थामें पाए जाते हैं, जो हिन्दू देवताओं के हैं। परन्तु वे ऐसे बेडौल हैं कि गणेश को गणेश भी नहीं समझा जा सकेगा"। इसके टिप्पणीमें वे लिखते हैं कि "बटाव्या सोसायटी के पिछले आधे चित्र तो उन मूर्तियों के हैं जो ईस्टर आइलैंड के बुतोंसे समानता रखते हैं" इसके लिये हमने मोहनजो-दरो अध्यायमें लिखा है)। (Ibid, P. 219-20)

श्री बुद्धप्रकाश ने जावा सुमात्रा द्वीपों में सिन्ध और सिन्धी नामका उल्लेख करते लिखा है "सुमात्रा के दक्षिण किनारे पर एक नगर, धारा, पहाड़ी, शिखर तथा अन्तरीप-सबका नाम इन्द्रपुर है। यह सारा प्रदेश प्राचीन कालमें सिन्धु अथवा सिन्ध कहलाता था। इस समय भी सिन्दंग नामी एक गांव तथा एक छोटी नदी है जो इन्द्रपुर नदी में मिलती हैं। गांव सिन्दर और सिन्तु कहलाते हैं तो जिला और नदी सिन्दुर है जो बेंगकुलेन प्रदेशमें हैं। चीनी लेखक चाओ-जु-कुआ ने इस प्रदेशका नाम हिस्न-तो लिखा है और इसे सन-फो-ची पर निर्भर १५ राज्यों में गिना है। बारबोसा (सन् १५१६) ने एक राज्यका नाम जुन्द लिखा है जो एक नगर के नाम (सिन्ध) पर से था और सुमात्रा के पश्चिमी किनारे पर था। यही बात पार्कोची ने भी लिखी है। यद्यपि इसने सुमात्रा तथा लंका को एक करके लिखा है। दोनों चाओ-जु-कुआ ने जुन्द तथा बारबोसाने हिस्न-तु में छोटे दाने वाले (काली) मिरचका उल्लेख किया है। (यह जुन्द तथा सुन्द दोनों सिन्ध शब्द के बिगड़े हुए रूप हैं)। इस प्रदेश के मिरच उतम होने के कारण भारतियों (सिन्धियों) ने यहां व्यापारी मण्डियां खड़ी कीं तथा एक उपनवेश बसाया जो सुन्द के जलडमरुमध्य तक फैला हुआ था। सिन्धियों ने वहां रहते दो अन्य द्वीपों को भी सिन्ध नामकी संज्ञा दी जिनमें एक सी-पोरह तथा सन्द्यन द्वीप को मिलाकर सिन्दई कहा जाता था, जैसाकि टालमीने लिखा है।[1]

(1) On the south coast of Sumatra, a town, a stream, a mountain peak and a headland bear the name of Indrapura. This region was know as SINDHU or Sindh in ancient times, as the Hindu (Sindhi) colonists had established themselves there. SINDANG is, even nowadays, the name of a village and of an upper tributary of the Indrapura river. Village called Sindar and Sintu, and a district and river, known as (*Cont.*)

सुमेर (SUMER)! एश्या माइनर के सुमेर्यन लोगों के विषयमें श्री हाल (H. R. Hall) ने लिखा है कि "इनका सादृश्य भारत के द्रावड़ों से मिलता है। इसलिये निश्चय से सुमेर्यन लोग भारतवासी हैं जो स्थल अथवा समुद्र मार्गसे पर्शया (ईरान) से होते हुए दो नदियों (टाइग्रस तथा यूफ्रेटस) के घाटियों में पहुंचे। (परन्तु) उनका मूल घर भारत में संभवत: सिन्ध था जहां से ही वे एश्या माइनर में पहुंचे"।[1]

केवल इस छोटे से उल्लेख के लिये श्री हाल ने तीन तो टिप्पण लिखी हैं। इस अनुसार शायद (Perhaps) शब्द यहां निरर्थक बन जाता है और साफ साफ सिन्ध ही स्पष्ट होता है।

Sindur, exist in the Bengkulen district further down the coast. The Chinese writer Chao-ju-kua refers to this region as Hsin-t'o and counts it among the fifteen states dependent on San-fo-ch'i. Barbosa, writing in 1516, mentions a kingdom called Zunda after a city, bearing this name, on the southern side (west coast) of Sumatra *(Ramusio, Navigationi et Viaggi I, P. 315)*. This reference is repeated by Porcocchi. Though he sometimes confuses Sumatra with Ceylon *(L'isole pir famose del Mondo, descritte da Thomaso Porcocchi, P. 186)*. Both Chao ju-kva and Barbosa speak of very small-grained pepper being found in Zunda and Hsin-t'o respectively, the former adding, besides, that the pepper of Hsin-t'o was the best. This datum establishes the identity of Zunda and Hsin-t'o. It appears that, on account of the excellence of pepper, produced in this region, the Indians established trading stations there, and, then set up a floursbing colony, which must have comprised the whole of the intervening tract of Sea-coast extending, perhaps, so far down as SUNDA strait. The colonists, residing there, also seem to have lent their name to the islsnd, facing its sea-board, Si-Porah, the two Pageh, Sandian Island (Pulo Sanding), collectively called Sindai by Ptolemy." (India and the World. Pp. 47-48)

(1) *"And it is by no mean improbable that the Sumerians were an Indian race which passed, certainly by land, perhaps also by sea, through Persia to the valley of the Two Rivers. It was in Indian home (perhaps the Indus valley) that we suppose for them that their culture developed."* (*The Ancient History of the Near East, Pp. 173-4*)

श्री लेंगडन (Prof. S. Langdon) ने एक लेख "A New Factor in the Problem of Sumerian Origins" में मोहन-जो-दरो जैसी एक मोहर (seal) किश (Kish) से मिलने पर लिखा था कि "यह अयोध्या के सगर (Sargon of Agade) के काल की है। यह कहा नहीं जा सकता कि यह किस प्रकार हुआ, सिवाय यह स्वीकार करने के कि, यह सिन्धू लिपि उस कालमें जानी पहिचानी थी और केवल सुमेर के प्राचीन कालमें"।[1]

अंतमें स्वयं ही प्रश्न करता है कि "अब प्रश्न होता है कि क्या सुमेर्यन लोग सच-मुच स्वयं सिन्धी नहीं हैं?" परन्तु विश्वस्नीय उतर न देकर कहता है "खोज हो रही है, अंततः कोई ठीक ऐतिहासिक निर्णय दिया जा सकेगा।" :-

"*But all this raises the question as to 'Whether the Sumerians are not really the Indus Valley people themselves'...... Facts and facts only* ***must*** *be published until some reasonable and defensible history can be based upon them*" (*Ibid*)

श्री फ्रैंकफर्ट (Dr. Fankfert) ने लिखा है कि "मेसोपोटाम्या के आरंभिक निवासी ईरानके पर्वती प्रदेशों से आए, जिनकी संस्कृति सिन्ध तक फैली हुई थी (अर्थात सिन्ध से ईरान होकर वहां पहुंचे ?)"।:-

"The earliest settlers in Mesopotamia, then, were people descended from the Iranian Highland and possessed of a culture which extended eastwards to the very borders of the Indus Valley."[2]

यूनान(GREECE)में! हीराडोटस ने, एश्या माइनर के ऊपर बासफोरस का उल्लेख करते लिखा है कि "वहां शीत (सर्दी) इतनी सख्त होती है कि समुद्र ही जमकर बर्फ हो जाता है और सारा

(1) "*Once more a seal of the early Indus valley civilization has been found in Mesopotamia, this time 9 metres below the surface, at Kish; it may be dated as contemporory with Sargon of Agade...... It is wholly impossible to explain the presence of this ancient Indian script on a press seal of 2800 B.C.,...... unless it be admitted that the script was known in this period. In other words, native Indian seals ...... occur in the age immediately before Sargon; the script was known in Sumer in the early period only, and remains absolutely unchanged. Now several hundred of these seals have been excavated at Mohenjo-Daro and Harappa, in the Indus Valley, and they also show no evolution in epigraphy, although found at different levels.*" (*Journal, Royal Asiatic Society [1931], Pp. 593-6*)

(2) *Journal, Sind Historical Society [Karachi], Vol. III, P. 71*

बासफोरस तथा सिथ्यन लोग पानी के लिये बर्फ पर टूट पड़ते हैं और गाड़े भरकर सिन्दी (Sindi) प्रदेश को ले जाते हैं।[1]

● दूसरे स्थान पर ब्लैक-सी के पास का उल्लेख करते सिन्दीका (Sindica) बंदर की दूरी दी है।[2]

● दूसरे स्थान पर ईरानी सम्राट ज़ेरिक्स (Xerex) के ग्रीस आक्रमण के समय थर्मापली की ओर बढ़ने के लिये यूनानमें सिन्धू (Sindus) नामी बंदर पर जहाज़ों को एकत्रित होने का उल्लेख: है।[3]

● रूसी पुरातत्ववेता (Archaeologist) श्री मान्गेट (Alexandr Lvovich Mongait) ने Black Sea के प्रदेश में मुख्य तीन संस्कृतयोंका वर्णन किया है। एक विशेष एश्या और यूरोप के दक्षिण पूर्व वाले मैदान की सिथ्यन, जो बग नदी और दिनेपर (Dnieper) नदी की, दूसरी उपरोक्त के पश्चिममें तथा तीसरी सिन्दी (Sindi) और मेटई (Meotae)।[4]

दूसरे स्थान पर इस सिन्दी संस्कृतिकी खुदाईका वर्णन किया है, जहां से अच्छे घर मिले हैं। गोर्गिप्या (Gorgippia) उसका प्रधान नगर था। एक बंदर Portus Sinducus छठी शती ई० पू० में था और पांचवी शती ई० पू० में वहां पत्थरका कोट भी था।[5]

श्री बुद्धप्रकाश ने भी शक-द्वीपमें सिथ्यन लोगों के वर्णन में इसका उल्लेख किया है।[6]

● सिन्धयानी ! पैलेस्टाईन में इस Sindiany नामका एक गांव तथा घाटी हैं।[7]

सर्वश्री इल्यट और डाऊसन (Sir Elliot & Prof. Dowson) ने अपने ग्रंथ के परिशिष्ट में सिन्ध नाम के स्थान, कबीले, बंदर आदि लिखे हैं, जो हम यहां यथावत प्रस्तुत कर रहे हैं, हिन्दी में लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।:-

● Kerketikique; *ferox ea gens* SINDIQUE superbi :-

"We have also a Sindikus portus-a town of SINDA- the tribe of SINDIANI- the town of SINDICA- the tribe of SINDONES- the town of SINDOS (this is still called Sindjak, a haven near Anapa Runnell's

(1) Herodotus, Book Four, P. 251

(2) Ibid, P. 270 (3) Ibid, Bk. 7, P. 454

(4) Archaeology in the U.S.S.R., P. 157 (5) Ibid, 201-2

(6) "The SINDIANS and Saurmtae were important tribes of their group. Among them women dominated the life of the tribe."

(India and the World, P. 198)

(7) W. M. Thomas; The Land and the Book, P. 489

map makes it correspond with Anapa itself)-the tribe of SINTI. Here, again, it may be admitted, that some of these may be different names for the same tribes and the same places.

"The old reading of the passage in Herodotus, where the SINDI are mentioned (IV, 28), was orignally Indi, but commentators were so struck with the anomaly of finding Indians on the frontiers of Europe, and they considered it so necessary to reconcile the historian with geographers, that they have now unanimously agreed to read SINDI, though the reading is not authorized by any ancient manuscripts. It is impossible to say what is gained by the substitutions; for SINDI must be themselves Indians, and the difficulty is in no way removed by this arbitrary conversion. Hesychius, morever-no mean authority-says that the SINDI of the Euxine were, in reality, Indians, nay, more though writing two centuries before our Kerks are even named or alluded to, he expressly calls Korketae also 'an Indian nation'.

"It has been remarked, that even if no such direct testimony had been given, the hints that remain to us concerning character and manners of these SINDI, the peculiar object of their worship, and their dissolute religious rites and sorceries, would have no doubt as to the country from which they were derived.

" It is from this region that the Indian merchants must have sailed who were ship-wrecked in the Baltic and presented by the king of the Suevi, or of the Batavi, to L. Metelles Celar, the pro-consul of Gaul; for they could not have been carried round from the continent of India to the north of Europe by the ocean. Various solutions of this difficulty have been attempted. It has been surmised that they might have been Greenlanders, or mariners from North America, or even painted Britons; but the fact cannot be disputed, that they are called plainly " Indians", by all the authors who have recorded the fact, however improbable their appearance in those regions might have been."[1]

(1) History of India, Vol. I, Appendix, Pp. 511-2

फिर लिखा है :-

"We may here make a passing allusion to another memorial of Indian connexion with these parts. The southern neighbours of these Euxine SINDI were the Kolachians. C. Ritter, in his Vorhalle, quoted at the end of this note, asserts that they came originally from the west of India [SINDH]."[1]

दूसरे स्थान पर मेदी (मेद) और करकेटी का उल्लेख करते उसकी टिप्पण में सिन्धी नामों के संकेत (प्रमाणों सहित) इस प्रकार दिये हैं :-

1_ "*Homer, tells us also of SINTIANS* (सिन्धी) *of Lemnos, who 'spoke a strange language.'* (*Illiad, i, 594; Odessy, viii, 294*)*; and they had before his time been noticed by Hellanicus of Lesbos; Fragmenta, 112-113. From these, the Scholiast on Thucydides says, that the THRACIAN SINDIANS were derived. More Indian families might be mentioned in Lycia and other intermediate countries, but enough has been adduced on the subject to suit our present design."* (*Ibid, P. 516*)

2_ "*Respecting the Sindi, Sindus, Sintica, and similar names in Thrace and Macedonia, see Herodotus, VII, 123."*

3– "*This extraordinary juxtaposition of SINDI and Maidi again occurs in Thrace."*

4_ "*The SINDI were by some authors considered to be remnant of the Maiotae* (*Med?*)".

● टालमी ने सिन्ध को 'इन्डो-सिथ्या' कहा है परन्तु पिल्नी ने 'सिथ्या-सिन्दीका' (Sindica) कहा है।

● श्री राईट (Wright) ने लिखा है कि "ब्रिटन (Briton) में रोमन राज्यके समय भारती (सिन्धी?) सैनिक टुकरी (cavalary) सिरेन्स्टर (Cirencester) में नियुक्त थी"।[2]

जिप्सी सिन्धी ! यह सारे यूरोप, एशिया, ईजिप्ट आदि देशों में घुमन्तु जाति है जिसमें विभन्न प्रांतों के भारतवासी सम्मिलित हैं, जो हज़ारों वर्षों से घूमते ही रहते है। यूरोप के प्रत्येक भागमें फैले हुए हैं। उनकी भाषा एक है, स्थानिक अवस्थाओं के कारण भेद है। प्राय: फलित ज्योतिषका काम करते हैं। अच्छे घोड़ेसवार हैं। नाम, संस्कार सब हिन्दू हैं. जिनके लिये न मालूम क्यों जिप्सी (Gypsy) नाम प्रसिद्ध हो गया है। अनेक विद्वानों ने उनके मूल जाननेके प्रयत्न किये हैं। भारत में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने उनके विषय में स्वयं उनसे मिलकर, अभ्यास कर अच्छी खोज की है। उस अनुसार :-

(1) Ibid, P. 513 (2) Celt, Roman and Saxon, P. 252

"वे अपने को कालो (Kalo) तथा औरों को पर्नो (Parno-सफेद) कहते हैं। अपनेको मनुष (Manusch) तथा औरोंको पराए (Gadsio) कहते हैं। इन्हीं जिप्सी जाति में सिन्धी भी हैं। परन्तु लगभग सब अपने को सिन्ती (Sinte-साथी) करके पुकारते हैं।[1]

इससे सिद्ध होता है कि उनमें अधिकता सिन्धियों की है। हो सकता है कि ऊपर हीराडोटस के प्रमाणों से जो Sindi आदि उल्लेख आए हैं वे प्राय: प्राचीन काल के ये सिन्धी जिप्सी हैं। श्री राहुल ने इसके टिप्पणमें लिखा है कि "सिन्धियों की छोटी जाति, जिसका हीराडोटसने उल्लेख किया है, जो तमन प्रायद्वीप और पूर्वी सीमा पर पांटस किनारे से अनपा तक व्यापार करते थे"।[2]

श्री राहुल ने एक अंग्रेज़ श्री फिज़गेराल्ड (B. V. Fitzgeralid) की राय दी है जिसमें वह कहता है कि "बहुत लोग जिप्स्यों में भेद करते हैं और उन्हें स्पेन के जिप्सी, हंगरी के जिप्सी, अथवा एशिया के जिप्सी कहते हैं और ऐसा मानते हैं कि ये सब विभिन्न हैं तथा विभिन्न बोलियां बोलते है, क्यों कि वे विभिन्न देशोंमें रहते हैं। वास्तवमें उनमें ऐसा कोई भेद नहीं है। वे सब केवल जिप्सी हैं और मूलत: केवल एक भाषा ही बोलते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि वे कहां से आये; उत्तर-पश्चिम भारत, सम्भवत: लूरिस्तान (ईरान) से। कैसे भी वे हिन्दू-कुश प्रदेश से कहीं से आये।" (वही, (पृ० १३)

जर्मनी में वे अपनेको ज़िन्दो (सिन्धी) कहलाते हैं (पृ. १५)। नीदरलैण्ड के Leyden विश्वविद्यालय के श्री इस्तवान (Valyi Istvan) ने उनकी भाषाका अभ्यास करके बताया है कि तुर्की, ग्रीस, हंगरी, बोहेम्या, रशिया, पोलण्ड और सीर्या के जिप्स्यों के एक हज़ार के लग भग शब्द सस्कृत से हैं। (पृ० १४)

कुछ की राय है कि वे मंगोल आक्रमण के समय संस्कृत परिवार से कट कर दो भागों में बंटकर ईरानमें पहुंचे। वे अच्छे संगीतकार, घोड़ेसवार तथा सोने चांदी की कला में प्रवीण थे। ईरानमें उनका अच्छे संगीतकार होने के नाते स्वागत किया गया और उन्हें लूरी (लाड़ी-सिन्धी) कहा जाता था। ईरान में वे अभी तक इसी नामसे विख्यात हैं। वे लम्बे समय तक वहां रहे। (पृ० २६)

बादमें वे रोम, मनोची और सिन्ती (सिन्धी) सीर्या और आर्मेन्या को गये। जहां वे फिर अलग हो गये। कुछ काकेशस मार्गसे जार्जिया और रशिया में गये। कुछ अनातोल्या मार्गसे तुर्की में गये जहां वे फिर बंटकर अलग हो गये। बड़ा समुदाय रोमान्या, हंगरी और बोहेम्या में गया,

(1) Gypsy: Forgotten Children of India, P. 35

(2) "The little Aryan tribe of SINDOI mentioned by Herodotus, who carried on trade on the Taman peninsula, and on the east frontier coast of Pontus to Anapa." (Ibid)

दूसरे समुद्र मार्गसे क्रीट (Crete) से Corfu में आकर बसे। ईरान से दूसरा समुदाय जिसमें जीतन (Gitan-जत) और काले (Kales) थे, अरब मार्गसे Red Sea होकर और फिलिस्तीनसे ईजिप्ट में पहुंचे जहां लंबे समय तक रहे। बादमें इस्लामी आक्रमणके समय लिब्या से उत्तर आफ्रीका किनारे से स्पेन पहुंचे (बिलकुल प्राचीन कालका अपने पूर्वजों वाला मार्ग, जैसा ऊपर लिखा है)। ग्रीस (यूनान) में उन्हें Acingani कहा जाता था (और है)। (पृ० २८)

"सन् १४६० में वे इंगलैंड पहुंचे, जहां से एक समुदाय आयरलैंड में गया जिसका नेता John Faw था जो अपने को छोटे ईजिप्टका Earl कहलाता था, जिसका स्काटलैण्ड के राजा जेम्स चौथे ने स्वागत किया (वही)। ये प्राय: 'रोमनी' नामसे प्रसिद्ध हैं। इसप्रकार वे सारे यूरोप, एशिया न जाने कहां कहां फैल गये हैं। सन् १९३० में रशियामें उनकी ओरसे एक पत्रिका "O Nevo Drm" (नया धर्म) नामसे प्रकाशित हुई।

"दक्षिण फ्रांसके जंगली प्रदेश Camar Gue में वर्षमें एक वार २४ से २६ मैं तक उनका बड़ा मेला लगता है, जहां सब प्रकारके जिप्सी सम्मिलित होते हैं। वहां श्री वेथनी और संत सर की पूजा करते हैं। वहां वे धनी, वकील कवि, कलाकार, संगीतकार और नृत्यकार के रूपमें दृष्टिगोचर होंगे। वे रोमनी हों अथवा Manouche, सिन्ती हों अथवा जीतन, सारे संसार से आकर वहां एकतृत होते हैं"। (पृ ३१)

योगोस्लाव्याके विद्वान श्री उह्लिक (Dr. Rade Uhlik) कहते हैं कि, उन्हों ने जिप्सी भाषा के दस हज़ार शब्दोंका संकलन किया है जिनमें ६० प्रतिशत भारती हैं। (पृ १०४) और लिखते है कि :-

"*On the basis of common language and anthropological types it has been proved that Gypsies came from India. Morever names of gipsy tribes in Europe are similar to those in India such as Jat (Zutt), Sindhi (Sinte), and Lovari (Lohar)-Lari.*" (*Ibid P. 103*)

सिन्धी से मिलते उनके कुछ शब्द ये है :-

भेण (Phen-बहिन), बुख (Bukh-भूख), दुख (Dokh), काको (Kak), जिभ (chib-जीभ), छिक (chhik-छींक), सिरो (sero-सिर), कन (kan-कान), सालो (salo-साला), घोड़ो gra-घोड़ा), अगिलो (angla-आगे वाला) लूण (lon-नमक), मरण (merava-मरना), सुतो (sutto-सोया हुआ), इत्यादि। (P. 105)

रशियामें वे अति अधिक फैले और बढ़ गयेहै। रूसी गीत, लोक गीत, और साहित्य जिप्सी लोक-गीतोंसे प्रभावित है। कोई भी रुसी शासक अथवा प्रतिष्ठित परिवार ऐसा नहीं होगा जिसमें जिप्सी रक्त न मिला हुआ हो। रुस में जो भी रंगारंगी और सुन्दर है इन जिप्स्यों की देन है। उनके देवता ब्रह्मा (Baramy), इन्द्र (Jandra), लक्ष्मी (Laki) और माता हैं। (P. ११४)

यूरोपके साज़ों में Violin इनकी देन है। इस साज पर वे राग रामकली (Ram gillie) गाया करते हैं।

रुस (रशिया) में! संस्कृत साहित्यमें सिन्धके रुरुक नगरका वर्णन आता है। बौद्ध काल तक यह प्रसिद्ध था। और यह आश्चर्य की बात है कि रशिया के जाने पहिचाने इतिहासमें उसके प्रथम वंशका नाम भी रूरिक (Rurik) है। जिसके विषयमें और कुछ मालूम नहीं है। रशिया वालोंको स्वयं यह मालूम नहीं कि उनके देशका नाम रूस अथवा रशिया कैसे पड़ा। सिन्धी सिन्ध के ऊपर्ले भाग (सक्खर- शिकारपुर) से मध्य एशिया (तुर्किस्तान) और रशिया तक निकट दौर में भी जाते रहे हैं। रशिया में सिन्धु संस्कृति के अवशेष भी मिले हैं। ऊपर एक सिन्दी वंशका रशिया में होना दिखाया गया है। ब्लैकसी पर SINDI नामका बंदर अभी तक है। क्या आश्चर्य कि यह रुरिक वंश भी सिन्ध के रुरुक का हो! इस विषय में हमें और कुछ ज्ञान नहीं है।

अरब (Arabia) में! सिन्ध और हिन्द अरबों में प्राचीन काल से ही दो अलग अलग देश माने जाते रहे हैं। ऐसे ही सम्मिलित रुप में वे दोनों को हिन्दी (हिन्दू) भी कहते हैं। नहीं तो साधरणतया सिन्ध निवासी को सिन्धी तथा भारत निवासी को हिन्दी कहते हैं। जिस प्रकार सिन्ध एक देशका नाम है, इसी प्रकार वहां की कौमको भी सिन्दी कहते हैं। 'लिसानुल अरब' में है कि:-

"वालसिन्द जयलमारुफ वालजमग्र असनाद व सनोद, व सिन्द बलाद
तकौल सिन्दी अलवाहिद, व सिन्द अलजमाइत मिस्ल ज़ंजी ब ज़ज"

अर्थात, सिन्द एक प्रसिद्ध जन-समुदाय है, उसका बहुवचन असनाद और सनूद होता है। और सिन्द कुछ नगरों के समूहका नाम है। तुम वहां के निवासी को सिन्दी कहोगे और बहूवचन के लिये सिन्द का प्रयोग करोगे जिसप्रकार ज़िंजी और ज़िंज"।

मसिन्द: और सिन्द नामके कपड़े सिन्धमें तैयार होते थे, जो अरब में इस्तेमाल होते थे। 'रजल सिन्द' के समान 'सोब सिन्दी' और 'दुजाज सिन्दी' भी इस सिन्ध देश के नाते प्रसिद्ध थे। यहां के निवासी प्राचीन अरबमें (इस्लामसे भी पूर्व) बहुत बड़ी संख्या में बसे हुए थे। विशेषकर यमन प्रदेशमें वे अधिक और प्रभावशाली थे। इसलामके नबी मुहमद के बचपन के काल की बात है जब हब्श: के राजा अब्रह के पुत्र मस्रूक ने यमन पर आक्रमण कर सैफ बिन यज़न को अधिकार-च्युत कर दिया और उसने कस्री अनोशीर्वान के पास इसका उल्लेख किया तो उसने पूछा कि:-

"ऐ अलाग़र्ब: अलहब्श: अम अलसिन्द"

अर्थात, किन विदेश्यों ने यमन पर अधिकार किया है? हब्श्यों ने अथवा सिन्धियों ने?[1]

(1) सीरत इब्नहशाम, भाग १, पृ० ६३

इसके बादकी बात है कि मुहमद ने अपने मृत्यु के कुछ महीने पूर्व भारती (सिन्धी) लोगोंका उल्लेख एक स्थानपर किया है, जब खालिद रज़ी के नेतृत्व में निजरां से बनी हारिस इब्न कॅब कबीले का वफद उसके सामने आया तो उनको देखकर कहा :-

"मन् हो लाइ अलकोम ? कान्हम रजाल अलिहन्द" अर्थात ये कौन लोग हैं जो हिन्द के लोगों के समान हैं। (वही, भाग २, पृ० ५६२)

अरब में सिन्ध के ये लोग इस्लामसे पूर्व और पश्चात भी थे। अरबों ने इन सात सिन्धी कौमोंका उल्लेख किया है जो अरबमें मौजूद थीं - जत, मेद, सबाब्ज़, अजाम्रः, असाव्रः, ब्यास्रः और तकाकः। इनमें से प्रथम तीन तो अब भी सिन्धमें हैं, दूसरे तीन न जाने कौन हैं। बाकी तकाकः सम्भवतः ठाकुर अथवा ठक्कर हैं।

१- जत अर्थात सिन्धी जत! सांवले रंग के विशेष हिन्दू हैं, जो पुराने ज़माने से अरबमें बड़ी संख्यामें बसे हुए थे। मुहमद ताहिरने 'मजमअ बहार अलान्वार' में लिखा है :-

"व हम जिन्स मनअ आस्वद इन (अलसुन्द) व अलहुनूद"।

(अर्थात ये लोग काले रंगके सिन्धियों तथा हिन्दियों के भांति हैं)

ये सिन्धी जत अरबमें भिन्न भिन्न प्रकार से पहुंचते थे। इनमेंसे कुछ अब्ल (बस्रः) से अमान और बहरीन तक समुद्री किनारे पर बसकर पशुपालन करते थे। ईरानी सेनामें भर्ती होकर ईरान और अरबमें रहते थे जिसका केन्द्र इराक इब्लः तथा दक्षिणमें यमन था। सोक़ अहवाज़ से फारस तक वाले रास्ते पर उन्हीं के नाम पर जत नगर प्रसिद्ध था। खोजिस्तान प्रदेश में 'होम्तःअलजत' नामक सुन्दर नगर, नदी किनारे पर बसा हुआ था।

मक्के और मदीनः में भी सिन्धी इस्लाम से पूर्व बसे हुए थे। मदीनः में एक जत वैद्य था जिसने पैगम्बर मुहमद की पत्नी का इलाज किया था। मुहमद के लिये रिवायत है कि वह अपने बाल भी जतों के ढंग पर बनवाता था। उसने हदीस मैराजमें हज्रत मूसा के डील डौल की तुलना जतों से की है। सही बुखारी में है कि :-

"व इमा मूसा फा आदम बस्त कान्ह मन् रजाल अनजत"

(अर्थात मूसा गंदुम रंगी तथा लम्बा कद था। जैसे कि वह जतों में से था)

हज्रत अली से भी कुछ जतों ने भेट की थी तथा अपनी भाषा (सिन्धी) में बात चीत की। अरबों में इस्लाम के जन्म के समय भी वे स्वतंत्र रूप में रहते तथा उनके मजहबी मामलों में अपने इछा अनुसार भाग लेते थे। बाद में वे इस मामले में निर्पक्ष हो गये; बादमें ये शाम में जा बसे। भैंस पालने का रिवाज भी इन्हों ने आरंभ किया इस से पूर्व शाम के लोगों ने भैंस नहीं देखी थी। भींडी और हिन्दाना भी इन जतों की देन है।

२- मेद! पुराने जमाने में मेद भी अरब में रहते थे और ईरानी सेना में थे। अरब इन्हें 'समुद्री आपदा' कहते थे क्योंकि ये समुद्रमें अरबों के जहाजों तथा नावोंको लूटते थे।

इस्तखरी ने लिखा है कि :

"व अलकुफार फी हद्दूद बलाद अलसिन्द अनमाहम अल बद: व कोम यअरफूं बालमेद"

(अर्थात- सिन्ध देश की सीमामें जो हिन्दू हैं वे बौद्ध हैं तथा एक जन-समुदाय को मेद कहते हैं)। इने मेदों ने ही अरबों का तथाकथित जहाज लूटा था जिस कारण सिन्ध पर अरब आक्रमण हुआ।

३- सयाब्ज:। इमामलुगत जौहरी ने लिखा है कि "सयाब्ज: सिन्ध की एक कौम है जो बस्र: में रहती तथा जेलों की सुरक्षा करती थी"। इब्न फक्य हमदानी ने लिखा है कि "सिन्ध के मुख्या को सबाब्ज: कहते हैं।[1]

अरब-सिन्ध आक्रमण के पश्चात बहुतसे सिन्धी पकड़कर गुलामों की तौर पर अरब में ले जाये जाते थे। वहां बहुत से अपनी योग्यता के कारण बड़े विद्वान बन गये। कुछ वजीर बने. राज्यपाल बने तो विद्वान भी बने। कुछ ये हैं:-

१- अबूमअशर सिन्दी! यह मूल हिन्दू सिन्धी आठवीं शती का विद्वान युद्ध-बंदियों के साथ हजाज पहुंचा जहां अनेक बड़े घरानों में गुलाम बनकर रहा। बाद में अपनी योग्यता से हदीस का विशेषज्ञ बन गया तथा 'अबूमअशर नजीह बिन अब्दुलरहमान' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। मुहमद बिन वाकदी तथा इमाम सफ्यां सोरी जैसे बड़े बड़े विद्वान उसके शिष्य थे। इसकी बहुतसी रिवायतें 'जामअ तमुंजी' में नकल की गई हैं। मदीने में रहता था। खलीफ़ा मह्दी अबासी उसका भक्त था और उसे सन् ७७७ में बगदाद ले आया। सन् ७८६ में उसकी मृत्यु हुई तो खलीफा मह्दी ने उसके जनाजे की नमाज़ पढ़ाई और बगदाद के राजकीय (शाही) मकब्रा में उसे दफनाया गया।

२- अबू अब्दुलमलक बिन इबी मअशर! यह उपरोक्त विद्वानका पुत्र था और पिता के समान बड़ा विद्वान था।

३-४ इमाम ओजाई तथा इमाम अबू हनीफ: नौमान बिन सालिस! ये दोनो भी बड़े विद्वान थे। इनका जन्म यद्यपि शाम और इराक में हुआ किन्तु इनके बाप दादे सिन्धी हिन्दू थे।

५- हाफिज अबू मुहमद खल्फ बिन सालिम! यह भी गुलामों के साथ सिन्धसे कूफ: (इराक) ले जाया गया, जहां वह हदीसका प्रसिद्ध विद्वान हुआ। उसके शिष्योंमें हातिम, अबूलकासिम बज्वी, अहमद बिन अलीआबाद और उस्मान दार्मी जैसे बड़े विद्वान थे।

६- अबूनस्र! यह (सिन्धी हिन्दू) आलहकम के गुलामों में था। जब आजाद हुआ तो कुरान और शरीयतका बड़ा विद्वान बना तथा फतह बिन अब्दुलाह के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(1) यह सब संक्षेपमें हमने काजी अतहर मुबारकपुरी की पुस्तक "अरब व हिन्द अहद रसालतमें" से लिया है। सिन्धी संस्करण में विस्तारसे लिखा है।

७- अबुलअत्ताअ सिन्दी ! इसका प्रसिद्ध नाम अफ़लज बिन यसार था। बाप बेटे दोनों सिंधसे बनू असद द्वारा गुलामों के तौर कूफः पहुंचे। उसे कवितामें बहुत रुची थी जिसमें उसने कमाल हासिल किया। बड़े बड़े अमीरों की दरबारों में उसे बड़ा सनमान मिला। यह मूल सिंधी होने के कारण सिंधी ढंग पर उच्चार भेद करता था इसलिये इसने सुलेमान बिन सलीम नामी एक अमीर से एक गुलाम लिया जिसका नाम उसने 'अत्ता' रखा, जिसे अपना पुत्र बनाकर अपना उपनाम 'अबूलअत्ता' रखा। इसलिये इतिहासमें यह इसी नामसे प्रसिद्ध है।

८- इसहाक़! यह अबासी कालका प्रसिद्ध संगीतज्ञ था।

९- अबूजिला सिन्द्ही ! यह भी हिन्दू सिंधी गुलामों से था। इसकी कविता के कुछ बंद हमने ऊपर पृष्ठ १९८ पर दिये हैं।

१०- सिन्द्ही बिन सिद्क: ! यह विद्वान, साहित्य तथा काव्य प्रेमी था।

११- कशाजम सिन्दी बिन शाहक ! यह दसवीं शती का विद्वान था। इसकी कविता तथा साहित्य पर रचना है।[1]

● सिन्धके पंडित अरबमें ! इब्न नदीमने लिखा है कि "अरबों के शासन में भारत के विषय में जिसने अधिक रुची ली वह यहया बिन खालिद बरमकी तथा बरामकी परिवार था। जिसकी रुची तथा प्रयत्न भारत के विषयमें वहां के पंडितों और वैद्यों को भारतसे बगदाद बुलाने में प्रसिद्ध है।[2]

यह बरमकी और बराम्कः कौन है, यह देखें। यह मूलतः बौद्ध भिक्षु और बौद्ध विहारका प्रमुख (पुजारी) था। सय्यद सुलैमान नद्वी ने उसके भारती होने का दावा किया है।[3] परन्तु हमारी रायमें यह सिन्ध के किसी बौद्ध विहार (मठ) का प्रमुख था और इसके लिये हमारा दावा यह है कि यह जब किसी प्रकार भी बगदाद में पहुंचा और अपनी हिन्दू विद्वता के बल पर अबासी वंशका प्रधान मंत्री बन गया तब इसने हर अवसर पर केवल सिन्ध को ही स्मरण किया। वैद्य और विद्वानों को बुलाने के लिये इसने सिन्ध में ही अपने आदमी भेजे थे। उस समय अथवा उससे भी बहुत पूर्व सिन्धमें बौद्ध मत का प्रचार था तथा सिंधमें बौद्ध विहार मौजूद थे।[4] मोहनजो-दरो के ऊपर भी प्रथम बौद्ध अवशेष ही मिले थे। संस्कृतमें मुख्य अधिकारी को प्रमुख कहा जाता है जो अरबीमें बरमक और बराम्कः बन गया है।

बराम्कः वह परिवार था जिसने बगदाद के अबासी खलाफत में ५० वर्ष (७५३ से ८०२, अर्थात सिन्ध आक्रमणक से ४० वर्ष पश्चात) तक शान्ति, व्यवस्था, त्याग तथा दानशीलता से मंत्री

(1) सय्यद अबूजफर नदवी "तारीख सिन्ध", पृ० ३५६-३६५
(2) किताब अलफेहर्सत, पृ० ३४५ (3) अरब व हिन्द के तालुकात, पृ० १४४
(4) Illiot: History of India, Vol. I. P. 150

पद के कर्तव्य निभाये। सच्च कहा जाय तो अब्बासी वंशकी कीर्ति, ख्याति तथा राज्यमें सुव्यवस्था इसी सिन्धी हिन्दू-बौद्ध बराम्क: वंशके कारण थी। इन्होंने भी प्रथम खलीफ: सफाह से लेकर पांचवें खलीफ: हारुन अलरशीद तक इस वंशके लोगों ने वज़ीरी किया वास्तवमें बादशाही की। बराम्क: नहीं होते तो यह अबासी वंश भी नहीं चमकता। इन्हों ने सिन्ध-हिन्द के पंडितों और वैद्योंको बगदाद में बुलवाया, उन्हें बड़े पदों पर नियुक्त किया जिनके वे योग्य अधिकारी भी थे। और फल स्वरूप उन्होंने अरब को विद्या-ज्ञान का प्रकाश दिया जिसकी तेज़ रोशनीमें उन्होंने वहशी खूनरेज़ी तथा कत्ल-ग़ारत का पेशा छोड़कर विद्या और आदर्श की ओर कदम बढ़ाया, जिसका यश इन बरमक्यों को ही है।

तो जब अब्बासी खलीफ: विशेष कर मन्सूर के विद्या प्रेमकी सुगंध फैली तब, अलबेरुनीके शब्दों में "इस तारा-ग्रहका ज्ञान, जैसाकि अलफ़ज़ारी और याकूब इब्न तारिकसे विदित होता है उस हिन्दू पंडितसे मिला जो खलीफ: अलमन्सूर (सन् ७७१) के समय सिन्ध के एक प्रतिनिधि मण्डल के साथ बगदाद में पहुंचा"।:-

"These star-cycles as known through the canon of Alfazari and Yaqub Ibn Tariq, were derived from a Hindu who came to Baghdad as a member of the political mission which Sindh sent to the Khalif Almansur, A.H. 154 (=A.D. 771)".[1]

"और खलीफ: की आज्ञासे दरबारके एक गणितज्ञ इब्राहीम फज़ारी की सहायता से उसने उसका अरबी में अनुवाद किया"। (अखबार अलहुक्माअ, क़फ्ती, प० १७७)

जाहिज़ ने इन सिन्धी हिन्दू वैद्यों का वर्णन किया है, जिनको यहया बिन खालिद बरमकी ने सिन्ध से बगदादमें बुलवाया था-भल्ल, मन्क:, बाज़ीगर, फिल्बफिल और सिन्दबाद। ये नाम ऐसे रुपमें हैं कि उनके मूल रुपका अनुमान करना कठिन है। जब फारसी का 'चिराग' अरबीमें 'सिराज' रुप धारण कर जाता है जो नाम अरब के समीप भी हैं तो संस्कृत नामों का क्या हाल होता होगा, यह समझा जा सकता है। इनमें से मन्क: तथा भल्ल: का उल्लेख इब्न अबी उसीबअ ने किया है। मन्क: के विषयमें लिखता है "यह चिकित्सा तथा उपचार में बड़ा प्रवीण था। एक वार खलीफ: हारुन उलरशीद सख्त बीमार पड़ गया। बगदाद के सब चिकित्सक-वैद्य उपचार से निराश हो गये। तब उसके एक दरबारी अबू अम्र ने सुझाव दिया कि हिन्दू चिकित्सा को आज़माना चाहिये। इस पर मन्क: पंडित को बुलाया गया, जिसके इलाज से खलीफ़: स्वस्थ हो गया जिससे खलीफ: ने बहुत धनादि देकर उसे पुरस्कृत किया। (तबक़ात उल तबाअ, भाग २, पृ० ३३)

(1) Sachau-Alberuni's India, Vol II, P. 15

कुछ समय के बाद "एक दिन शाम को मन्क: अपने मित्रों के साथ बगदाद की बाजारमें घूम रहा था। अचानक उसकी दृष्टि एक व्यक्ति पर पड़ी जो जमीन पर कपड़ा फैलाकर, उसपर कुछ जड़ी-बूटी, शीश्यां आदि रख कर सामने जनसमूह को संबोधित करके कह रहा था कि "मेरे हाथ में एक अद्भुत दवाई है जो बुखार, दर्द, सरदर्द, खांसी, रक्त बहाव आदि सैकड़ों बीमारियोंके लिये अकसीर है। आओ! एक खरीद करलो।" मन्क: अभी नया था, अरबीका पूरा ज्ञान न होने के कारण साथियों से पूछा। सुनने पर उसने फौरन कह दिया "मलक उलअरब जाहिल" अर्थात अरबका शासक मूर्ख है। साथियों के पूछने पर बताया कि "यह नीम-हकीम इसप्रकार रोक टोक विना अपनी दवाइयां बेच रहा है और लोग क्यों कि अनजान हैं, वे अवश्य इसके प्रभाव में आकर दवाई खरीद लेंगे और अनेक लोग इस अनिष्ट दवा के कारण बीमार होंगे। यदि खलीफ: को ऐसा विश्वास था तो फिर मुझे क्यों बुलाया?

दूसरा वैद्य सालिह (शुद्ध हिन्दू नाम का ज्ञान नहीं है) बिन भल्त:, जिसके लिये भी इसी लेखक उसीबअ मे लिखा है कि, एक वार खलीफ: का चचेरा भाई अर्धांग (लकवा) से पीड़ित हो गया। दरबार के प्रसिद्ध यूनानी हकीम जिब्रईल बिन बख्तीशूअ ने उसके मृतक होनेका निर्णय भी दे दिया। तब जाकर बरमकीने इस सिन्धी पंडितको कहा, जिसने सफल इलाज किया।

इसी वैद्य के लिए दूसरे स्थान पर लिखा है कि "इब्न दाय: का बयान है कि उस अहमद बिन रशीद कातिब (लेखक) ने अपने स्वामी सलाम अब्रश के प्रमाण से बताया कि "एक दिन खलीफ: जब दोपहरका भोजन करने बैठा उस समय राजकीय हकीम (वैद्य) उपस्थित नहीं था (उस कालमें नियम था कि राजा भोजन को छूते भी नहीं थे जब तक शाही हकीम ने उस भोजन की परीक्षा न की हो) इसलिये खलीफ: क्रोधित हुआ। इतनेमें हकीम आ गया और खलीफ: की मुखाकृति देख कर बात समझ गया और उसे अपनी देरका कारण बताया कि वह खलीफ: के सौतले भाई इब्न इब्राहीम बिन साहिब को तपासने गया था जो रमक (अंतिम प्राण की अवस्था) में था, और बचने की आशा नहीं। यह सुनकर खलीफ: रोने जैसा हो गया। विचार किया कि किसी दूसरे अच्छे तबीब (वैद्य) को दिखाया जाय। जाफर बरमकी ने बताया कि शाही हकीम ने मरीज (बीमार) को यूनानी तिब से देखा है और सालिह (सिन्धी वैद्य) मरीज को हिन्दू ढंग से तपास करेगा, इसलिये हिन्दू हकीम को अवसर देना चाहिये। खलीफ: की आज्ञासे उसने सिन्धी पंडित को रोगी के पास भेजा। उसने उनकी अच्छी तरह तपास की, और बताया कि सालिह आज रात को नहीं मरेगा। यह सुन रशीद ने भोजन किया। रात को शराब पी, नींद की। लेकिन प्रात: बगदादसे दूत ने आकर कहा कि इब्राहीम मर गया। यह सुन खलीफ: ने जाकर मंत्री को बुरा भला कहा और हिन्दू तिब को भी। हारुन वहां पहुंचा। सालिह पंडित भी वहीं खड़ा था। दफनाने की तैयारियां हो रही थीं। कोई बोल भी नहीं

सकता था। किन्तु जब अंदरसे धूप आदिकी सुगंध फैली उस समय सालिह ने सहसा चिल्ला कर खलीफः को कहा, अमीर! मुझे चाहे कुछ भी करना परन्तु परमात्मा के लिये अपने भाई को जीवित तम दफनाएं, वह जीवित है, मुझे उसके पास जाकर देखने की आज्ञा दें। जो मिलने पर वह अकेला इब्राहीम के पास गया। रावी कहता है कि हमने शरीर को हथेली से ठोकने की आवाज सुनी, फिर वह आवाज बंद हो गई। बादमें हर्ष-ध्वनि सुननेमें आई और सालिह ने बाहर आकर हारून को कहा कि चलो एक आश्चर्य दिखाऊं। फिर खलीफः, मैं, मसरुर तथा अबूसलीम सब उसके साथ इब्राहीम के पास गये (जो मरा हुआ पड़ा था)। (सिन्धी हकीम, सालिह ने एक सुई निकालकर इब्राहीम के बायें हाथ के अंगूठे के नाखून तथा मांस के बीचमें चुभोदी। इब्राहीमने हाथ खींच कर अपने शरीर के पास किया। सालिह ने कहा! क्या कोइ मृत (मुरदा) भी इस प्रकार कष्ट अनुभव कर सकता है? खलीफःने कहा कि, नहीं। सालिह ने कहा अब इसके कफन के कपड़े उतारे जाएं, फिर स्नान कराया जाय ताकि हनूत (मिश्रण उस सुगंधीका जो मृतक को लगाया जाता है) की गन्ध नष्ट हो जाय, तथा वे कपड़े पहनाये जाएं जो वह बीमारी की अवस्था में पहनता था और वही सुगंधी भी। और उसे उसी कमरे में ले जाया जाय जहां वह सोता और रहता था। अबू सलमः रावी का कहना है कि खलीफेने यह सब कुछ करने की आज्ञा दी और जब सब हो चुका तब हम सालिह के साथ वहां गये जहां इब्राहीम की मृत देह पड़ी थी। सालिह ने अपने दवाखानेसे नसवार और एक अन्य औज़ार मंगवाया। थोड़ी देर उसने इब्राहीम को वह नसवार सूंघवाई तो उसके शरीरमें चेतन्ता हुई और वह छींकें मारता रशीदके सामने बैठ गया और उसके हाथ को चूमा। रशीद ने माजरा (हाल) पूछा तो बताया कि "आज ऐसी नींद आगई कि याद नहीं आता कि कभी ऐसी मजे की नींद आई हो। स्वपन में देखा कि एक कुता मेरी ओर बढ़ रहा है। उससे बचने के लिये हाथ ऊपर उठाया तो उसने बाएं अंगूठे में काट दिया जिस कारण मैं जाग उठा और अभी तक दर्द है। फिर उसने अपना वह अंगूठा दिखाया जिसमें सिन्धी पंडित सालिह ने सुई चुभोई थी।" (वही, पृ० ३५)

इस बात के रावी अबू सलाम का कहना है कि इब्राहीम इसके पश्चात बहुत समय तक जीवत रहा और खलीफः अल्-महदी की लड़की से उसका विवाह भी हुआ, मिस्र तथा फिलिस्तीन का वल्ली (राज्यपाल) भी रहा, जहां उसकी समाधि उस समय भी विद्यमान थी जिस समय अबू उसीबआ यह सब लिख रहा था।[1]

तीसरा पंडित इब्न धन था। जिसके लिये इब्न नदीम ने लिखा है कि वह बगदाद में बरामकः की शाही औशधालय का मुख्य अधिकारी था। (अलफेहर्सत, पृ० ३४२) और उन सिन्धी पंडितों में से था जो संस्कृत ग्रंथों का अरबी में अनुवाद करने के लिये नियुक्त थे। इस पंडितने

(1) हिन्दुस्तान अरबों को नज़रों में, भाग २, पृ० २४५-२५४

सिन्ध के महान आयुर्वेदाचार्य वाग्भट के ग्रंथ "अष्टाङ्ग संग्रह" का भी अरबी में अनुवाद किया था।("किताब अस्तांकर अलजामअ तफसीर इब्न धन", वही, पृ ४२१)

परन्तु अनुवाद कर्ता सिन्धी पंडितों में सबसे प्रथम वह पंडित था जिसने वहां सिद्धांत (सभवत: 'सूर्य सिद्धान्त') नामक संस्कृत ग्रंथ का अनुवाद किया जिसका अरबी नाम "अलसिन्द हिन्द" प्रसिद्ध हुआ। उस सिन्धी पंडित के बगदाद में दो विद्वान शिष्य हुए-एक इब्राहीम फज़ारी और दूसरा याकूब बिन तारिक। याकूब ने इसी पंडितसे अर्कन्द (संभवत: खण्ड खाद्यक) भी सीखा था।[1]

चौथा सिन्धी पंडित "सिन्द बाद" है जिसकी रचना 'किताब सिन्दबाद' है तथा पश्चिमी साहित्यमें "Sindbad the Sailor" नामसे प्रसिद्ध है। मसौदी इसकी पुस्तकका मूल नाम "किताब उलवज़रअ अलसऽब वालइल्म व अम्राअतुल मलक" (अर्थात सात मंत्री, विद्वान और राणी की कहानी) बताता है और लिखा है कि यह वही पुस्तक है जिसका अरबी अनुवाद 'किताब सिन्दबाद' के नाम से प्रसिद्ध है"। (मरुजुलजहब, भाग १, पृ० ६७)

इस प्रकार दूसरे भी अनेक पंडित अरबमें गये जिन्होंने संस्कृत ग्रंथोंका अरबीमें अनुवाद कर वैदिक ज्ञान-विज्ञान का सूर्य वहां चमका दिया। सबसे महत्व पूर्ण बात है हिसाबी अङ्कोंका अरब और फिर यूरोपमें प्रचार। इस से पूर्व लोग अंगुलियों पर गिनती कर काम चलाते थे। ये हिन्दू अङ्क सीखने से अरब उसे हिन्द अथवा हिन्दुओं का ज्ञान कहकर "इल्म हिन्दसः", "हिसाब हिन्दी" अथवा "अर्काम हिन्द्य" कहते हैं। (तबकात अलामम [काज़ी साइद अंदलसी] पृ० १४) अरबों ने उन अङ्कों को यूनान-रोममें फैलाया तो वहां उनका नाम Arabic Figures हो गया। उनका प्रचार यूरोपमें रोमन साम्राज्य के समय हुआ तो उनका नाम 'रोमन फिगर्स' हो गया। अरबी अङ्क (१ से ६) मूलत: गैर-अरबी होनेका प्रमाण यह है कि वे अरब लिखावट के प्रतिकूल हैं अर्थात हिन्दी अङ्क बाएं से दाएं की ओर लिखे जाते हैं। परन्तु अरब इन्हीं अङ्कोंको पढ़ते समय दाएं से बाएं ओर पढ़ते हैं। जैसा कि हिन्दी २ और ३ लिखकर फिर दाएं से बाईं ओर करके पढ़ेंगे तो वे अरबी के ٢ और ٣ दिखाई देंगे। इसी प्रकार दूसरे अङ्क भी थोड़ी हेर फेर से ऐसे दिखाइ देंगे। परन्तु अंग्रेज़ी में तो २ और ३ बिलकुल हिन्दी जैसे ही हैं इसलिये कि वे लिखे और पढ़े भी बाएं से दाईं ओर को जाते है। सय्यद सुलेमान नद्वी ने लिखा है कि "इब्न नदीम ने 'सिन्धी-खत' के शीर्षक से रुमी-हिन्दी अर्काम (अङ्क) नकल किये हैं और हज़ार तक लिखने का तरीकः बताया है। इससे स्पष्ट है कि अरबोंमें यह तरीकः सिन्धी पंडितों के माध्यम से प्रचलित हुआ"।[2]

(1) अरब व हिन्द के तालुकात, पृ० १३७-१३६ (2) वही, पृ० १३५

अरबमें खलीफः मामूं अलरशीद के दरबारी मनजम (ज्योतिषी) अलख्वाजंमी (७८०-८४०) ने उन अङ्कों के रुप परिवर्तन किये। अलख्वार्ज़मी (इस विद्वान के नामसे ही अंग्रेजी में एक प्रकार के हिसाब का नाम Algorism अथवा Algorithm प्रसिद्ध है) के पश्चात अरबोंमें हिन्दी हिसाब (गणित) को फैलाने वाला दूसरा व्यक्ति अली बिन अहमद निस्वी(६८०-१०४०) है जिसने 'अलमवनअ फी अलहिसाब अल हिन्दी' नामक पुस्तक लिखी। यद्यपि उस समय तक यूनानियों की Arithmetic भी अरबी में अनुदित हो चुकी थी फिर भी हिन्दी गणित (हिसाब) का महत्व वैसा ही रहा और यह हिन्दू विद्या वहां इतनी प्रिय थी कि प्रसिद्ध हकीम बोअली सीना (सन् १०१५) ने बचपन में ही वह हिन्दी हिसाव एक सिन्धी जिप्सी से सीखा जो इस विद्या में बड़ा माहिर (अभ्यस्त) था। (अयून अलनबाग़, भाग २, पृ० २)

इस प्रकार बराम्कः वंश ने अपने जातीय विद्या का जो फैलाव किया जिस से न केवल अरब किन्तु सारे संसार को हिन्दू ज्ञान से परिचित कराया तथा अरब शासन को एक आदर्शी मोड़ दिया। वह सब उन्हें यदि सिन्धी नहीं तो हिन्दी अवश्य सिद्ध करता है।

आयुर्वेद के फैलाव से कितने हिन्दी शब्द अरबी में प्रचारित हो गये। ज़ंजबील अर्थात सोंठ तो कुरान में भी घुस गया है। अत्रीफल (त्रिफला) तो हर हकीम के जुबां पर है। सिन्धी 'भत' (भात) भी वहां सर्वसाधारण का शब्द है। ख्वाजंमी ने इसकी व्याख्या करते स्पष्ट लिखा है कि "यह बीमारोंका खाद्य है। यह शब्द सिन्धी है। तथा दूध और घी में चावल पकाकर तैयार किया जाता है"। (मफातीह अलउलूम, पृ० १८६) सिन्धमें अब भी इसका व्यवहार होता है और उसे भात नहीं परन्तु भत (ڀت) कहा जाता है।

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय आठवां

● **Prof. Weber, says :**

"In surgery too, the Indians seem to have attained a special proficiency, and in this department European surgeons might, perhaps, even at the present day still, learn something from them, as indeed they have already borrowed from them the operation of rhinoplasty."

(History of Indian Literature, P. 270)

● Shri Bahadur Chand Chhabra, Ex-Assistant Director General of Archaeology, India, writes:-

"I do not want to go deep into the larger question of the theory of evolution which is today at the base of archaeological interpretations but I must need say that the history of Indian civilization begins with knowledge and not with barbarism. The kind of knowledge which has been preserved therein has stood the test of time and is still unsurpassed in certain respects. It believes in an evolution of limited extent only and that for a definite period of time in the history of man's life, as also in that of a nation. To base the entire history of mankind, down the present day, on the ape-man and the archaeological ages of Palaeolithic, Neolithic, Bronze and Iron, is a travesty of facts. Even in the present age of great scientific achievements the ape-man cannot produce the homo spines, obviously because they are two different species. Recent archaeological excavations by Soviet archaeologists have proved abundantly that these ages have no meaning because different cultural ages are found in different regions and that sometimes they co-existed in the same region which cannot be explained on the basis of the theory of evolution. Most of the objects discovered in these excavaions belong to periods of less than 2000 B.C. Then, what about the great civilization of Crete, Egypt and Sumeria whose findings are still a wonder of the world? Indians believe in the Cycle Theory (Meghdut, 2/46), birth, rise, climax, decline and death,— which is nature's law."

● Prof. Seeley, says about Hindus:-

"Perhaps no race has shown a greater aptitude for civilization. Its customs grew into laws and were consolidated in codes. It imagined the division of labour, it created poetry and philosophy and the beginnings of science. So far then it resembled those gifted races which created our own civilization." (Expansion of England, P. 241)

अध्याय नवां

सिन्धी भाषा * Sindhi Language

भाषा मनुष्यके विचार प्रकट करने का साधन है, एक दूसरे से व्यवहार का उपाय है। भाषा न हो तो मनुष का किसी दूसरे मनुष से कोई भी व्यवहार असंभव हो जाय; बशर्ते कि बोलने और सुनने वाले वह अवश्य जानते हों। नहीं तो बाद में उस समुदाय के उसी भाषा बोलने वालों की एक अलग बोली बन जाती है। परन्तु यह सब किसी मूल भाषा से बदल कर होता है। मूल से हमारा अभिप्राय आदि सृष्टि की भाषा। हम मनुष को बंदर की सन्तान नहीं मानते, किन्तु परमात्मा की सीधी उत्पति। ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की तो उसमें वह सब कुछ जो भी उत्पन्न किया वह अथवा उसका थोड़ा अंश भी मनुष बना नहीं सकता। बस! इश्वरीय उत्पति का यही मूल रहस्य है। प्रकृतिकी ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मनुष बना सके। मनुष सुन्दर आकार चित्रित कर उसमें पेड़ अदि बना उनमें सुन्दर फल-फूल चित्रित कर सकता है। मगर वे सब केवल मन तथा आंखों को मोह सकते हैं, उनका दूसरा कोई उपयोग नहीं हो सकता। एक पतला सा पत्ता बनाना भी मनुष की शक्ति से बाहर है। मनुष केवल इतना कर सकता है कि ईश्वरकी प्रकृति के तत्वों का उपयोग कर दूसरी घटिया दर्जेकी कोई कृत्रिम चीज़ बना सकता है। जिस प्रकार कागज के फूल-पत्तों से गुलदस्ता बना सकता है, वह क्यों न रंगों तथा सुन्दरता में प्राकृतिक फूलों जैसा दिखाई दें, लेकिन स्वयं हम भी उसे केवल 'नकली फूल' कहेंगे न कि फूल।

ठीक इसी प्रकार परमात्मा ने मनुष्य उत्पति के साथ मनुष के व्यवहारिक ज्ञान के लिये अपने ज्ञान का वह अंश दिया जो मनुष के लिये आवश्यक है और उस ज्ञान को समझने के लिये भाषा का भी ज्ञान दिया। और उस ज्ञान को समझने के लिये भाषा का भी ज्ञान दिया। और यह सब सृष्टि उत्पति में मनुष्य उत्पति के समय प्रकाश किया और जो कुछ किया वह हर समय के लिये एक-समान है, सृष्टि-प्रलय तक। उसमें कभी किसी प्रकार का भी परिवर्तन असंभव है। जिस प्रकार ईश्वर का सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, जल, मिटी (माटी), वायु, अग्नि तथा आकाश केवल एक है तथा सृष्टि उत्पति से लेकर आजतक इनमें कोई परिवर्तन नहीं आया हैं, उसी प्रकार उसके ज्ञान वेद तथा भाषा (वैदिक अथवा संस्कृत) भी एक ही है। वह सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञाता है और परिपूर्ण है इसलिये उसकी प्रत्येक वस्तु-क्रिया पूर्ण है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। उसे कोई आवश्यक्ता नहीं है कि भिन्न-भिन्न उन देशों तथा जातियोंमें जिनके साथ उसका कोई सीधा अथवा निकट का सम्बंध (कहा जाता है) हो वहां अथवा उनके लिये समय-समय पर अपने एजंट भेज कर किसी नई चीज़ का प्रचार करे। नए मत-मज़हब केवल प्राचीन अथवा

आदि-धर्म को नये सिरे से उपस्थित करते हैं। कोई भी नई चीज़, जो मनुष की कोई आवश्यक्ता पूरी कर सके, उन मत-मज़हबों के पास नहीं होती। क्यों कि स्वयं परमात्मा के पास भी उस से अधिक कोई नई चीज़ नहीं है जो वह दे सके। इसलिये कि वह परिपूर्ण है इस लिये वह जो उत्पन्न करता है अथवा प्रदान करता है वह भी सम्पूर्ण है। यह उसका नियम है। नियम के विरुद्ध स्वयं परमात्मा भी कुछ नहीं कर सकता। और वे नियम भी वेद में प्रतिपादित कर दिये हैं। इसी अनुसार उसने वह निश्चित ज्ञान वेद दिया। उसने किसी जाति अथवा देशविशेष को ज्ञान नहीं दिया। क्यों कि जब सृष्टि उत्पति थी ही रही है तो किसी जाति अथवा देश के होने का प्रश्न ही नहीं है जिसे कोई ज्ञान दिया हो। सूर्य भारतमें एक और अमेरीका में दूसरा अथवा ज्ञान चीन में एक और यूरोप, में दूसरा तथा भाषा रूसमें एक और अफ्रीका में दूसरी नहीं दी। सब केवल एक प्रकार तथा एक समय पर दे दिया और बस! मनुष्य की आवश्यक्ता पूरी हो गई और उसके प्रयोगका रहस्य भी बता दिया जो सब पूर्ण था और है तो जब सूर्य और चन्द्र एक और समान हैं तो ज्ञान वेद अथवा अन्य क्या हो सकता है। यदि होगा तो उसमें अवश्य कोई नवीन्ता-विशेषता होनी चाहिये अथवा पहले कोई कमी अथवा अपूर्णता हो जिसे यह सम्पूर्ण कर सके। तो फिर परमात्मा पर यह दोष आरोपण होगा, कि वह 'परिपूर्ण' नहीं है जो पहले ही सम्पूर्ण ज्ञान नहीं दिया। आज तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला न ही हो सकता है। उल्टा बाद के मज़हबी मनुष्य-कृत पुस्तकों में, जिन्हे इल्हामी किताब कहा जाता है, में इस सब की पुष्टि की गई है, जैसाकि ऊपर हमने दिखाया है कि एक ही मनुष जाति उत्पन्न की तथा एक ही ज्ञान (इल्म) वेद और भाषा दिया।

अब आइये जाति शब्द की भी व्याख्या कर दें। क्यों कि संसार के किसी भी मत-मज़हब अथवा इल्मी किताबमें जाति शब्द की व्याख्या नहीं है, क्यों कि संसारका कोई भी मत मज़हब जानता ही नहीं। ईश्वर ने केवल एक मनुष्य जाति उत्पन्न की न कि कौमें; एक ही ज्ञान वेद दिया न कि अनेक इल्हाम, एक ही भाषा प्रदान की न कि अनेक बोलियां। इसी प्रकार पशुओं में भी केवल एक-एक जाति, तो पक्षियों आदि सबमें की केवल एक-एक जाति उत्पन्न की। जाति किया है? वैदिक परिभाषा (definition) यह है कि :-

"समान प्रसवात्मिका जाति"

अर्थात-जाति वह है जिसमें संतानोत्पति की सामानाता हो। मनुष्य एक है, यह हम सब जानते हैं, जिसे केवल मनुष-जाति कहा जाता है न कि और कुछ। हम इन्सान ज़ात एक ही मानते हैं। कौमियत और देश भक्ति केवल एक पागलपन है और इसीलिये संसार में झगड़े लड़ाइयां होती हैं। हम धर्म-भक्ति मानते हैं।

तो जाति का नियम यह है कि पुरुष और स्त्री (न कि पुरुष और घोड़ी), घोड़ा और घोड़ी

(न कि घोड़ा और गदही), कुता और कुतिया (न कि कुता और बिली), मोर और मोरनी (न कि मोर और चिड़िया) इत्यादि। इस प्रकार से संतानोत्पति होनी तथा वंश चलता है. इसके विपरीत कदापि नहीं। इस के लिये देश-काल का भी कोई बंधन नहीं है अर्थात पुरुश एक देश का और स्त्री दूसरे देश की, एसा नहीं है। पुरुष अथवा स्त्री चीन और जपान की, पुरुष अथवा स्त्री यूरोप और अमेरीका की अथवा पुरूष-स्त्री रुस, आस्ट्रेल्या, आफ्रीका की, क्यों न कोई कहां का भी हो। केवल स्त्री और पुरुष के मेलाप से फिर वही पुरुष अथवा स्त्री का ही जन्म होगा। इस में धर्म-मज़हब का भी कोई बंधन नहीं है। चाहे पुरुष हिन्दू और स्त्री मुसलमान हो अथवा दूसरी तरह या पुरुष बौद्ध और स्त्री ईसाई हो अथवा दूसरी तरह मगर उस से जन्म केवल लड़के अथवा लड़की का होगा। इसी प्रकार पुरुष भारत का और स्त्री अमेरीका की अथवा पुरुष रूसका और स्त्री आस्ट्रेल्या की अथवा इसी प्रकार, मगर दोनों के मेलाप से केवल मनुषका ही जन्म होगा न कि किस पशु-पक्षीका। क्यों कि मनुष और पशु-पक्षी की जाति समान नहीं है। इसी प्रकार घोड़ा क्यों न अरब का हो अथवा ईरान का और घोड़ी तुर्किस्तान की हो अथवा भारत की, मगर दोनों के मेल से उत्पन्न केवल घोड़ा (नर अथवा माद:) ही होगा, न कि मनुष अथवा और कुछ। तोता क्यों न आस्ट्रेल्या का हो और तोती अमेरीका की, मगर दोनोंके मेलाप से उत्पन्न केवल तोता होगा न कि चिड़िया। पक्षी और पशु के अनेक जातियों के समान मनुष की जाति भी केवल एक है। उत्पति केवल वीर्य और रज के मेल से होती है वह भी समान योनी में मिलने पर। मनुष अपना वीर्य कुतिया अथवा गदही के रज से मिलानेसे कोई भी उत्पति नहीं कर सकता। क्यों कि समान जाति नहीं है। इसलिये कि अप्राकृतिक है। ईश्वरीय नियमों को कोई भी बदल नहीं सकता। आज का विज्ञान शताब्दियों के बीतने पर भी उस सृष्टि सर्जनहार के नियम के विरुद्ध कुछ कर ही नहीं सकता। तोड़कर तबाही ला सकता है लेकिन बनाकर सुख शान्ति नहीं दे सकता। वह केवल सृष्टि नियमों के पालन से ही स्थापित हो सकती है।

ठीक इसी प्रकार ज्ञान और भाषा भी है। भाषा केवल एक मूल भाषा जिसका कोई नाम नहीं है। व्यवहार के लिये उसे ईश्वरीय, वैदिक अथवा वर्तमान का संस्कृत कह सकते हैं लेकिन है भाषा और केवल एक भाषा। वर्तमान की बाकी सब बोलियां हैं जो उस मूल से बिगड़ कर बनी हैं। जिस प्रकार संसार के लोगों का विभिन्न देशों में वहां की जल-वायु के कारण रुप-रंग बदल-बिगड़कर बना है, लेकिन उन सब के मूल में वह केवल मनुष्य हैं।

बस! इस रहस्य को न समझ कर मनुष गुमराह हुआ है और अपने को बंदर की संतान मानने और सिद्ध करने के लिये लंगड़े विज्ञान को विकास-वाद का पलस्तर चढ़ा रहा है। बावजूद इसके कि पुराने मज़हबों ने भी इस वैदिक-ईश्वरीय सच्चाई को स्वीकार किया है।

Old Testament में वेद के इस सत्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि "देखो! मनुष्य जाति एक है तथा उन सबकी भाषा एक है"। :-

"And the Lord, said, behold, the people is one, and they have all one language; and this they begin to do: and now nothing will be restrained from them which they have imagined to do."[1]

उसी स्थान पर ऊपर यह कहा है कि "सारी पृथ्वी पर केवल एक भाषा थी और एक ही वाणी थी"। :-

"And the whole earth was of one language, and of one speach."[2]

अब या तो बाईबल गलत और उसके अर्थ करने तथा मानने वाले गलत अथवा तो जो हमने लिखा है वही सत्य है जिसका बाईबल ने भी अनुमोदन किया है।

कुरान में भी यही सच्चाई कही गई है। सूरत अलबक़: में है कि :-

" कान् इलनास उम्मत वाहिदत्त "।

अर्थात- एक समय में सब मनुष एक ही धर्म को मानने वाले थे। इससे भी बढ़कर तो सूरत अलशोरी में आया है कि :- " शरअ लकम मन अलदीन वही ब: नोहाव अलजी अवहीना बमा वसीना ब: इब्राहीम व मूसा व ईसा "।

अर्थात ईश्वर ने तेरे लिये वही मज़हब-ईमान निर्धारित किया है जिस की उस ने नोह को आज्ञा दी थी। जो हमने तुम्हारे पास वही द्वार भेजा है और जिसकी हमने इब्राहीम और मूसा तथा ईसा को आज्ञा दी थी।

अर्थात परमात्मा का मूल आदेश यह है कि मैं ने सब 'वही दिया, दे रहा हूं और देता रहूंगा' जो पहले ही दिया था। कोई भी नई चीज नहीं है। नहीं तो ईश्वर पर यह दोष सिद्ध हो जायगा कि 'उस ने सच्चाई तथा समदृष्टि का उल्लंघन किया है। क्यों कि यदि कुरान सच्चा तो वह ज्ञान ईसा को क्यों नहीं दिया, यदि बाईबल सच्चा तो वह ज्ञान मूसा को क्यों नहीं बताई? इस प्रकार तो खुदा एक बाजारी दूकानदार के समान हुआ जिसे किसी ने थोड़ी अधिक रकम दी तो वह वस्तु उसी ग्राहक को देदी बाकी सब भूखे। प्रो० मैक्समूलर जैसे ईसाई विद्वान को भी विवश और निराश होकर इस लिये साफ कहना पड़ा कि :-

"If there is a God who has created heaven and earth, it will be unjust on his part if He deprives millions of souls born before Moses, of His Divine Knowledge. 'Reason and comparative study of religions' declare that God gives His Divine Knowledge to mankind from his first appearance on earth." (Science of Religions)

(1) Bible-Genesis: 11-6 (2) Ibid— 11-1

अर्थात-यदि पृथ्वी और आकाश का कोई बनानेवाला परमेश्वर है तो उसके लिये यह अन्याय वाली बात कही जायगी कि उसने मूसा से पूर्व लाखों इन्सानों को अपने ज्ञान से वंचित रखा (यदि वह सच्चा ज्ञान है तो)। तर्क और धर्मका तुलनात्मक अध्ययन, दोनों यह सिद्ध करते हैं कि परमात्मा सृष्टि के आरंभ में ही अपना दिव्य ज्ञान मनुष्य को देता है"। किन्तु एक ही समय, किस्तों में नहीं। नहीं तो यह भी इस प्रकार हुआ, जो खुदा को जितनी अक्ल थी वह हज़रत नोह को दे दी। फिर किसी कालेज में अधिक ज्ञान ग्रहण कर फिर वह मूसा को दिया और इसी प्रकार ईसा और मुहमद को भी देता गया। मगर सत्य यह है कि ये किताबें केवल इन्सानी किताबें हैं और पुराने अकीदों (विश्वासों) के सहारे तैयार की गई हैं; जिनमें कुछ पुरानी कहानियां तथा हिदायतें (आदेश) नक्ल कर उनको उस समय के स्थति, निजी हिदायतों इत्यादि के साथ जोड़ कर तैयार की गई हैं। वरना ईश्वरीय ज्ञान केवल एक, केवल एक ही समय, केवल आरंभ में, मनुष को प्रदान किया, जो हर काल के लिये समान है। जैसाकि ऊपर बाईबल और कुरान के प्रमाण से दिखाया गया है।

तो फिर समझ नहीं आता कि मनुष्य जाति और भाषा में वैमनस्य क्यों खड़ा किया जाता है। परन्तु इन्सानी स्वभाव है कि जब वह शरीफ होता है तो ईश्वरीय आज्ञा का आचरण करते स्वयं तथा संसार को सुखी रखने का प्रयत्न करता है और जब शरीर बनता है तो शैतान को भी शर्मिन्दा कर देता है। इसलिये सत्य केवल यह है कि ईश्वरीय ज्ञान केवल वेद है। यदि नहीं तो दूसरा कोई सिद्ध कर दिखाएं। हां, हम दूसरी किताबों को इल्हाम अवश्य मानते हैं। हम तो दयानन्द सरस्वती के "सत्यार्थ प्रकाश" को भी इल्हामी किताब मानते हैं लेकिन ईश्वरीय ज्ञान किसी को भी नहीं मानते। और श्री वान जकोलीट के शब्दों में "कितनी न आश्चर्य जनक सच्चाई है! हिन्दुओं का ईश्वरीय ज्ञान (वेद) जो धीरे धीरे तथा क्रम से सृष्टि रचना की व्याख्या बताता है, सब (माने जाने वाले) ईश्वरीय ज्ञानों में से केवल अकेला ऐसा एक ही है जो वर्तमान विज्ञान से पूर्णतः ठीक बैठता है"।[1]

क्यों कि श्री हक्सले (Prof Huxley) के अनुसार "सच्चा विज्ञान और सच्चा धर्म दोनों जुड़वां बहिने हैं। इनमें से किसी भी एक का अलग होना दोनों का मृत्यु है। विज्ञान जितना धर्मसे जुड़ा होगा उसकी उतनी उन्नति होगी, धर्म भी अधिक फलेगा फूलेगा जब उस की वैज्ञानिक

(1) "Astonishing fact! The Hindu Revelation (Veda) is of all Revelations the only one whose ideae are rare in perfect harmony with modern science, as it proclaims the slow and gradual formation of the world." (Bible in India, 186)

बुनियाद गहरी तथा सुदृढ़ होगी ''।[1]

इसलिये बाईबल के अनुसार सूर्य का चौथे दिन उत्पन्न होना, यह बात विज्ञान से किस प्रकार बैठेगी ? इस्लामी विश्वास के अनुसार बस, कुन! कह देने से दुनिया बन गई! ऐसी बात को विज्ञान किस प्रकार हज़म कर सकेगा ? दोनों बातें ग़लत तथा विज्ञान के विरुद्ध हैं।

यह वाद विवाद हमने यहां इसलिये छेड़ा है, ता कि मनुष के ज्ञान तथा आरंभिक भाषा की बुनियाद खड़ी करने में सुगमता हो। और यह सब लिखते हम यह भी स्पष्ट किये देते हैं कि वेद केवल हिन्दू-आर्य मात्र का धर्म ग्रंथ नहीं है न ही संस्कृत भाषा। क्यों कि जो चीज़ किसी एक की व्यक्तिगत सम्पति होती है वह सर्वसाधारण की कैसे हो सकती है। परन्तु जो वस्तु किसी विशेष की नहीं हैं वह सब की है। सूर्य किसी जाति विशेष का नहीं है, इसलिये सारे संसार का समान एक है। ईश्वर हिन्दू, मुसलमान अथवा ईसाई किसी का नहीं है, वह केवल मनुष्य मात्रका भी नहीं है परन्तु हर प्राणी का है। मेरे घर का कुवां केवल मेरे परिवार के लिये है, किन्तु पंचायती अथवा राजकीय कुवां सबका है सबका उसपर समान अधिकार है। कोई किसी को उससे रोक नहीं सकता। ठीक इसी प्रकार वेद ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण किसी एक का नहीं अपितु सारे मनुष जाति की समान सम्पति है, इसलिये कि वह ईश्वरीय ज्ञान है। मगर कुरान और बाईबल आदि के लिये ऐसा नहीं कहा जा सकता। कुरान केवल मुसलमानों के लिये है तथा बाईबल केवल ईसाइयों के लिये। कुरान में ही आता है :-

"व कज़लक अवहीना अलेक कुरानन अरबिया लतनज़र उम अलकरी व मन् हवलहा"। (सूरत अलशोरी)

अर्थात- और हमने इस प्रकार कुरान तुम पर अरबी वही द्वारा नाज़िल किया है ताकि (मक्के और उसके) आसपास (पड़ोस) में रहने वालों को डराओ।

और बाईबल के अनुसार तो यह दुनिया है ही ईसा के 'बाप का राज्य' (Father's Kingdom)। हिन्दू के मंदिर में मुसलमान और अछूत नहीं जा सकता और मक्का में कोई भी हिन्दू नहीं जा सकता। तो फिर ये दोनों ईश्वर के Residential Quarters कैसे हो सकते हैं। वे तो केवल हिन्दुओं के तथा केवल मुसलमानों के लिये हैं। और हम भी बावजूद यह सब लिखने के तथा बाईबल और कुरान का सनमान करते हुए कि इन दोनों में कुछ प्राचीन सच्चाइयां समाई तथा दोहराई गई हैं, हम केवल वेद को ही ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, इसलिये

---

(1) "True science and true religion are twin sisters and the separation of either from the other is sure to prove the death of both. Science prospers in proportion as it is religious and religion flourishes in exact proportion to the scientific depth and firmness of its basis."

नहीं कि हमारा मत-मज़हब हिन्दू है, किन्तु इसलिये कि हमने कसौटी पर कस कर देखा है कि वह ईश्वरीय ज्ञान है। परन्तु यदि आप और हम यह सत्य न भी मानेंगे तो ईश्वर आप हम को कुछ करेगा क्या ? जिस प्रकार कुरान और बाईबल को न मानने वालों के लिये दोज़ख (नरक) में भेज देनी की व्यवस्था है ? नहीं! केवल मनुष और सच्चे मनुष के समान होकर चलें तो भी बहुत है। खुदा को तो वैसे ही कोई मज़हब वाला मानता भी नहीं। उसके अवतारों तथा नबियों को खुदा से भी बढ़ चढ़ कर माना जाता है। हाली के शब्दों में :-

नबीको जो चाहें खुदा कर दिखाएं इमामों का रुतबः नबी से बढ़ाएं
मज़ारों पे दिन रात नज़रें चढ़ाएं शहीदों से जा जा के मांगें दुआएं
न तोहीद में कुछ खलल इस से आए
न इस्लाम बिगड़े न ईमान जाए

और यह अवस्था सब मज़हब वालों की है, चाहे हिन्दुओं की भी। तो फिर बाकी रहा ही क्या है। और बावजूद इसके बाईबल तथा कुरान में हमारी कही हुई उपरोक्त वैदिक सच्चाई स्पष्ट है।

और यही बात भाषा के लिये भी है। यदि ईश्वरने ज्ञान दिया तो अवश्य किसी भाषा में दिया होगा और वह भाषा इस समय वही स्वीकार की जा सकती है जो वेद के समान प्राचीन हो और उसमें वह ईश्वरीय ज्ञान हो और उस से प्राचीन और कुछ भी न हो। अतः यह भी केवल वेद भाषा, ईश्वरीय भाषा अथवा वर्तमान प्रसिद्ध नाम वाली संस्कृत भाषा है, जिस की छाया संसार की सब भाषाओं पर आज भी प्रत्यक्ष है। परन्तु आज हर विज्ञान में जिन देशों का योगदान है उनका मज़हब ईसाई है। उनका मजहब उनको ऐसा कोई मार्गदर्शन नहीं कराता जिसके सहारे वे अपने वैज्ञानिक अन्वेशणों का निरुपण कर सकें। और वैदिक (वेद) धर्म, क्यों कि केवल हिन्दुओं का समझा जाता है, इस लिये उसकी शतशः सच्चाई को मानना उनके लिये कठिन हो जाता है। बाईबल में तथा संसार के किसी भी मजहबी किताब में ईश्वर और उसकी सृष्टि उत्पति के ज्ञान का किसी प्रकार का भी वैज्ञानिक वर्णन नहीं है। इसलिये वे ईसाई विद्वान स्वयं खुदा (God) से ही विद्रोह कर बैठे हैं। परन्तु उसके लिये कोई प्रतिपुरुष (प्रतिनिधी) उन्हें चाहिये, जो न मिलने पर, उन्होंने डार्विन जी जैसी अवैज्ञानिक कल्पना घड़ ली, किन्तु God नहीं मिला। जहां है वहां सर्वसाधारण की पहुंच नहीं है। विद्वान जानते हैं, मानते हैं, स्वीकार भी करते हैं, परन्तु मजहबी तगदिली और यातनाओं से प्रत्येक डरता है। बस! केवल यही कारण है वेद को ईश्वरीय ज्ञान अस्वीकार करनेका। इसी प्रकार की परेशानी भाषा के साथ भी है। वह भाषा भी है वैदिक अथवा संस्कृत, यह स्वीकार करते हुए भी वे मजहबी अड़चन के कारण परेशान हैं। और आज एक शती से भी अधिक समय हुआ है इस भाषा शास्त्र (Philology) जैसे निरर्थक

ग्रौर कृत्रिम विज्ञान को, लेकिन बना कुछ नहीं। सब निराश होकर हाथ मलकर चुप हो गये। मिला केवल यह है कि "कुछ प्राप्त नहीं हो सका"। जिन्हों ने ग्रपना पेशा बना रखा है ग्रथवा निर्वाह का साधन-स्वार्थ है वे ग्रभी तक इस कचरे से लिप्टे हुए हैं, बाकी है सब पराजित पेशा। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के श्री एड्गर (Prof. Edger Sturtervent) के ग्रनुसार तो "बहुत निरर्थक वाद विवाद के पश्चात भाषा-शास्त्री इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि उनके पास जो सामग्री उपस्थित है, उस से मनुष-भाषा की उत्पति के विषयमें कोई भी प्रमाण नहीं मिलता"।[1] इसी प्रकार इटली के श्री मेरीग्रोपाई के ग्रनुसार "यदि कोई ऐसी बात है जिस पर सब भाषा विज्ञानी सहमत हैं तो वह यह है कि 'ग्रभी तक मनुष-भाषा की उत्पति की समस्या का कोई सामाधान नहीं मिल सका है'।"[2] ग्रमेरीका के श्री वेन्ड्रेज (J. Vendres) के ग्रनुसार "भाषा उत्पति सम्बंधी प्रश्न का कोई भी सन्तोष जनक समाधन नहीं है"।[3]

उपरोक्त सब विचार निकट समय की खोज के फल स्वरुप हैं ग्रौर उन विद्वानो के हैं जिन्हों ने जीवन का बड़ा भाग इस में गंवाया ग्रथवा व्यतीत किया है। ऊपर फल स्पष्ट है। इसलिये जबतक लौटकर वेद धर्म की ग्रोर नहीं मुड़ेगे, प्राचीन काल की किसी भी समस्या का समाधान होना ग्रसम्भव है। "मनुष को भाषा परमात्मा ने सिखलाई" इस विषय पर 'एनसैक्लोपीड्या बृटैनीका' में लिखा है कि "कुछ भाषा शास्त्री जिन में शिमिदत ग्रादि भी सम्मिलित हैं, भाषा उत्पति के विषय में प्रचलित सिद्धान्तो की ग्रपूर्णता का ग्रनुभव करने लगे हैं ग्रौर प्राकृतिक ढंग से भाषा उत्पति के समाधान वाले प्रयत्न को छोड़कर इस धार्मिक विश्वास की ग्रोर ग्राने लगे हैं कि 'ग्रादि काल के मनुष को प्रथम भाषा स्वयं परमात्मा ने सीधे (direct) रुप में सिखाई।[4]

(1) "After much futile discussion, linguistics have reached the conclusion that the data with which they are concerned yield little or no evidence about the origin of human speech." (An Introduction to Linguistic Science [New Haven], P. 40)

(2) "If there is one thing on which all linguistics are fully agreed, it is that the problem of the origin of human speech is still unsolved." (The Story of Language [London], P. 18)

(3) "The problem of the origin of language does not admit of any satisfactory solution." (Language [London], P. 315)

(4) "Some scholars (among them quite recently W. Schmidt) see the insufficiency of usual theories, and giving up all attempts at explaining it in a natural way fell back on the religious belief that the first language was directly given to first men by God through miracle." (Encyclopaedia Britannica [1951], Vol. 13, P. 702)

हमें प्रसन्नता होगी यदि कोई विद्वान किसी भी तरह धार्मिक मान्यताओं का आदर कर भाषा उत्पति के मूल स्थान पर पहुंचेंगे। क्यों न वह बाईबल से मिले चाहे कुरान से अथवा ज़न्दावस्था से। परन्तु हमारा विश्वास है कि उन्हे वापस लौटकर वेद भगवान की शरण में आना ही पड़ेगा, जहां ही ईश्वरीय सत्य समाया हुआ है। हमारा दुराग्रह नहीं, आग्रह है कि केवल ऐसा करने से शीघ्र किसी निर्णय पर पहुंचने में आसानी होगी। बाकी वैज्ञानिक ढंग से किसी भी ईश्वरीय रहस्य का खोजना केवल पानी बिलोना होगा। एक अरब विद्वान-इमाम इब्न खुरम अन्दलसी ने ११वीं शती में यह भांप लिया था और अपनी रचना "किताबुलाहकामु लुसूल अलहकाम" में स्पष्ट लिखा है कि "हमें इस बात से इन्कार नहीं है कि लोगों ने कितनी ही विभिन्न बोलियां उत्पन्न कर रखी हैं जब कि इससे पूर्व वे केवल एक ही भाषा जानते थे और इस द्वारा ही चीजों की माहियत (गुणदोश), स्थति तथा सीमाएं मालूम करते थे। हमें मालूम नहीं कि आदम सबसे पहले किस भाषा से अभिज्ञ हुआ। मगर यह बात बिलकुल स्पष्ट कह सकते हैं कि उसकी भाषा सब भाषाओं से अधिक सम्पन्न तथा विचार व्यक्त करने में सबसे अधिक स्पष्ट तथा प्रसिद्ध होगी ...... क्यों कि अल्लाह ताला ने फर्माया है कि 'इल्म आदम अलसमाअ कुलहा' अर्थात आदम को सब नाम सिखाए गए"।[1]

कितना सरल और स्वभाविक बयान है। इसलिये हम फिर भी विश्वास से कहते हैं कि उपरोक्त दिखाई गई मनुष की आदि भाषा केवल वेद भाषा (संस्कृत) ही थी और है। आदम की भाषा भी केवल संस्कृत थी क्यों कि अरबी अनुश्रुति के अनुसार भी महर्षि आदम का नुज़ूल (उतरना) प्रथम भारत में ही हुआ। भारत में जहां भी उतरा वह संस्कृत भाषी प्रदेश था। इस लिये उसने संस्कृत ही बोली होगी जो वह जानता था। खास बात तो यह है कि वह न हिन्दू था न मुसलमान न ईसाई। परन्तु परमात्मा का उत्पन्न पुरुष तथा हवा स्त्री थी और इसी को संस्कृत साहित्य में आदि अथवा आदम मनुष कहा गया है। इसलिये उपरोक्त अनुश्रुति भी केवल वैदिक है, किसी मज़हब की निजी नहीं। भविष्य पुराण (३/२/१७-१८) में आया है:-

आदिमो नाम पुरूषः पत्नी हव्यवत तथा।
विष्णुकर्दमती जातौ म्लेच्छवंशप्रवर्धनौ॥

अर्थात-आदम पुरुष था और हव्यवति उसकी पत्नी थी। वे विष्णु की मिट्टी से उत्पन्न हुए और मलेछों के पूर्वज थे। उन्हें आदम क्यों कहा गया? क्यों कि वह इन्द्रियों का दमन कर आत्म ज्ञान प्राप्त कर रहा था:-

"आ समन्ताद् दमयति इति आदमः"[2]

(1) डा० इनायत अलः का लेख- "मआरिफ" मासिक [दिल्ली], जनवरी १९६०, पृ० १३
(2) "Brahmavidya"- Adyar Library Bulletin, Vol. XIV Part 3, P. 135

हम उपरोक्त श्लोक के केवल पूर्व भाग से सहमत हैं उत्तर से नहीं। बाकी दूसरी प्रकार से ये महामुनि आदम और भगवती हवा वेद में वर्णित परमात्मा की ओर से मनुष्य उत्पति (पुरुष और स्त्री) का प्रतीक हैं। यहां यह भी ध्यान रहे कि आदम शब्द अरबी का नहीं है। वही शब्द इब्रानी (Hebrew) में है परन्तु मूल संस्कृत है। अतः दूसरे मज़हबी किताबों में भी ऐसा ही लिखा है कि आदि (आरंभ) में बहुत मनुष (पुरुष और स्त्री) उत्पन्न हुए, न कि केवल एक आदम। आदम तो केवल पुरुषों का प्रतिनिधि और हवा स्त्रीयों का प्रतिनिधि रूप थे। अर्थात ईश्वर ने सृष्टि उत्पति के समय एक ही समय अनेक पुरुष और स्त्री उत्पन्न किये जिनमें से ही बाकी मनुष्य जाति का विस्तार हुआ है। और यह विश्वास तथा वैज्ञानिक सत्य मानने के सिवाय और कोई रास्ता ही नहीं है। नहीं तो वाद विवाद करते बड़बड़ाते रहेंगे कि पहले वृक्ष हुआ अथवा बीज; पहले अण्डा हुआ कि पक्षी। इस का कोई अंत ही नहीं होने का। केवल इस हमारे थोड़ा मुश्किल परन्तु स्वभाविक सत्य को मानने से बात का निबटारा हो जाएगा।

ठीक इसी प्रकार भाषा का भी प्रश्न है। बाईबल ने केवल संकेत किया है तथा कुरान मे भी। मज़हब केवल यह बतला सकता है कि "खल्क अलइन्सान इलम: अलबयान" अर्थात- ईश्वरने मनुष को उत्पन्न किया और उसे बोलना सिखाया। हम नहीं समझते कि इस से स्पष्ट और क्या हो सकता है। इसलिये यह विश्वास करके चलना पड़ेगा कि ईश्वर ने मनुष्य की उत्पति की. उसे वेद रूपी ज्ञान दिया तथा व्यवहार रुपी भाषा भी दी (सिखाई) और यह सब उस ईश्वरीय ज्ञान वेद में विद्यमान है।

मनुष एक ऐसा जानवर (पशु) है जो सिखाने कि सिवाय कुछ नहीं कर सकता। बात करना भी उसे सिखाया जाता है नहीं तो ज़ुबान और दिमाग़ रखते हुए भी वह कुछ नहीं बोल सकता, सिवाय रोने चिलाने के। प्राय सुना होगा कि फलां (अमुक) राजा ने पुराने ज़माने में किसी छोटे बालक को बिलकुल अकेला किसी भी आवाज़ से दूर एक गूंगी के संरक्षण में रखा। उसके खाने पीने की व्यवस्था कर दी थी। बड़ा होने पर देखा गया कि वह बालक बाकी सब इन्द्रियों के स्वस्थ होते हुए भी कुछ नहीं बोल सका, केवल उस गूंगी के कुछ संकेत आं-ऊं·बोल सका। कुछ वर्ष पूर्व एक रामू नामक मनुष लड़का (भेड़िया) का प्रमाण सामने है। बचपन में ही वह भेड़ियों के झुंड में रहने से कुछ भी बोलना न सीखने के कारण मनुष होते हुए भी कुछ नहीं बोल सका। जन्म से बहिरा आजीवन गूंगा रहेगा, क्यों कि उसने कुछ सुना हो नहीं तो बोलेगा क्या ? जवानी में हुआ बहिरा बोलेगा सब कुछ, क्यों न वह कुछ भी सुन न पाए। स्पष्ट है कि बिना सिखाए मनुष कुछ नहीं बोल सकता। गूंगों के समान संकेत कर सकता है। और इसी के आधार पर कुछ भाषाई खोज करने वालों ने ऐसे विभिन्न परिणाम निकाले हैं कि आदि सृष्टिमें मनुष इसी प्रकार संकेत आदि करके अपना काम चलाता था। जिसे वे Pooh-Pooh, टा-टां

अथवा डिंग-डांग इत्यादि कहते हैं। तो भी क्या? इस बेकार सरदर्दी से कोई फल निकला है? नहीं! इसलिये विवश होकर श्री वैंड्रेयस को कहना पड़ा कि "हमारे सब प्रयत्नों के होते हुए भी आदिकाल के पशु-पक्षियों के आवाज़ों अथवा भौंकने आदि और प्राचीन भाषाओं के बीच ऐसी खाई खड़ी है जिसके ऊपर पुल बांधना असंभव है।"[1] और श्री सप्दिर (Edward Sapdir) को लिखना पड़ा कि "भाषा उत्पतिकी समस्या को सुलझाने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। परन्तु उनमें से बहुधा केवल कल्पना से अधिक कुछ नहीं है। अब प्रायः भाषा शास्त्रियों की इस प्रश्न के निबटाने में कोई रूची नहीं रही है। इस के दो कारण हैं- एक यह कि अब अनुभव होने लगा है कि आज कोई ऐसी भाषा विद्यमान नहीं है जिसे वास्तव में आदिकाल का कहा जा सके (विश्वास रखकर आइये हम आपको कहलाकर दिखाएंगे!) इसके सिवाय पुरातत्व (Archaeology) की खोज ने मनुष के सांस्कृतिक भूतकाल को इतना लम्बा कर दिया है कि आज के प्रचलित बोलियों के अभ्यास से जो कुछ मालूम होता है, उस से अधिक पीछे जाना बिलकुल व्यर्थ है (क्यों कि बाईबल के कारण आप मजबूर हो)। दूसरा यह कि मनोविज्ञान सम्बंधी हमारा ज्ञान विशेष कर मन के विचारों को ध्वनी आदि के संकेतों अथवा प्रतीकों द्वारा व्यक्त करने वाली मानसिक प्रक्रयाओं संबंधी हमारा ज्ञान, पूरी तौर से शुद्ध नहीं समझा जाता अथवा इतना अधिक नहीं समझा जाता कि वह भाषा-उत्पति के समस्या के सुलझाने में विशेष सहायता कर सके"।[2]

इसलिये ऐसे पराजित विद्वानों के लिये श्री जोन्स (Sir William Jones) के ये शब्द ही इस समस्या को सुलझाने में अन्तिम सहारा (आश्रय) समझने चाहियें कि "संस्कृत भाषा, उसकी प्राचीनता कितनी भी हो, आश्चर्यजनक बनावट वाली, ग्रीक से अधिक पूर्ण (संम्पूर्ण), लैटिनसे अधिक विस्तृत तथा दोनों से अधिक सुसंस्कृत (अति सूक्षम) है"।[3]

इसलिये जैसे जैसे आदि मनुष-आर्य जाति, अपने जन्म स्थान आर्यावर्त से सारे संसारमें फैली (देखिये हमारी पुस्तक "आर्यावर्त") तो उस के साथ साथ उस आदि मानव की आदि भाषा (वैदिक अथवा संस्कृत) भी उसके साथ फैली। और जिस प्रकार संसार की सब जातिआं आज जल-वायु के प्रभाव से अपना प्राचीन रंग-रूप बदल चुकी हैं उसी प्रकार उनकी बोलियां

(1) "Despite all our efforts, between the primitive 'bark' and our oldest tounges there exists a gulf which can never be bridged."

(2) Encyclopaedia of the Social Sciences, Vol. 9, P. 158

(3) "The Sanskrit language, whatever be its antiquity, is of a wonderfull structure; more perfect than Greek, more copious than the Latin and more exquisitely refined than either."

भी। मगर इन सब प्राचीन जातियों में अपने पूर्वज आर्यों के चिह्न भी विद्यमान हैं तो बोलियों (भाषाओं) में समानता तथा समान शब्द भी। इस प्रकार केवल संस्कृत ही एक ऐसी सम्पूर्ण भाषा है जिस के चिह्न संसार के कोने कोने में मिलेंगे।

यहां हम एक वैदिक सत्य भी सुना देते हैं कि "शब्द अमर हैं" अर्थात जो कुछ हम बोलते हैं वह नष्ट नहीं होता परन्तु नित्य है और इसी सिद्धान्त पर ही रेडियो का अविषकार हुआ है। यदि बोलने से (मुख में से निकलते) ही शब्द नष्ट हो जाएं तो फिर रेडियो में किस प्रकार उतर आएं? इस वैदिक सिद्धांत को पकड़ कर ही वैज्ञानिक अब अन्वेषण कर रहे हैं कि किसी प्रकार प्राचीन शब्दों को प्राप्त किया जा सके, जिस से कि हज़ारों वर्ष पूर्व के ऋषियों मुनियों के वचन अथवा दूसरा प्राचीन इतिहास आकाश (शब्द) में से प्राप्त हो। ध्यान रहे कि गूंगा-बहिरा भी बोलता है, इशारे करता है, जो कुछ भी समझ कर कहता है, वह क्या है? यह कौन सी भाषा है? ईश्वरी है न? खाने के लिये मुख पर हाथ (पांचों अंगुल्यां समेट कर) रखता है, पीने के लिये कोई इशारा करता है। बाकी उसे क्या कहना है वह स्वयं अपने भीतर अवश्य समझता है। प्रश्न है कि वह जो भीतर समझता है वह समझना कहां से आया? वह उसे किसने सिखाया या बताया? बीमार और कमज़ोर बोल नहीं सकता; पानी चाहिये, इसके लिये हाथ का मुख पर रखना उसका संकेत मात्र है। किन्तु 'दो' (देने की क्रया) किस संकेत का अर्थ है? ये दोनों बातें अलग हैं। बीमार तो समझता भी है तथा जानता भी है केवल बोलता नहीं परन्तु गूंगा तो बोल भी नहीं सकता। इसी प्रकार बच्चा जनम्ते ही माता के स्तन से दूध लेने की क्रया करता है वह भी सिवाय किसी के सिखामे के! वह सब क्या है? स्पष्ट नहीं कि यह चूषना (स्तनपान करना), ये इशारे आदि हर बालक और गूंगे के पिछले जन्म जन्मांत्रों के संस्कार हैं, जिन के सिखाने की उन्हे कोई आवश्यक्ता नहीं है? इसलिये यह कहना कि मनुष ये इशारे करना भी सीखा और उसी पर से भाषा का भी विकास हुआ अथवा आवाज़ करके कुछ सीखा आदि, सब वाहियात बातें हैं। इस अवस्था में ईश्वर का अन्याय समझा जायगा जो प्राणियों को इतनी साधारण चीज़ भी नहीं सिखाई। क्यों कि नवजात बचा है ही अनजान, उसे स्वतः दूध पीना तो मां भी नहीं सिखा सकती सिवाय इसके कि वह अपना स्तन उसके मुख से लगा दे बाकी क्रया वह स्वयं करेगा। इसलिये जैसा हमने ऊपर बताया मनुष को खाना-पीना, नींद करना, डरना, रोना और सन्तानोत्पति स्वभाविक (अन्तः प्रेरणा) प्रवृत्थां हैं। और यह सब हर प्राणी में हैं। किसी पशु-पक्षी को संतान उत्पति कौन सिखाता है? किसी वृक्ष अथवा वन में ऐसा कोई कालेज देखा है क्या किसीने? नहीं! यह सब स्वभाविक (Instinct power) है। बाकी दूसरे हर व्यवहार के लिये ज्ञान और भाषा की आवश्यक्ता है जो ईश्वर की ओर से प्राप्त होती हैं।

हमारा विषय केवल सिन्ध तक ही सीमित होते हुए भी हमने थोड़ा विस्तार से लिखा है

इसलिये कि यह इस विषय की बुनियाद है। और इस बुनियाद बताने के पश्चात ही हम सिन्धी भाषा पर लिख सकेंगे।

प्राचीन आर्यावर्त - ब्रह्मावर्त-भारतवर्ष जो आदिम मनुष्य का उत्पति स्थान (काशमीर-तिब्बत का मध्य भाग) था वहां यह वेद भाषा अथवा संस्कृत भाषा थी। जैसे जैसे ज़मीन जल से बाहर निकलती गई, तो आबादी भी बढ़ती गई तथा फैलाव भी होता गया। इस सबकी सीमाएं हम निर्धारित नहीं करते, क्यों कि आदि सृष्टि केवल आर्यावर्त अथवा ब्रह्मावर्त था और जितना भी था, उस समय कोई Physical नाम नहीं थे न ही जाति वाचक नाम। केवल एक देश (भूमि-आर्यावर्त), एक जाति मनुष्य (आर्य), एक भाषा (वैदिक) तथा एक ज्ञान (वेद) था, जो सब प्राकृतिक और ईश्वरीय था और उसीका व्यवहार था। यह काल (समय) कितना था उसका भी कोई ज्ञान नहीं है। तो भी यह विश्वास है कि वेद आदि और मूल ज्ञान का भण्डार होने के कारण वेदों का निरन्तर पाठ होते रहने के कारण तथा कण्ठस्थ करने के कारण वह ज्यों का त्यों हज़ारों लाखों वर्षों से चलता आ रहा है। आलस्य से कोई भूल अथवा अशुद्धि न होने पाए इसके लिये उसके शुद्ध पाठ करने का वैज्ञानिक तरीका भी निकाला गया, जिस से एक मात्रा की भी भूल नहीं हो सकती। ऐसे वेदपाठी दक्षिण भारत में अब भी हैं। बाकी बात-चीत करनेमें स्वभाविक नियमानुसार कोई भेद अवश्य हुआ होगा। हज़ारों वर्षों से बिछड़ कर दूर दूर देशों में जाकर बसने के कारण भाषा में भेद आया। ऐसा होते होते नई बोलियां भी बन गईं। तो भी थोड़े भेद से वैदिक रूप भी चलता आया तो विचारों का भेद भी खड़ा हो गया। इसका प्रमाण 'छन्द व्यवस्था' (ज़द-अवस्था) में स्पष्ट मिलता है। भारत में नई नई राजनैतिक सत्ताएं (Kingdoms) खड़ी होने के कारण, राजनैतिक भेद होने के कारण, किसी प्रकार भी उनका नया रुप बन गया। लेकिन इस कारण मूल वेद भाषा में बिगाड़ न आने पाए, इसके लिये समय समय पर आचार्यों ने उसके शुद्ध रूप को स्थर रखने के लिये व्याकरण रुपी कड़े नियम भी बना दिये। महर्षि पतंजलि और पाणिनि इस समय विशेष उल्लेखनीय हैं। उनहों ने अपने समय से पूर्व के ऐसे आचार्यों का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है जिन्हों ने भी प्राचीन काल में ऐसे प्रयत्न-प्रबंध किये। निकट समय में महर्षि पाणिनि का व्याकरण ग्रंथ 'आष्टाध्यायी' श्रेष्ठ है जिस में वेद भाषा को हज़ारों वर्षों पर्यंत शुद्ध और सुसंस्कृत रखने के नियम हैं। इसी कारण इस वेद भाषा का नाम संस्कृत प्रचलित-प्रसिद्ध हो गया है। यही संस्कृत सिन्ध की भी भाषा थी। महर्षि पाणिनि उतर पश्चिम भारत का रहनेवाला था, और सारे भारत का ज्ञान रखता था। सिन्ध में प्रचलित संस्कृत नामों का भी उसने उल्लेख किया है, जिस से सिद्ध होता हैं कि सिन्ध की भाषा भी संस्कृत थी। महाभारत काल में देश की भाषा सस्कृत थी, सिन्ध का भी भारत युद्धमें बड़ा भाग था। उस समय से पाणिनि तक तो सिन्ध की भाषा संस्कृत रही। यदि अतिशयोक्ति

न हो तो हम कह सकते हैं कि यह अरब काल तक तो क्या इसके बाद भी रही। बाद में इसलाम के पश्चात साहित्यमें प्रचार कम होता गया। जन साधारण की भाषा संस्कृत का रूप बदलता गया। इस समय भी सिन्धी में ७० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। सिन्ध के मुसलमान कवि सयद अब्दुल्लतीफ के काव्य की भाषा सस्कृत-मय है। संस्कृत के कुछ रुप उसमें ऐसे भी हैं जो स्वयं सिन्धी भी नहीं समझ सकते। दुर्भाग्य की बात यह है कि निकट समयमें सिन्धमें कोई विद्वान ही नहीं हुआ है तो संस्कृत का विद्वान कैसे मिल सकता है। यह अवश्य है कि संस्कृत का अधिक प्रचार ब्राह्मणों तक ही सीमित रह गया। जन, साधाराण का समय समय पर जिन विदेश्यों के साथ व्यवहार रहा उनके रूप भी सिन्धी (संस्कृत) में मिलते गये। शक, हूण, यवन, तुर्क न जाने कौन कौन आये और स्वाभाविक था कि उनका प्रभाव अवश्य हुआ होगा तथा बिगाड़ आया होगा। फिर भी कमाल है कि सारे भारत में केवल सिन्धी ही अधिक शुद्ध रूप में संस्कृत के समीप विद्यमान है। सिन्धी अब भी जितना दूसरी भाषाएं सीखने-ग्रहण करने में चत्रु है उतना ही अपनी भाषा को जीवित रखने में भी कट्टर है। इसलिये वे सस्कृत का बड़ा भाग अपने पास सुरक्षित रख सके हैं।

अरब काल में जब भी सिन्धी पंडित यहां से अरब में गये वे सब संस्कृत के पंडित थे न कि सिन्धी के। सिन्धी उनके घर-बाजार की बोली अवश्य थी, परन्तु साहित्यक भाषा संस्कृत ही रही। उन पंडितों ने सस्कृत में से ही अनेप ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया। सिन्धी आचार्य वागभट ने अपने ग्रंथ संस्कृत में ही लिखे जो आज भी संसार में आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं, जैसा कि हम आगे दिखाएंगे। इसके पश्चात देवल मुनि ने जो कुछ लिखा वह सब सस्कृत में। आश्चर्य की बात है कि एक धोबी के घर में जब एक कन्या ने जन्म लिया तो उसकी चांद सी सूरत देख कर उसके मुख से बे-अख्तयार शशि शब्द निकल गया और उस कन्या का नाम भी वही रखा गया जो बिगड़ कर ससुई हो गया है, तो फिर बाकी जनता का क्या हाल होगा? बहुत पीछे का यह हाल है तो पहले का समझा जा सकता है। सिन्ध का सैन्धव और जयद्रथ वंश जब यहां सौराष्ट्रमें आकर स्थापित हुआ तो उनके जो भी लख यहां मिले हैं, वे सब संस्कृत में हैं जो हम आगे दिखाएंगे। और यह क्रम अब भी है। सिन्धी ब्राह्मण प्रत्येक संस्कार संस्कृत में ही कराते हैं चाहे संस्कृत नहीं जानते और भृष्ट बोलते हैं। अनेक वहशी कौमों से वास्ता पड़ते भी वे धर्म तथा भाषा में वैसे ही हैं। आज भी सिन्धी कवि तथा लेखक की अपनी रचनाओं में संस्कृत शब्द ठोंसने की अभिरुचि होगी। सिन्ध के जत सदियों तक अरब में रहे मगर उनकी भाषा कभी भी अरबी नहीं बनी यद्यपि अरबी के विद्वान अवश्य थे।

श्री मेक्डोनल (Dr. Macdonall) ने अपनी पुस्तक "History of Sanskrit Literature" में लिखा है कि "विन्ध्याचल और हिमालय के बीच दूसरी शती ई० पू० तक संस्कृत बोल चाल की भाषा थी इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु इस देश में यह भाषा बोलने वाले कौन? ब्राह्मण तो

अवश्य, क्योंकि पतंजलि ने उनको शिष्ठ और शुद्ध भाषा बोलने वाला कहा है। परन्तु ब्राह्मणों के सिवाय दूसरे लोग भी उस काल में इस देश में संस्कृत बोलते थे, क्यों कि पतंजलि ने 'सूत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बंध में एक व्याकरण आचार्य और एक 'सूत' (रथ हांकने वाले) के बीच विवाद का वर्णन किया है। संस्कृत नाटकों में भी विभिन्न कोटि के पात्र जो विभिन्न बोलियां बोलते हैं, वह भाषा के प्रचार में से इसके लिये अनुमान किया जा सकता है। और यह प्रचार-फैलाव नाटक रचने से पूर्व अवश्य इस प्रकार के व्यवहार में होना चाहिये। इस प्रचार के अनुसार शासक और कुलीन पात्र तो संस्कृत बोलते हैं तथा बाकी स्त्री-पुरुष जुदा जुदा रूप बोलने वाले थे। फिर उन नाटकों में यह स्पष्ट देखने को मिलता है कि जो संस्कृत नहीं बोलते थे वे भी संस्कृत बराबर समझते थे (जिस प्रकार आजका पढ़ा लिखा शहरी और अनपढ़ गांव वासी)। इन नाटकों के सुनने वाले जिन के सामने ये Stage किये जाते थे, वे भी संस्कृत समझने वाले होने चाहिये। और सस्कृत साहित्य में रामायण तथा महाभारत जैसे महाकाव्यों के वाचन-उच्चारण (कथा करने) के अनेक प्रमाण मिलते हैं। जो जन साधारण यह सुनने बैठता होगा वह भी संस्कृत समझ सकता होगा, ऐसा होना चाहिये। इसलिये यदि शिष्ठ संस्कृत आरंभसे शिष्ठ (और साहित्यक) भाषा थी तो भी सर्वसाधारण में वह व्यवहार में नहीं थी, ऐसा कहना अनुचित होगा"।:-

"Thus though classical Sanskrit was from the beginning a literary and in a sense as an artificial dialect, it would be erroneous to deny to it altogether the character of a colloquial language."

फिर दूसरे स्थान पर लिखता है "भारत के अब्राह्मण मत (बौद्ध और जैन) प्राकृत का व्यवहार करते थे वे भी शनै शनै संस्कृत का प्रयोग करने वाले बने, यह शिलालेखों से विदित होता है। मथुरा के जैन शिलालेख प्रथम शती तक प्राकृत में हैं। इसके पश्चात के लेखों में प्राकृत में संस्कृत शब्द तथा अन्य व्यवहार अधिक से अधिक प्रवेश होता दिखाई देता है, और अंत में पूर्णतः संस्कृत के ही बन जाते हैं। बौद्ध शिलालेखों का भाषा-विवेचन भी इसी प्रकार है। शुद्ध प्राकृत से प्राकृत-संस्कृत और अंत में संस्कृत देखने को मिलती है। छठी शती के शिलालेख, कुछ जैन शिलालेखों को छोड़कर, बाकी सब संस्कृत में ही लिखे हुए हैं, यद्यपि उनमें कुछ प्राकृत शब्द तथा व्यवहार देखने में आता है, विशेषकर बौद्ध साहित्य में भी प्राकृत-संस्कृत भाषा धीरे-धीरे बदल कर शुद्ध संस्कृत हो गई। चीनी यात्री ह्युनसांग ने स्पष्ट लिखा है कि "सातवीं शती में बौद्ध भिक्षु अपने धार्मिक विवादों में संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करते थे"। जैन लोग भी अंतमें ऐसा करते थे, यद्यपि उन्हों ने प्राकृत पूरी तरह नहीं छोड़ी थी। इस लिये भारत में मुसलमानों के आने तक लिखावट की भाषा तो अकेली संस्कृत थी।" :-

"Thus by the time of the Muhammadans Sanskrit was almost the only written language of India."

इसलिये जो ऐसा कहते हैं कि संस्कृत मृत भाषा हैं वे केवल वे हैं जिन की ग्रात्मा तथा विश्वास मर चुके हैं। उनके 'ईमानदार' बड़बड़ाने का हम स्वागत करते हैं। एक ज्वलंत प्रमाण मौर्य-सम्राट् ग्रशोक के शिलालेख हैं जिसने भारत के कोने कोने में, ग्रफ़ग़ानिस्तान (जो उस समय भारतका ग्रभिन्न ग्रंग था तथा ग्ररबों के ग्राने तक 'हिन्दू-साही' प्रदेश था) तक ग्रपने लेख खुदवा दिये। केन्द्र शासन से उनका मूल (text) संस्कृत में तैयार कर प्रान्तिक शासकों के पास भेजा जाता था। ये लेख भारत के उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम सीमा तक फैले हुए मिले हैं जैसे कि कालसी (पंजाब), गिरनार (सौराष्ट्र), धौली (उड़ीसा), जौगड़ (मद्रास), शहबाज़ गढ़ी (पेशावर), मानसेरा (उत्तर पश्चिम) ग्रादि। हम यहां छहों के रूप उपस्थित करते हैं, जो ग्रशोक का प्रथम लेख है।-:

कालसी	१	इयं	धंमलिपि	देवानं पियेना
गिरनार	२	इयं	धंमलिपि	देवानं प्रियेन
धौली	३	इयं	.... सि पवतसि	देवानं पिये
जौगड़	४	इयं	धंमलिपी खपिंगलसि पवतसि	देवानं पियेन
शहबाज़गढ़ी	५	ग्रयं	ध्रमदिपि	देवन. प्रिग्रस
मानसेरा	६	ग्रयि	ध्रमदिपि	देवन प्रियेन
संस्कृत रूप।		इयं	धर्मलिपि: कपिंजले पर्वते	देवानां प्रियेण (प्रयस्य)
सिन्धी ग्रनुवाद।		हीग्र	धर्मलिपि कपिंजल पर्वत ते	देवताउन जे प्रिय

कालसी	७	पियदसिना		लेखिता हिदा ना किछि जिवे
गिरनार	८	प्रियदसिना	राञा	लेखापिता इध न किंचि जीवं
धौली	९	....	जिना	लिखा ... ... जीवं
जौगड़	१०	पियदसिना	लाजिना	हिद नो किछि जींवं
शहबाज़गढ़ी	११		रञो	लिखापितु हिद नो किचि जिवं
मानसेरा	१२	प्रियद्रशिन	र.न.	लिखपित हिद नो किछि जिवे

संस्कृत रूप :- प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता। इह न कश्चित जीव:
सिन्धी ग्रनुवाद : प्रियदर्शी राजा लिखाई। हिते न कोई जीव

१३ ग्रालभितु पजोहितविये — ऊपर जहां बिंदियां हैं वहां मूल
१४ ग्रारभित्पा प्रजूहितव्वं — ग्रक्षर घिस गये हैं तथा जो रिक्त

१५	आलभितु	पजोह...	स्थान हैं वहां मूल अक्षर नहीं हैं। संस्कृत वाली पंक्ति केवल छाया है।
१६	आलभितु	पजोहितविये	
१७	अरभितु	प्रयुहोतवे	
१८	अरभित	प्रयुहोतविये	
स०	आलभ्य	प्रहोतव्यः।	
सिं०	मारे	होम्यो वञे।	

स्थानिक भेद के सिवाय दूसरा सब एक समान होना यह सिद्ध करता है कि भारत की भाषा संस्कृत रूपी प्रत्येक स्तर पर प्रचलित थी। परन्तु दसवीं शती में इसका कैसा रूप था, इसके लिये श्री मॅक्डोनल कहते हैं कि : "प्रथम शती से दसवीं शती तक के मध्य काल की भाषा प्राकृत रही। फिर चार अलग अलग मुख्य बोलियों में विभक्त हो गई। पश्चिम में सिन्धु घाटी (the valley of the Indus) में अपभ्रंश, मथुरा (जिसका केन्द्र था) दो-आबा में शौरसेनी जिसका फिर गौर्जरी (गुजराती), अवन्ति (पश्चिमी राजस्थान) तथा महाराष्ट्री (पूर्वी राजस्थानी) उप विभाग हुए।"

बस! इस समय तक भारत में मूल तो संस्कृत भाषा थी. जो प्राकृत रूप तो धारण कर चुकी थी और अपभ्रंश भी थोड़े स्थानिक भेद से व्यवहार में थी और बाद में तुर्क-मुगुल काल से लेकर बदलने नहीं, अपितु बिगड़ने लगी। अरबों का तो कोई प्रभाव ही नहीं था क्यों कि अरब यहां टिक नहीं पाए। जो भी समय यहां थे आपस में लड़ते झगड़ते इसलामी कतलेआम करते रहे। अंततः भागकर अरब गये अथवा यहीं हिन्दू बनकर रह गये। कुछ शब्द छोड़ गये कुछ साथ ले गये। बाकी तुर्क-मुगुल अथवा उनसे पूर्व शक, हूण, यवन इत्यादि सब हिन्दुओं में मिल गये। हज़ार यत्न करने पर भी वे देश की भाषा शुद्ध रूप में न तो ग्रहण कर सके न ही ऐसा संभव था। बस, बिगाड़ आरंभ हो गया। प्रान्तिक भाषाएं तथा अनेक बोलियों का जन्म होना प्रारंभ हो गया।

वैसे भी नयी भाषा किसे कहा जाता है ? यही न, कि कुछ शब्दों का रूप-उचार बदलना, बिगड़ना, बात चीत के अपने लहजे से बिलकुल रूप परिवर्तन, मिलावट आदि, यह सब नयी भाषा बनने के लक्षण हैं। एक विद्वान के शब्दों में :-

"A language both by use and by misuse changes and developes according to laws of philology, i.e. science of languages, and when the change reaches a certain point we say, it is a new language."

संस्कृत हज़ारों लाखों वर्षों तक भारत के जन-साधारण की भाषा रही तो संसार के कौमों की भी रही। क्यों कि वे सब एक मानव आर्य-समाज थे। भारत के पास उसे संभाल कर शुद्ध

रखने के सुदृढ साधन थे, इसलिये प्रचलित रही। किन्तु संसार का अपनी पितृ-भूमि भारत से सम्बंध कम होने अथवा टूट जाने के कारण वे पूर्णतः भ्रष्ट-अपभ्रंश बन गईं अथवा सम्पूर्ण रुपेण दूसरा रुप धारण कर गईं।

भाषाओं के बिगड़ने के साधारण नियम!

मनुष्य मात्र की मूल भाषा तो वेद-भाषा, वेद की भाषा, ईश्वरीय ज्ञान अर्थात ईश्वरीय भाषा थी जिसे वर्तमान में संस्कृत कहा जाता है। परन्तु प्राकृतिक नियम है कि मनुष्य प्रमाद वश कभी भी शुद्ध नहीं बोलता, चाहे वह किसी भी देश में कोई भी भाषा बोलता हो। शुद्ध बोलने का केवल एक मात्र उपाय है- एक तो निरंतर उसका स्वाध्याय-अभ्यास करते रहना दूसरा यह कि धीरे से शांति से एक-एक शब्द का स्पष्ट उच्चारण करना-भारतमें यह परिपटी हज़ारों लाखों वर्षों तक रही, तब तक संस्कृत भी रही। किन्तु जैसा हम ने अभी लिखा कि मनुष प्रामाद वश इन दोनों नियमों का पालन नहीं कर पाता इसलिये योग्य विद्वान भी स्वयं तथा उसका परिवार भी शुद्ध का प्राकृत रूप कर डालता है। साधारण लोग तो उसे और भृष्ट कर उसका अपभ्रंश रूप कर डालते हैं। इसमें मनुष की अपनी कमज़ोरी तथा प्रमाद उत्तरदायी है। प्रत्येक मनुष सक्षेप अथवा थोड़े (छोटे) में अपनी जान छुड़ाना चाहता है। इसलिये बात करने में भी उतावल तथा कंजूसी बरतता है। और इसी कारण संसार का कोई भी आदमी शुद्ध नहीं बोलता और संभवत: साधारण मनुष बोल भी नहीं सकता चाहे अपनी भाषा भी। एक अमेरीकन श्री हेल्म (Carl Helm) के अनुसार "बीस में से एक भी स्पष्ट तथा प्रभावशाली अंग्रेज़ी नहीं बोलता; पचासमें से एक भी ऐसी भाषा नहीं बोलता जो सम्भाषण तथा अशिष्टता रहित हो, तथा सौ में से एक भी ऐसा नहीं होगा जो ललित, और सुंदर शब्दो में अपने विचार व्यक्त कर सके"।[1]

यह हकीकत है। और सब को छोड़ केवल प्रथम वाक्य को देखेंगे तो यह असावधानी हर जगह समान है। जितना जल्दी से बोलेंगे उतनी अशुद्धता अधिक होगी। हिन्दी में कहें "मैं अगले महीने वाराणसी जाऊंगा"। तो बोला जायेगा "में अग्ले मेने वाआणसी जऊं...गा"। गुजराती में कहें "हूं परम दिवस अहमदाबाद जईश" तो कहा जायगा "ऊं पम दिअस अमदाद जई-स"। अंग्रेज़ी में कहें" "I will go to Switzerland next month." तो कहेंगे "I'll go to Suiziland-nest mon...th" और सिन्धी में कहें "मां सुभाण हैद्राबाद वेन्दुस" तो कहा जायगा "मां सुआण हेदाद वेन्दुअ"।

(1) "Not one person in twenty speaks English clearly and forcefully; Dr. Vizetelly will tell you. Not one in fifty speaks Englirh so that it is free from colloquilisms, coarseness or vulgarity; not one in a hundred expresses his thoughts in delicate, elegant, and beautiful words."

(The World Today, March, 1929)

इसी प्रकार भले आप और भी वाक्य बनाकर बोल अथवा बुलाकर देखें तो बस इसी प्रकार ही बोल सकेंगे क्यों कि हम गलत उतावल तथा प्रमाद के बीमार हैं और इसी से उपरोक्त रूप बन जाते हैं और इसीका नाम प्राकृत है। क्यों कि हम जानबूझ कर नहीं परन्तु प्राकृत तौर इस प्रकार शब्दों के बीच में से वर्ण उड़ा देते हैं। यद्यपि इसके अशुद्ध होने के भी समझ सब जाते हैं, क्यों कि इस सबका शुद्ध रूप हमारे ज्ञान में विद्यमान है। इस लिये ही कभी कभी दूसरे का इस प्रकार बोला हुआ वाक्य समझ कर उसे कहते हैं "क्या कहा" "क्या", "ज़रा फिर तो बोलो" इत्यादि। यह सब इसीलिये कि कहने वाले ने धीरे से और शुद्ध नहीं बोला है, जो हमें अच्छी तरह समझने में नहीं आया। फिर बोलने पर, अशुद्ध होते हुए भी समझ जाते हैं। ये ही शब्द किसी पुस्तक में लिखे हुए हों तो उसके लेखक को ऐसा नहीं कह सकते कि "क्या कहा" अथवा 'क्या लिखा है'। क्यों कि लिखा तो शुद्ध है न, वह जड़ होने के कारण शुद्ध से बदल कर अशुद्ध नहीं हो सकता। परन्तु हम जो कुछ बोलते हैं उसका सम्बंध चेतन्ता से है और हमारे स्वभाव की कमज़ोरी से है। इसलिये ही उच्चार बिगड़ते तथा बोलियों का जन्म होता है। और इस रोगसे सारा संसार जकड़ा हुआ है, संस्कृत तक भी। अनेक लोग गायत्री मंत्रका प्रतिदिन पाठ करते हैं किन्तु कोई भी शुद्ध नहीं बोलता। सब यूं ही उच्चारेंगे :-

"ओं भू भुअ त..र सईतर वएअम भइगो देम स्य धी मई ध्यो (अथवा ध्यो) योनअ पिअचो द्यात"।

प्राकृत भाषा में लिखी कोई भी पुस्तक उठा कर देखें बिलकुल इसी प्रकार संस्कृत से बिगड़े रूप मिलेंगे, जिस प्रकार हमने गायत्री का लिखा है। फेरी करने वाला कुछ माल लेकर बेचते समय कुछ आवाज़ें लगाता चलता है जो नब्बे प्रतिशत तो हम समझ नहीं पाते। किन्तु हम जानते हैं कि उसके पास क्या है इसलिये समझ जाते हैं कि वह जो कुछ बोलता है वह ठीक होगा। नहीं तो उसे बुलाकर पूछते हैं कि क्या है। इस प्रकार का बोलना जब हम भी पूरी तरह नहीं समझ सकते तो कोई विदेशी उन शब्दों का प्राकृत से अपभ्रंश क्या भ्रष्ट कर देगा। देखिये! उपरोक्त प्राकृत रूप कुछ पीढ़ियों अथवा शताब्दियों के पश्चात जब कहीं स्थर हो जायेंगे तो वहां से दूसरी नई पीढ़ियों में उन प्राकृत रूपों का फिर प्राकृत रूप होना आरंभ होगा और कहीं वह अपभ्रष्ट भी होंगे। इस प्रकार बनना, बदलना और बिगड़ना यह क्रम चलता ही रहेगा, जब तक उसकी बोलने वाली जाति जीवित है। और हज़ारों वर्षों के पश्चात उस बिगड़े रूप को 'नई बोली' और 'नई भाषा' अथवा 'न मालूम क्या', 'समझने में नहीं 'आता' आदि कहते हैं।

आज भी हम इसी कमज़ोरी के कारण शुद्ध किन्तु बड़े लंबे शब्दों को सिकुड़ कर छोटा (short) कर देते हैं। Aeroplane को कहें Plane, Refrigerator को Frij, Telephone

को Phone कभी तो बोलने में ring भी कहते हैं, शकुन्तला को शकू, तो निर्मला को निमी। लिखने में भी ऐसा करते हैं :- Advertisement को Advt. Number का No., Subject का Sub. । लिखने-बोलने में तो इस से भी आगे बढ़ गये हैं :- Television का T.V., Member Parliament का M P., Tuberculosis को T.B., उतर प्रदेश का U.P मास्टर साहब का 'मासाब'।

इसी प्रकार पिंगल (राजस्थानी) में ध्रुवभट का धूहड़, वागभट का बाहड़, श्रीहर्ष का सीहा अथवा सीहर, हस्तबल का हाथल, आलभट का आलट अथवा आलू, नागभट का नाहर आदि। बंगाली में चतुर्वेदि का चैटर्जी, मुखोपाध्याय का मुकर्जी। हिन्दी में ही द्विवेदी का दुबे, त्रिवेदी का तिवारी तो चतुर्वेदी का चौबे। याज्ञक का जानी, उपाध्याय का ओझा अथवा झा। गुजराती में तो हृदय का रिदे, ज्ञान का ग्नान, यज्ञ का यग्न, ऋषि को रुषी। सिन्धी में भी अब सिपाहीमलाणी का सिपी तो करमचंदाणी का करम बन गया है।

इस बात को हम बुरा नहीं कहते क्यों कि यह साधारणत: होता रहता है क्यों कि प्राकृतिक नियम है। एक और प्रकार से देखें :-

एक छोटा बालक जब थोड़ा थोड़ा बोलने लगता है तो उसकी तोतली बोली को देख कर हम स्वयं उसके साथ उसकी बोली में जान बूझकर वर्ण बदल कर प्राकृत (अशुद्ध) बोलते हैं। हम बालक को सुठो के स्थान पन थुथो, दाढो का दाधो, तारे को ताले, मिठाई को मिथाई, खीर को खील, इत्यादि कहते हैं। यह सब हम लाड़ प्यार से बोलते हैं, किन्तु यह है सब प्राकृत रूप। हम बच्चे को 'क्या कलेगा' कहेंगे न कि 'क्या करेगा'। क्यों कि वह इतना शुद्ध बोल नहीं सकता इसलिये वह उसका प्राकृत रूप ही बोलेगा, हम भी उसकी नकल ही करेंगे जैसे कि वह अपनी 'अस्पष्ट' भाषा में समझ सके। और यही प्राकृत रूप है, इसी का नाम प्राकृत भाषा है। प्राकृत में भी र का ल, त का थ, स का ह अथवा छ होता है और बालक भी पहले इसी प्रकार प्राकृत रूप करता है। फिर जब थोड़ा बड़ा होता है ३-४ वर्ष का होगा तब क्लिष्ट और बड़े शब्दों को उलटा भी करेगा तो वर्णों को स्थानांतर भी करेगा अथवा एक का दूसरा प्रयोग करेगा। आप अपनी अपनी प्रांतिक भाषा में यह समझने का प्रयत्न करें स्पष्ट हो जायेगा। यह सब इसलिये कि वह क्लिष्ट शब्द न समझने के कारण केवल स्वर मिलाने के लिये कुछ भी बोलेगा। उसका प्रयत्न केवल कुछ बोलना है। एक सिन्धी बालक चिमचे को मिचो, चम्पा को सम्पा, चुमी को तुमी, इस्पताल को इस्तापाल, उघारो को उगरारो, स्कूल की मिस्टर को थिथर कहेगा अथवा विभिन्न प्रांतों और देशों में केवल इसी प्रकार करेगा। इसके पीछे उसकी अज्ञानता तथा भाषा समझने में अपरिपक्वता है। इसी प्रकार भिन्न भाषी तथा भिन्न देशी अर्थात् विदेशी लोगों के सम्बंध में होता है जो किसी दूसरे देश के शब्दों को शुद्ध न समझ अथवा उच्चार न कर सकने के कारण अपने स्वभाव से भ्रष्ट कर देगा। बालक तो बड़ा होने पर,

समझ सकने पर प्रतिदिन के अभ्यास से शुद्ध कर देगा परन्तु विदेशी क्या करेगा? कुछ यहां बिगाड़ेगा बाकी अपने देश में जाकर गला घोंट देगा। इस नियम अनुसार शुद्ध न बोल सकने वाला किसी भी भाषा का रुप प्राकृत कर देता है जब कि शुद्ध न समझ कर अथवा क्लिष्ट शब्दों को बोलने वाला कोई भी व्यक्ति उस का रूप अपभ्रंष कर देता है। इसके सिवाय प्राकृत-अपभ्रंश नाम की और कोई भाषा नहीं है। और यह सारे संसार में समान नियम है। क्यो कि ऐसा तो हुआ नहीं कि पहले प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरण बन चुके थे जिन को देखकर लोगों ने ये भाषाएं बना डालीं? नहीं! भाषाओं के जब ये रुप बने तब उनके व्याकरण भी बने हैं। आप किसी भी छोटे बालक को ऐसा नहीं बोल सकते कि 'बाहर चलोगे', उसके स्थान पर बोलेंगे 'बाह तलोगे'। क्यों कि वह स्वयं ऐसा बोलता है इसलिये वह उस अपनी भाषा में शीघ्र समझ जायगा। जिस प्रकार वह बोलेगा उसी प्रकार की बोली में वह समझेगा भी। हमें किसी भिन्न प्रान्त वाले से उसकी भाषा में चाहे हम शुद्ध न भी बोल सकें, बोलना पड़ेगा, तो वह समझ जायगा। यदि कोई पजाबी नया नया आकर किसी गुजराती को बोलेगा कि "तुसी किथे च्या वेंदा है?" अथवा गुजराती उस नवागंतुक को कहे कि 'तमे क्यां जाओ छो? तो दोनों के लिये समझना कठिन हो जायेगा। एक दूसरे को समझकर अशुद्ध रूप में ही सही, अगर वे एक दूसरे से बोलेंगे तो समझ सकेंगे। इस अवस्था में 'तमे किधर जाना छो' बोला जायेगा तो भी काम चल जायेगा. यह एक दूसरे के साथ निभान (Adjust) करने का सीधा और सही तरीका है। इसमें बालक भी आ जाता है। क्यों कि प्राकृत का आरंभ वहीं से होता है अर्थात एक दूसरे की भाषा समझने समझाने का आरंभ भी इसी प्रकार होता है। आगे चलकर अभ्यास से सब ठीक तथा शुद्ध हो जायेगा। जिस प्रकार बालक का बड़ा होने पर। श्री ओटास्पृसन के शब्दों में "बोलने और सुनने में आनेवाले शब्द भाषा का मुख रुप हैं।"[1]

इस प्रकार इस उच्चार भेद का नाम ही प्राकृत है। और वह भी मूल ईश्वरीय भाषा से आरंभ होने लगती है। जेसा कि लिखा है मनुष केवल प्रमाद तथा थोड़े कष्ट से बचने के लिये ऐसा करता है चाहे उससे हानि क्यों न हो। सिन्धी श का स करते हैं। सिन्ध में गावों की स्त्रियां शान (इज़त) को सान (भेंसा) कहती थीं। अंग्रेज तूल (मोटा तकिया) को टूल (tool-औज़ार) कहेगा। यह बात मनुष की असलीयत को भी जाहिर करती है और यह बात देश अथवा प्रान्त की विशेषता बन जाती है। वेद को बेद कहने वाला उत्तर प्रदेश का समझा जा सकता तथा सासू को हाहू कहने वाला गुजरात का भी जाना जा सकता है। परन्तु यह केवल मनुष की कमज़ोरी है न कि भाषा की।

(1) "...The spoken and heard word is the primary form of language, and of far greater importance than the secondary form used in writing (printing) and reading." (The Philosophy of Grammar, P. 17)

बाईबल में एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख आता हैं कि युद्ध से भागने वाले एफ्रामाईट (Ephramites) लोग जार्डन नदी पार करने आये तब उनके शत्रु ग्लीडाईट (Gleadites) लोगों ने उनको रोका। पूछने पर कि तुम कौन हो', यदि किसी ने कहा कि 'में एफ्रामाईट हूं तो उसे कहा जाता कि कहो शिबोलेथ (Shibboleth)! तो वह कहते थे 'सिब्रोलेथ' (क्यों कि वे श को स कहते थे) इस से पहचान कर वे उन्हे कत्ल करते गये। और बाईबल के अनुसार उनकी संख्या ४२ हजार थी।[1] यह श का स भी इसी प्रकार है जैसे शीतल का सीतल तथा श्राद्ध का सिराध। इराक के पहाड़ी Yezdi भी श का स करते हैं और शैतान का सेतान बोलते हैं। यह सब प्राकृतिक भेद है। व्याकरणाचार्यों ने भी इस प्राकृत और अपभ्रंश को इसी रूप में स्वीकार किया है। आचार्य वाग्भट ने भाषा का निर्णय देते स्पष्ट लिखा है कि "संस्कृत, प्राकृत, इस (प्राकृत) का अपभ्रंश और भूत भाषा, ये चार काव्य शरीर की रचना करते हैं। अर्थात इन चार भाषाओं में काव्य-रचना की जाती है"।[2] फिर स्पष्ट करते लिखा है कि "व्याकरणादि शब्द शास्त्रों में संस्कृत भाषा देव-भाषा कही गई है। संस्कृत से उत्पन्न भाषा प्राकृत है जो भिन भिन प्रदेशों में व्यवहृत होने के कारण विभिन्न नामों से प्रसिद्ध है (जैसे कि मागधी, अर्धमागधी, पैशाची, महाराष्ट्री) आदि"।[3]

अपभ्रंश आदि क्यों हुई, इसके लिये स्पष्ट करते लिखा है कि "दूसरे प्रदेशों में, जो संस्कृत से भिन्न परन्तु उन प्रदेशों के नियमानुसार भाषा बोली जाती है, उसे अपभ्रंश कहा जाता है"।[4] किसी विशेष जाति द्वारा जो भाषा बोली जाए वह भौतिक (भूत) भाषा है। उसमें द का त तथा य का प होता है"।[5] आचार्य दण्डि ने अपने ग्रंथ में ये भेद इस प्रकार किये हैं "विद्वान साहित्य के आर्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र ऐसे चार विभाग करते हैं"।[6]

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने ग्रंथ के आठवें अध्याय में लिखा है कि "संस्कृत अर्थात प्रकृति, यह मूल भाषा है, उस से उत्पन्न अथवा निकली हुई वे प्राकृत हैं"।[7]

(1) Old Testament, 'Judges': 12/5-6
(2) संस्कृत प्राकृतं तस्यापभ्रंशो भूत भाषितम।
इति भाषाश्चतस्रोऽपि यान्ति काव्यस्य कायताम॥ (वाग्भटालङ्कारः, २-१)
(3) संस्कृतं स्वर्गिणां भाषा शब्द शास्त्रेषु निश्चिता।
प्राकृतं तज्जतत्तुल्यदेश्यादि कमनेकधा॥ (२-२)
(4) अपभ्रंशस्तु यच्छुद्धं तत्तद्देशेषु भाषितम्।
(5) "यभ्दूतैरुच्यते किञ्चित्तम्दौतिकमिति स्मृतम्" ॥ ३ ॥
(6) तदेतद्वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्रकृतं तथा।
अपभ्रंशश्चमिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम॥ (काव्यादर्श, १-३२)
(7) प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भंव तत आगतं वा प्राकृतम्।

इसी प्रकार वररूची का 'प्राकृत प्रकाश', हेमचन्द्र का 'शब्दानुशान', चण्ड का 'प्राकृत लक्षण', मार्कंण्डेय का 'प्राकृतसर्वस्व', वसंतराज का प्राकृत संजीवनी, और 'प्राकृत कल्पलत्ता' इत्यादि सब ऐसा ही कहते हैं। उनके नियमों के अनुसार मूल संस्कृत से अपभ्रंश रूप किस प्रकार होता है यह सब विवेचन वररूची ने अपने ग्रंथ "प्राकृत-प्रकाश में दिया है। और वे नियम सिन्धी में भी समान रूप से प्रत्यक्ष हैं। इन भेदों के महत्व को छोड़कर भी सारे भारत की भाषा थोड़े भेद के साथ समान थी। श्री नीलकण्ठ शास्त्री ने ठीक लिखा है कि "मौर्य काल में, तामिल को छोड़कर, सारा भारत, अफगानिस्तान और बलोचिस्तान सहित एक साम्राज्य के अधीन था। भाषाएं अथवा उप-भाषाएं जो सारे उत्तर भारत और महाराष्ट्र में बोली जाती थीं, सब एक दूसरे से मिलती जुलती थीं। मगध की बोली (मागधी) न्यूनाधिक परन्तु शासन (राज्य) की भाषा थी। इसी भाषा में सम्राट् अशोक के लेख पहले तैयार होते थे जो बाद में कार्यान्वित होते थे, दक्षिण भारत में भी।"[1] (जैसा हमने ऊपर दिखाया है)

श्री वूलनर (A.C. Woolner) लिखते हैं कि "सब विभिन्न प्राकृत बोलियां पढ़ी-लिखी समाज में समझने जैसी थीं। संस्कृत बोलने वाला, जिसकी स्थानिक बोली कोई भी प्राकृत हो, कोई भी प्राकृत तुरन्त समझ जाता था। इस से पूर्व के दौर में यह भेद और भी कम देखने में आता है। इससे भी अधिक प्राचीन काल में केवल शुद्ध और अशुद्ध उच्चार का भेद ही देखनेमें आता है और यही पढ़े और अपढ़ की बोली में मुख्य भेद था"।[2]

कवि कालीदास ने इस बात को और सुंदर ढंग से कहा है :-

"द्विधा प्रयुक्तेन च वाग्मयेन सरस्वती तिन्मिथुनं नुनाव।
संस्कार पूतेन वरं वरेण्यं वधु सरवाग्राह्यानि बन्धनेन ।। (कुमारसंभवम, ७-९०)

अर्थात सरस्वती ने दो प्रकार की भाषा में उन (शिव-पार्वती) की स्तुति की। वर की व्याकरण वाली (संस्कृत) में और वधु की सरल (प्राकृत) में।

(1) The Statesman [Daily] Independence-Day Supplement, 1956

(2) The different Prakrits were mutually understandable among the educated. A speaker of Sanskrit, whose mother-tongue was the spoken form of any of the Prakrits' would readily understand any of the literary Prakrits........... In the older stage the difference was still less marked. Still further back we should find only the difference between the speech of educated and uneducated people speaking substantially the same language" (An Introduction to Prakrit, P. 8-9, quoted in "Science of Language", P. 24)

इसी प्रकार का ही यह भेद प्राचीन काल से भारत के मूल आर्यों तथा भारत से पलायन करके दूसरे देश बसाने वाले आर्यों की भाषाओं में होता था। इसका निकट समय का प्रमाण ईरान की जन्द भाषा है। पारसी विद्वान श्री तारापोरवाला (Irach Jehangir Taraporwala) ने इसका एक सुन्दर प्रमाण उपस्थित किया है :-

मूल जन्द (विशेषकर स का ह)	संस्कृत
Havanim aa ratum a	सुवनिम् आ ऋतुम आ
Haomo upait Zaratustram	सोम उपैत् जरथुष्ट्रम्
Atrem pairi-Yaozddthontom	अत्रिम् परि-योस-दधंतम्
Gatha-ca Sravayntom	गाथाश्च (अपि) श्रावयंतम
A-dim porosat (Zarathustro): Ko naro ahi ?	आतम् पृच्छत् (जरथुष्ट्र) को नर असि?
Yim azem Vispahe anhans	यन अहन् विश्वस्य असो:
Astvato Sraestem dadarosa	अस्थिवत: श्रेष्ठम ददर्श ।[1]

और यह बाद के पारसी सम्राट् दारा के लेख का नमूना देखें :-

तुरम का ह्य अपर यदि मनिशा हई शियात अहनी जीव
उता मृत ऋतवा अहनी अवना दाता परीदीतय अहुरमजदा
नियस्ताय। अहुरमज्दाम यदइशा ऋताचा ब्रजमनी।

इसका मूल संस्कृत रूप देखें :-

त्वम क: स्य: अपर: यदि मनयासे च्यात: असानि जीव:
उत मृत: ऋतवा असानि अनेन हिता परीहि त्यत् असुरमेधा:
न्यस्थापयत। असुरमेधाम् यजे: ऋता-च ब्रह्माणि।।

यह जद-अवस्ता का केवल संस्कृत-प्राकृत रूप है। बाद में जब प्राकृत-अपभ्रंश रूप हुआ तब उसके मध्य-कालीन दौर के खरोष्ठी-प्राकृत लेख चीनी तुर्किस्तान से श्री स्टाईन (Sir Aurel Stein) को लकड़ी और चमड़े के टुकड़ों पर लिखे मिले हैं, जो ७६४ हैं, जिनका रोमन लिपि में रूपान्तर (Transliteration) तथा अंग्रेजी अनुवाद "Kharoshthi Inscriptions" discovered by Sir Aurel Stein, in Chinese Turkestan (Oxford) भी छप चुका है। ये सब सरकारी पत्र (तथा आदेश) हैं जो वहां के हिन्दू (अधीनस्थ) प्रतिनिधि (सरकारी कर्मचारियों) को खरोष्ठी-ब्राह्मी लिपियों में लिखे गये हैं। एक का नमूना देखें :-

(1) Elements of the Science of Language, P. 316-7

"चोभूबा तंजकस ददव्य

महनुग्रव महरय लिहित चोसूत्रो तंजकस मत्र येति स च ग्रहोनो इश लियेपेय गरहति यथ एदस गवि २ सेनिये संचिचिये तगसितंति एक गवि पतम ग्रोडितति एक खयितति एक विवद समुह ग्रनद प्रोछिदव्य यथ धमेन निचे कर्तवो ग्रत्र न परिवुजिशतु हस्तगद इश विसजिदव्य"।

ग्रनुवाद :- चोभूबा तंजकस को दिया जाय (यह जैसे कि लिफाफे पर पता ग्रौर संकेत के समान है)। महानुभाव महाराजा लिखते हैं चोभूत्रो (एक सरकारी पद) तंजक (नाम विशेष) को परामर्श (मति) देते हैं ग्रौर वह इस प्रकार यहां लेपीय शिकायत करता है कि साच (एक गांव) के सैनिक उसकी दो गायें लेकर गये हैं। एक गाय वापस की है, एक खा डाली है। यह विवाद ग्रापने स्वयं तपास करना चाहिये ग्रौर धर्मानुसार निर्णय देना चाहिये। वहां जो. कुछ समझमें न ग्राए, वह यहां भेज देना।

उपरोक्त रेखांकित शब्द साफ समझे जा सकते हैं, बाकी तो भृष्ट (ग्रपभ्रंश) हैं ही। ये शब्द सिन्धी में भी समान हैं ग्रौर सम्राट् ग्रशोक के लेखों में भी मिलते हैं। ग्रौर ये दोनों भारत से बाहर के हैं। यह संस्कृत, प्राकृत, ग्रौर ग्रपभ्रंश ग्रादि का प्रभाव नहीं ग्रपितु उनका बिगड़ा हुग्रा रूप है। श्री कोनो (Sten Konow) ने इन लेखों की भाषा ग्रौर लिपि के लिये ठीक लिखा है कि "चीनी-तुर्किस्तान में भी संस्कृत के इतने ग्रनगिनत लिखित मिले हैं कि संस्कृत का इतना प्रचलन इस रेगिस्तान में भी देख कर आश्चर्य होता है। कुछ ऐसे भी हस्तलेख संस्कृत के वहां से प्राप्त हुए हैं जो दुर्लभ हैं ग्रौर भारत में भी नहीं मिलते। संस्कृत के सिवाय जिस स्थानिक भाषा का वहां प्रचलन देखा जाता है वह भी उत्तर पश्चिम भारत की बोली है जो वहां की राजकीय भाषा थी। इससे मध्य-एशिया पर भारत के प्रभाव का ज्ञान होता है"।[1]

(1) "Manuscripts and fragments of manuscripts are very numerous among the antiquities brought to light in Chinese Turkestan. If we bear in mind that so many of the finds point in the direction of India, we shall not wonder at the frequency with which Sanskrit has been used in these remains. Several important Sanskrit works, which seem to have disappeared in India, have been brought to light in the sand-desert, where they have been remarkably well preserved. The oldest Sanskrit manuscripts in existence have been found in Turkestan. In addition to Sanskrit we find an ancient vernacular hailing from North-Western India, and this Indian tongue has evideutly been used as the common language of administration during the first centuries after *(Cont......)*

इस प्रकार जब भारत और उस से बाहर की भाषा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश रही तो सिन्ध की भाषा भी संस्कृत और प्राकृत रही। इसलिये अब देखें कि सिन्धी के वर्तमान रूप बनने मे कौनसे कारण बने। और ये कारण ही कुछ नियम हैं जो सारे संसार में भी समान रूप से स्पष्ट और सम्बंधित हैं।

प्राचीन भारती आचार्यों ने प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं पर निर्णय देकर नियम बना दिया है कि शब्दों के तीन प्रकार हैं तत्सम, तद्भव और देश्य।

जो शब्द संस्कृत के यथावत-सदश हों वे तत्सम हैं। जैसे कि :- अखण्ड, आनन्द, इच्छा, ईश्वर, उच्च, एरण्ड, कठिन, कठोर, कणिक, कण्ठ, कथन, खट्ट, खुर, गञ्ज, गणन, घर, चक्र, चर्चा, छिका, छिन्न, जगत, झंकार, ठार, ढाल, तपस्या, दान, धूर्त, नगर, नदी फण, भङ्ग, मांस, रत्न, शंका, ज्ञान, वणिज, इत्यादि ये सब सिन्धी में सदृश हैं।

जो शब्द संस्कृत में से थोड़ा वर्ण भेद से हों वे तद्भव हैं (हम पहले सिन्धी में तथा कोष्ठक में संस्कृत देंगे), जैसे कि :-

अखर (अक्षर), उठ (उष्ट्र), ताउ (ताप), दुकार (दुशकाल), नेण (नयन), पख-पखो (पक्ष), पछुताउ (पश्चाताप), बाफ (बाष्प), बुकर (बर्कर), अंब (आम्र), कन (कर्ण) कांग (काक), कुंभर (कुम्भकार), गड्हु (गर्दभ), चन्ड (चन्द्र), बबुर (बबुंर) जोगी (योगी), लख (लक्ष), तरू (तल), सिर (शिरः) इत्यादि।

जो शब्द दूसरे प्रदेशों अथवा परदेशों के व्यवहृत हो जाए वे देश्य अथवा तलपदा कहे जाते हैं। जैसे कि चालसे (गुजराती), ढोल-ढोलण (राजस्थानी), अगरु (मराठी) डाक्टर (अंग्रेज़ी) इत्यादि।

जैन विद्वान हेमचन्द्र ने लिखा है :-

जे लक्खणे ण सिद्धा ण पसिद्धा सकयाहिहाणेसु।
ण य गउण-लक्खणास्ति संभवा ते इह णिबद्धा।। (देशी शब्दसंग्रह, गाथा २)

अर्थात- जिन शब्दों की सिद्धि के लिये व्याकरण शास्त्र ने कोई मार्ग नहीं बताया है, जो शब्द संस्कृत शब्दकोष में नहीं हैं तथा जो गौण अथवा लक्षण आदि शब्द शक्ति द्वारा भी न साधे जा सकते हों, ऐसे शब्द इस 'देशी शब्द संग्रह' में संग्रहीत किये गये हैं।

"प्राकृत तज्जतत्तुल्यदेश्यादि कमने कधा"। (वाग्भटालङ्कर, २-२)

अर्थात-प्राकृत, विभिन्न देशों में व्यवहृत होने के कारण देश्य कहलाती है।

Christ all over the southern part of Chinese Turkestan. From this fact we can gauge the extent of Indian influence on the civilization of Central Asia." (Modern Review, April, 1921)

परन्तु प्राकृत कोई निम्न कोटि की भाषा है, ऐसी बात नहीं है। केवल उच्चार भेद में थोड़ा विकार है। मराठी कवि एकनाथ (१५वीं शती) ने ठीक कहा है :-

"संस्कृत जर देवे केली। तर प्राकृत काय चोरा पासोनि आलि?"

अर्थात संस्कृत यदि देवताओं की भाषा है तो प्राकृत कोई चोरों के पास से आई है? सो ऐसी बात नहीं है, जैसा कि हमने ऊपर भी दिखाया है।

अनजाने में कुछ शब्द अधिक बिगड़ते हैं वे अपभ्रंश होते हैं। देखिये :-

संस्कृत	अपभ्रंश	सिन्धी रूप
मिलितं	मिलिउ	मिल्यो
भाद्रपद:	भद्दवग्रो	बडो
मुख	मुह	मुन्हं
शिर:	सरु	सिरु
इयत	इत्तउ	एतिरो
विभातम	विहाणु	विहाणू
व्रजे:	वुत्र:	वञु
हृदय	हीग्रइ	हींऊं
भङ्क्त्वा	भंजउ	भञी
दृष्टिम्	दिट्ठ	डिठो
व्याघ्र	वाघ्र	वाघू
वल्गाम	वग्ग	वागु

प्राकृत रूप इतना व्यापक और समान है कि भारत के भिन्न भिन्न साहित्य में ऐसे शब्द मिलते हैं जो प्राय सिन्धी में भी हैं। जैसे कि :-

चन्द बरदाई :- धुनि, सुघर, आप्पो, भुल्ल, लौं।

कबीर :- सौंप, घाव, डिसई, बुल्हारी, घाघर,

जायसी :- सौंटी, घर, उघाड़ो, बाजो, दिठी, सघड़ो।

तुलसीदास :- नींह, हियों, लहण (लभण), सुहाएं, साराहिण, भलो, कुछ।

सूरदास :- अइं न त, कड़ो, गोहिण, मल्हाइण, निछावर, उलट, महिर।

केशवदास :- धीरज, बुझण, सच्चो, डुग्रो, जाचिबो, सुई।

गिरधर :- साईं, बिगड़ण, झगड़ण, लेटण, वांझ, लूण, खटकण।

इसके सिवाय अन्य सब काव्य भक्ति-ग्रन्थों में सिन्धी शब्द मिलते हैं।

११वीं शती के जैन कवि धनपाल की "ऋषभ पञ्चाशिका" में तो अनेक सिन्धी शब्द हैं कोई पृष्ठ छूटा नहीं मिलेगा।

प्राकृत के कोश ग्रन्थ "पाइअ-सद्द-महाण्णवो" (प्राकृत शब्द महार्णव) में असंख्य शुद्ध सिन्धी शब्द मिलेंगे।

सिन्धी का एक शब्द है "छठि छमाही"। यह तब प्रयोग में आता है जब कोई बात इतफाक से होती है तो कहा जाता है "छठि छमाही गद्दियो आहे" अर्थात कभी कभी मिलता है। अब नाथ संप्रदाय का उद्भव हुआ पूर्व भारत में। और जोगियों की बाणी में यह शब्द आता है :-

'छठे छमासे काया पलटत, नाग बङ्ग वनासपती जोगी'

अर्थात जोगी को वर्ष में १-२ वार (छठि छमाही) सीसे तथा कलई की भस्म और वनस्पति से काया कल्प करना चाहिये। सिन्धी में केवल स का ह बनकर छमासे का छमाहे हो गया है।

इसी प्रकार नेपाल में मत्स्येंद्र (मच्छन्दर) नाथ दो प्रकार के माने जाते हैं एक ठुलो (मोटा) दूसरा सानु (पतला)। यह दोनो शब्द सिन्धी में थुलो और सन्हूं प्रचलित हैं। यद्यपि ठुलो से सिन्धी का थुलो अधिक शुद्ध है क्यों कि इसका मूल संस्कृत स्थूल है।

इस प्रकार यह स्थति उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम में समान है। क्यों कि भारत में भाषा का सदैव समान रूप रहा है। मगध पूर्व में है, उसकी भाषा मागधी! तो पश्चिम में अर्धमागधी !! अपभ्रंश पश्चिम की अथवा शौरसेनी, हर स्थान पर समझी जा सकती थी। श्री घोषल ने अपने एक लेख "Inquiry into Eastern Apbhransh" में लिखा है कि "पूर्व की अपभ्रंश अथवा साहित्यक अपभ्रंश, पश्चिम की अपभ्रंश अथवा शौरसेनी अपभ्रंश से भिन्न नहीं है"।[1]

और सिन्धी में तो अर्धमागधी का रूप औरों से अधिक मिलता है और लगता है सिन्धी और अर्धमागधी एक ही भाषा है। विशेष कर दोनों का लहजा तथा शब्द के अन्तिम वर्ण पर भार देना तो बिलकुल एक समान है। जैसे कि :-

(1) "The Eastern Apbhransha or the literary Apbbransha is not separate from the Western or Shaurseni Apbhransha, which was cultivated as literary language in the eastern and in many other places of India. During that period it might have come in close contact with the local dialeets from which absorbed certain forms."

(Journal of the Asiatic Society [Calcutta-1956] Vol. XXII, No. 1)

अइं, अक्खाण्य, अट्ठ, अट्ठहत्तरि (७८), अंब, आण, कम्म, गुज्झ (secret), झीण, तड़, दक्खिण, पर, पाहाण, पोराण, लज्ज, बाउ, विज्जु (विद्युत), विक्किण, संझा, सिंग, सुक्क, हेट्ठां, मसाण, मक्खि, इत्यादि।

बाद के जैन आगम साहित्य "वृहत कल्प भाष्य" तथा "निशीथ भाष्य" आदि ग्रन्थों में भी ये सिन्धी शब्द मिलते हैं :-

अजाण (अजाणग), उखड़ी (उक्खल), उड्ड (उड), किथे (कत्थ), केलो (कयल), कुहाड़ो (कुहाड़), खंउर (खउर), खुरपो (खुरप्पाग), गोण (गोणी), धाणी (धाण), चिभिड़ु (चिब्भिड), इत्यादि।

दक्षिण भारत (जिसे द्राविड़ कहा जाता है) के कुछ शब्द अचार्य हेमचन्द्र ने अपने "देशी नाममाला" में दिये हैं जो भी सिन्धी से समानता रखते हैं। जैसे कि- अम्मा (माता), इझो अज्झा-यह), उभार (उब्बरो), ओकारो (ओक्किअं), अबो (अप्पो), कुड़िछ (कुडिच्छ), गोथरो (काथलो), घाट (घट्टो), मामी, मिण मिण, इत्यादि।

इसके सिवाय सिन्ध में "इटी डकड़" (गिली डंडा) खेल में वकट (एक), लेन (दो), मून (तीन) नार (चार), आदि पुकारे जाते थे, वे सब दक्षिण भारत के अंक हैं।

भाषाओं के बिगड़ने के अनेक और भी नियम हैं, जिन में विशेष कर वर्णों का उच्चार बदलना अथवा बिगड़ना तथा वर्णों का स्थानांतर होना आदि हैं। जैसे कि :-

स का ह होना। माश का मांह, विश का विह, श्वास का साहु, श्वसर का सहुरो। यही बात भारत भर में क्या संसार भर में है। गुजरात में सारूं का हारूं तो सासू का हाहू होता है। ज़ंद में सप्त का हप्त तो मास का माह बना है।

ल का र होना। हल का हर, पाला का पारो, फल का फर, ताली का ताड़ी, ताल का तार, धूल का धूड़, जाल का जार।

य का ज। योगी का जोगी, सूर्य का सिज, शय्या का सेजा, यव का जव, यौवन का जोभन।

क का ग होना। अंक का अंग, डंक का डंग।

वर्णों का स्थानांतर होना। कुछ वर्ण, शब्द में एक स्थान से दूसरे स्थान पर हो जाते हैं जो फिर भृष्ट शब्द बन जाते हैं।

उलटा का उट्लो, अर्धांग का अधरंग, लानत का नालत, गासलेट का गास्टेल, मुकुट का मुट्टक। अकेले इस मुकुट के चार रूप हैं मुकुट, मुट्टक, मुंडक, मोड़। गुजरात में अमानत को अनामत कहते हैं।

कुछ शब्द दूर से अथवा किसी अन्य भाषा के स्पष्ट रूप से न सुनने अथवा समझने के कारण बिगड़ जाते हैं। एक सिन्धी गया ईरान में। उससे नाम पूछा गया तो बताया 'तीरथदास'!

बार बार बताने पर भी जब वे न समझ पाए तो उन्हों ने उसका रूप अपनी जुबान का समझ कर वे उसे 'तीरथदास' के स्थान पर 'तीरांदाज़' कहने लग गये। सौराष्ट्र में एक स्टेशन का नाम सराडिया है। एक सिन्धी उस का शुद्ध उच्चार न समझकर अपनी सिन्ध का सरहारी नाम ही कहता था। जावा द्वीप समूह से एक हरे रंग का तेल सिन्धी लाते थे जोवातरोग में मालिश के काम आता था। उसका मूल नाम संभवत: 'काई पूती' था परन्तु सिन्धी उसका शुद्ध उच्चार न समझ कर उसे 'काली कुतिया का तैल' कहते थे। यहां 'कर्फ्यू आर्डर' को 'कुल्फी' भी कहते हैं तो पेन्शिन को पेन्सिल। यह पूरी तरह न समझने के कारण प्रचलित हो जाते हैं किन्तु बिलकुल न समझने के कारण ऐसा भी होता है कि Guard का घाट, Picture का पीचर, तबेला का तंबेला, **Packing** का पेकिन, तो Advertisement का एडूटाइ। गुजरात में तो स्वास्तिक को कहें साथियो, तो रिवायत को राबेता।

● बराबर न सुनने से ही प्राय: ऐसा होता है जिसका सुंदर उदाहरण अरब के विद्वान जाहिज़ का है। एक बार वह किसी मित्र से मिलने गया। आवाज़ दी, तो मित्र का ग़ैर-अरब गुलाम बाहर निकल आया और नाम पूछकर अंदर जाकर कहा जाहिद (जाहिज़ न समझकर) आया है। मित्र तो अरब था उसने सोचा अरबी में जाहिद नाम नहीं होता इस लिये उसे फिर पूछने को भेजा। बाहर जाहिज़ सब सुन रहा था उसने सोचा जाहिज़ नाम नौकर कदाचित फिर भी न समझ सके इसलिये उसे कहा मैं हद्की हूं (अरबी में हद्क का अर्थ बैंगन होता है परन्तु यह न जाने क्या था) नौकर ने फिर भी न समझ कर अंदर जाकर कहा कि उसका नाम हलकी है। (फारसी में हल्की का अर्थ जलेबी है)। बाहर जाहिज़ ने दोनों नाम सुने। तो जब यह नाम सुना तो आवेश में आकर कहा 'रदना अली अलावल' अर्थात मैं अपने लिये पहला शब्द जाहिज़ के बदले जाहिद तो सुन सकता हूं मगर हदकी के बदले हलकी नहीं सुन सकूंगा। आवाज सुनकर मित्र आवाज पहिचान कर बाहर निकल आया।

एसी ही बात दूसरे देशों के नामों की है। जपान का नाम निप्पोन है, कलकता का कालीघाट है जो पूरी तौर न समझने पर गलत हो गए हैं। जर्मनी का नाम लेटिन में 'गर्मानुस' है। ग का ज़ होता है इसलिये जर्मानुस (मानुस का अर्थ मनुष है) हो गया जो बिगड़ कर वर्तमान में जर्मनी बन गया है। वैसे गैरमानुस का अर्थ अपने आदमी' है। इटली का नाम भी अतालय है।

कुछ शब्द पारिभाषिक (इस्तिलाही) बन जाते हैं अर्थात शब्द का मूल अर्थ तो एक होता है परन्तु व्यवहार में आने के बाद उनका अर्थ बदलकर बिलकुल और हो जाता है।

दुधो! ऊंट को सिन्धी में दुघो भी कहा जाता है और राजस्थानी में भी दुघो कहा जाता है। उंट पानी अधिक पीता है इस लिये कोई बालक अधिक अथवा घड़ी घड़ी जल पीता

है तो मां उसे कहती है "क्यों, द्रोघो लागा है क्या?" अर्थात इतनी अधिक प्यास लगी है क्या'

लेड़्प्यो ! यह शब्द प्रायः दक्षिण-मध्य सिन्ध में प्रचलित था क्यों कि वहां के बहुत लोग मकरान (बलोचिस्तान) में व्यापारार्थ जाते थे। मकरानी बोली में ऊंट को लेड़ो' कहा जाता है। बड़े बच्चों को प्यार की गाली देते समय लेड़्प्यो कहा करते थे। क्यों कि किसी को ऊंट का बच्चा कहना सीधी गाली होती इसलिये ऊंट का बाप कहना प्यार की गाली होती थी। लेड़पियो अर्थात ऊंट का बाप!

चूतिया! असम का एक आदिवासी कबीला है। उनके किसी प्रकार के उल्टे व्यवहार के कारण उनका यह नाम असभ्य अर्थ वाला बन गया। उनका यह पन्थ है जिनके मुखिया के नाम के पीछे 'प्रसाद' शब्द जुड़ता है। इस लिये यह नाम भी चूतिया, चूतिया-पन्थी तथा चूतिया-प्रसाद तीनों प्रकार से अपशब्द के रूप में प्रचलित है।

भड़वा ! ये भी गुजरात के आदिवासी भीलों के पान्थिक प्रोहित हैं जिन्हें भोपा भी कहा जाता है। इनके कुछ ऐसे करतूतों के कारण इनका बड़वा शब्द अपशब्द रूप में प्रचलित हो गया।

मुआ मारिया ! यह भी असम के वैश्णव साधुओं का एक पंथ (sect) है। किसी प्रकार भी यह निरर्थक रूप में प्रचलित है। माताएं बच्चों को प्रायः कहती हैं जब बच्चों पर क्रोध करती हैं। और केवल सिन्ध में ही प्रचलित है।

यह सब इस प्रकार है जैसे आजका 'बक्षी'। मंगोलों के प्रथम शिक्षक तथा राजकर्मचारी 'उइगर' थे जो बौद्ध थे। जब 'चिन्गिस' (चंगेज़ खां) का अधिकार चीन और इसलामी देशों पर फैला तब भी दरबार और दफ़तर में उनका प्रभुत्व था। वे भिक्षु भी थे इसलिये मंगोल उन्हें बक्ष कहते थे जो बाद में बिगड़ कर फारसी माध्यम से 'बक्षी' बन गया। मुगुल काल में यह एक सरकारी पद था। ऐसे ही जैसे प्रयदर्शी का अर्थ मूर्ख भी बन गया।

● प्रायः शब्द वर्ण और रूप बिगड़ने के कारण भी नये बन जाते हैं।

CAMEL! संस्कृत में क्रमेल और क्रमेलक दोनों उच्चार हैं, जिनका प्रयोग 'अमरकोश' तथा 'पंचतंत्र' में भी है। मूलतः यह सिन्ध का प्राणी है। यद्यपि सिन्धी में संस्कृत 'उष्ट्र' का 'उठ' बनकर आया है। भारतीय साहित्य में उष्ट्र शतपथ ब्राह्मण से रामायण तक के ग्रन्थों में है और यही प्राचीन नाम है। यह क्रेमल लैटिन में Camelus, ग्रीकमें Camelos, एंग्लो सैक्सन तथा फ्रेंच में कैमेल, पुरानी अंग्रेज़ी तथा पुरानी फ्रेंच में चैमेल (जैसे गुजराती में क का च होकर केम का चेम कहते हैं), इब्रानी (Hebrew) तथा फिनीश्यन में गमल (गमल) होकर अरबीमें (ग का ज होकर) जमल बन गया है।

ज़र्दः! संस्कृत का हरिद्रा जिसे हिन्दी में हल्दी कहा जाता है और सिन्धी में हैड, बलूचन्द में ह का ज़ (जैसे हस्त का ज़स्त, अहि का अज़ी) होकर जरिद्रा से ज़रिद और ज़र्दः बन गया है।

ये वर्णों के भिन्न भिन्न उच्चार भी सारे संसार में हैं। और ऐसा हर जगह हर देश में होता है। अरब लोग चीन को सीन, बड़ोच का बद्रूस, गुजरात के गुर्जर को जुज्र, साग (लकड़ी) को साज, तो गूनी को जून, कहते हैं। गुजराती भी केम को चेम तो गुसे को जुसो कहते हैं। चेरल का ही केरल बन गया है।

GOOSE! संस्कृत में हंस एक पक्षी का नाम है, जिसे सिन्धी में हंज कहते हैं। यह जन्द में ह का ज होकर जन्स हो गया। ज़ और ज समान हैं इसलिये जन्स का फिर ज़न्स हो गया और जर्मन में फिर ज का ग होकर गन्स हो गया। G का उच्चार ज तथा ग होता है। वह बिगड़ा तो गन्स बन गया। सेक्सन और आईसलैन्डिक में Gas, डैनिश में Goas, डच्च में Gans, रशियन में Gus और अंग्रेजी में Goose हो गया है।

COFFIN! हर मृतक मनुष का अन्तिम 'शाही लिबास' केवल एक कपड़े का टुकड़ा होता है जिसे कोपीन (लंगोटी) कहा जाता है जिस से उसके गुप्त अंग ढक सकें। यही कोपीन (प का फ होकर) कोफिन हो गया। बादमें दफनाने पर कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों को लकड़े की पेटी में रख कर गाड़ा जाने लगा तो उसको भी Coffin कहा जाने लगा। इसलिये उसका अर्थ पुरानी फ्रेंच में Cofin (लकड़े की पेटी) तथा लेटिन में भी Cophinus अर्थात् पेटी ही बना रहा। अरबों में कपड़े को ही कफ़न तथा भारत में भी कफन इसी कपड़े को कहा जाता है।

क़बर! संस्कृत में कवर तथा कवरी अर्थात 'अंदर बिठाना' अथवा रखना है। मृतक को दफनाते समय गड्ढे में अंदर रखा जाता है। इसलिये इसका रूप भी संस्कृत कवर से कबर बन गया (प्राकृत में व का ब होता है जैसे विद्या का बिद्या), और भारती भाषाओं में भी अरबी से कबर बनकर आया है। किन्तु पुरानी फ्रेंच में Covrir तथा बाद की फ्रेंचमें Couvrir था जो अंग्रेजी में Cover अर्थात ढांकना- बंद करना है।

ASSASIN! अरबी में और अभी अंग्रेजी में हशिश (Hashish) का अर्थ भांग (नशेदार सूखी घास) को कहते हैं। इस्लाम का बहिश्त प्रसिद्ध है, जिसमें शराब की नदियां बहती, हूरें मिलती, खजूर और अंगूर के बाग़ होंगे, जो ग़ाजियों को काफिरों को क़त्ल करने के पश्चात मिलेंगे। इस बहिश्त को वास्तविक रूप देने के लिये तथा अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये पुराने जमाने में एक व्यक्ति ने एक ऐसा बहिश्त बनाया था। वह ऐसे गाजियों को हशिश पिलाकर नशे की हालत में उन्हें इस बाग़ में ले जाकर सब कुछ दिखाकर फिर कत्ल करवाता था। इसलिये इस हशिश से ह का अ बनकर अशिश से श का स बनकर Assasin अर्थात कत्ल करना पारिभाषिक शब्द बन गया। मार्कोपोलो ने इस बहिश्त का वर्णन किया है।[1]

(1) The Travels of Marcopolo [Dent], P. 73

ऊपर हमने शब्दों के बिगाड़ में प्राकृत आदि रूप बनने के लिये वर्णों का रूप बदलना लिखा है। अर्थात स का ह, त का द, य का ज, ज का ग, क का च, प का फ इत्यादि। अंग्रेज़ी C का उच्चार स, क और च भी होता है। हम अंग्रेज़ी के कुछ शब्द लिखते हैं और साथ में संस्कृत भी। दोनों में केवल उपरोक्त प्राकृत ढंग से इन वर्णों का उच्चार बदल कर वैसा करें जो मूल से बदल कर बना है। अब देखेंगे कि सब के सब शब्द इसी प्रकार बिगड़ कर बने हैं। जैसे कि अंग्रेज़ी का Committee शब्द लें। कहा 'कमेटी' जाता है अर्थात C का क। अब केवल इस C का उच्चार स कर देखें तो यही शब्द अब शुद्ध समेटी अर्थात समिति बन जायगा। फिर इसी C का उच्चार स न करके क करें तो देखेंगे तो वह सेन्टर (centre) का केन्द्र बन जायगा त का द बनकर। इसी प्रकार ये शब्द भी देखें :-

Common=समान, Cow=गौ, Wing=विहंग. Tree=तरु, Grass=ग्रास, State=स्थिति Aggressor=अग्रसर, Same=सम, Anxious=आकांक्षी Medium=माध्यम, Bad=बद, Pottery=पात्र, End=अंत, Hunt=हंति, Mouse=मूष, Other=इतर, Kite=केतु, Band=वृन्द, Doubt=दुवधा, Age=आयु, Malign=मलीन, Door=द्वार, Bull=बैल, Vesture=वस्त्र, Boat=पोत, Sir=श्री, इत्यादि।

इस प्रकार देखेंगे तो सारे संसार की सब भाषाओं में संस्कृत के मूल शब्द कुछ प्राकृत तो कुछ अपभ्रंश ढंग से दिखाई देंगे। अथवा तो प्राकृत अपभ्रंश रूप शतियों के पश्चात फिर प्राकृत-अपभ्रंश रूप धारण करेंगे। इस प्रकार अनेक शतियों के बाद वे शब्द पहिचानने से परे हो जायेंगे और इसी प्रकार वही अलग और नई भाषाएं भी बन जायेंगी। इस प्रकार शब्दों का जन्म-मरण होता रहता है। Arctic समुद्र में एक विचित्र पशु है। जब नया देखा गया तो किसी को नाम ही नहीं आता था। मोटा बड़ा जैसा घोड़ा। मछली के समान पानी में रहे तो गुम। आगे से हाथी के समान दो लंबे दांत भी हैं। बड़ी मछी को Whale कहा जाता है तथा घोड़े के समान होने से उसका नाम Whale-Horse रखा गया। पुराने नोर्स लोग उसका उच्चार बिगाड़ कर Hvalross करते थे। वही सिकुड़ कर अब Walrus प्रसिद्ध हो गया है।

ऐसा ही सिन्धी का एक शब्द है द्दोसो, अर्थात कंजूस! संस्कृत में दोस का अर्थ बांह (arm) है। पुराने ज़माने में बजाज (कपड़ा बेचने वाले) कपड़े की बड़ी गठरियां बांध कर बांह डालकर कंधे पर लटकाकर गांवों में फिरते थे। इसलिये उनका पारिभाषिक नाम ही दोसो प्रसिद्ध हो गया। गांवों में प्राय: वे घरों में जाकर औरतों से ही लेन देन करते थे। औरतें भाव में कुछ कम करने के लिये खट पट किया करती थीं किन्तु वे दोसे कुछ भी कम नहीं करते थे। इस प्रकार जब दूसरे भी ऐसी कंजूसी करते थे तो उन्हे दोसो कहा जाता था। ये दोसे प्राय: बड़ी आयु के हुआ करते थे ता कि किसी भी घर में जा सकें। गुजराती में उन्हें 'दोशी' कहते हैं परन्तु

अब बड़ी आयू वालों के लिये ही प्रयुक्त होता है। तो सिन्धी में ड्डोसो का अर्थ कंजूस तो गुजराती में वृद्ध। मूल दोनों का एक ही है। विक्रमसिन्ह ने कुछ ऐसे धन्धा करने वालों के धन्धों का उल्लेख किया है जिनमें दोसो और बजाज दोनों शब्द हैं :-

ग्राहको मुस्तर दाता फुरीसंदा च गंधिक:।

अतारु दोसिक: प्रोक्तो बजाजु कंसारक: स्मृत:॥

(पारसी भाषानुशासन, प्रकर्ण २, श्लोक ५०)

● कुछ ऐसे शब्द हैं जो केवल सिन्धी में हैं, जसे कि :- भतु, दुको (मक्खन का), धणु, चटो, सध, बुटो, ब्रिटो, वढी, सुठो, ग्रोठ, पितो, टांडो, मुनो, मिनू, नालि, सट्ठु, पोढ़ियो, चकु, चिक, हलति। इन के समान अर्थी शुद्ध शब्द तो हिन्दी में भी नहीं है। इसके सिवाय सौट, मासात, पुफाट, मारोट, सुभाण, ताहिरी आदि। सौट को सब चचाज़ाद भाई अथवा चाचे का लड़का कहते हैं, मासात के लिये मौसी का लड़का। सुभाण अर्थात आने वाली कल के लिये तो कहीं भी कोई शब्द ही नहीं है। ताहिरी और भतु तो हैं ही सिन्धी शब्द। ताहिरी अर्थात चावल में गुड़ डालकर पकाना। मराठी में उच्चार शायद है परन्तु व्यवहार नहीं।[1]

इस प्रकार इन पारिभाषिक शब्दों का अर्थ भी बढ़ जाता है। सस्कृत में वेला का अर्थ समय है। सिन्धी में यह ल का र होकर वेर बन गया। जल्दी आने वाले को कहा जाता था कि 'वेर में आना' अर्थात जल्दी आना। यहां इसका अर्थ हुआ शीघ्र। परन्तु यह बाद का रुप है। वास्तव में वेला का वेल बना जिसका अर्थ खाना अथवा वेलो (एक वेला [खाने का समय] खाना, एक वेला न खाना)। यह 'वेलो' किसी समय 'वहिलो' भी था, और 'शीघ्र' अर्थ में प्रयुक्त होता था। सिन्धी कवि अब्दुललतीफ ने भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया है। अब 'वेहिलो' शीघ्र अर्थ में सिन्धी से लुप्त हो गया है किन्तु गुजराती में अब भी इसी अर्थ में व्यवहृत होता है।

● निकट शतियों में भाषाओं के अधिक बिगड़ने का सब से बड़ा कारण लिपियों की अपूर्णता तथा अशुद्धता है। लिपियों की इस अपूर्णता के कारण बड़ा उच्चार भेद क्या वस्तुत: समझने से बाहर होता है। ससार की किसी भी लिपि में जो कुछ भी लिखा जाय वह उस लिपि का उच्चार भेद सीखने के सिवाय उसका शुद्ध पढ़ना ही असंभव है। प्राचीन यूनानी तथा रोमन लेखकों ने भारत के जो भी भौगोलिक आदि नाम लिखे हैं वे सब के सब अशुद्ध हैं। कुछ अनुमान कुछ अटकलबाज़ी से बड़ा परिश्रम करने पर भी शुद्ध इतिहास नहीं लिखा जाता। अभी तक यह निर्णय नहीं हो सका है कि मैगस्थनेस किस आर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त की दरबार में उपस्थित था। मौर्य अथवा गुप्त अथवा कोई तीसरा ? क्यों कि नामों के उच्चार इतने संदिग्ध हैं कि कोई

(1) Illustrated Weekly of India, dated 2?-10-1960

एक राय स्थर करना कठिन है। टालमी ने सिन्धु की सात धाराएं लिखी हैं किन्तु समझने में एक भी नहीं आती, जब अंग्रेजी में गङ्गा का गैंजिज़ हो गया है। अरबों ने अमान से लेकर सिन्ध भारत तक के जिन बंदरों और नगरों के नाम लिखे हैं वे सब ग़लत! अनुमान से कुछ, वे भी बहुत प्रसिद्ध, कुछ कुछ समझ में आ सके हैं, बाकी का कोई पता नहीं। इसी प्रकार 'चच्चनामा' के आधार पर भी शुद्ध तथा विश्वसनीय इतिहास जोड़ना असंभव है। न नाम शुद्ध न फ़ासले पूरे। यह सब अशुद्ध लिपियों के कारण है। आज के संसार की प्रमुख अंग्रेज़ी लिपि, शताब्दी पूर्व भी इस प्रकार लिखी जाती थी। हाकिन्स (William Hawkins) के वर्णन में है कि :

"verie ffitt (fit) for refreshinge your people we wysh (wish) you Mr. Hawkins to send word to the Gournor Comaunder in Suratt, that there is a messenger arrived wth (with) I'res from the kings matic of England vnto their kinge, praying the Gournor to send him a boate. Wih wch (which) conveyaunce yf any come to you from the Gournor...... & comeing to the Gournor att Suratt, present him wth some such guifte (gift) as you shall thinke meete & desire him to assist you wth meanes & guides to the kinge, that you may deliur him matics I'res vnto him according to yor (your) chardge (charge)".[1]

अब इस छोटे से परिच्छेद में केवल ४-५ शब्द जो हमने कोष्ठकों में दिये हैं वे आज की प्रचलित लिखावट से तुलना करके देखें तो अंग्रेजी से कितना अनर्थ हुआ है। इस लिपि-अशुद्धि के कारण अनेक बोलियों-भाषाओं के पूरे ढांचे बदल गये हैं। सिन्धी का जत अरबी zt तो ठाकुर का तकाकर हो गया है। वही दुर्गति यूनानी आदि सब भाषाओं की है। लिपि की शुद्धता का नियम यह है कि जो कहा जाये, वैसा ही लिखा जाये और जैसा लिखा जाय वैसा ही पढ़ा जाय। मगर संसार की किसी भी लिपि में सिवाय संस्कृत-देवनागरी के, ऐसा नियम नहीं है। बड़े बड़े पढ़े लिखे भी अंग्रेजी के विभिन्न उच्चार करते हैं। Hardinge को कुछ हार्डिज तो कुछ हार्डिंग कहते हैं। daughter को datar नहीं लिखा जा सकता? night को nait, right को rait क्यों न लिखा जाये? यद्यपि ऐसा हो सकता है परन्तु एक रहस्य (जिसे हम राज़ कहते हैं) है। इस उच्चारण (spelling) में इन शब्दों का मूल समाया हुआ है। संस्कृत दुहितर का फारसी दुख्तर होकर अंग्रेजी में दुघतर (d[a]ughter), संस्कृत ऋत (सत्य) का right तथा संस्कृत नक्त (रात्री) का night बनने के कारण इनमें से ये वर्ण निकाल देने से इनका मूल नष्ट हो जायगा। परन्तु बाकी के तो उच्चार ही अशुद्ध हैं। schedule को shedul अथवा scheme को skeem

(1) Dr. Prasad: Early English Travellers in India, P. 89-90

क्यों ने लिखा जाये। स्पष्ट है कि ये शब्द केवल सिखाने से ही उच्चारण किये जा सकते हैं नहीं तो schedule का उच्चार स्केडूल तथा Scheme का उचार स्केमी अथवा स्चेमी क्या जा सकता हैं। भला Sun और Son का उचार भेद? यह पुस्तक कम्पोज करने वाला कम्पाजीटर अंग्रेजी नहीं जानता। सो एक स्थान पर should शब्द जल्दी में लिखे होने के कारण वह समझ नहीं सका। पूछने पर spell कर के बताया तो बोला कि यह तो शोल्ड हुआ न! न कहने पर भी बोला चाहे कुछ हो हमारे लिये तो शोल्ड ही हुआ! सोचने जैसी बात है कि should का शुड तो shoulder में शोल्डर! प्रथम में L होते हुए भी उसका उच्चार ग़ायब! इस प्रकार एक एक शब्द का उच्चार अलग अलग सिखाने पर ही उसका शुद्ध उच्चारण तथा समझना संभव हो सकता है नहीं तो लिखे हुए should का उच्चार शोल्ड क्यों नहीं? चीनी भाषा में toh शब्द मेज़ के लिये प्रयुक्त होता है। परन्तु यदि उच्चार करने में जरा सी ग़लती हुई तो इसके अर्थ, चाकू, गिरना, मांगना, मछली, ढांकना आदि हो जाऐंगे। यह सब मुसीबत लिपियों की अपूर्णता के कारण है। किन्तु देवनागरी-हिन्दी में निसंदेह शेडूल, स्कीम अथवा संसार की किसी भी भाषा का कौनसा भी शब्द जैसा लिखा जाएगा ठीक उसी प्रकार पढ़ा भी जाएगा। इसके लिये विशेष उच्चार सीखने की आवश्यक्ता नहीं है, सीधा, सरल, शुद्ध तरीका है। सो इस कारण भी भाषाओं में बड़ा बिगाड़ आया है।

● भाषाओं के विषय में इस बात का भी विशेष भाग है, जिसे बहुभाषी (Polyglottism) कहा जाता है। इसके चार भेद हैं।

१- एक शब्द एक अर्थ वाला, दूसरा विरूद्धार्थी, होता है। जैसे कि: आना-जाना, आगे-पीछे, आज-कल, आमने-सामने, उठना-बैठना, आजू-बाजू, जूठ-सच, खाना-पीना, दाना-पानी, छोटा-बड़ा, सुबह-शाम, सुर-ताल, दिन-रात, हिसाब-किताब, नीचे-ऊपर, ऊंच-नीच, लिखना-पढ़ना, दुःख-सुख, इत्यादि।

२- एक शब्द अपनी भाषा का दूसरा दूसरी भाषा का। जैसा कि :-
खाद्य-खोराक, लाज-शरम, सत्-सवत, खत-पट, खेल-तमाशा, घर-बाल, इत्यादि।

३- समानार्थी दो शब्द, जैसे कि :-
कपड़ा-लत्ता, रोना-चिलाना, पूछ-ताछ, सगे-सम्बधी, गाना-बजाना, लुक-छिप शाहिद-गवाह, बाल-बचे, सखी-सहेली, जान-पहिचान, इत्यादि।

४- इसमें जोड़ी पूरी करने के लिये समान उच्चार का निरर्थक शब्द एक वर्ण बदलकर जोड़ा जाता है। जैसा कि :-

गोल-मोल, ऐसा-वैसा, हका-बका, चाइ-शाइ, गाड़ी-वाड़ी, कल-बल, दूध-शूध (बूध), इत्यादि

ऊपर सं० २ में हमने घर-बाल लिखा है। वस्तुतः घर में बार का समावेश तो हो ही जाता है। परन्त बंगाली में घर-बार कहा जाता है। इसमें बार का अर्थ खेती का बारा होता

है, अर्थात घर और बारा खेतीका, यह ठीक लगता है।

गुजराती में भी इसी प्रकार का व्यवहार होता है। जैसे कि :- ढोर-ढांगर, साफ-सूफ, जीव-जन्त, पूछ-गाछ, खाली-पीली, आजू-बाजू, अड़ोशी-पाड़ोशी, काम-काज, छानु-मानु, कागल-पत्र, इत्यादि।

जल-वायु तथा राजनैतिक प्रभाव!

स्वभाविक है कि अड़ोस-पड़ोस तथा जल-वायु का और राजनैतिक प्रभाव भी भाषाओं पर पड़ता है। अड़ोस-पड़ोस अर्थात चारों ओर के प्रान्त। भारत देश होने के नाते हर तरफ से यातायात द्वारा सम्बंध हर प्रान्त से रहना ही है, सिन्ध का भी रहा है। इसलिये उन प्रान्तों की बोलियों के साथ समानता रही है। पश्चिम में समुद्र मार्ग द्वारा सिन्धी, संसार के कोने कोने में फैले हुए थे। उत्तर में काशमीर से मध्य तुर्किस्तान और रूस तक सिन्धी जाते रहे। पूर्व में राजस्थान तथा दक्षिण में सौराष्ट्र-गुजरात से भी अच्छे सम्बंध थे, इसलिये गुजराती और राजस्थानी भाषाओं की सिन्धी के साथ अधिक समानता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया हैं वह प्राचीन काल है। जब तक तुर्क-मुगुल प्रवेश भारत में नहीं हुआ था, तब तक भारती संस्कृति, साहित्य और भाषा की कड़ी, पूरी तरह जुड़ी हुई थी। तुर्क और मुगुल, इस्लाम मजहब लेकर आए तो वहिशान्यत का राज्य छा गया। इस्लाम के नाम पर उनके अमानुषी कारनामे, कत्ले-आम, मन्दिर और इमारतों का तोड़ना, कला-कृत्यों का विध्वंस, साहित्य जलाकर नष्ट करना इत्यादि आतंकवादी कारनामों ने सब हिन्दुओं को अपने अपने सीमित घेरों में अपनी सुरक्षा के लिये बंदकर दिया। हिन्दू यातायातमें बाधा पड़ गई। पहले जैसा मेल मेलाप नहीं रहा। प्रत्येक अपने प्रदेश में सीमित हो गया। ऊपर से इन विदेशी और विधर्मियों का मेल-मिलाप सदियों तक रहने के कारण यहां के निवासियों के रस्म-रिवाज बदल गये तो भाषाएं भी सीमित होकर प्रान्तिक रूप धारण करने लग गईं। प्रान्तों से ज़िले तथा तहसीलें बने तो वहां भी संकोचन क्रया आरंभ हो गई और छोटी छोटी बोलियां उगने लग गई। क्यों कि विदेशी और विधर्मी भारत के कोने कोने में छा चुके थे इसके साथ इस्लाम जैसा कट्टर तथा संकुचित धारा मज़हब, उसके व्यवहार से यह सब स्वाभाविक था। और इसलिये ही प्रान्तिक भेद भीं हुए। बाकी सब बाद के अंग्रेज़ी काल में छापखाने के दुरोप्योग तथा सभ्य राजनैतिक सत्ता के प्रभाव से हो गया। फिर भी मूल रूप से भारती भाषाओं में हिन्दू होने के नाते बहुत समानता रही। इसलिये यह परिणाम स्पष्ट है कि विदेशी इस्लामी आक्रमणों से लेकर भारती भाषाओं पर विभिन्नता का प्रभाव अधिक होने लगा। और यह प्रभाव ११-१२ शती से आरंभ होकर १४-१५ शती तक साफ होकर १७वीं शती के पश्चात तो यह प्रभाव दृढ हो गया। गुजराती के भी इस प्रकार लगभग तीन युग हैं। प्रथम १०-११ शती से १४वी शती तक अपभ्रंश अथवा

प्राचीन गुजराती, दूसरा १५-१७वीं शती तक जिसे जूनी गुजराती अथवा मध्य कालीन गुजराती, तथा तीसरा उसके पश्चात का। और बिलकुल यही अवस्था समूचे भारत की सब भाषाओं तथा सिन्धी की भी है। जिसप्रकार अंग्रेजी की Old, Middle तथा Modern इंग्लिश।

नरसिंह मेहता ने अपनी रचना "सुरत संग्राम" में अपनी गुजराती भाषा को अपभ्रंश (अपभ्रष्ट गिरा) कहा है। परन्त उसी कालके कवि पद्म नाभ ने अपनी रचना "कान्हडदे प्रबंध" (जिस का वर्णन आगे करेंगे) को प्राकृत कहा है। इसके बहुत बाद के कवि अखो ने भी अपनी गुजराती को प्राकृत कहा है। परन्तु बावजूद थोड़े भेद तथा उसी नाम के भी आजका गुजराती १०-११ तो क्या १४-१५वीं शती की गुजराती भी सरलता से नहीं समझ सकेगा, जब तक कोई विशेष विद्वान उसकी विशेश व्याख्या करके स्वयं गुजराती को गुजराती भाषा समझाए। जिस प्रकार किसी भी सिन्धी को सिन्धी का विशेषज्ञ सिन्धी कवि अब्दुललतीफ की बोली समझाए। और यह अवस्था भी सारे संसार में समान है। स्वयं इंगलेंड के लोग शेक्सपेअर की बोली को भी पूरी तरह नहीं समझ पाते, उन्हे भी शेक्सपेअर पढ़ाना और समझना पड़ता है। क्यों कि इतनी शताब्दियों में भाषाओं के उचार और अर्थ में बड़ा भेद आ जाता है जो सब, हम अभी देखेंगे। यह देखिये पुरानी अपभ्रंश का गुजराती नमूना :-

कातीं करवत कापतां वहिलउ आवइ छेह्।
नारी विध्या हलवलइ जा जीवह ता देह्॥

सिन्धी अब्दुलतीफ की बोली जानने वाला तथा हिन्दी का जानकार, ३-४ शब्दों को छोड़कर बाकी सब समझ सकेगा। इस का अर्थ यह है कि "कात और आरी से काटे का छेह (अत) शीघ्र आता हैं, किन्तु नारी (स्त्री) का वींधा (चोट खाया हुआ) जब तक जीवित रहेगा तड़फता रहेगा। यह देखें सन् १५०८ की रचना का नमूना :-

नाह निछिछि गामटि मयण अजाणि।
मयण महाभड उसहिइ सही हिइइ हणइ बाण॥[1]

इसमें नाह (नाथ), निछि (निश्चत), गामटि (अछा), मयण अजाणि (काम की पीड़ा से अनजान), असहिइ (न सहने जैसा) हिइइ (हृदय [सिन्धी हिन्यों]), हणइ (मारता है [सिन्धी हणे]), आदि शब्द इस समय भी गुजराती में हैं तो भी कोई गुजराती यह दोहा नहीं समझ सकेगा। क्यों कि इस बीच में नाह का नाहलो (सिन्धी नाहिल) तथा गामटि का गामठि (गामड़ियो) बन गया है, तो मूल कौन समझेगा। इस में अजाण, हणण, बाण शब्द सिन्धी में भी हैं।

(1) वसंत विलास, श्लोक २५

यह है सन् १५१२ का नमूना :—

रीसायु मूलगु परधान, करी प्रतिज्ञा निम्यूं धान।
गूजरातनू भोजन करूं, जु तरकाणूं आणूं अरूं ॥[1]

यह गुजराती, "वसंत विलास" वाले दोहे से वर्तमान गुजराती को अधिक समीप है, फिर भी आजका जन साधारण गुजराती नहीं समझ सकेगा। नरसिंह मेहता, मीरा, भालण और भीम भी इसी काल के हैं, परन्तु उनको भी स्वयं समझना कठिन है। मध्य कालीन बहुत पुरानी जूनी गुजराती हस्त लिखित पुस्तक "मुग्धा वबोधमौक्तक" मिली है जो सन् १३९३ की लिखी हुई है। लेखक का नाम नहीं लिखा है। गुजराती में संस्कृत व्याकरण के नियम दर्शाए गये हैं। इसकी भाषा में अपभ्रंश की छाया है। इस प्रकार:-

"जेह तउ हुंतउ थउ थकउ इत्यादि बोलिवइं जेह वस्तु नइं परित्याग सूचीइ अपादान"– "एहनउ तणउ एहरहइं किहि इत्यादि बोलिवइं......... अनइ जेहरइं क्रिया हेतुपणउं न हुइं ते संबंध तिहां षष्ठी हुइ"।[2]

इसे गहराई से देखा जाएगा तो इस में भी सिन्धी कवि शाह अब्दुल्लतीफ का लहजा देखने को मिलेगा। अहिड़ो, जहिड़ो, आदि शुद्ध सिन्धी के समान हैं। लेकिन स्वयं गुजराती में बदल कर 'एवो', जेवो बन गये हैं। इसलिये साधारण गुजराती भी नहीं समझ सकेगा। सिन्धी अब्दुल्लतीफ के काव्य की भाषा प्राकृत तथा अर्धमागधी है, अपभ्रंश की छाया है और काव्य का लहजा जूनी गुजराती तथा राजस्थानी से मिलता है। वास्तव में गुजराती और राजस्थानी (विशेषकर पश्चिमी राजस्थानी) भाषाएं एक ही प्रकार की तथा एक ही समय फूटकर अलग हुई हैं, इसलिये दोनों के साथ (पुरानी) सिन्धी का रूप-मेल है।

जूनी गुजराती का यह नमूना, जो भी अबतक हस्त-लिखित पुस्तक "दुहा संग्रह" में है, उसमें तो १५-१६वीं शती की राजस्थानी, गुजराती तथा मारवाड़ी का रस मिलता है, और सिन्धी से सम्बंध भी। देखिये :-

कुंजडियां कुरलाईआं सूर्या सींधव देस।
ऊडइ पांख पसार करि वाहलां किम-हि मलेसु ॥६॥[3]

अर्थात– कूंजडियां (कूंजूं), कूं–कूं करके सिन्ध देश की ओर उड़ीं 'कैसे भी हम पखों (नर) से मिलेंगी' ऐसा सोच कर पन्ख पसार कर उड़ती हैं।"

(1) काहानड्दे प्रबंध, श्लोक १४
(2) Third Gujarati Sahitya Parishad [Rajkot-1909], भाषा विभाग, पृ० ८९
(3) बुद्धिप्रकाश (त्रैमासिक, गुजराती] जनवरी-मार्च १९३३

यही बात राजस्थानी की है। राजस्थानी के भी मुख्य चार भेद हैं- पश्चिम, मध्य-पूर्व, उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व। ग्रीअरसन् ने इसके २० भेद किये हैं तो एक लेखक ने अकेले जयपुर के १५ भेद बताए हैं। एक राजस्थानी लेखक ने १०० से अधिक बोलियां लिखी हैं तो दूसरे ने केवल नौ मानी हैं। इन सब में मारवाड़ी (पश्चिम राजस्थानी) मुख्य है जिसका साहित्यक महत्व भी है और जिस पर से ही डिंगल का विकास हुआ है। कवि कुशललाभ के "ढोला मारू रा दूहा" के ये दो दोहे हैं।-

कुंवरी पिङ्गल रायनी मारवणी तसु नाम।
नरवर पति ढोलउ भणी परणी पुहकर ठाम॥

दउढ वरसरी मारवी त्रिहु वरसांरउ कन्थ।
बालपणइ परण्यां पछइ अन्तर पडिऊं अनन्त॥

यह राजस्थानी तथा गुजराती रूप भी है तो सिन्धी भी। देखिये :-

सुपनइ प्रीतम मुझ मिलया, हूं लागी गलि रोइ।
डरपत पलक न खोलही, मतिहि बिछोडउ होइ॥

अब इसका सिन्धी रूप देखें :-

सुपने प्रीतम मूं मिल्यो, मां लग्यस गले रोइ।
डिजुन्दे पलक न खोली, मतां विछोड़ो होइ (थिए)॥

ऊपर मूल और इस सिन्धी रूप को पढ़कर एक हिन्दी भाषी भी अर्थ समझ जाएगा।

यह है मालवी (मध्य प्रदेश) का नमूना :-

चंदा त्हारी चांदनी, सूती पलंग बिछाय।
जद जागी जद एकली, मरूं कटारी खाय॥

इसका सिन्धी रूप देखिये :-

चंदा (चंड) तुंहिजी चांदनी (में) सुती (सुत्यसि) पलंग विछाइ॥
जदु जाग्यस जदु हेकली, मरां कटारी खाइ।

महाराणा प्रताप के समय के कवि दुरसा जिसके "विरद छहोतरी" का यह एक दोहा है:-

अकबर समंद अथाह, तिहं डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ी तिण माह, पोयण-फूल प्रतापसी॥

इसका सिन्धी रूप देखें :-

अकबर समुंड अथाह, तंहि में बुडा हिन्दू तुर्क।
मेवाड़ो तहिं मंझि, कमल फूल (ज्यां) प्रतापसिंह॥

राठोड़ राजा पृथ्वीराज का यह डिंगल का दोहा है :-

"माई एहड़ा पूत जण जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझ्फ कै जाण सिराणै सांप"।।

इसका सिन्धी रूप देखिये :-

"माई अहिड़ा पुट जणि जहिड़ा राणा प्रताप।
अकबर सुतो ओझरे जाणु सिराणे साप"।।

यह ऐसा सरल रूप है जैसे कि सिन्धी शाह लतीफ की रचना हो।

इस प्रकार सिवाय थोड़ी कठिनाई के भारत के हर प्रांत की भाषा समझी जा सकती है। हां दक्षिण और उत्तर में कठिनाई अधिक होगी। बाकी राजस्थानी, गुजराती, मध्यप्रदेश, सिन्ध, पंजाब, महाराष्ट्र, सिराइकी, उत्तर प्रदेश आदि का एक दूसरे से सम्बंध है। बिहार प्रदेश का कोई गीत गाएगा तो जैसा बंगाली लगेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक निकट प्रदेश के भाषा की एक दूसरे से समानता अवश्य रहती है, चाहे एक दूसरे देश की भी इसी प्रकार अवस्था है। और यह सब प्राकृतिक नियम है।

हेमचन्द्र सूरी (११वीं शती) का एक अपभ्रंश दोहा है, जिसमें एक राजपूतनी का पति युद्ध में मारा गया तो वह अपनी सखी को कहती है :-

भल्ला हुआ जो मारिआ बहिणि महार कंतु।
लज्जे जंतु वयसियह, जइ भग्गा घर एंतु।।

यह इतना पुराना होते हुए भी राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, मध्यप्रदेशी सब बराबर समझ सकता है, तो स्पष्ट नहीं कि भारत में भाषा का इतना विक्षेप नहीं था जितना समझा जाता है। श्री ग्रीअर्सन (Sir George Abraham Grierson) ने अपने महान ग्रन्थ "Linguistic Survey of India" में भारत की ८५४ भाषाएं तथा उप भाषाएं गिनाई हैं और उनका विवरण दिया है, जिनमें २८४ तिबतो-बर्मन परिवार तथा ८४ के लगभग ईरानी तथा दारदी परिवार की हैं। ऐसी बोलियों का भी उल्लेख किया है जिनके बोलने वाले केवल ३०, २५, २०, अथवा १४ भी हैं। लेकिन है सब बौद्धिक धोखा और देश की एकता को हानि पहुंचाने का षड़यंत्र। पादरी काल्डवेल (Caldwel) ने भी द्रावड़ी भाषाओं की इस प्रकार पुस्तक लिखी थी। किन्तु था सब निरर्थक। सिवाय बोलियों का कुछ थोड़ा भेद समझने के इस से और कोई लाभ नहीं है।

ऐसे तो संसार में ३,००० के लगभग भाषाएं कही जाती हैं, परन्तु उन सब के बोलने वाले एकदा इतना एक दूसरे से अलग हैं, ऐसा नहीं है। तीन हजार कौमों का होना भी तो कोई समस्या है! परन्तु सच्च यह है कि एक दूसरे को पूरी तरह न समझने तथा एक दूसरे से अधिक सम्बंध न रहने के कारण, अपनों के भी इस प्रकार बोलने के अनेक भेद हो जाते हैं अथवा उच्चार बदलने के कारण कुछ समय के पश्चात समझना कठिन हो जाता है।

नुब्या (Nubia) आफ्रीका में दस कबीले (समुदाय) हैं जिन की बोलियां एक दूसरे में समझने वाला कोई नहीं। केवल दो पहाड़ियों के रहने वाले जिन के बीच में थोड़े ही मीलों का फासला है, वे भी एक-दूसरे की बोली नहीं समझ सकते।[1] अकेले मेक्सीको के उत्तर में यूरोपीय अधिकार के समय वहां ५० से अधिक भाषाई परिवार थे जिन में ७०० छोटी छोटी बोलियां प्रचलित थीं और सब एक दूसरे से भिन्न थीं।[2] इसका अभिप्राय यह नहीं कि कोई ७०० कौमें अथवा कबीले वहां रहते थे। यह सब एक दूसरे के साथ आने जाने का सम्बंध अथवा साधन टूटने के कारण ऐसा हुआ। दक्षिण चीन में यह परेशानी है कि एक ग्राम दूसरे ग्राम की बोली, जो केवल २-३ मील दूर है, नहीं समझ सकता। पीकिंग का निवासी यदि कन्टोन (Conton) की बोली सुनेगा तो समझेगा कि यह कोई "इकड़े तिकड़े" की बोली है। और भारतमें भी इसी प्रकार का भेद है। इसलिये तो '१२ कोस पर दूसरी बोली' कहा और माना जाता है। परन्तु यह केवल उच्चार भेद होता है, न कि नई बोली। तीन लाख नागों (नागा प्रदेश) में एक दर्जन के लगभग ऐसी बोलियां हैं जो एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं।

अंग्रेज़ी आज इतनी बड़ी समृद्ध भाषा है। क्यों? इस लिये कि उसका आदान प्रदान असीमित हो गया है। प्राचीन काल में ऐसा नहीं था। यातायात न के बराबर, जो जहां वह वहां, बस! भाषा भी सीमित तथा अलग और नई। क्यों कि सीमित बंधन के अंदर भी तो समय बीते बिगाड़ आयेगा ही। यदि आज ऐसा होता तो अंग्रेज़ी भी इस प्रकार होती। आज इस आदान प्रदान के कारण अंग्रेज़ी में ही ७० प्रतिशत शब्द विदेशी हैं जिन में से अधिक लेटिन हैं, फिर फ्रेंच और स्कैंडीनेव्या के। नार्मन विजय के पश्चात डैनिश शब्द आये। इसलिये आज यह हाल है कि जब तक कोई अंग्रेज़ी माध्यम से पूरी तरह अंग्रेज़ी का गूढ़ विद्वान न बने तब तक अच्छी अंग्रेज़ी पढ़-लिख समझ ही नहीं सकता। काम चल जाता है सो तो किसी भी विदेशी भाषा सीखने से चल जाता है। फिर भी भरत सम्राट के देश ब्रिटन (Britain) में छः मुख्य भाषाएं प्रचलित हैं। उप-भाषाएं (dialects) तो न जाने कितनी होंगी, जिनका कोई महत्व नहीं है। बावजूद इसके कि अंग्रेज़ी इतने उधार लिये हुए शब्द समूहों द्वारा इतनी सपन्न है फिर भी उसके ५,००,००० शब्दों वाले शब्द भण्डार में आज तक यह दृष्टि गोचर नहीं होता कि बकरा और बकरी को क्या कहा जाये अथवा बिला और बिल्ली को क्या कहा जाय। ऐसा ही है न कि She और He जोड़कर काम चलाया जाता है। क्यों? यह इस अंग्रेज़ी की समृद्धि की दीनता नहीं है? परन्तु यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत के सन्थाल आदिवासी बोली में भी इसी प्रकार She और He के समान व्यवहार होता है। वहां 'एंगा' स्त्रीलिङ्ग

(1) National Geographic Magazine, February 1951

(2) Ibid, November 1937

तथा 'बोदा' पुलिङ्ग के लिये व्यवहृत होता है। और ये शब्द मिलाकर अंग्रेज़ी के समान स्त्रीलिङ्ग तथा पुलिङ्ग बनाते हैं। जिस प्रकार अंग्रेज़ी में बकरी के लिये She Goat होता है तो संथाली में 'मेरोम एंगा' तथा He Goat के समान 'मेरोम बोदा' अर्थात बकरा होता है। इसी प्रकार 'सम एंगा' अर्थात मुर्गी और 'सम सांडे' अर्थात मुर्गा होता है जैसे अंग्रेजी में She Hen अथवा She Cat होता है। यह बात कोई संयोग नहीं समझना चाहिये किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से गंभीरता से विचारने जैसी है।

इससे भी आश्चर्य की बात यह है कि स्त्री जाति के लिये भी अंग्रेज़ी में शुद्ध शब्द नहीं है। पुरुष के लिये Man (संस्कृत मनुष का बिगड़ा रूप) अवश्य है किन्तु स्त्री के लिये Wife शब्द एंग्लो सैक्सन है उसके साथ Man जोड़कर Wife + Man बनाया गया जो हुआ Wifeman जो बिगड़ कर Womman और अब Woman बन गया है। सास, श्वसु, साला, साली, बहिनोई आदि के लिये भी कोई शब्द नहीं है। बस, In-law जोड़ने से सब काम चलता हैं।

सो भारत में भी मुख्य भाषाएं बहुत कम हैं परन्तु देश के दुश्मनों तथा एकता को बिगाड़ने वाले विदेशी एजन्टों ने देश भक्ति की लेबल लगाकर, हिन्दी को हटाने का प्रबल प्रयत्न किया। नहीं तो स्वतन्त्रता के ३० वर्षों में हिन्दी भारत की अकेली देश भाषा बन जाती तो आज भारत में ऐसी बेलगामी (निरंकुशता) न होती। प्रांतिक बोलियां तो वैसे ही रहेंगी उनको कोई कुछ कर ही नहीं सकता और यह सब इस प्रकार होता जैसे प्राचीन काल में संस्कृत थी तो देश की एकता भी थी तो महानता और उन्नति भी।

जैन ग्रन्थ 'Nayadhamma Kahao' जो अर्धमागधी का छठा अंग है, उसमें भारत की प्रचलित १८ देसी बोलियों का अनेक बार उल्लेख हुआ है, जिसमें ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है, जो ये १८ बोलियां जानते थे। एक स्थान पर है :-

"तएणं दढपइण्णे दारए अठ्ठारस देसी भासाविसारए"

(अर्थात- लड़का [धनपाल] देसी बोलियों के १८ प्रकारों में दक्ष था)

इसी प्रकार ऐसे कुशल लोगों का वर्णन मिलता है जो १८ बोलियां जानते थे। सातवीं शती के 'जिनदास' ने अपने ग्रंथ 'निशीथ चूर्णी' में भी १८ बोलियों का उल्लेख करते लिखा है कि:

"अठ्ठारस देसी भासानियय वा अद्धमागहं"

(अर्थात- अर्धमागधी जिसमें अठारह देसी बोलियों के लक्षण हैं)

कुवलयमाला के उद्योतन सूरी (सन् ७७८) ने न केवल भारतकी १८ बोलियों का वर्णन किया है परन्तु राजकुमार श्रीदत्त के बताए ढ़ंग से उन सब के प्रकारों-लहजों का भी उल्लेख किया है। :-

इय अठ्ठारस देसी भासाउ पुलइऊण सिरिदत्तो।

अण्णइय पुलराई खस-पारस-बब्बरा दीए।

कुमार श्रीदत्त ने दक्षिण भारत आदि के मण्डियों-व्यापारियों को ये बोलियां बोलते देखा जिन के सुनाने पर ही जैन लेखक उद्योतन सूरी ने उन प्रादेशिक बोलियों (भाषाओं) का वर्णन किया है, जिन के नाम इस प्रकार हैं :- १- मगध २- गोलई ३- मध्य देश ४- आंध्र ५- अंतर्वेदि ६- कोशल ७- लाड़ ८- मारवी ९- करनाटक १०- सैन्धवी ११- गौर्जरी १२- मारू १३- महाराष्ट्र १४- ताजक १५- ढाकी १६- कीर। मूलत: १६ ही थीं जिन में से भी ४ महत्व की नहीं हैं। इसके सिवाय तीन-खस, पारस और बर्बर का भी नाम लिखा है। फिर भी ठीक तरह देखा जायेगा तो मुख्यता १०-१२ भाषाएं प्रचलित थीं।

चामुण्डराय (सन् ९७८) ने अपनी कन्नर (बोली) में लिखी पुस्तक 'चाण्डअराय पुराण' में भी १८ बोलयों का उल्लेख किया है। इस के पश्चात आकलंक देव (सन् १६०४) ने अपनी रचना 'कर्णाट शब्दानुशासन' में प्रथम श्लोक की टीका में १८ भाषाओं और ७०० उप-भाषाओं का वर्णन किया है।[1] यह सब इसी प्रकार है जैसे बौद्ध ग्रंथों का १६ जनपदों का वर्णन। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि श्रीदत्त को इन सब (१८) बोलियों के बोलने (और समझने) वाले दक्षिण भारत (द्रावड़ देश ?) में ही मिले :-

"Sridatta found merchants speaking in these Desi bhashas in Dakshina desha." (Journal of the Oriental Institute [Baroda], 1971, Vol. XXI, No. 1-2, P. 118)

जब इतना पहले और इतना पीछे भी भारतमें १०-१२ भाषाएं थीं तो फिर आज के ये इतने मेढक कहां से और किस प्रकार प्रकट हो गये ? सच्च तो यह है कि ये इतने हैं ही नहीं। मुम्बई में रेल्वे टिकट खिड़कियों के ऊपर मराठी में लिखा होता है "कृपा करू सुटे पैसे दिया" सिन्धी में भी कहेंगे तो होगा "कृपा करे छुटा पैसा डियो"। है कोई भेद ? क्या कोई हिन्दी वाला, कहींका भी हो यह आसानी से नहीं समझ सकेगा? साधारण भेदों को लेकर यह निरर्थक भूत खड़ा किया गया है। आज भी भारत में सच्चें देश भक्त निकल आएं और हिन्दी को राष्ट्र भाषा बना दें तो ये सब भूत भस्म हो जाएं। परन्तु इस अभागे भारत में बहुत कुछ विदेशी चलता है, देश-भक्ति भी इम्पोर्ट होती है।

इस प्रकार भारतीय भाषाओं में कोई वास्तविक भेद नहीं है। इसलिये भारती भाषाओं की भिन्नता का राग अलापना सर्वथा गलत है। सब में मौलिक आर्य भाषा की एकता है। और इस प्रकार वर्तमान भाषा शास्त्र के प्राय: सब निर्णय गलत और निर्मूल हैं। भला, आर्य लोग आए उत्तर-पश्चिम एशिया से, (जैसा कि धोखे से माना जाता है) तो फिर उनकी मूल भाषा संस्कृत अथवा संस्कारों का मूल भी कहीं उस ओर ढूंढना चाहिये न! भारत की संस्कृत भाषा से उसका

(1) Sambodhi Quarterly [Ahmedabad], 1956-7, Vol. 4, No. 3-4

क्या संम्बंध। ऐसा हुआ क्या कि जन्मे उत्तर-पश्चिम एशिया में, पालन-पोषण हुआ भारत में तो अपनी भाषा कहीं और से इम्पोर्ट की जो स्थान अज्ञात है? अतः खोज करनी है आस्ट्रेल्या के आदिवासियों की। समझ लीजिये कि वे मूल में (किसी प्राचीन काल में) देशान्तर कर आए रूस (' u·sia) से तो उनकी भाषा का मूल क्या? अथवा खोज की जायगी इंगलेंड के वर्तमान अंग्रेजों के भाषा की जो वहां के मूल निवासी भी नहीं हैं। समय समय पर अनेक विदेशी जातियों ने आक्रमण करके वहां अधिकार किया है, सदियों तक राज्य किया उन्होंने। आजका अंग्रेज न मालूम किस शुद्ध मूल का है। तो उसकी मूल भाषा का मूल इंगलैंड में कैसे मिलेगा? राजनैतिक ढंग तथा प्रभाव से धोखे भरी खोज से जो भी लिखा जायगा वह तो बाहरी संतोष है, मूल तो बहुत दूर है। श्री वूलनर (A.C. Woolner) ने भी इस गलत बात के बुनियाद को हिला दिया है। वे लिखते हैं कि "सिंहली (दक्षिण सिलून, लङ्का) की भाषा आईसलैंड से मिलती है। दोनों भाषाएं एक ही परिवार की हैं। तो क्या लका निवासी और आईसलैंड वासी दोनों एक ही नस्ल के हैं; जब कि रूप-ढंग आदि हरतरह से वे एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं, इसी प्रकार जिस प्रकार दोनो जपानियों से?

"फिर, यहूदी और अफगान दोनों की शारीरिक बनावट बिलकुल समान है। परन्तु हिब्रू भाषा सेमीटिक परिवार की है जब कि अफगान पश्तो बोलते हैं जो आर्य भाषा परिवार की है"।[1]

अब इन बिलकुल विरोधी बातों का क्या उत्तर है? कुछ भी नहीं! शायद!! सम्भवतः!!! कुछ हुआ होगा, बस!

हजारों वर्ष बीतने के पश्चात तथा मूल से छूटकर अलग होने के कारण भाषा का ऐसा हाल होता है जैसा एक्सीमो लोगों का है। जितने वे स्वयं हैं उतने शब्द उनमें व्यवहार में हैं। बिलकुल थोड़ा फेर बदल करने से वे अनेक वाक्य बनाकर काम चलाते हैं। उनकी भाषा में नागलिग (Naglig) प्यार के अर्थ में एक शब्द है। इसका प्रयोग इस प्रकार होता है:-

(1) Sinhalese, the language of South Ceylon is related to Icelandic. The two languages belong to the same family. Have the Ceylonese and the Icelanders descended from the same forefathers, although in appearance each type differs from the other as both from Japanese?

Again Jews and Afghans resemble each other very much in physical characteristics, but Hebrew is a Semitic language and Afghans speak Pashto which is Aryan." (Languages in History and Politics [1938])

Nagligvara = मैं उसे प्यार करता हूं।
Nagligetyangelagit = मैं तुझे प्यार नहीं करता।
Nagligelautyangelagit = मैंने तुझे प्यार नहीं किया।
Nagligeungnangegupko = यदि मैं उसे प्यार करने के योग्य न होता।

एक ही क्रियापद को वे अनेक रूप देते हैं।

यह सब हमने सिन्धी भाषा की मंजिल तक पहुंचने के लिये प्राकृत, अपभ्रंश के पश्चात कुछ भाषा के बिगड़ने के कारणों पर प्रकाश डाला है। अब दूसरे भी कारण लिखेंगे परन्तु इस से पूर्व लिपि की कमजोरी पर फिर लिखते हैं। पृष्ट २७६ पर लिखी बात को आगे बढ़ाते हैं। जैसा कि लिखा गया है, इन अपूर्ण तथा अवैज्ञानिक लिपियों के कारण भाषाओं पर भी घातक प्रभाव पड़ा है। वैज्ञानिक ढंग की लिपि देवनागरी के सिवाय दूसरी कोई है ही नहीं, इसलिये दूसरी बाकी सब अवैज्ञानिक तथा अपूर्ण लिपियों के कारण बड़ा अनर्थ हुआ है। आश्चर्य की बात है कि इंगलेंड का शेक्सपेअर स्वयं भी अपना नाम शुद्ध अथवा एक समान नहीं लिख सका है। उसके एक ही हस्तलेख (Manuscript) में उसने अपना नाम छः प्रकार से लिखा है अर्थात हर बार अपने नाम का हिज्जे (spelling) अलग अलग ढंग से लिखा है। इस लिये उसका पूरा और शुद्ध नाम क्या है वह मालूम नहीं है। बस! प्रसिध नाम रटा जा रहा है चाहे वह अशुद्ध हो। अरबी में कहावत है कि 'गलत उलआम सही' अर्थात जो गलती प्रचलित हो जाती है वह शुद्ध समझी जाती है।

अंग्रेज़ी में 'ए' (A) का उचार है। अकेला वह देखें किस प्रकार उचरित होना है:-

Toda (as in aerial, aorta)	Todeigh (as in neighbour)
Today (as in pay)	Todaye (as in aye meaning always)
Todey (as in they)	Todeh (as in eh?)
Todei (as in veil)	Todee (as in fiance, matinee)
Todea (as in great)	Tode (as in fiance)
Todai (as in pain)	Todet (as in bouquet)
Todeig (as in feign)	Todau (as in gauge)

भला-Sure, Suger, Surety में Su का उचार श तो Suffer, Surface, Surplus में Su का उचार स, ऐसा क्यों? Live में Li का उचार लि तो Life में Li का उचार ला तथा Hire का हायर तो Higher का भी हायर, क्यों? यह परिच्छेद देखें:-

"Merry had a little lamb. Its fleece was white as snow, and every where that Merry went, the lamb was sure to go."

अब, जब सब "सरल करने" की धुन चल रही है और देवनागरी जैसी शुद्ध और वैज्ञानिक लिपि का भी 'वारधा स्कीम' नाम से बेहूदा रूप बनाया गया है (केवल कुछ मुसलमानों को खुश करने के लिये, जो भी वे कभी नहीं अपनाएंगे) तो फिर अंग्रेज़ी को तो 'make it easy' करके देखें! देखिये उपरोक्त पैराग्राफ का क्या हाल होता है :-

"Meri had a litl lam. Its flees waz hwait az sno. And evrihwer that Meri went, the lam waz shoor to go."

ज़रा एक तो पुस्तक छाप कर देखा जाय। सारे संसार से अंग्रेज़ी का जनाज़ा उठ जाये। यह तो हिन्दी की महानता है कि जिस से ख्वाह मख्वाह के देश-भक्त शरारत भरी हरकत कर चुके हैं तो भी टिकी खड़ी है। अंग्रेज़ी की तो टांगें ही कट जायंगी। पढ़ेगा कौन, समझेगा कौन? पहले ही लंगड़ी, ऊपर से हो जाए 'make it easy' तो फिर लाश भी नहीं मिलेगी। अंग्रेज़ी आज यदि इस रूप में जीवित तथा सुरक्षित है तो इसलिये कि वह सिखलाई जाती है। यदि अंग्रेज़ी लिपि के स्कूल न हों, एक एक शब्द का निजी उच्चारण सिखाया न जाय तो अंग्रेज़ी कभी का मेहमान बन गई होती। पहले ही है तीन भाग उद्धार शब्दों वाली, ऊपर से हो जाए easy तो न जाने क्या बन जाए। ज़रा 'कुइक' सिखाने के सिवाय तो कोई शुद्ध लिख दिखाए! Quick के स्थान पर Kuik लिखेगा तो Licence का Lesan, Example का Egzampl तो Chaucer का Chasar लिखेगा। अब जो इस लिपि को अंग्रेज़ी के जमादार भारत की राष्ट्र लिपि बनाना चाहते हैं, उनका क्या होगा? Wait का करो सरल तो होगा wet, late का let, on का an, one का van, goat का got, तो अवस्था क्या होगी। आज का पढ़ा लिखा भी हारडिंज (Hardinge) को हारडिंग कहता है तो फिर क्या होगा? सिखलाने के सिवाय कौन Acknowledge, Requistion, usurp तथा Omniscient लिखेगा। कोई भी, कहने पर Aiknalej, Rekuizishan, Yuzarp तथा Amnishant ही लिखेगा। लेकिन देवनागरी में जो कहो जैसे भी कहो वैसे लिखा जाएगा और जैसा लिखा जाएगा ठीक वैसा ही पढ़ा जाएगा। अंग्रेज़ी एक एक शब्द का जब तक शुद्ध उचार सीखा-सिखाया न जाए तब तक उपरोक्त शब्द लिखे ही नहीं जा सकते। किसी ज़माने में तो अंग्रेज़ी लिखी ही इस प्रकार जाती थी जैसा हम ने ऊपर पृष्ठ २७७ पर दिखाया है। यदि उसी अंग्रेज़ी को easy करके लिखा जाय तो स्वयं कोई अंग्रेज भी पढ़ अथवा समझ नहीं सकेगा।

अरबी की पुरानी लिपि कूफी है जिसमें न बिन्दू हैं न ही किसी प्रकार की मात्राएं। अनुमान करके पढ़ा समझा जा सकता है। उन्हों ने अपने प्राचीन धार्मिक नामों से कैसा अन्याय किया है वह यहां दिखाते हैं। जरा सोचिये तो भाषाओं की शुद्धता और सुरक्षिता कैसे हो सकती है। ये महाभारत के कुछ नाम हैं :-

कूफी	उचार	मूल	कूफी	उचार	मूल
Djwhn	(Dujjohana)	दुर्योधन	Jhtl	(Juhitthila)	युधिष्ठिर
Jndrt	(Jaandaratta)	जयद्रथ	'Jwn	(Ajjuna)	अर्जुन
Brhmyn	(Barahuram)	परशुराम	Nwl	(Newala)	नकुल
———	(Snjw'rh)	संजय	Fn or Qn	(Qannu)	कर्ण
Ysr'	———	यशोराज	F'n	(Fannu)	पाण्डु
Fwr	———	मांधाता(अथवा महीरावण)	Frdr	(Qndy)	कुन्ति
Dwd	(Dovvadi)	द्रोपदी	Myd=मेद		Zt=जत

आज कोई महाभारत का जानने वाला ही न हो तो यह न जाने क्या पढ़ा जाए। F'n का पाण्डु और Dwd का द्रोपदी कौन समझेगा? और यदि किसी हिन्दी कट्टर मुसलमान को दिखाओ तो वह कहेगा ये नाम मूल अरबी के हैं जो बाद में महाभारत वालों ने वहां से चुनकर रखे होंगे।

सातवीं शती के चीनी यात्री ह्यूोन-सांङ्ग ने भारतीय नामों को (अपनी चीनी लिपि [उचार] में) इस प्रकार लिखा है:-

A-she-to-she-tu-to	अजातशत्रु	An-ta-lo	आंध्र
A-ssu-fo-ku-sh	अश्वघोष	Chan-ta-to-po-ka	चन्द्रभागा
Fa-su-mi-to-lo	वसुमित्र	Fei-she-li	वैशाली
Ho-li-sha-fa-tan-na	हर्षवर्धन	Han-no	कनौज
Kiao-ta-mo	गौत्तम	**Ka-leng-ka**	कलिङ्ग
Kou-mo-lo	कुमार	**Ka-ssu-mi-lo**	काशमीर
Mo-ha-t'l-p'o	महादेव	Mo-la-po	मालवा
Mo-hi-yin-t'o	महेंद्र	Na-lo-seng-ha	नरसिंह
Na-lo-yen	नारायण	Pi-shan-po-pu-lo	सिन्ध की राजधानी का नाम
Po-lo-she-po-ti	प्रजापति	Po-lo-na-se	वाराणसी
Shib-lo-po-t'o-lo	शीलभद्र	Shi-lo-fa-si-ti	श्रावस्ती
Ti-po-si-na	देवसेन	Ta-lo-pi-tu	द्रवड़
We-ta-yen-na	उदयन	**Wu-she-yen-na**	उजेन
Ya-shu-to-to	यशोधर	Yen-mon-na	यमुना

ये सब शब्द समझे तथा लिखे गये ठीक हैं, केवल प्राकृत रूप समझने तथा करने में दूसरे का समय जाएगा। पढ़ने वाले को भारतीय इतिहास का ज्ञान आवश्यक है, तब कुछ समझ सकेगा। इस अनुसार र का ल, ल का र, त का द, श का ज, व का अ, क का ग इत्यादी करने से कुछ समझा जा सकता है।

उचार भेद तथा लिपि बिगाड़ का यह घातक नमूना देखें :- संस्कृत में घोड़े को 'अश्व' कहा जाता है, जो जन्द में अस्प हो गय है। ईरान के सम्राट् दारा के पिता का नाम विश्तास्प था, परन्तु फारसी में व का ग होने के कारण फिर्दौसी ने अपने शाहनामः में उसको गुस्ताश्प लिखा है। इसी प्रकार संस्कृत विचार जन्द में विचार ही रहा परन्तु फारसी में व का ग तथा च का ज होने के कारण वह 'गुजर' बन गया। अवेस्ता में 'वेहिर्क' शब्द है। वह वहां व का ग, क का ग और ग लुप्त होने के कारण एकदम वेहर्क का 'गर्ग' बन गया है।

श्री कृष्ण का नाम दक्षिण भारत में कन्द्र, कन्दार, कन्धर, कान्हर, कान्हार, कन्नर, कनार रूपों में बिगड़ गया है। परन्तु प्राकृत रूप में वही शब्द कन्नर (Kannara) वहां कर्न (Karna) हो जाता हैं। गुजराती में भी कृष्ण का कनयो, कान्ह, कानु, कानूगे और कान्हूड़ो हो गया है।

लिपि तथा उचार भेद के कारण अनर्थ होता है इसका प्रमाण चीनी का टोह शब्द हमने ऊपर दिया है। वही बात औरों में भी है। भारत में कुमाऊं पहाड़ी बोली में भी ऐसा होता है। 'कान' शब्द में आ पर जोर न देने से इसका अर्थ गर्दन होगा परन्तु जोर देने से वह कान होगा। इसी प्रकार काल शब्द में भी आ (का) पर जोर न देने से बहिरा और जोर देने से यम (मौत)। लात शब्द में आ (ला) पर जोर न देने से कपड़ा अर्थ होता है और देने से लात होता है। यह विशेषता नहीं किन्तु भाषा बीमारी का एक नमूना है।

● व्याकरण की गंभीरता के कारण भी अर्थ भेद होता है। आचार्य वाग्भट ने इसका सुन्दर प्रमाण दिया है। मूल अनुसार :- श्लेष के आश्रय से 'शिव', 'स्थाणु' और 'पशुपति' शब्दों का अर्थ शृगाल, ठूंठ और ग्वाला किया गया है।[1]

● लहजा (ढंग)- बात करने के ढंग (लहजे) से भी भाषा विकृत होती हैं। कोई भी अंग्रेज गंगाराम का उचार गंङ्गाराम ही करेगा। सिन्धी में अंतिम वर्ण पर भार देने से प्रेम का प्रेमु, संत का संतु, आग का आगि हो जाता है। यह तो छोटी बात है कहीं तो बिलकुल अनर्थ हो जाता है। बंगाली अ का उचार आ करते हैं जो ओ जैसा होता है तथा उ को भी ओ कर देते हैं।

एक बंगाली डाक्टर आया उत्तर प्रदेश में। एक बार गांव की कोई स्त्री उसके पास आई

(1) वाग्भटालङ्कार, ४-१६

बुखार था। उस बंगाली डाक्टर ने उसे अपनी जीभ दिखाने के हेतु अंग्रेजी शब्द Tongue का प्रयोग करते हुए कहा 'अपनी टोंग (Tongue-जीभ) दिखाओ। गांव की स्त्री टोंग को जीभ क्या समझेगी वह तो शरीर की टांग समझ कर चकाकर रूक गई। डाक्टर समझ गया कि यह अंग्रेजी Tongue (जीभ) नहीं समझ सकती इसलिये उसे हिन्दी में जुबान (जीभ) कहना पड़ा। परन्तु वह भी बंगाली लहजे में कहा "अपना जोबोन दिखाओ"। स्त्री बिगड़ बैठी, यह मूआ कैसा डाक्टर है जो पहले बोला टांग बताओ अब बोलता है अपना "जोभन"(छाती)बताओ।

● अर्थ भेद ! इससे भी बड़ा अनर्थ होता है। सिन्धी-हिन्दी में 'रण्डी' का अर्थ वेश्या होता है परन्तु तेलुगु में रण्डी का अर्थ है आओ। एक उतर भारत की स्त्री गई दक्षिण भारत में। एक दूकान पर चढ़ी तो दूकानदार ने स्वागत करते कहा रण्डी! क्या चाहिये। अर्थात आइये! क्या चाहिये। उस बिचारी को रण्डी का स्थानिक अर्थ मालूम नहीं था। यह सुनकर सहम गई और चुप चाप वापस चली गई। सिन्धी में लौंडो बद-इखलाक लड़के को कहा जाता है किन्तु पंजाबी में वह अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है। सिन्धी में टट्टी छोटे बचे की गुप्त इंद्रिय को कहा जाता है किन्तु हिन्दी में वह 'पाखाना' के लिये व्यवहृत होता है तो दक्षिण में घास की बनी 'चिक' (परदे) के लिये, तो उत्तर-प्रदेश में इस नाम का एक मत-सम्प्रदाय का नाम है। हाल का अर्थ वर्तमान अथवा अवस्था होता है किन्तु मराठी में इसका अर्थ 'दुख' है। हरकत का अर्थ गति अथवा शरारत है वही मराठी में एतिराज (आपत्ति) होता है। राजी-नामा का अर्थ संधि-मेल होता है वही मराठी में त्याग-पत्र के अर्थ में आता है और वहीं से गुजराती में भी इसी अर्थ में व्यवहृत होता है। भड़वा-चूतिया आदि कोई मत-सम्प्रदाय हैं किन्तु सिन्धी में वे अपशब्द हैं। गूंडा का अर्थ बदमाश है किन्तु तामिल में बटन है। लंगड़ जहाज का तो लंगड़ धार्मिक-भोज को भी कहते हैं। कैनरी में पोटी का अर्थ पेट होता है तो सिन्धी में पुत्र की पुत्री (पौत्री) अर्थ होता है। शरीर का अर्थ बदन है तो उर्दू में शैतान को भी शरीर कहा जाता है। तामिल में बहुत से हिन्दी शब्दों के अर्थ ही और हैं। जैसे कि चरित्र=इतिहास, संसार=परिवार, कल्याण=विवाह, वासना=गंध, उपन्यास=भाषण, उद्योग=नौकरी, इत्यादि। ये सब ऐतिहासिक रूप में प्रचलित होकर फिर दूसरे अर्थ में प्रयुक्त हो जाते हैं। इसलिये ये बहुदा ऐतिहासिक शब्द होते हैं और इन्हीं को पारिभाषिक शब्द कहा जाता है। और यह सब हर जगह होता है। भारती विधान का अधिनियम (कानून) ४२० है, जिस अनुसार जो अभियुक्त किसी से ठगी अथवा विश्वासघात करे। अब यह कानून संख्या ४२० पारिभाषिक रूप में चारसौबीस (फोर टुएन्टी) अर्थात ठग बन गया है। इसी प्रकार दूसरे शब्द भी समयानुसार अर्थ परिवर्तन कर जाते हैं।

● मौके से एक विशेष बात बता देते हैं। विद्वानों की राय है कि जिस देश में जिस

पशु का व्यवहार जन-साधारण में अधिक होता है उसी जैसी आवाज अर्थात बोलने का ढंग अथवा लहजा लोगों का भी बन जाता है। कुछ सीमा तक यह राय व्यवहार रूप में सत्य सिद्ध होती है। अरब में ऊंट का अधिक व्यवहार होता है इसलिये वहां के लोगों का उच्चार, शब्द लहजा पूर्णतः ऊंट जैसा ही होता है, ईरान में घोड़े का अधिक व्यवहार होता है, इंगलेंड में बिल्ली का, चीन में चूहे का। तो देखा जायेगा तो उन के बोलने में उन्हीं पशुओं के आवाज का आभास होता है। इसी प्रकार भारत में गाय का अधिक प्रचलन होने के कारण संस्कृत मंत्र का उच्चारण उसी प्रकार का होता है। यह गौण बात है कोई आवश्यक बात नहीं है। परन्तु देखा जायगा तो इस बात का प्रभाव अवश्य होता है।

● एक और बात, जो यद्यपि महत्व की नहीं है, फिर भी वह है, इस लिये लिखते हैं। बहुधा कृत्रिम-गुप्त बोलियां भी बोली जाती हैं, उनका कितना प्रभाव है, कहा नहीं जा सकता। गुजरात में भोजक, नायक, वनिया आदि लोगों की 'संध्या वाचा' है। अंग्रेजी काल में ठगों की भी 'संध्या वाचा' थी। आश्चर्य यह है कि सिन्धी में भी वे शब्द प्रचलित हैं, जैसे कि :- वनी (नव विवहाता वधु), ॼणो, गुई, जूटो, पाइण, खर्चूं, खटो, ठपण इत्यादि। उल्टा-अखरी का भी प्रयोग करते हैं। कर का रिक, खुश का शुखु, काढो का ढोका आदि। सिन्धी में भी दूकानदार आदि कभी कभी ऐसा प्रयोग करते हैं। यह कोई संयोग नहीं हैं। शुद्ध पुराने शब्द दोनों में समान हैं तथा उल्टा-अखरी भी सोचने जैसी बात है।

किसी जमाने में बौद्ध महायान सम्प्रदाय वालों ने संस्कृत और बौद्ध को मिलाकर एक बोली बनाई थी जिसका यह नमूना है:-

"अप्रिय ये दुखि तेहि निवासो, यडपि प्रिया दुखु तेहिं नियोगो।
अंत उभे अपि तेहि जहिवत, ते सुखिता नर ये रत धर्मे ॥

अर्थात "जो अप्रिय हैं उनका संग दुखदाई है, जो प्रिय हैं उनका वियोग दुखदाई है। इसलिये दोनों का त्याग कर जो धर्म में लिप्त रहते हैं वे नर सुखी हैं।"

यह खच्चर बोली होती है। जिस प्रकार घोड़े और गदही के संयोग से खच्चर का जन्म तो होता है किन्तु उस से संतति नहीं चलती, उसी प्रकार ऐसे बोलियों का भी हाल होना है।

इसी प्रकार दूसरे प्रकार की भी गुप्तार्थ बोली होती है जिस में एक शब्द का अर्थ दूसरा कर दिया जाता है, और उसका प्रयोग राजनैतिक आदि कार्यों में होता है। सन् १८५७ वाली हिन्दू-अंग्रेज युद्ध में नाना साहब के लोगों तथा पूना दरबार के बीच में भी ऐसी एक बोली का जन्म हुआ था। उस अनुसार कुम्भ का अर्थ इंगलेंड, केतु का अर्थ जनरल हार्नबी, कन्या का अर्थ मदरास था। यह लिखित रूप में भी विद्यमान है। १७वीं शती में भी किसी उद्देश्य से ऐसी बोली और लिपि का जन्म हुआ था। ऐसा एक लिखित भारतीय विद्या भवन (मुंबई) में

भी विद्यमान है। इन सब का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होता है।

● भाषा की एक और कमज़ोरी है 'दोहराना', निरर्थक बोलना। जैसे कि "यह करोगे कि नहीं", 'कुछ कहोगे कि नहीं', 'जाना है कि नहीं जाना है' इत्यादि।

● उच्चार और अर्थ दो जुदा भाषाओं में, समान उच्चार होते हुए भी अर्थ भिन्न होता है। जैसे कि मोर (पक्षी)=More (अधिक), सेव (फल)=Save (बचाना) कम (थोड़ा)=Come (आना)। इसी प्रकार Deep (गहरा) किन्तु Dieb (वही उच्चार जर्मनी में)=चोर, Dry(सूखा) किन्तु Drie (वही उच्चार जर्मन में)=तीन, Reason (कारण) किन्तु Riesen (वही उच्चार जर्मन में)=राक्षस, Feel (अनुभव) किन्तु Fiel (वही उच्चार जर्मन में)=गिड़ा हुआ।

● यह भी देखें। किसी ने बुलाया "बीबी जी" उतर मिला "आई जी"। उसे कहा गया 'टी पीओ', उतर मिला "पी के आईजी"। अब यह सब अंग्रेज़ी लिपि में देखें "B B G, IG, T PO, PK IG."

● वही शब्द जुदा जुदा स्थानों पर जुदा जुदा रूपों में बदल जाते हैं किन्तु अर्थ समान होता है।-

संस्कृत	मातृ,	रूसी	मात,	पुरानी स्लाव	माति,	लिथवानी	मोते
"	भ्रातृ	"	बात	"	बाते	"	ब्रोते
"	चतुर	"	चेतीरे	"	चेतुरे	"	केतुरि

(च का क। गुजराती में भी च का क होता है)

"	चतुर्थ	"	चेत्वेत	"	चेत्वरेते	"	केत्विर्तस
"	जीव	"	झिव	"	झिवे	"	गुवस

(ज का ग)

● कविता (काव्य)! भाषाओं में अधिक गड़बड़ी अथवा उलझन कवि भी उत्पन करते हैं। कवि न जाने कहां कहां के शब्द चुनकर अपनी कविता का संतुलन पूरा करने के लिये कहां लंगड़ा करके, कहां रूप-रंग बदल कर, कहीं का अप्रचलित अर्थ ढूंढ कर, शब्दों को छोटा बड़ा कर, जोड़ कर अपनी रचना पूरी करते हैं। जोबन को जोबनवा, सज्जन का सज्जनवा आदि रूप बनाकर काम चलाते हैं। ऐसा ही सिन्धी में भी होता है। इस लिये समय बीतते उस कविता का अर्थ भी समझने में नहीं आता और इसको लेकर उन विचित्र शब्दों के बारे में शंकाएं उत्पन होती हैं। हिन्दी का एक दोहा है:-

जलजातें जलजात है, जलजातें जलजात।
जलजालें जलजात क्यों? जलजालें जलजात॥

इसी प्रकार उर्दू में है:-

हमदम की कसम हमदम के लिये। हमदम से गए हमदम न मिला॥

इसी प्रकार सिन्धी में भी होता है।

यदि कोई कवि अथवा और कोई विशेषज्ञ ऐसी कविताओं का अर्थ खोलकर न समझाए तो शायद ही कोई इन भाषाओं का जानने वाला भी इन कविताओं को समझ सकेगा। और पुराना साहित्य प्राय: काव्य होता है। कवि अप्रचलित शब्द, रूप और अर्थ लेकर रचना कर जाता है और इस तरह नए शब्द-नए अर्थ उत्पन हो जाते हैं और कभी तो अर्थ में खींचातानी करते करते अर्थ का अनर्थ हो जाता है। कौन बैठा इन जलजात-हमदम के विचित्र अर्थ ढूंढेगा। यह अच्छाई है तो बुराई भी कम नहीं है।

इस प्रकार हमने सिन्धी भाषा के केवल प्राचीनता की चर्चा की है, उस के ऐतिहासिक काल तथा Background पर विवाद किया है कि सिन्धी मूल संस्कृत का बदला रूप प्राकृत है (स्वयं संस्कृत के व्याकरण में भी प्राकृत का समावेश है) जिस प्रकार भारत की अन्य भाषाएं। उस के चारों ओर की गुजराती और राजस्थानी आदि का भी विवरण दिया है। दूसरी बोलियों के समान सिन्धी भी ये विविध रूप धारण कर चुकी है। उसके नियम वैसे ही हैं जैसे संसार में व्यापक हैं, कोई नई बात नहीं है। क्यों कि यह सब प्राकृतक ढंग से ही सिन्धी, भारत की सब बोलियां, तथा संसार की सब भाषाएं बदल-बिगड़ कर बनी हैं। केवल विश्वास कर, एक निराश भाषा शास्त्री के समान अपनी ईश्वरीय भाषा की ओर मुड़कर देखेंगे तो सब समाधान हो जायगा।

भारत की लग भग सब बोलियां तुर्क-मुगल काल से भिन्न भिन्न रूप धारण करने लगीं और अंग्रेजी काल तक प्राय: स्थिर हो गईं। सिन्धी भी उन में से एक है। गुजराती और राजस्थानी का पुराना हस्तलिखित साहित्य मिलने से उनके ११वीं से १४वीं शती तथा पश्चात के रूप निरधारित किये गये हैं। सिन्धी के कुछ बाद के शाह अब्दुल्लतीफ, सामी मेंघराज, सच्चल तथा काजीकादन आदि का काव्य मौजूद है। हमारी दृष्टि में दूसरी बोलियों से अधिक शुद्ध तथा निर्मल रूप संस्कृत से बदल कर प्राकृत आदि होने का उन काव्यों में उपस्थित है। बावजूद इसके इस काल में दूसरी बोलियों के समान सिन्धी में भी दूसरी बोलियों के बहुत शब्द प्रवेश कर गए हैं। यह सिन्धी की कमजोरी अथवा दूसरों का इस पर प्रभाव नहीं है, परन्तु सिन्धी की महानता है जो इन शब्दों को अपने महराण में समा दिया है। यदि अंग्रेजी में ७० प्रतिशत विदेशी शब्द मिलकर वह सम्पन्न कहलाती है तो सिन्धी भी उस श्रेणी की है और सम्भवत: दूसरी प्रांतिक बोलियों से अधिक सम्पन्न है, जिसका वर्णन ग्रंथ के समापन पर करेंगे। हम यहां पहले कुछ विदेशी शब्द देते हैं जो सिन्धी में घुस गए हैं।

फारसी! रूमाल, जामो, सल्वार (मूल शूलवार है और गुजराती में सर्वाल ही गया है), रेजो, दर्जी, हल्वो, बाजी, गालीचो, तबेलो, गुनाह, ताकीद, दाद, वकील, देग, शीशो, प्यालो, मजो, जमअ, खर्च, हिसो, गोदी, तानो, लाल, चकमक, साहिब, लाचार, गरीब, जान, जानवर,

हर्कत, खातिर, बिलकुल, मुकाबिलो, एवज़, काइम, मुक़ाम, मजूर, नज़र, वास्तो, वर्क, कुल, विलायत, शुमार, तालीम, इत्यादि।

पोर्चोगीज़! अलमारी, स्त्री (Iron), कप्तान, कमीस, गोबी, चाबी, कमरो, तमाक- नीलाम- फटाका- पपईयो- पिस्तोल- बिस्कूट- बटण- बोतल- मिस्त्री- मेज- विरांडो, ग्रादि (ये शब्द प्राय: दक्षिण भारत से फैले)।

इस प्रकार सिन्धी से ये शब्द ग्ररबी में गए है:-

नीलज (नीर-नील)- क्रिमिज (क्रिम्ची)- नारजेल(नारयल) -अंबज (ग्रंब)- फोत: (पट्ट-पोत्यी)- कर्फस (कपह-कपास)- शीत (छींट)- करन्फल (कनक-फल)- नीलोफर (नील फल)- फिलफिल (पिप्ली-काली मिरच)- ग्रत्रीफल (टिफलो-त्रिफला)- भत्त इत्यादि। स्वयं कुरान में काफूर- मुश्क- ग्रदरक तथा तोबी शब्द मोजूद हैं। इसके सिवाय शम्स (सूर्य) सुमेरी भाषा से- मलक बाबली से (किन्तू मूल संस्कृत म्लेच्छ)- ग्रोरत मिस्त्री से तो खातून मंगोली से घुस गये हैं। फारसी की शबीह हिन्दी छवि का कितना समीप रुप है।

मकरान (बलोचिस्तान), जिसे दिरावड़ी का गढ़ समझा जाता है वह प्राचीन काल में सिन्ध-भारत का भाग था। उस में शुद्ध भारती रुप प्राकृत रुप से बदल गए हैं- जैसे कि दान (धान)- शीर (क्षीर), नामी (नाम)- सोगद (सौगंद)- उश्त्र (उष्ट्र)- किरम (कृमि), सिर (शिर:)- हस्त (ग्रस्ति)- दस्त (हस्त), ग्रादि।

यह सब ऐसा होता रहा है- हो रहा है ग्रौर होता ही रहेगा।

इन मिलावटों (मेल जोल) से ऐसा ग्रवश्य हुग्रा है कि सिन्ध में एक भाग में किसी प्रकार तो दूसरे भाग में ग्रन्य प्रकार से प्रभाव होने के कारण बोलने तथा लहजे में भेद ग्रा गया है। ऐसे तो सिन्ध के प्रत्येक जिले में बोली का भेद था ग्रौर है। सब जगह ऐसा है, ग्रौर संसार में है। इस लिये ऐसा नहीं हुग्रा है कि एक जिले के लिये एक प्रकार का तथा दूसरे जिले में दूसरी बोली में ग्रलग साहित्य निकलता हो। सब सिन्धी हिन्दू मुसलमान-सिरो, विचोलो तथा लाड़ वाले सब बिलकुल वही ग्रौर एक ही प्रकार का साहित्य पढ़ते हैं। इसलिये इन स्थानिक भेदों का कोई महत्व नहीं होता। इसी प्रकार यदि भारत के प्रांतिक बोलियों में कोई भेद था तो भी जन साधारण के समझने की एक ही भाषा थी। केवल प्रांतिक भेदों के कारण उनके नाम भिन्न भिन्न थे। ग्राज भी यदि सरकारी देश-भक्ति से एक ही दैनिक समाचार-पत्र हिन्दी में निकाला जाय तो सारे भारतवासी वह पढ़-समझ सकते हैं। क्यों न वह बंगाली हो ग्रथवा तामिल-तेलेगु। यही हाल सिन्धी का भी है। ग्राज भी कोहिस्तान जेसे सिन्ध के दूरवर्ति प्रदेश में शुद्ध सिन्धी बोली- समझी जाती है। कौनसा फर्क है? जरा देखिये:-

छा थियो	के लिये कहते हैं	छा छो ?
केदुांह थो वञीं	"	केदु थो वञीं ?
तोखे कंहि मारियो	"	तोखे काहे मारियो ?
मुंहिजो किताब आहे	"	मांजो किताब आहे

यह कोई फर्क-भेद नहीं है। ऐसे भेद तो कदम कदम पर होते हैं और इसी को 'बारह कोस पर दूसरी बोली' कहा जाता है। नहीं तो बारह बारह कोस पर कोई नई बोली थोड़ ही होती है, केवल थोड़ा सा उच्चार भेद होता है। 'दूसरी बोली' तो वर्तमान भाषा विज्ञान का धोखा है। सिन्धी कवि शाह अब्दुललतीफ का काव्य सारी सिन्ध में समान रूप से प्रिय था। सिन्ध का लग भग सारा संगीत जीवन इसी पर निर्भर था। चाहे साधारण तोर उसकी भाषा आज भी इतनी क्लिष्ट है कि साधारण हिन्दू समझ भी नहीं पाएगा। इस लिये ऐसा थोड़ा ही कहा जायगा कि यह काव्य सिन्धी नहीं है? इसलिये जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है कि गुजराती और राजस्थानी आदि के नमूने थोड़े कष्ट से सिन्धी भी समझ सकते हैं तो फिर ऐसा क्यों न समझा जाए कि वे और सिन्धी सब एक ही प्रकार की मूल एक ही भाषा है? केवल जिस प्रकार सिन्धी कवि लतीफ को समझने में कुछ कष्ट सिन्धियों को होता है, जिस प्रकार तुलसीदास के लोक-प्रिय काव्य रामायण के अर्थ समझने में स्वयं हिन्दी भाषियों को कष्ट होता है उतना ही कष्ट इन पुरानी भारतीय बोलियों को समझने में होता है। तो यह स्पष्ट नहीं कि सिन्ध की वही भाषा थी जो सारे भारत की समान संस्कृत थी? शाह लतीफ की बोली तो साफ संस्कृत की पुत्री दीख रही है, जैसा कि प्रायः कहा भी जाता है। देखिये तो शाह किया कहता है:-

कोड़ं कायाऊं तुंहिज्यूं लखें लख हजार
जे सब कंहि जे सीन, दर्सन धारूं धार
प्रेम तुंहिजा पार! कहिड़ा चई कीअं चवां।
वाई :- सबका प्रियां को पूजे, नींहं नेणें गुन गुल्ह वो
जा चितायम चित में सज्जन सा थो बुझे
लात जा लतीफ जी, सदु तंहिजो सजे।

शाह ने एक स्थान पर सहिसें (हजारों) शब्द का प्रयोग किया है जो शुद्ध संस्कृत 'सहस्र' का ही बिगड़ा रूप है, परन्तु कविता में उसकी लय ठीक रखने के लिये उसका रूप बिगाड़ कर 'सहसें' किया है जेसा कि हमने ऊपर लिखा है कि कवि भी इस प्रकार भाषा से बलात्कार किया करते हैं।

सिन्ध का एक और प्रसिद्ध कवि सामी (मेंघराज) कहता है:-

१- मूर्ख कीन व्रिसन, सामी सिपरीन खे,
तप, तीर्थ, वृत, नियम, जग (यज्ञ) जुहिद कयो जागुनि

गुफ़ा, बन, पहाड़ में, बुख, उग्र दुख सहनि
बिन साध संगति जे वहण मंझि विद्न
के लखाया लहिन, सामी सिपरीन खे।

उपरोक्त का थोड़ा लहजा बदल कर शुद्ध हिन्दी में लिखा जाए तो 'सामी' का काव्य भी हिन्दी संत-काव्यों के समान समझा जा सकता है। समझने में इतना ही भेद और कष्ट होगा जितना किसी भी कविता पाठ करने और समझने में। और यह सब कष्ट हर भाषा की कविता (काव्य) में उसी भाषा के जानने वाले को भी अनुभव होगा। क्यों कि कविता है ही ऐसी कला। और पुराना साहित्य जैसा कि हमने लिखा है, प्रायः काव्य मय है।

लोकोक्तियां (कहावतें-Proverbs)! समानता का प्रसंग चल रहा है तो यह भी दिखा दें कि देश-भाषा और विचारों की समानता में लोकोक्तियों-कहावतों का भी विशेष भाग है। इससे विदित होता है कि देश की विचार धारा कितनी समान है। नहीं तो ऐसा क्यों होता है कि जो कहावत सिन्ध में प्रचलित है वही बंगाल में, जो सिन्ध में वही दक्षिण में तो गुजरात, राजस्थान तथा काशमीर में भी है? इतना ही क्या सारे संसार में भी समान क्यों? यदि मूल में समानता नहीं है तो यह वृक्ष के फलों में समानता क्यों? आज के भाषा-विज्ञान का सिद्धांत यह है कि वृक्ष आम का परन्तु उसमें फल अमरूद का होना चाहिये! और हम इसे सरापा ग़लत मानते हैं। हमारा विश्वास यह है कि यदि वृक्ष मूल से आम का है तो उसका फल भी आम ही होगा। हम प्रकृति के नितांत स्पष्ट और शुद्ध नियम में हर बात का विश्वास रखते हैं। नीचे कुछ ऐसी कहावतें सिन्धी तथा विभिन्न बोलियों की देते हैं जिस से बोली की समानता के साथ साथ विचारों की समानता की झलक भी मिलेगी।

राजस्थानी! (सि०) जो कन्दो सो भोगींदो, जो खोटींदो सो पवंदो
(रा०) करन्ता सो भोगन्ता, खोदन्ता सो पड़न्ता
(सि०) कंदो, सो खाईंदो विहन्दो सो बुख मरंदो
(रा०) फिरए सो चरए बैठियो भूखां मरए
(सि०) जहड़ी करणी तहिड़ी भरणी-पोखिबो सो लुणिबो
(रा०) करणी जिसी भरणी, करणी पार उतर्णी-वाही जो लुणही

लखमनसेन पदमावती कवि दाम की "श्री वीर कथा" (१५वीं शती) का एक दोहा है:-

वालस्य माय मरणम, भार्या मरणम च यौन काले।
वृद्धस्य पुत्र मरणम, तिन दुखाइन गुरु आ नइं॥

अर्थात:- बालक की माता का मरना, जवानी में पत्नि का मरना, बुढ़ापे में पुत्र का मरना, तीनों बहुत दुखी करने वाले हैं।

परन्तु राजस्थानी में दूसरी कहावत है :-

"मत मार्यो बालक की माय, मत मार्यो बूढ़े की जोय"

सिन्धी में है:- "नंढे मरे न माउ, वड्डे मरे न जोइ"

मालवी! (सिं०) कांउ गूंहं ते विहंदो आहे।

(मा०) चतुर कागलो गू पर बेठे।

(सिं०) डिठी मखि केर गीहंदो।

(मा०) देखती आंखां माखो नी निगलाय।

(सिं०) बुकरी अक खाई वेई।

(मा०) आकड़ा ओगी गया।

(सिं०) बारहें कूहें बोली बी।

(मा०) बारह कोस पर बोली बदले।

समय सुन्दर सूरी! (१) नसीब जो लिखियो केर मिटाए (छठी रात लिखियइ ते न मिटइ)

(२) पइंचन में परमेसर (पांचां मांइं महो जीग्र', पर्मेसर परसाद)

(३) मुआ को मोटंदा (पाछा न आवइं जे मुआ)

(४) थुक फिटी करे केर गीहंदो (थूक गलइ नंहि कोई)

माल कवि की "पुरंदर चउपई":-

१- खून खस्थूरी कोन लिकदा (छानंइ कस्तूरी गुण न रहइ)

२- मुअल खे छा मारबो (मूआं का क्या मारये)

राठोड़ राजा प्रथ्वीराज की "वेल क्रसन रुकमणी री" में :-

१- भला भलीअ जो छेह कोन्हे (भला भला पर थमी छए)

"ढोला मारूरा दोहा" में :-

१- चोर जी माउ अंदर ई रूग्रंदी आहे

(रोया भींतर रहे रडंइ-ति चोर तणे जिम माय)

कुमाऊं में :-

"तुषारी के कड़कड़ घामा ओण तक, झटए के कड़ कड़ सांचा ओण तक"

अर्थात: तुषार [पहाड़ी पर बरफ की तह] कड़ कड़ करता है घास [धूप] के निकलने तक

और भूठा कड़ कड़ करता है सच्चे के आने तक।

(सिंधी) कूड़े (झूठे) जी डोड़ सुद्ध ताईं

बेंगाली!

(सिं०) "पाणीअ में रही मांगरमछ सां दुश्मनी"

(बं) जल वास करे कुमीररे साथे झगड़ा

(सि०) २६ ड्रींहं चोर जा १ ड्रींह साध जो

(बं) दश बार चोरेर एक बार साधु

(सि०) नन्ढो मुंह वड्डी ग़ाल्ह

(बं) छोटे मुखे बड़ कथा

(सि०) सप बि मरे लठि बि न भञे

(बं०) सांप ओ मरे लाठीआ ना भांगे

(सि०) जहिड़ी करिणी तहिड़ी भरिणी

(बं०) येमन कर्म तेमन फल

(सि०) सौ कुआ खाई ब्रिल्ली हज हला

(बं०) श श इंडुर खेये विड़ाल चल्लेम मक्काय

(सि०) न हूंदो बांस न वजंदी बन्सी अथवा न हूंदी बन्सी न राधा नचदी

(बं) नय मन तैल सासवे ना राधाओ नाचने ना

तेलेगु! इनके मूल उच्चारों का ज्ञात नहीं है परन्तु श्री कार (M.W. Carr) के "Selection of Telegu Proverbs" (Madras, 1869), में अंग्रेज़ी में हैं इसलिये मूल अंग्रेज़ी तथा सिन्धी देते हैं।

(सि०) ज़ालुन जो अकुल ड्डाई खुड़ीअ में

(ते०) A woman's sense is in the back of the head (P. 14)

(सि०) तकड़ि कम शैतान जो (ते०) A hasty man is not wise (P. 14)

अरबी में है "अल ताजील फइल अल शैतान" और अंग्रेज़ी में है "Haste makes waste."

(सि०) "खाधे में कहिड़ी लज़" अथवा "पंहिंजे पोहिये में कहिड़ो शरम"

(ते०) In eating and business you should not be modest

(सि०) जाइ जोड़ाए दिसु, शादी करे दिसु

(ते०) Try building a house, try making a marriage (P. 18)

(सि०) रूअण खां सवाइ त माउ बि बुबो कान ड्डींदी आहे

(ते०) Unless the child cries, even the mother will not give it suck (P. 72)

मारवाडी में है :- "रोयां बिना तो मां बोबो कोयनी दे"।

(सि०) जहिड़ा कांग तहिड़ा ब्रुच्चा

(ते०) As is the mother, so is the daughter (P. 72)

(सि०) दाईअ खां कहिड़ो पेटु गुझो

(ते०) Like covering the body before the midwife (P. 103)

(सिं०) सिधी आङुरि सां गीहु कोन निकंदो आहे

(ते०) Without bending the finger, even butter cannot be got (P. 117).
राजस्थानी में है "सीदी आंगलियां घी कोन्यो नीकलें।"

(सिं०) सेर ते सवा सेरु (ते०) For one seer, a seer and a quarter.

कशमीरी!

(सिं०) धकु हणु धीअ खे त सिखें नुंहं

(क०) कूरी वानेमय त नोशी बोज़

(अर्थात:- लड़की! तुझे कहा, बहू! तू सुन)

(सिं०) अंधनि मंझि काणो (क०) अन्यन मंज कानय यद सोंदर

(सिं०) सखिणो घड़ो वजे घणो (क०) छनीय मट बजम

(सिं०) कहिड़े अघु वालु-घणे वीहें सौ (क०) कह्य गज़ प्योन

(सिं०) खिली खिली पेट में सूर पवणु (क०) कानन गुरूस गुज्छुन

ऊपर मूल कशमीरी के बुझ, अंधन, मंझि, काणो, मट, वजण, साफ सिन्धी शब्द हैं।

गुजराती!

(सिं०) उस्ताद जी मार बुार जी संवार (गु०) सौटी वागे चम चम विद्या आवे धम धम.

अंग्रेज़ी में है "Lay on the rod and you will bring on scholars.

फारसी में है "जोर उस्ताद व: ज़ महर पिदर

(सिं०) तिर जे गुथे सौ चोट्यूं खाए (गु०) ठीकरी घड़ा ने फोड़े

अंग्रेज़ी में है A little leak will sink a great ship.

(सिं०) तकड़ी कुती अंधा गुलिड़ जणे अथवा तकड़ि कमु शैतान जो

(गु०) उतावला सो बावरा धीरा सो गंभीर

(सिं०) पाणीअ खां अगु कपिड़ा न लाहिजन

(गु०) पाणी पहेलां पाल न बांधो अथवा विवाह पहेलां गीत न गवाय

अंग्रेज़ी में है "Draw not thy bow, before the arrow is fixed.

(सिं०) पुछिणो न मुंझिणो अथवा अंधनि बि मुलतान लधो

(गु०) पुछतां पुछतां लंका जवाय

(सिं०) उहो करि जो मींह वसंदे कमि अचेई (गु०) करकसर एज नसीबनुं मूल छे

Frugality is the hand of future

(सिं०) सवहरि आहिर पेर डिघेजंन (गु०) पग जोईने पाथरणु पाथरो

Cut your cloak according to your cloth

अंत में कुछ विदेशी कहावतें देते हैं।

स्वाहली (आफ्रीका):-

(सिं०) नादान दोस्त खां दानाउ दुश्मन भलो

(स्वा०) Asiye nodhari siandamoni naye

(A prudent enemy is better than a foolish friend)

(सिं०) सखिणो कुनो वज़े घणो (खाली घड़ा अधिक बजता है)

(स्वा०) Debe tupu baliachi kuvuma

(सिं०) हिक ब्रेले में ब्र शींह गडु न रही सघंदा (एक जंगल में दो शेर साथ नहीं रह सकते)

(स्वा०) Fahali wawili hawakai zizi pamoja

(सिं०) फुड़ीअ फुड़ीअ तलाउ (बूंद बूंद होकर घड़ा भर जाता है)

(स्वा०) Haba na haba hujaja kibaba

(सिं०) तकड़ि कमु शैतान जो (Haste makes waste)

(स्वा०) Haraka haraka haina baraka

(सिं०) जेरे लाइ ब्रुकरी कुहण (थोड़े लाभ के लिये बड़ा नुकसान करना)

(स्वा०) Kuchinja mbuzi kwa ajibi ya kinofu

अंग्रेज़ी! (सिं०) सच तां मिठियां लगणु

(अं०) It is truth that makes a man angry

लैटिन! (सिं०) सचु चवणसां यारु रुसे त रुसणु ड्रींस

(अं०) Truth produces hatred

सिंधी भाषा के बाकी विवाद-विवरण को हम पुस्तक के बिलकुल अंत में समाप्त करेंगे। और यहां अंत में केवल यह दुहराते हैं कि "यह विश्वास करके कि "वेद (संस्कृत) भाषा मूल ईश्वरीय भाषा है, जो मनुष्य उत्पति के समय परमात्मा की ओर से मिली, जो थोड़ा थोड़ा बदलते-बिगड़ते आज इस अवस्था तक पहुंची है, कि संसार के अनगिनत बोलियों का पहाड़ खड़ा हो गया है। इसलिये एक मूल को छोड़कर दूसरे नये नाम अथवा ढंग (Theories) घड़ कर उनके सहारे कोई प्राचीन मूल हाथ आएगा, यह असंभव है। इन्डो-जर्मनिक अथवा इन्डो-यूरोपीय्न अथवा सेमेटिक ख्वाह इन्डो-सिथ्यन इत्यादि सब निरर्थक बातें हैं जिन से कोई फल नहीं निकल सकता। इन्डो-यूरोप्यन आदि पुराने खचर अब थक कर निंबल और निराश हो चुके हैं, जैसा कि हमने ऊपर दिखाया है। श्री गाईलस ने वर्षों पूर्व इस पर लेपा-पोथा कर उसका अग्नि संस्कार भी कर दिया है:-

"The languages in question are generally known to scholars under the name of Indo-Germanic, or Indo-European languages. There has been

throughout an almost constant confusion between the languages and the persons who spoke them. In many parts of the world the speaker of a particular language at a given time was not by lineal descent the representative of its speakers at an early period. In the island of Briton many persons of Welsh blood, many persons of Irish Celtic and Scottish Celtic descent speak English. That Normans and English who had settled in Ireland and learned to speak the Irish languages and become more Irish than the Irish themselves. The Bulgarians are of Asiatic origin and of an entirely different stock from the Slavs, a branch of whose language is now their mother tongue. It is therefore clear that it is impossible to be certain that the language spoken by any particular people was the language of their ancestors at a remote period. The name Indo-Germanic therefore suffers from the ambiguity that it characterises not only languages but also people...... it would be well to abandon both the term Indo-European and the term Indo-Germanic and adopt some entirely colourless word, which would indicate only the speakers of such languages." (The Cambridge History of India [1935], Vol. 1 Chapter III "The Aryans." by Giles, Pp 65-6)

इसलिये वर्तमान भाषा विज्ञान के नियम, अनुमान, निर्णय, सब के सब रद्द समझने चाहियें, सिवाय संस्कृत को मूल भाषा समझने के, जो किसी भी विशेष जाति की नहीं परन्तु मनुष्य मात्र की है, जिस प्रकार ईश्वर किसी विशेष जाति अथवा जन-समूह का नहीं है परन्तु सब प्राणियों का है। केवल सस्कृत को संसार की सब भाषाओं की जननी तथा वेद को सब मजहबों की माता "उम उल किताब" समझने के और कोई समाधान नहीं है। संस्कृत ही सबका मूल है। श्री विल्सन (H.H. Wilson) के शब्दों में :-

"The affinities of the Sanskrit language prove a common origin of now widely scattered nations amongst whose dialects they are traceble, and render it unquestionable that they must all have spread abroad from some centrical spot in that part of the Globe first inhabited by mankind according to inspired record." (Vishnu Puran [Oxford], Preface, P. ciii)

सार यह कि संस्कृत का संसार में सब भाषाओं से सम्बंध देखते उनका एक मूल सिद्ध करता है कि संसार में जो भी कौमें हैं जिन की जो भी भाषाएं हैं उन सबका मूल उस एक स्थान से फैला है, जहां सृष्टि उत्पति के समय मनुष्य की प्रथम उत्पति हुई है"।

और आश्चर्य तो यह है कि भारत के विदेशी और देसी दुश्मन भारत में द्रावड़ और संस्कृत नाम का शैतानी भूत खड़ा कर भारतीय संस्कृति और एकता की हानी कर रहे हैं, फिर वे चाहे स्वयं भी ऐसा न मानते हों और केवल खोजना के नाम पर ऐसा करते हों। परन्तु स्वयं द्रावड़ (दक्षिण भारत) के विद्वान श्री कुंहन राज (C. Kunhan Raj) ने विजयवाड़ा आकाशवाणी से "द्रावड़ भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव" शीर्षक से अंग्रेजी में Talk देते हुए कहा था "द्रावड़ बोलियों पर संस्कृत का प्रभाव इतना स्पष्ट है कि उसके लिये प्रमाण देने की आवश्यक्ता ही नहीं है। द्रावड़ बोलियों में संस्कृत का तत्व इतने बड़े अंश में है कि उसे देखकर कुछ आलोचकों का यह विचार हो गया है कि द्रावड़ बोलियां संस्कृत की ही उप भाषाएं (Dialects) हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिये अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं कि द्रावड़ भाषाओं की उत्पति संस्कृत से हुई है"।[1]

स्थानिक व्याकरण शास्त्री भी कहते हैं कि तेलेगु संस्कृत से निकली है। और हमारा विश्वास है कि द्रावड़ कोई अभारती अथवा अनार्य वस्तु नहीं, अपितु सम्पूर्ण रीते भारती आर्य है। परन्तु क्यों कि उत्तर और दक्षिण भारत के बीच प्राकृतिक रुकावटें तथा आवागमन की असुविधाएं होने के कारण मेल जोल कुछ कम होने के कारण कुछ अधिक भेद रहा है। नहीं तो यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सारे भारत में संस्कृत के महा विद्वान आज भी केवल उन द्रावड़-आर्य प्रदेशों में हैं। चारों वेदों के शुद्ध वेद-पाठी भी केवल दक्षिण भारत में हैं। संस्कृत का शुद्ध उच्चारण तथा फैलाव-प्रचार जितना इस द्रावड दक्षिण भारत में है उतना उत्तर (जिसे ब्राह्मण प्रदेश कहा जाता है) में भी नहीं है। उत्तर भारत का संस्कृत विद्वान भी वेद को बेद कहकर शुद्धता का सत्यानाश कर देगा, किन्तु दक्षिण भारत का वेद पाठी एक-एक छोटी मात्रा को सुरक्षित रखने का नियम जानता है। फिर भी ऐसा कहना कि द्रावड़ एक अलग अथवा विदेशी तथा असभ्य अनार्य जाति थी- यह केवल भ्रांत-राजनैतिक षड्यंत्र कहा जा सकता है।

इस अध्याय का समापन करते हम एक छोटी बात और लिखते हैं। मनुष्य जाति के जीवन में भाषाएं और किसी प्रकार भी अथवा दूसरे शब्द, क्यों न कैसे और किसी प्रकार भी बिगड़े हों; परन्तु यदि घर-परिवार में प्रयोग होने वाले प्रतिदिन के मुख्य शब्द समान हैं तो समझना चाहिये कि संसार की भाषाओं तथा जातियों का मूल एक-केवल एक ही है। हम यहां कुछ ऐसे शब्द

(1) अजन्ता, [मासिक हिन्दी], जून १९५९

देते हैं जिन का मूल मातृ-भाषा संस्कृत से कितना संतान जैसा सम्बंध है, यह समझा जा सकता है :-

संस्कृत	मातृ	पितृ	भ्रातृ	दुहतर	सूनु	दंत	दारू
ग्रीक	Mater	Pater	Phrater	Thygater	——	Dnt	Drus
लैटिन	Mater	Pater	Frater	——	——	Dens	Larix
आइरिश	Matair	——	Brothair	——			Dair
गालिक	Mathair	——	Brothair	——	——	——	Dauru
आईसलैंडिक	Mothir	Fathir	Brothir	Dotir	Sonr	——	——
जर्मन	Mutter	Vater	Bruder	Tochter	——	——	——
अ०सेक्सन	Madar	Freder	Brothar	Dohtar	Sunu	——	——
डच्च	Moeder	Vader	Broeder	Dochter	——	——	——
डैनिश	Moder	Fader	Broder	Dotter	Son	——	——
स्वेडिश	Moder	Fader	Broder	——	Son	——	——
लिथून्यन	Mote	——	——	Dukte	——	——	——
गाथिक	——	Fadar	Brothar	——	Sunus	——	——
अंग्रेज़ी	Mother	Father	Brother	Daughter	Son	Tooth	Tree
ज़न्द	मातर	पितर	भ्रातर	——	हनु	——	दौरु
फारसी	मादर	पिदर	ब्रादर	दुखतर	——	——	——
सिन्धी	माता-माउ	पिता-पीउ	भ्राता-भाउ	धीउ	पुट्ट	ड्रंद	वण

उपरोक्त माता, पिता, भ्राता, बहिन, पुत्र इत्यादि के लिये संस्कृत में दूसरे शब्द भी हैं, जैसा कि माता के लिये अम्बा। अरबी में वहीं से गया तो दूसरे अनेक भाषाओं में भी दूसरे शब्द, इन ही दूसरे शब्दों से गये। इसलिये सब में समान शब्द हों ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु हैं मूल संस्कृत से।

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय नवम

● Shri Taylor, W.C. says :-

"It was an astounding discovery that Hindustan, a land over which so many conquerors had passed in wrath, and left their footprints as they went, possessed, in spite of the changes of realm and changes of time, a language of unrivalled richness and variety; a language the parent of all those dialects that Europe has fondly called classical—the source alike of Greek flexibility and Roman strength. A philosophy, compared with which in point of age the lessons of Pythagoras are but of yesterday; and in point of daring speculation, Plato's boldest efforts were tame and commonplace. A poetry more purely intellectual that any of those of which we had before any conception; and system of science whose antiquity baffled all powers of astronomical calculation. This literature, with all its colossal proportions, which can scarcely be described without the semblance of bombast and exaggeration, claimed ofcourse a place for itself— 'it stood alone, and it was able to stand alone.' To acquire the mastery of this language is almost the labour of a life; its literature seems exhaustless. The utmost stretch of imagination can scarce comprehend its boundless mythology (पौराणिक कथा-गाथासंग्रह). Its philosophy (तत्वज्ञान) has touched upon every metaphysical (अतींद्रिय विद्येचा, अध्यात्म विद्येचा) difficulty; its legislation is as varied as the castes for which it was designed." (*India in Greece, P. 392*)

● Shri Edward P. Rice, says:-

"Now section of the population of India can afford to neglect her ancient heritage. The treasures of knowledge, wisdom and beauty which India contains are too precious to be lost. Every citizen of India needs to use them if he is to be cultured modern Indian."

● Sir William Jones, says:- It is impossible to read the Vedant or the many fine compositions in illustrations of it without believing that Pathagoras and Plato derive their sublime theories from the same fountain with the sages of India." (Is India Civilized? Ch. VII, P. 160)

अध्याय दसवां

सिन्धी लिपि * Sindhi Script

लिपि और भाषा का आपस में शरीर-आत्मा का सम्बंध है। भाषा आत्मा है तो लिपि शरीर। लिपि जड़ समान वस्तु है, जिसमें भाषा के लिखित होने से चेतनता-जीवन आता है। इसलिये ऐसा अवश्य है कि भाषा के सिवाय लिपि का कोई प्रश्न ही नहीं होता, जिस प्रकार आत्मा के सिवाय शरीर। परन्तु लिपि के सिवाय भाषा का जीवन भी संकट में है। भाषा को सुदृढ रखने के लिये लिपि रूपी पिञ्जर शरीर का होना आवश्यक है। क्यों कि आलस्य मनुष्य का स्वभाव है, बोलने में हर कदम पर वह घातक सुस्ती तथा कंजूसी करेगा और ऐसा करने से वह अपनी भाषा की शुद्धि को जहां तक हो सकेगा हानि पहुंचाएगा और ऐसा करते भाषा को प्राकृत, अपभ्रंष तथा पैशाची रूप देता जाता है जैसा कि हम ने पिछले अध्याय में दिखाया है। इसलिये शुद्ध भाषा के लिये किसी सम्पूर्ण (Perfect) लिपि की आवश्यक्ता है। यद्यपि इसके साथ शुद्ध व्याकरण का होना भी अनिवार्य है। और यह सब ईश्वरीय ज्ञान में समिलित है जो ईश्वर की ओर से ही प्रदान होता है। भाषा परमात्मा की देन है। व्याकरण और लिपि का मूल रूप बीज वेद रूपी ईश्वरीय ज्ञान में समाया होता है, जिस के सहारे आदि मनुष्य आर्यों ने लिपि को आकृति दी तथा व्याकरण को जन्म दिया।

भाषा के समान लिपि के विषय में भी ऐसा ही अज्ञान संसार में फैला हुआ है। यह विषय भी केवल अनुमान पर घसीटा गया है और अंत में इसका फल भी यही हुआ है कि इतनी माथापच्ची करने के पश्चात भी इस विषय के विशेष्ज्ञों के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा, सिवाय लिपियों के अनेक नमूने संचित करने और उपस्थित करने अथवा उन के पढ़ने तथा विवाद करने के।

लिखना मनुष्य-सभ्यता के उन्नत दशा का प्रतीक है। लिपि के सिवाय मनुष्य उन्नत अवस्था का गिना ही नहीं जा सकता। इसलिये यह बिलकुल सत्य है कि कोई भी जाति चाहे वह आज जंगली अवस्था में है अथवा अर्ध-जंगली अवस्था में, उस के पास मूल रूप में कोई न कोई लिपि अवश्य थी। आज उन के कुछ साधन व्यवहार उनकी मूल अन्नति का प्रमाण हैं। उनको लिपि विहीन समझ कर उनके लिये ऐसा कहना कि उन्हों ने कोई उन्नति ही नहीं की है, अभी उन्नति की प्रारंभिक अवस्था में हैं, उनके पास लिखने का साधन नहीं है, लिपि नहीं है, कोई शुद्ध उन्नत भाषा नहीं है, यह बिलकुल धोखा है। वास्तव में वे ऐसे ही विवश होकर उन्नति से अवनति को प्राप्प हुए हैं। इस के कारण हैं।

इस लिपियों के विषय पर अनेक विदेशी विद्वानों और विशेषज्ञों ने खोज की तथा लिखा

है। प्रथम प्रथम श्री टेलर (Isaac Taylor) ने 'अलफ़ाबेट' नामी पुस्तक लिखी। ऐसे ही सर्वश्री किङ्ग (L.W. King), लैंगडन (S.H. Langdon), बार्टन (G.A. Barton), वुल्ली (C.L. Woolley), बज्ज (Sir E.A. Wallis Budge), बरोज़ (E. Burrows), हन्टर (Hunter), वाडेल (L. A, Waddell), ह्राज़्नी (Bedrich Hrozny), एवन्स (A. J. Evans), साइस (A.H. Sayce), फ्रैंकफर्ट (H. Frankfort), ग्रिफ्थ (F. L. Griffith), प्रिन्स (J. D. Prince), पेट्री (W. F. Petrie), और दूसरे अनेक विद्वानों ने न जाने कितने प्राचीन देशों को लेकर बहुत कुछ सोचा और लिखा है। इटली के श्री ड्रिंजर (David Dringer) ने संसार की लग भग सब लिपियों पर एक ही स्थान और समय संक्षेप में प्रकाश डाला है। उसकी पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद "The Alphabet" नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु कोई भी इस संकुचित घेरे से बाहर नहीं निकला है। सब ने एक दूसरे से भिन्न कोई एक-आध नई बात लिखकर नई रचना कर दी है। बावजूद इसके श्री ड्रिंजर ने सब एक स्थान पर लिख कर इस को विश्व-कोश का रूप दे दिया है। उसने लिपि (Script) के जन्म के विषय में आरंभ में ही लिखा है कि "सब लिपियों का मूल किसी एक में से है":-

"In dealing with the history of the 'Alphabet', I include all the alphabets, because all of them probably derived from one original alphabet" (P. 195)

इस निर्णय की ओर केवल हमारा ही नहीं अपितु इस पुस्तक के प्राक्कथन (Forward) लिखने वाले श्री मिन्स (Sir Ellis Minns) का भी ध्यान आकृष्ट हुआ जिसने भी उसके इस निर्णय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि :-

"Our author proves with a new completeness the astonishing fact that alomost certainly every alphabetic writing of any importance derives from one source, and the obscure scripts were derived by men who were aware of the existence of perfected alphabets. This is a fascinating result; it is so rare in life that so sweeping a generalization is tenable."[1]

फिर स्वयं लिखता है :

"There are all the separate inventions, great inventions no doubt, but not so great as to be unique. It is very interesting to note how close to each other were the mental processes by which the three great systems were build up".[2]

(1) The Alphabet, Forward, P. XI (2) Ibid, P. XII

लिपि! "लिखने का वह शुद्ध और सम्पूर्ण साधन जिस द्वारा अपने मन के विचार जिस प्रकार व्यक्त किये जाएं वैसे ही अंकित (लिखे) जाएं और जो कुछ भी लिखा जाय वह वैसे का वैसा ही पढ़ा जाए", इसे कहते हैं लिपि! संस्कृत के समान ब्राह्मी लिपि को थोड़ा अलग रख कर, हम बाकी दूसरी लिपियों पर थोड़ा बहस (तर्क) करेंगे। इस अनुसार संसार में ऐसी कोई भी लिपि नहीं है, जो उपरोक्त नियम की पूर्ति कर सके। अंग्रेजी में अंतर्राष्ट्रिय ढंग पर चलाने के लिये कुछ नये संकेतादि कुछ प्राचीन लिपियों को शुद्ध पढ़ने के लिये बनाये गये हैं, जो तुलनात्मक तोर कुछ ठीक हैं, परन्तु विशेष लाभ नहीं है न ही अर्थ। क्यों कि वे केवल सीमित मर्यादा के भीतर कुछ कमी-पूर्ति करते हैं वह भी केवल कुछ विशेषज्ञों के लिये। जैसे कि किसी वर्ण के नीचे-ऊपर बिंदी अथवा लकीर देना अथवा सम्बध कारक चिह्न (Apostrophe) देना। जिस प्रकार अरबी की कमी पूर्ति के लिये सिन्धियों ने देवनागरी लिपि में कुछ ऐसे ही चिह्न गढ़ लिये हैं। बाकी इनका कोई अर्थ नहीं है। इसलिये अगर यह कहा जाए कि संसार में कोई भी शुद्ध सम्पूर्ण लिपि (ब्राह्मी के सिवाय) कोई है ही नहीं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस होते हुए भी जो कुछ समझी जाने वाली प्राचीन लिपियां मिल सकी हैं, जिन में कुछ लेख तथा नियमदि लिखे मिले हैं, उन सबसे पूर्व निशान, संकेत, लकीरें, और चित्र आदि प्रचीन स्थानों से प्राचीन आदिवासी लोकों के पास से प्राप्त हुए हैं उनको विद्वानों ने लिपि-पूर्व का साधन माना है। इसमें अछी बात केवल यह है कि इन सबको १० से २० हज़ार वर्ष पूर्व का माना गया है।[1] अर्थात अब मनुष्य बाईबल के (६ हज़ार वाले) संकुचित दायरे से बाहर निकला है। कुरान के बनाने वाले ने यह बुद्धिमता का काम किया है जो अपने को इस चक्रव्यूह में नहीं फंसाया है। जिस बात का ज्ञान नहीं हो उसके लिये कुछ लिखना भी व्यर्थ है। उल्टा कुरान ने वेद के बीते (गुज़रे हुए) के छोड़कर बाकी के आनेवाले १४ मन्वंतरों के समाप्ति पर प्रलय अर्थात १४ मन्वंतरों के समाप्ति पर (१४ सदियों के पूरा होने पर) क़यामत (प्रलय) का होना स्वीकार कर दिया है।

दक्षिण फ्रांस के Mas d'Azil स्थान से छोटे छोटे पत्थर मिले हैं जिनको Azilian कहा जाता हैं, जिन पर विभिन्न चिह्न अंकित हैं। परन्तु ऐसे पत्थर मेडीटरेन्यन समुद्र वाले प्रदेशों से भी मिले हैं। आश्चर्य यह है कि इन पर अंकित चिह्न आस्ट्रेल्या के चूरिंग (Churing) पत्थरों से समानता रखते हैं, यद्यपि उनका कोई विशेष अर्थ नहीं जाना गया है।

प्राचीन पत्थर युग के अंकित चित्र जो कुछ गुफाओं की दीवारों तथा छोटी पहाड़ियों पर अंकित हैं, स्पेन में वे अंदर गुफाओं में छिपे हुए हैं, तो यूरोप और उत्तर आफ्रीका में बाहर खुले भूमि-स्थल पर अंकित हैं। उत्तर-पश्चिम आफ्रीका के ऐटलस पर्वत श्रेणी तथा सहारा में

(1) Dringer: The Alphabet, P. 22

पहाड़ियों पर अंकित हैं। इन में से कुछ अंकित हैं तो कुछ चित्रित हैं। इस सिवाय दक्षिण आफ्रीका में गुफाओं, पहाड़ी छपड़ों में भी ऐसे चित्र अंकित हैं। इनकी विशेष बात यह है कि विशाल काय मनुष तथा इसी तरह पशु भी हैं। बड़े जानवर (हाथी, बैल आदि) दौड़ते और विशाल काय मनुष उनका पीछा करते दिखाये गये हैं। अर्थ, शिकार अथवा तो मुकाबला। और ये भी सारे संसार में पाए जाते हैं और प्रायः समान रूप और ढंग से। भारत में मध्य प्रदेश में भी हैं तो रूस तथा मध्य एशिया में भी। चीन में हैं तो इटली में भी।[1] परन्तु पश्चिम एशिया के एक नये स्थान चतल हुयुक (Catal Huyuk) से जो नव पत्थर युग के अवशेष मिले हैं उन में एक चित्र अति सुन्दर है और वह भी उपरोक्त जैसा ही है।[2] इन नये अवशेषों ने तो विद्वानों की पुरानी धारणाओं को ही हिला दिया है।

परन्तु सब से विचित्र और जीवित प्रमाण है गांठ बांधने का। रसी को गांठ बांधना अथवा डंडे पर समानांतर पर निशान खोदना। कपड़े आदि को गांठ देना केवल स्मृति के तौर पर है, जो बात सिन्ध के गावों में अभी तक प्रिचलित है। गांवों में बड़े छोटों को अथवा किसी को कुछ याद रखने के लिये कह देते थे कि "कदाचित भूल जाओ इस लिये धोती-कुरते आदि को गांठ दे दो तो काम याद पड़ेगा"। परन्तु अधिक गांठें, गिनती का काम देती हैं। तुंगनायक (मध्य आफ्रीका) में एक फुट लंबी रसी मिली है जिसे ११ गांठें हैं। इस अनुसार एक पति अपनी पत्नि को अपना कार्य-क्रम समझाता है। प्रथम गांठ अर्थात मैं आज जा रहा हूं, दूसरी अर्थात कल रास्ते में हूंगा। इस प्रकार ११वीं का अर्थ है कि उस दिन मैं लौट कर आऊंगा, भोजन तैयार रखना।

अमेरीका के प्राचीन लाल हिन्दू (रेड इन्डियन) में विशेष कर पेरू में भी यह रिवाज था। चीन, तिबत, भारत आदि के आदिवासी कबीलों में भी यह रिवाज है।

हीराडोटस ने एक स्थान पर उल्लेख किया है कि "ईरानी सम्राट् दारा, 'जतों' को जीत कर डैन्यूब नदी की ओर बढ़ा। नदी पार कर उसने यूनानियों को आदेश दिया कि नदी पर की पुल तोड़ डालें। तब एक सेनानायक कोस (Coes) ने उसे न तोड़ने का निवेदन किया, और उसके कारण भी बताए। दारा ने बात समझ, यूनानियों को बुला कर एक पट्टा, जिसे उसने ६० गांठ दी थीं, दिखाकर कहा "पुल तोड़ने की आज्ञा वापस लेता हूं। यह पट्टा लो, और प्रतिदिन इसकी एक एक गांठ खोलना। दो मास (६० गांठ पूरी होने) तक में न लौटूं तो तुम घर चले जाना"।[3] डंडों पर दांते (Notch) करके संदेश भेजनेका भी रिवाज था, इत्यादि ऐसी और भी अनेक बातें थीं और हैं।

(1) Andreas Lommel: Prehistoric and Primitive Man
(2) David and John Oates: The Rise of Civilization P. 93
(3) Herodotus: Book Four/98, P. 274

किन्तु ये सब लिपि के अभाव में विवशता के अंतिम साधन हैं न कि प्राथमिक (आदिम), जैसा कि समझा जाता है। ये प्राचीन आदिवासी अथवा जिनको जंगली जातियां (Aboriginies) कहा जाता है, वे सचमुच मूलतः कोई जंगली जातियां हैं ऐसा नहीं है। ये आदिम सभ्य जातियों से बिछड़ कर इस अवस्था को पहुंची हैं। समझिये कि वे भारत से समुद्री यात्रा पर निकले, रास्ते में जहाज़ टकड़े, टूटा, वायू के प्रवाह से कहीं किसी दूर नये स्थान पर जा निकले। वहां उसके मूल साधन नहीं थे। बोलने की शुद्ध भाषा बिगाड़ कर भी व्यवहार चला सकते थे। परन्तु लिपि की उसे आवश्यक्ता नहीं है। क्या करेगा, क्या लिखेगा, क्यों लिखेगा और किस को लिखेगा? यदि आवश्यक्ता हो भी तो साधन नहीं हैं। विवश हैं। बस! इस प्रकार उसकी मूल लिपि समय बीते लोप हो गई। सदियों बीतने पर परिवार बढ़ा, विभिन्न कबीले बने, एक दूसरे को संदेश भेजने का काम मौखिक भी चल सकता है, अन्यथा उपरोक्त ढंग पर सब ने अपने तरीके ढूंढ निकाले। परन्तु कमाल यह है कि ये सब आदिवासी तरीके सारे संसार में समान हैं। जब यह माना ही नहीं जाता कि मूल सृष्टि केवल एक स्थान पर हुई तो फिर ये भिन्न उत्पन्न हुए लोगों में यह समानता कैसे? जब यातायात का कोई साधन नहीं था, आवश्यक्ता भी नहीं थी। तो स्पष्ट नहीं कि उन सब का मूल एक है और इस प्रकार हर वस्तु का मूल एक है और अवश्य है? क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जो मनुष भारत के मध्य प्रदेश में बैठकर गुफाओं में दीवारें चित्रित करता है, बिलकुल वैसा चित्र आफ्रीका, यूरोप, आस्ट्रेल्या, फ्रांस, स्पेन और रूस में किस प्रकार चित्रित हो गया? वह भी लगभग समान! वही भाव, वही कद-माप, वही विचार! पत्थरों पर चित्र आंकना फुरसत का दिल बहलाव है। मनुष बेकार बैठा होगा तो निशान करेगा, कोई गोलाकर बनाएगा, उनको बीचो बीच मिलाएगा अथवा और कुछ करेगा, और ऐसी ही एक कोई आकृति (Design) बन जाएगी। यह कुछ उसे सिखाया नहीं जाता। यह केवल एक मूल शक्ति का विकास है। गांठ देना अथवा ऐसे ही और साधन ये सब आवश्यक साधनों के अभाव की कमी-पूर्ति हैं। दिन की गिनती सरल है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक, दिन गिना जायगा और एक गांठ उस का प्रतिनिधि है। ये सब साधारण बातें हैं। इनका लिपि के साथ कोई सम्बंध नहीं है। यह उन्नति से गिड़ावट की ओर की अवस्था का चिह्न है, न कि आदि मानव का पहला प्रयत्न। इसे '*Embryo Writing*' कहते हैं।

ऐसे ही चित्रों आदि को ध्यानमें रख कर विद्वानों ने यह सोचा है कि इस विकास से ही चित्रि-लिपि (Pictography or Ideography) का जन्म हुआ और इसी को अति प्राचीन लिखने के आविशकार का प्रथम चरण स्वीकार किया गया है। और उपरोक्त सब आदिम चरण था। चित्र-लिपि के नमूने ईज़िप्ट, मेसोपोटाम्या, फिनीश्या, क्रीट, स्पेन, दक्षिण फ्रांस, तथा दूसरे देशों के आदिम निवासियों के अवशेषों से मिले हैं। इस के लिये वृक्षों के छिलके, लकड़े की पटियां,

जानवरों की खालें, हड्डियां तथा हाथी-दांत का प्रयोग होता था। किन्तु ये भी लिपि का प्रथम चरण नहीं, परन्तु विचारों और भावों को प्रकट करने के आकार हैं, जिन को समझाने के सिवाय नहीं समझा जा सकता। इन को वास्तव में केवल संकेत कहा जा सकता है क्यों कि इन दोनों के चित्रों तथा नामों का आपस में कोई सम्बंध नहीं है।

इसके बाद ध्वनि (Phonetic) तथा पद से बने (syllabic) लेखन का स्थान है। परन्तु वास्तव में ध्वनि (Phonetic) के भी दो रूप हैं सिलेबिक तथा अल्फाबेटिक। प्रथम अभी अज्ञानी दौर में है। इसमें असीर्या की कीलाक्षरी (Cuneiform) तथा प्राचीन बैबीलोन्या (सीर्या), साइप्रस और वर्तमान चीनी लिपि का समावेश है। ईजिप्ट की Hieroglyphic भी इसी सीमा के अंतर्गत है। जिस प्रकार Strength को Se-te-re-ne-ge-the करके लिखा जाएगा परन्तु इसका उचार केवल समझने और सीखने पर ही शुद्ध किया जा सकेगा। स्वयं इस Strength में से भी G लोप करके उचार होता है। चीनी लिपि में ऐसे ८० हज़ार निशान है। यद्यपि साधारण तौर ६००० निशान (Syllables) प्रयोग में आते हैं, इसलिये कि इतने याद रखना ही परेशानी है। परन्तु लिपि में यह लाभ भी है कि वह किसी भी भाषा के लिये प्रयोग में लाई जा सकती है, जब कि प्रथम केवल किसी विशेष लिपि के लिये ही होती है। जिस प्रकार वर्तमान रोमन लिपि में इंगलिश, फ्रेन्च, इटाल्यन, जर्मन, स्पेनिश, तुर्की, पोलिश, डच, ज़ेक, क्रोटीन (यूगोस्लाव्या), वेल्श (आस्ट्रिया), फिन्निश, हंगरी आदि भाषाओं के लिये प्रयुक्त है, जो लिपि प्राचीन हिब्रू (यहूदी), फिनीश्यन, अराम्यन, ग्रीक, एट्रोस्किन तथा रोमन लोक प्रयोग में लाते थे। इसका अंतिम दौर तथा रूप रोमन साम्राज्य था, जिस कारण आज की अंग्रेज़ी लिपि का मूल नाम रोमन लिपि है।

यह है लिपि के इतिहास की रूप रेखा, जिस पर देसी-विदेशी विद्वानों का वाद विवाद होता है जिसे ही वे लिपि का इतिहास अथवा 'History of Writing' कहते हैं। और इसे ही विकास भी कहते हैं, क्यों कि वे अज्ञान से ज्ञान की प्राप्ति करते हैं जो असंभव है। अज्ञानी और जानवर में कोई भेद नहीं। मगर जानवर ने आज तक कोई उन्नति नहीं की है। अज्ञानी मनुष, जिसके लिये ज्ञान का कोई साधन नहीं, कैसे उन्नति करेगा, क्या करेगा, किस प्रकार करेगा! कुछ नहीं करेगा! सिवाय खाने पीने, संतान उत्पति, सोने तथा डरने के, जो बातें हर प्राणी में चाहे वह संसार के किसी भी भाग में है, समान हैं। बाकी और सब मनुष को सीखना ही पड़ता है। किसी असभ्य बालक को ऐसा क्यों कहा जाता है कि "अक़ल भी नहीं हैं, उठने बैठने और बात करने का ढंग भी नहीं सीखा है अथवा फज़ीलत नहीं है"? यदि मनुष सब सिखाये बिना सीख सकता है तो जब घर के दूसरे नो लोग सब बातें सीख गये तो यह अकेला क्यों न सीख पाया, जिसे उपरोक्त ढंग से कहने की आवश्यक्ता हुई? नव-जात बालक को माता

का दूध प्राप्त करना सिखाया नहीं जाता, वह जनमते ही इस कार्य को करने लग जाता है। यह उसके अनेक-असंख्य जनमों का पुष्ट संस्कार है और यह उसका निजी सामान्य ज्ञान है। किसी बड़े बालक को तो कहें माता का दूध प्राप्त करके दिखाए? स्थनों को काट कर मां को ही रुला देगा! कितना न सृष्टि का अटल नियम है? छोटा बिलकुल सरलता से दूध ग्रहण कर सकता है किन्तु बड़े होने पर वह इतना अज्ञानी बन जाता है कि उन्नति तो नहीं की उलटा व्यवहारिक ज्ञान भी भुला बैठा।

यहां ऐसा कहा जा सकता है कि बालक छोटे से बड़ा हुआ, मां का दूध त्यागते उस बरसों बीत गये अब यह उसे कैसे आएगा, भूल गया सब कुछ। बस! यही रहस्य है जातियों के गिरावट का भी। ईश्वरीय ज्ञान के लिये भी यही आदेश है कि प्रतिदिन उसका पठन, अभ्यास, स्वध्याय अवश्व करते रहना चाहिये जिस प्रकार ईश्वर की सन्ध्या-प्रार्थना। प्रतिदिन के स्वाध्याय से वेद का ज्ञान जीवन में दृढ़ होता जायेगा, व्यवहार शुद्ध करने में सहायक बनेगा। इसी प्रकार जैसे रोज़ाना भोजन करना अनिवार्य है, नहीं तो शरीर निर्बल होकर अंतमें अंत। किसी ने कभी ऐसा नहीं सोचा होगा कि, काफी आयु बीत गई खाते खाते, अब छोड़ देना चाहिये, क्या आवश्यक्ता है रोज-रोज दो घन्टे खाने के पीछे नष्ट करने की? नहीं! ऐसा नहीं कर सकेगा, क्यों कि मन शांत ही नहीं रह सकेगा। जिस प्रकार वेद का स्वाध्याय न करने से आत्मा में संतोष नहीं रहता, और ऐसा करते करते आत्मा दब कर मृत-प्राय: हो जाता है और इसी से मनुष की गिरावट भी आरंभ होती है। सगीतज्ञ प्रतिदिन संगीत का अभ्यास-रियाज़ करता रहता है। इस से न केवल राग-रागणियां पक्की रहती हैं परन्तु नयी उपलब्धि भी होती है, नहीं तो वर्षों के पश्चात सब कुछ भूल जायगा। कोई नई लिखित बोली का भी यदि प्रतिदिन का व्यवहार बंद हो जायगा तो अंततः बोली ही भूल जाएगी। कोई भी कला अथवा हुन्नर का जानने वाला वर्षों के पश्चात ऐसा क्यों कहता है कि "वर्षों हो गए इस काम को छोड़े हुए, इस समय पूरा याद नहीं, ध्यान नहीं", इसलिये कि कोई भी बात निरंतर करते रहना है नहीं तो भूल जाएगी। बालक ने दूध चूशना छोड़ दिया, भूल गया। मनुष्य ने वैदिक संस्कार छोड़ दिये तो आज दुखी है। संस्कृत भाषा छोड़ दी, प्रमाद किया तो भाषा भ्रष्ट कर बैठा। यूरोप वाले आज क्यों वदिक ज्ञान के लिये तरस्ते रहते हैं? क्यों कि उनके पूर्व जन्मों के संस्कार उन्हें मूल ज्ञान के लिये प्रेरित करते हैं। इसलिये यह स्पष्ट है कि मनुष ज्ञान से अज्ञान की ओर ही अग्रसर होता है। क्यों कि उसने ज्ञान, क्यों न वह समान ही हो, के व्यवहार का अभ्यास रियाज़ छोड़ दिया है, उसे सब भूल चुका है।

सच्च! यही अवस्था आज के मानव समाज की है। प्राचीन काल में वेद ज्ञान से वह ज्ञानी बना। बाद में उसके व्यवहार को भुलाने से अज्ञानी बन गया। अर्थात नियम यह कि अज्ञान से

ज्ञान की ओर नहीं किन्तु ज्ञान से अज्ञान की ओर का नियम है। इस लिये यह सत्य नहीं है कि मनुष उन्नति कर रहा है परन्तु अपने मूल्य (Values) भुलाकर गिरावट की ओर अग्रसर हो रहा है। आज से सौ वर्ष पूर्व की पुल कायम है, परन्तु आज से कुछ ही वर्ष पूर्व की पुलें टूट भी चुकीं अथवा तो मरमत की शिकार हैं। सदियों पूर्व के बने मकान-यादगार बराबर अपनी भव्यता के साथ कायम हैं मगर आज के बने, टूट गए अथवा अल्पायु के हैं। जब कि प्राचीन काल में सीमेंट आदि का भी व्यवहार नहीं होता था। सिन्ध की कच्ची मिट्टी के बने मकान आज के पके मकानों की आयु पूरी करते थे। मिस्र (इजिप्ट) के पिरामिड देखें। अकेले चोप्स (Cheops) का पिरामिड ४८५ फुट ऊंचा था, उसकी नींव १३ एकड़ भूमि में है। वर्तमान वैज्ञानिकों का अनुमान है कि उसमें 2.6 मिलयन पत्थर के ब्लाक है जिन में से प्रत्येक का वज़न ३ से ६० टन है। कुछ विशेष ब्लाक ६०० टनों के हैं। ये विशाल पत्थर इतनी सूक्ष्म (Precisely) ढंग से काटे और जोड़कर मिलाये गये हैं कि किसी भी ब्लाक के जोड़ (Joint) के मध्य इतना भी अंतर (Space) नहीं है कि एक साधारण कार्ड का टुकड़ा भी उस में जा सके! सौ टनों के पत्थर भी ऐसी सूक्ष्मता से बैठाए गये हैं कि उनके जोड़ (Joints) भी देखने में नहीं आते। ज़रा बोरोबदर के विशाल हिन्दू मंदिर तो देखें! सिवाय सीमेंट के भी ऐसी शान से खड़े हैं कि संसार भर के लोग उन टूटे मंदिरों की कारीगरी देखने को वहां पहुंचते हैं। आजका तथाकथित उन्नत विज्ञान, विशाल क्रेनों (Cranes) की उपस्थिति में ज़रा एक भी एसा पिरामिड तो बनाकर दिखाए! बाकी ग़लत तथा निरथक अन्वेषणों से क्या लाभ? अविकसित समझने वाले आदिवासी कबीले की जवान सुंदर लड़की अकेली, चाहे रात में भी कहीं भी घूम फिर सकती है। किन्तु आजका गिरा हुआ 'विकसित' मनुष फिल्मी दुनियां का मजनू जिसे बदइखालाकी की पूरी शिक्षा फिल्मों से प्राप्त होती है ज़रा अपनी शक्ल की रंगत स्वयं बताए। पहले स्कुलों की परीक्षांए विश्वास पर एक ही समय एक ही कक्षा में होती थीं, आज? प्रत्येक कक्षा के लिये न जाने कितने अलग अलग क्लासों में प्रबंध होता है और साथ निरीक्षक भी नियुक्त किये जाते हैं। आरंभ में ही चोरी, बेईमानी और बद इखलाकी उसके रक्त में भरी रहती है तो वह देश को क्या लाभ पहुंचाएगा। आखिर उन्नति की परिभाषा क्या है? यही कि बीमारियां खरीद करने के लिये हमें Refrigerator मिला ताकि बांसी गंदा खाना खाएं, निरर्थक भटकने के लिये Aeroplane मिला, अनुचित अधिकार करने के लिये युद्ध की भयंकर और सुंदर उपकरणों का अन्वेषण हुआ, विचित्र तौर बीमार करने के विचित्र प्रकार के सुंदर किन्तु ग़लीज़ खाद्य पदारथ बने और उनसे होने वाली बीमारियों को दूर करने के लिये फिर असंख्य इलाज ईजाद हुए? मूर्खता के विचार शीघ्र फैलाने के लिये काग़ज़ और प्रेस का जन्म हुआ। हां! सब ऐसा ही हो रहा है। जितना इस से लाभ समझा जाता है उस से कई गुना अधिक

भयंकर हानि हो रही है। इसलिये ही, वही इन अन्वेषण करने वाले अथवा 'उन्नत' समझे जाने वाले यूरोप, अमेरीका आदि का युवक धर्म, सचाई तथा आत्मा की शांति के लिये गुमराह होकर भटक रहा है। क्योंकि ये सब चीज़ें उसे इस वर्तमान भ्रष्ट विज्ञान से कदापि प्राप्त नहीं हो सकतीं। वह Healthy होने के बजाय Wealthy और परेशान हो रहा है तथा Happy होने के स्थान पर Hippie बन रहा है। मनुष्य की गिरावट राक्षस के समान मुख खोल कर खड़ी है और आज का मनुष बड़ी उत्सक्ता के साथ उस की ओर बढ़ने की 'उन्नति' कर रहा है।

हमरा प्राचीन काल भूल चुका है। केवल ४-५ हज़ार वर्षों का मध्य, हज़ार-दो हज़ार का वर्तमान काल हमारे सामने घूम रहा है। उसी को दृष्टि में रखकर भाषा और लिपि की खोज की गई अथवा की जा रही है। प्राचीन तो इनके लिये कुछ है ही नहीं; क्यों कि अति प्राचीन में मनुष्य नहीं अपितु बंदर की कल्पना की जाती है। वास्तव में अति प्राचीन में ही मनुष था और अब बंदर अथवा वन-मानुष बनता जा रहा है। जो कार्य वन-मानुष अथवा प्राचीन जंगलियों के लिये कल्पित किये जा रहे हैं वास्तव में वे सब अब हो रहे हैं। सत्य यह है कि प्राचीन वेद-काल पर ही मनुष्य के मध्य और उस पर ही वर्तमान की नींव है तथा वर्तमान पर भविष्य की! यदि मनुष्य अपने प्राचीन काल की इमारत को खोद कर नहीं देखा-समझा तो बाद की कच्ची नींवों पर हमारे अभी आगे के हज़ारों लाखों वर्षों की इमारत कैसे खड़ी हो सकेगी?

इस लिये उपरोक्त लिपि सम्बंधी "अज्ञान से ज्ञान" वाली धारणा को 'ज्ञान से अज्ञान' की ओर ले चलते और समझते हैं। आज के विद्वान जिन में अधिकता ईसाइयों की है वे अपने मजहब में विज्ञान का किसी प्रकार भी संकेत न पाने पर तथा भारत और वेदों के विषय में उनके ही ईसाई पादरियों की ओर से गुमराह करने वाला प्रचार ध्यान में रख तथा स्वयं हिन्दुओं की ओर से वेद विषय में अज्ञानता देख, वे निराश हो गये। डार्विन जैसे योग्य वैज्ञानिक को मूल सत्य-ज्ञान कहीं भी न देखकर, विवश होकर ग़लत को सत्य सिद्ध करके समझने के लिये इतना बड़ा परिश्रम कर खोज करनी पड़ी, जिस ने दूसरे ईसाई वैज्ञानिकों को, जिन को अपने मजहब में कोई श्रद्धा नहीं रही थी, इसी एक सहारे को आधार बना कर बाकी खोज करनी पड़ी। उन्हें ज्ञान नहीं रहा कि मनुष्य वास्तव में अज्ञानी है, जिसे सृष्टि में व्यवहार अथवा ज्ञान सिखाना, उस परम शक्ति का अटल नियम है। बाईबल, कुरान आदि के बनाने वालों को यह मालूम था, उन्हों ने भी इस प्रकार के संकेत अपनी पुस्तकों में दिये हैं, किन्तु वे केवल संकेत ही हैं। उनमें से ऐसा कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता जो आज के विद्वान और विज्ञानी को कुछ संतोष दे सके। आशा का तो इनसे प्रश्न ही नहीं है। इस लिये वे वैज्ञानिक अपनी विज्ञान जिज्ञासा को तृप्त करने के लिये बाईबल आदि के सहारे तर्क वितर्क करता रहा, खोज तथा परीक्षण करता गया जिस से वह कुछ राय बना सके। परन्तु आज वैज्ञानिक खोज की दो

शताब्दियों के वैज्ञानिक जेब में कुछ भी नहीं है। व खोज करता जेब में हाथ डालता देखता गया कि कितना जमा हुआ है। इस घड़ी घड़ी की घसीट से जेब ही घिस कर फट गये, कुछ मिला नहीं। तब उसे निराश होकर वेद की ओर मुड़ कर कहना पड़ा कि "ज्ञान विज्ञान को प्रकाश-स्तम्भ केवल वेद है"।

"After the latest researches into the history and chronology of book of Old-Testament, we may safely now call the Rigveda as the oldest book not only of the Aryan humanity, but of the whole world."

(Rev. Morris Phillp; "The Teaching of the Vedas" P. 231)

इस लिये संस्कृत भाषा अर्थात वेद भाषा भी मनुष्य मात्र की आदि (मूल) भाषा है जिस मूल से संसार की सब भाषाएं बिगड़ कर बनी हैं, जैसा कि खोज से स्पष्ट होता है :-

"The affinities of the Sanskrit language prove a common origin of the now widely scattered nations amongst whose dialects they are traceble, and render it unquestionable that they must all have spread abroad from some centrical spot in that part of the Globe first inhabited by mankind according to the inspired record."[1]

इस लिये आओ तो हम भी उपरोक्त समाधान के लिये वेद और वैदिक साहित्य का सहारा लें। जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि लिपियों के विशेषज्ञ श्री डिृंजर ने एक पुस्तक इस विषय पर लिखी है, उसी प्रकार वेद और वैदिक विषयों पर एक भारती महाविद्वान और महापडित रघुनंदन शर्मा ने एक सुन्दर ग्रथ 'वैदिक सम्पति' लिखा है। उसने वैदिक लिपि पर भी अच्छा प्रकाश डाला है। हम यहां उस ग्रंथ से कुछ ऐसे संदर्भ प्रस्तुत कर रहे हैं। उस अनुसार :-

"प्राचीन वैदिक आर्यों का विश्वास था कि मौलिक भाषा अपौरुषेय है और उसके कारण रूप धातुओं और वर्णों का अर्थ अवश्य है। इसी विश्वास पर उन्होंने अक्षरार्थ किया है। वे मानते थे कि जिस प्रकार एक एक परमाणु से पृथिवी बनी है और पृथिवी में वही गुण हैं, जो परमाणुओं में हैं (ऐसा नहीं है कि पृथिवी में कुछ ऐसे भी गुण आ गये हैं, जो परमाणुओं में न हों), ठीक इसी प्रकार यह भाषा रूप पृथिवी भी अक्षररूप परमाणुओं से ही बनी है और वही अर्थ रूपी गुण रखती है, जो उसके अक्षर रखते हैं। अक्षर शब्द के उस टुकड़े को कहते हैं, जिसका फिर टुकड़ा न हो सके। मनुष्य की भाषा अर्थों के सहित है, अतः उसके कारण रूप अक्षर भी- अखण्ड टुकड़े भी- सार्थक होने चाहिए। जिस प्रकार वाक्यों का अर्थ तब समझ में आता है, जब उस वाक्य में आये हुए सब शब्दों का अर्थ ज्ञात हो। उसी तरह क्या यह

(1) H. H. Wilson-"Vishnu Puran" [Oxford], Preface, P. ciii

सिद्धान्त न होना चाहिए कि शब्दों का अर्थ तभी ठीक ठीक समझ में आ सकता है, जब उन अक्षरों का अर्थ ज्ञात हो, जिसके वे शब्द बने हैं ? विशेषकर जो भाषा परमेश्वरीय और वैज्ञानिक होने का दावा करती है, उसके अक्षर तो अवश्य सार्थक होने चाहिए।

"परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि अक्षरार्थ पर विचार करना बहुत दिन से छूट गया है। हमारा दृढ विश्वास है कि वैदिक काल में वेद के एक एक अक्षर का अर्थ होता था। यह हमारी ही कल्पना नहीं है, प्रत्युत संस्कृत भाषा के महा वैयाकरण पतंजलि की भी राय है कि एक एक वर्ण का अर्थ होता है। वे अपने महाभाष्य में लिखते हैं कि 'अर्थवन्तो वर्णाः। धातुप्रातिपदिकप्रत्ययानिपातानामेकर्णानामर्थदर्शनात्। धातव एक वर्णाः अर्थवन्तों दृश्यन्ते। प्रतिपादिकान्येकवर्णान्यर्थवंति। निपाता एक वर्णा अर्थवन्तः'। अर्थात वर्ण अर्थवाले हैं। धातु, नाम, प्रत्यय और निपात का प्रत्येक वर्ण अर्थवान् होता है, इसी तरह धातु एक वर्णका अर्थवान होता है, नाम अनेक वर्णों के संयोग से अर्थवान होते हैं और निपात एक वर्ण का अर्थवान् होता है। यह महामुनि पतंजलि की भी कल्पना नहीं है, प्रत्युत वेद स्वयं कहते हैं कि –

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते। (ऋग्वेद १/१६४/३९)

अर्थात ऋचाएं परम अविनाशी शब्दमय अक्षर में ठहरी हैं, जिनमें देवता अर्थात शब्द के विषय (अर्थ) ठहरे हैं। जो उस अक्षरार्थ को नहीं जानता, वह ऋचाओं से क्या लाभ प्राप्त करेगा ? इसी मन्त्र पर पतंजलिमुनि ने कहा है किः–

वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्मवर्तते।
तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते ॥ (महाभाष्य १/१२)

अर्थात वाणी का विषय वर्णज्ञान है, जहां ब्रह्म (वेद) मौजूद है। इसका मतलब यही है कि बिना अक्षरार्थ के वेद का ज्ञान नहीं हो सकता। निरूक्तकार ने भी कहीं कहीं इस वैदिक शैली का अनुकरण किया है। वे लिखते हैं कि –

कः कमनीयो भवति सुखो भवति क्रमणीयो वा।
तद्यथा कः कमनो वा क्रमणो वा सुखो वा इति। (निरु० दै० ४/२२)
गकार मनक्तेर्वा दहतेर्वा। (निरू० दै० १/१४)

अर्थात् क, कमनीय, सुख, क्रमणीय आदि अर्थवाला है और ग, दहन आदि अर्थवाला है। यह शैली उपनिषदों में भी पाई जाती है। छान्दोग्य-उपनिषद् में 'सत्य' शब्द के स, त और य अक्षर का अर्थ करते हुए कहा गया है कि –

तानि हवा एतानि त्रीण्यक्षराणि 'स-ति-यमित'।
तद्यत् सत् तदमृतमथ यत् ति तन्मर्त्यमथ यत् यम् तेनोभे यच्छति ॥

अर्थात् 'सत्य' शब्द के तीन अक्षरों में 'स' का अर्थ अमृत, 'त' का अर्थ मर्त्य और 'य' का अर्थ दोनों को नियम में रखनेवाला है। ब्रह्मण-ग्रन्थों में इस प्रकार के नमूने बहुत ही विशद रूप से पाये जाते हैं। गोपथ ब्राह्मण में 'भर्ग' शब्द के लिए लिखा है कि –

भ, इति भासयतीतीमांल्लोकान्।

र, इति रजयतीतीमांल्लोकान्।

ग, इति गमयतीतीमांल्लोकान् इति भर्गः। (गोपथब्रह्मण)

अर्थात् 'भ' से भासित होना 'र' से रञ्जित होना और 'ग' से करना, समझना चाहिये। दूसरी जगह गोपथ २/२/५ में लिखा है कि –

मख इत्येतद् यज्ञनामधेयं छिद्र प्रतिषेधसामर्थ्यात्।

छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मेति प्रतिषेधः मा यज्ञे छिद्रं करिष्यतीति॥

अर्थात यज्ञ का नाम मख है। उसमें कोई छिद्र (त्रुटि) न हो, इसलिए उसका नाम मख रक्खा गया है। छिद्र को 'ख' कहते हैं। उसका निषेध करनेवाला 'म' है। यज्ञ में कोई छिद्र (त्रुटि) न होन पावे, इसलिए उसको 'मख' कहते हैं। इसी तरह का अर्थ नाक शब्द का भी निरुक्त में किया गया है। वहां लिखा है कि 'कमिति सुख नाम, तत् प्रतिषिद्धं प्रतिषिध्येत्' अर्थात् 'क' को सुख कहते हैं। सुख का निषेध करनेवाला 'अ' है और 'अ' का निषेध करनेवाला 'न' है। इस तरह से नाक नाम सुखस्थान-स्वर्ग का है। इसी तरह समस्त वैदिक और लौकिक साहित्य में प्रत्येक अक्षर का अर्थ प्रचलित है। सभी जानते हैं कि– अ–नहीं, आ–अच्छी तरह, ई–गति, उ–और, ऋ–गति, लृ–गति, क–सुख, ख–आकाश, ग–गति, च–पुनः, ज–उत्पन्न, होना, झ–नाश, त–पार, थ–ठहरना, दा–देना, धा–धारण करना, न–नहीं, पा–रक्षा करना, भा–प्रकाश करना, मा–नापना, य–जो, रा–देना, ल–लेना, वा–गति, स–साथ और ह–निश्चय अर्थ रखता है।

"इन समस्त प्रमाणों से अच्छी प्रकार प्रकट हो जाता है कि प्राचीन वैदिक ऋषि अक्षरार्थ का ज्ञान रखते थे और उसी शैली से अर्थ करते थे। इस प्रकार के मौलिक अर्थों को ढूंढ़ निकालने की विधि उन्हें वंशपरम्परा से ज्ञात थी। वे इसे योग के द्वारा सम्पादित करते थे। पतंजलि मुनि ने इस संयम के लिये योगशास्त्र में लिखा है कि 'शब्दार्थप्रत्ययाना मितरेतराध्यसात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम्'। अर्थात शब्द, अर्थ और प्रत्ययों के संयोगविभागों में संयम करने से समस्त प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान हो जाता है। जिस प्रकार धातु प्रत्ययों में संयम करने से मनुष्य भाषा के प्रत्येक वर्ण के अर्थों का बोध होता है, उसी तरह प्रत्येक प्राणी की भाषा में संयम करने से प्रत्येक प्राणी की भाषा का ज्ञान हो जाता है। कहने का मतलब यह कि अक्षर विज्ञान जानने के लिए धातुओं और प्रत्ययों में संयम करने की आवश्यकता है। थोड़े ही दिन संयम करने से पता लगने लगता है कि अमुक शब्द के भीतर अमुक वर्ण अपना

कौनसा भाव प्रकट कर रहा है। इस प्रकार अनेक शब्दों में ढूंढने से उस वर्ण का भाव विदित हो जाता है और मालूम हो जाता है कि यह वर्ण इस प्रकार का अर्थ रखता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसका अनुभव किया है। R.C. Trenich ने अपनी पुस्तक "Study of Words" में लिखते हैं कि- "एक एक शब्द और अक्षर में कविता भरी हुई है, इसलिये शब्दों का वास्तविक अर्थ जानने के लिए शब्दों के धात्वार्थों को अवश्य जान लेना चाहिए"। हम भी यही कहते हैं कि बिना धात्वार्थ के और बिना अक्षरार्थ के भाषा का ठीक ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि वैदिक भाषा को वैज्ञानिक, अपौरुषेय और ईश्वरप्रदत्त सिद्ध करें, तो उचित है कि उसके एक एक अक्षर के अर्थ को समझें कि किस प्रकार और किन कारणों से उसकी धातुओं का- वर्णो का- अक्षरों का-अमुक अमुक अर्थ होता है।

"वेद के प्रत्येक अक्षर का अर्थ उसकी बनावट से ज्ञात होता है। अक्षरों की बनावट दो प्रकार की है। एक तो वह बनावट है, जो मुंह में अक्षरों के उच्चारण करते समय बनती है और दूसरी वह है, जो लिखने के समय क़लम से रेखारूप होकर काग़ज़ में चित्रित होती है। पहिली मुख्य है और दूसरी उसकी साक्षी है। साक्षी से यह बात प्रमाणित होती है कि मुख की बनावट स्थर करने में धोखा तो नहीं हो रहा। मुंह से निकलते समय जो अक्षर अपना जो जो भाव, बनावट, ध्वनि, असर और क्रिया करना है, उसी से उसका अर्थ निश्चित होता है। इसी तरह उस अक्षर के चित्र, रेखा, बनावट और प्रभाव से जो भाव उत्पन्न होता है, वह प्रथम कहे हुए अर्थ का पोषक होता है। इसका कारण यही है कि वैदिक लिपि अक्षरार्थ के ही अनुरूप बनाई गई है। उदाहरणार्थ 'अ' का अर्थ अभाव है। अभाव का चित्र इस **O** शून्य से अधिक अच्छा दूसरा नहीं हो सकता। यही शून्य 'अ' चित्र का मूल है। इसी तरह 'ई' का अर्थ गति है और गति का चित्र ३ इससे अधिक अच्छा और कोई नहीं हो सकता। इसी तरह सब सानुनासिक अक्षर मूर्द्धाछिद्र से बोले जाते हैं। अतः उस छिद्र का '**O**' यह कैसा उत्तम चित्र है? सब जानते हैं कि न, म, ण, आदि सानुनासिक वर्ण अभाव अर्थवाले हैं, अतः अभाव के लिये भी '**O**' इस शून्य से अच्छा चित्र और नहीं हो सकता। अक्षरों के अतिरिक्त अंक तो बहुत ही अच्छी रीति से अपना अर्थ प्रकट करते हैं।" (वैदिक सम्पति, पृ० ३१४-३१७)

अक्षरार्थ और लिपि! पंडित जी फिर लिखते हैं कि "वैदिक वर्णमाला में मुख्यतः १७ अक्षर हैं। (यजु० ९/३१-३४) इन १७ में जितने अक्षर केवल प्रयत्न अर्थात मुख और जिह्वा के इधर उधर हिलाने, सिकोड़ने और फैलाने से बोले जाते हैं, और किसी विशेष स्थान से सम्बध नहीं रखते, उन्हें 'स्वर' कहते हैं। और जिनके उच्चारण में स्थान और प्रयत्न दोनों की सहायता लेनी पड़ती है, उन्हें व्यञ्जन कहते है। अ, इ, उ, ऋ और लृ स्वर हैं- क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, ब, व्यञ्जन हैं और अनुस्वार तथा विसर्ग मध्यस्थ हैं। यही १७ अक्षर परस्पर के मिश्रण

और संयोग से ६४ प्रकार के हो गये हैं। अ, अ, से आ, और आ, अ से आ३ प्लुत बना है। इसी तरह इ, उ, ऋ और ऌ का भी विस्तार है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेद से इनके तीन तीन रूप हो जाते हैं। इसलिये अ से ऌ तक इनकी संख्या १५ है और ए, ए३, ऐ, ऐ३, ओ, ओ३, औ, औ३, और अं, अः, मिलकर सब स्वरों की संख्या २५ होती है। इनमें अ, इ, उ, ऋ और ऌ स्वतंत्र हैं। परन्तु ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः मिश्रित हैं। अ और इ के मिश्रण से ए, आ और ई के मिश्रण से ऐ, अ और उ के मिश्रण से ओ तथा आ और ऊ के मिश्रण से औ बना है। इसी तरह अ और ॒ से अं तथा अ और : से अः बना है। ञ, ण, न, ङ, म, ᳵ और ᳶ आदि समस्त सानुनासिक वर्ण अनुस्वार से और ह, स, ष, आदि वर्ण विसर्गों से ही बने हैं। विसर्गों में 'अ' जोड़ने से 'ह' बन जाता है, ह अर्थात विसर्गों का ही 'स' हो जाता है (मनःकामना=मनस्कामना) और यही 'स' टवर्ग के साथ होने से 'ष' तथा चवर्ग के साथ होने से 'श' हो जाता है। क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प और ब में 'ह' जोड़ने से क्रम से ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ और भ हो जाते हैं। इ अ मिलकर 'य' ऋ अ मिलकर 'र' ऌ अ मिलकर 'ल' और उ अ मिलकर 'व' बना है। (यह वैदिक नियम भी व्यापक है। जसा लिखा है कि इ-अ मिलकर 'य' बना है इसीप्रकार ग्रीक- अंग्रेज़ी में भी I O मिलकर Y बनता है जैसे कि Ionian का यवन, Iota का आयोटा, Iodine का आयोडीन इत्यादि) इसी तरह क ष से 'क्ष', त र से 'त्र', ज ञ से 'ज्ञ' भी बना है। इसी प्रकार से २५ स्वर के, २५ वर्ग के और (य- व- र- ल- ल- श- स- ह- क्ष- त्र- ज्ञ- ᳵ और ळ आदि) १३ स्फुट के मिलाकर ६३ अक्षर होते हैं। इन्हीं में एक अर्धचन्द शामिल करने से ६४ हो जाते हैं। इसीलिये पाणिनीय शिक्षा में लिखा है कि "त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।" अर्थात शम्भु-परमात्मा के वैदिक मत के वर्ण ६३ या ६४ हैं।

परन्तु इन सब का मूल वही १७ अक्षर हैं, जो ऊपर वेद के प्रमाण से लिखे गये हैं। इन सत्रह का मूल भी यदि ध्यान से देखा जाय, तो केवल एक अकार ही है। यह अकार ही अपने स्थान और प्रयत्न भेद से अनेक प्रकार का हो जाता है। ओष्ठ बन्द करके यदि अकार का उच्चारण किया जाय, तो पकार हो जायगा और कण्ठ से उच्चारण किया जाय तो वही अकार क सुनाई पड़ेगा। इसी प्रकार समस्त वर्णों के विषय में समझना चाहिये। कहने का मतलब यह कि समस्त अक्षर समूह, समस्त शब्दसमूह और समस्त ध्वनिसमूह स्थान प्रयत्न भेद से उसी प्रकार का ही रूपान्तर है। अकार प्रत्येक उच्चारण में उपस्थित रहता है। विना उसकी सहायता के न कोई वर्ण कहते बनता है और न समझाई पड़ता है। यही कारण है कि अकार का अर्थ सब- कुल- पूर्ण-व्यापक- अव्यय- एक और अखण्ड आदि होता है। यह अक्षर अपने प्रबल अस्तित्व से दूसरे अक्षरों का अभाव भी सूचित करता है। इस लिये इसका अर्थ अभाव,

नहीं, शून्य, आदि भी होता है। इसके प्रबल अस्तित्व से पहिला अर्थ होता है और दूसरे अक्षरों का अभाव दर्शाने से दूसरा अर्थ होता है। हम आवश्यक समझते हैं कि इस भेद को जरा विस्तार से समझावें और साथ ही साथ यह भी दिखलाते जायं कि किस प्रकार प्रत्येक अक्षर दोनों बनावटों से अपना अर्थ स्थिर करता है"।[1]

इसके पश्चात इस महा विद्वान ने प्रत्येक वर्ण का मूल रूप किस प्रकार और क्यों बना और उनके अर्थ किस प्रकार स्थिर हुए यह सब चित्रों सहित समझाया है। उनमें से कुछ में शकाएं हो सकती हैं किन्तु जहां तक विज्ञान का सम्बंध है और इसके पश्चात उन में बिगाड़ आदिका नियम है, यह बड़ी हद तक एक सुलझा हुआ विवेचन है, जिसे हम वर्णमाला, लिपि अथवा शुद्ध अल्फाबेट कह सकते हैं। यहां नमूने के तौर पर कुछ देते हैं। :-

अ! 'अ' के बोलते समय जिह्वा सम और समस्त मुख चारों ओर से एक समान खुला हुआ रहता है, 'सर्वमुखस्थानमवर्णमित्येके' (पाणिनिशिक्षा)। अकार ध्वनि तालुसे लेकर बाहर तक आ३... करती हुई 'I' इस आकार की होकर मुख से निकलती है। यह चिह्न अकार शब्द का निर्भ्रान्त रूप है।

अ के पश्चात उसके नजदीक ही 'इ' का उच्चारण है। यह अ के समान केवल नीचे की ओर जाकर निचले ओष्ठ की सहायना से 'इ' रूप का हो गया है। 'इ' के बोलते समय शब्द निचले ओष्ठ द्वारा मुंह से निकलकर गति करते नीचे गिड़ता है, इस का रूप भी विद्युत के समान '३' होता है और अर्थ भी गति आदि होता है।

क ऐसे स्थान से उत्पन्न होता है, जिससे वह सबसे पहिले अकार और हकार को बांधता है, इसलिये भी वह विशेषकर बांधने, रोकने, अटकाने आदि अर्थों में आया है, और इसका रूप अ 'I' को ऊपर काटता-बांधता है इसलिये यह रूप ईसाई सलीब (Cross) जैसा होता है।" (वही) इस से अधिक बाकी उपरोक्त ग्रन्थ "वैदिक सम्पति" से जाना जा सकता है, जो हमारी दृष्टि में संसार का अद्‌भुत ग्रन्थ है। प्रत्येक वर्ण का रूप और वह कैसे बना, वह दिखाने से प्रत्येक वर्ण का वे अर्थ इस रूप के अनुसार किस प्रकार मुहावरा-विशेषार्थ रूप भी धारण कर जाते हैं। जैसे कि विमान शब्द को देखें। लिखिते हैं कि "विमान नामक यन्त्र तो वैदिक काल से ही जाना पहिचाना है। ऋग्वेद में विमान बनाने की विधि बताते कहा गया है कि जो आकाश में पक्षियों के उड़ने की स्थिति को जानता है, वह समुद्र-आकाश की नौका-विमान को जानता है:-

'वेदो यो वीना पदमन्तरिक्षेण पततां वेनाव: समुद्रिया:'

संस्कृत में 'वी' पक्षी को कहा जाता है और 'मान' का अर्थ 'उस अनुसार' अथवा 'जैसा' है। इसलिये विमान का अर्थ 'पक्षी के समान' होता है। उपरोक्त वेद मन्त्र से भी यही सिद्ध

(1) वैदिक सम्पति, पृ० ३२०-३२१

होता है कि विमान की रचना पक्षियों के सिद्धान्त पर हुई थी। आज भी विमान (Aeroplane) की शक्ल पक्षी जैसी होती है। इस प्रकार विमान में आये वि–मा–न की शक्ल का रूप, धातु, अर्थ आदि दिखाने के पश्चात विमान शब्द का अर्थ सिद्ध किया गया है। और हम नहीं समझते कि संसार की किसी भी लिपि और भाषा में कोई इतना गंभीर और वैज्ञानिक सम्बंध होगा, क्यों कि कहीं है ही नहीं। हम जब चित्रितलिपियों को देखते हैं तो यह सब स्पष्ट हो जाता है कि जो चित्र है, उसके उच्चार और जो पदार्थ, जिस के लिये वह चित्र और उच्चार है, उसका उसके साथ कोई सम्बंध नहीं है अर्थात जो संकेत (चित्रादि) पानी, गौरिया (Sparrow), अन्न आदि के लिये प्रयुक्त होते थे, वे 'अ' आदि ध्वनि के परिचायक क्यों बन गये ? सुमेर्यन पानी का चित्र दो 'लहरें' है, उसी को ही 'अ' ध्वनि का द्योतक क्यों माना जाय, किसी अन्य चित्र को क्यों नहीं ?

यही बात ईजिप्ट के 'हाइरोगिल्फ' की है। एक आयत (Oblong) नोके पर दो चोटियों के साथ है और उसका उच्चार तु (Tu) तथा अर्थ है 'पहाड़'। परन्तु वही आयत जिसके तीन नोकें हैं उसका भी अर्थ तो पहाड़ है परन्तु उच्चार है सेत (Set) अथवा सेमुत (Semut)। अब तु और सेत का आपस में कोई सम्बंध नहीं है। क्यों कि प्रथम तु का दूसरे सेत में समावेश नहीं है जो कि उसका अर्थ पहाड़ी भूमि हो सके, इसलिये कि भूमि के लिये जुदा त (Ta) शब्द है। कैसे भी, परन्तु प्रश्न होता है कि इस तु का अर्थ पहाड़ क्यों ? तु और पहाड़ का आपस में क्या सम्बंध है ? शक्ल का अर्थ से सम्बंध अवश्य है परन्तु उच्चार का बिलकुल नहीं। एक बिछू की शक्ल है परन्तु उच्चार है सेर्क (Serq)। यहां भी शक्ल का अर्थ से सम्बंध है। किन्तु उच्चार का नहीं है। सेर्क अथवा सर्के बिछूका द्योतक क्यों माना जाय। एक नाव की शक्ल है उसमें नाविक की केबिन तथा पाल (Sail) भी है; उच्चार है बाट (Bat) परन्तु अर्थ है 'आश्चर्यजनक' (Wonderful)। यहां B, A, T, तीन वर्ण हैं, इन तीनों का प्रथिक प्रथिक अथवा संयुक्त क्या अर्थ है और क्यों इसका अर्थ 'आश्चर्यजसक' अर्थात बाट हुआ ? ऐसे तो हम कह सकते हैं कि संस्कृत में नाव के लिये 'पोत' शब्द है, वह ईजिप्शन में बाट होकर इस समय अंग्रेजी में (Boat) बन गया। परन्तु यह केवल शक्ल तथा मूलार्थ की पूर्ति करता है न कि इसकी। अब यह एक इसी ईजिप्शन का वाक्य देखें :-

paif	sen	aa	aha	ha	sbai	paif	ahait
इसका	भाई	बड़ा	खड़ा	पीछे	द्वार	इसके	तबेले (के)

इसमें एक-एक शब्द में ४-५ चित्रों का समावेश है, जिन से जाकर यह वाक्य बना है। अकेले तबेले के लिये १० चित्रों का समावेश है। और यह संसार की अति प्राचीन और उन्नत जाति की लिपि है, जिसे Ideography कहना चाहिये न कि लिपि। स्पष्ट है कि

इस लिपि के बनाने वालों के पास प्रथम से ही एक पूर्ण लिपि का अस्तित्व था वे किसी दूसरी चित्र-लिपि के भरोसे पर नहीं बैठे थे। उन्होंने केवल पूर्ण से अपूर्ण का निर्माण किया था, इसलिये वे किसी पूर्ण लिपि के सहारे ऐसी सुंदर लिपि बना सके। मगर वे अपनी मातृ-भूमि छोड़ चुके थे। अब महसूस होता है कि मोहनजो-दरो वाले सिन्धी अपने घर की बरबादी के पश्चात सीधे ईजिप्ट को गये, अपनी चित्र-लिपि के आधार पर एक नई लिपि का निर्माण किया, और सदियों के चक्कर में अपनी मूल महिमा भुला दी। आज का सिंधी व्यापारी जो सिंध में सदियों तक 'हिन्दू-सिंधी-वाणिकी' लिपि में व्यवहार चलाता था, वह सिन्ध छोड़ने के पचीस वर्षों में ही अपनी मूल लिपि का त्याग कर चुका है, उसकी संतान के जानने और सीखने का तो प्रश्न ही नहीं है। यह नियम भी सारे संसार में समान है। देशान्तर करना अथवा नई आबादियां बसाने में ऐसा ही होता है। सो मिस्र (Egypt) की यह लिपि भी अपूर्ण है। इसमें ६०० तो संकेत (निशान) हैं। उनमें भी प्रत्येक निशान के विभिन्न रूप हैं। अकेले पक्षी के भिन्न भिन्न रूपों में उसके ९२ नमूने हैं। थोड़ी सी हेर-फेर से उसका उच्चार अलग तो अर्थ भी अलग। यद्यपि इस से अधिक परेशानी तो चीनी लिपि में है। वर्तमान की उन्नति को शिखर पर पहुंची अंग्रेज़ी का भी यही हाल है। A, B, C, D, के रूप किस प्रकार भी बने परन्तु उनका अर्थ यह क्यों हुआ ? A का उच्चार ए क्यों तथा बी का उचार बी क्यों ? स्वयं उचार भी अशुद्ध हैं। B में ई की कौनसी मात्रा है जो ब से बी बन गया ? परन्तु B, Bi, Be, Bee, में कौनसा भेद है जब कि चारों का उचार केवल 'बी' है? कहा जाता है कि सेमेटिक से अल्फाबेट का जन्म हुआ और उसके वर्णों के नाम प्रतिदिन के चीजों पर से रखे गये हैं। जैसे कि :- घर के लिये Beth! यदि इसके प्रथम वर्ण B को लिया जाय तो यह अंग्रेज़ी के House अथवा Home में तो काम ही नहीं आता। यदि आए भी तो किस आधार पर। Abode का भी इस से सम्बध नहीं है। यूरोप को जीवन देने वाले विद्वानों के पास आज तक इसका कोई उतर नहीं है सिवाय निराशा के।

इस सब लिखने से हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि संसार की सब प्राचीन लिपियां मूल ब्राह्मी से बिगड़ कर बनी हैं, जिस प्रकार संस्कृत से दूसरी भाषाएं। मगर यह सत्य है कि उनके बनाने वालों के पास उस मूल का ज्ञान अवश्य था, जिस के सहारे वे कोई भी लिपि बना सके।

लिपि की विशेषता अथवा गुण यही है कि वह किसी भी भाषा के शब्दों को रूप प्रदान करे। भाषा और लिपि का सम्बंध अवश्य है परन्तु दोनों का स्थान अपना अपना महत्व रखता है। इसलिये केवल संस्कृत-ब्राह्मी ही शुद्ध अर्थ में लिपि अथवा वर्णमाला है, जिसका नाम लिपि भी वैज्ञानिक है। संसार की किसी भी वर्णमाला का कोई नाम ही नहीं है। अल्फाबेट भी केवल

प्रथम दो अक्षरों अल्फा + बेटा से बना है न कि किसी विशेष अर्थ से। रस्मुलखत (رسم الخط) का तो कोई अर्थ ही नहीं है। इसलिये दूसरी सब लिपियां नहीं परन्तु अनुमान पर आधारित चित्रित भावार्थक (Ideographic) हैं। चाहे वे Pictographic, Cuneiform, Hieroglyphic हैं अथवा सचमुच समझी जाने वाली अल्फाबेट, किन्तु हैं सब Ideographic। क्यों कि उनमें वर्णमाला अथवा लिपि का कोई भी गुण नहीं है। संसार की कोई भी तीन लिपियों को लें, उनमें संस्कृत के कोई भी तीन शब्द लिखें। फिर किसी दूसरे विभिन्न तीन देशों के अनजान व्यक्तियों से पढ़ाए जाएं तो उन तीनों शब्दों में से प्रत्येक शब्द के तीनों व्यक्ति कम से कम तीन विभिन्न उच्चार कर देंगे, फिर भी शुद्ध नहीं होंगे। चाहे International स्तर पर नये वर्ण घड़ लिये गये हैं। मगर प्रत्येक देश का निवासी उन तीनों का अशुद्ध उचार ही करेगा। परन्तु ससार के किन्हीं तीन देशों के विभिन्न तीन शब्द चुनकर क्यों न किन्हीं तीन हिन्दी लिखिने वालों से लिखाये जाएं तो तीनों केवल एक ही रूप में लिखेंगे, और फिर तीन दूसरे उन्हे शुद्ध पढ़ भी जाएंगे, बशर्ते कि उच्चार स्पष्ट और शुद्ध होना चाहिये। स्पष्ट है कि लिपि की परिभाषा केवल ब्राह्मी, देवनागरी अथवा हिन्दी से ही ठीक बैठती है, बाकी सब अपूर्ण हैं।

भारती लिपियों के विशेषज्ञों का यह दृढ निश्चय है कि भारत की सब लिपियां मूल ब्राह्मी का ही बिगड़ा हुआ रूप हैं। भारत सरकार के भूतपूर्व लिपि-विशेषज्ञ (Epigraphist), तथा आर्केआलाजी विभाग के सहायक महा-निदेशक श्री बहादुर चन्द छाबड़ा की राय है कि 'खोज ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत की सब वर्तमान लिपियां, जैसे कि: देवनागरी, गुजराती, बंगाली, उड़िया, तेलेगु, तामिल, कन्नरी, मल्यालम आदि ब्राह्मी से निकली हैं। यही नहीं परन्तु तिबत, बर्मा, इन्डो-चीन, इन्डोनेश्या, श्रीलंका तथा भारतके चारों ओर दूसरे प्रदेशों की सब लिपियां भी ब्राह्मी से निकली हैं'।[1]

श्री छाबड़ा सुयोग्य लिपि विशेषज्ञ हैं, इन्हीं को कुछ वर्ष पूर्व ईस्टर आईलेण्ड में से मिले लेखों की लिपि पहचानने के लिये बुलाया गया था, जिसने वह निर्णय दिया था कि यह लिपि

(1) "The subsequent researches proved that all the scripts prevalent in India, such as Devanagri, Gujarati, Bengali, Oriya, Telugu, Tamil, Kanare, Malayalam etc. have sprung from Brahmi. Not only that, the scripts used in Tibet, Burma, Indo-china, Indonesia, Ceylon and other regions surrounding India are derived from the same Brahmi. The intermediatory stages in the development of Brahmi, in different times and different climes have been demonstrated through the wide range of inscriptions at our disposal."(Cultutal Forum, December 1961, P. 64)

मोहनजो दरो-लिपि से समानता रखती है। लिपियों के दूसरे बड़े विद्वान राय बहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने सुंदर ग्रन्थ "भारतीय प्राचीन लिपिमाला" (Palaeography of India) में तो सब भारतीय लिपियों के रूप देकर यह बात सिद्ध कर दी है, जिस प्रकार श्री डैविड ड्रिन्जर ने।

भाषा के समान लिपि का भी बिगाड़ होना है। इस के पीछे भी मनुष्य का आलस्य और प्रमाद कार्य करता है। जिस प्रकार मनुष्यने आरंभ से भाषा के शुद्ध रूप को प्राकृत रूप देना आरंभ किया उसी प्रकार लिपि को भी शुद्ध से विकृत रूप देना उस के स्वभाव की बात है। बस,! लिखना है! वर्ण का रूप क्या बनता है, लिखने की मर्यादा और सुंदरता क्या है, यह थोड़े लोग ही जानते और समझते हैं, नहीं तो प्रत्येक केवल लिखता जाता है और पढ़ने वाले भी जानने के कारण समझ जाते हैं। प्रायः समान लिपि जानने वाला समान लिपि में लिखे पत्र को भी सरलता से नहीं पढ़ सकता, कहीं अवश्य अस्पष्ट दीखेगा, कुछ शब्द समझने में नहीं आएंगे। यह सब इसी असावधानी से लिखने का परीणाम है। यह आज के जमाने की बात है जब लिखने का रिवाज असीमित है। प्राचीन काल में लिखना सीमित तथा मर्यादित था। इत्तफाक से कोई किसी को पत्र लिखता था। नहीं तो बाकी लिखने का कार्य केवल पाठशालाओं और राजकीय कार्यालयों तक सीमित था, अथवा कुछ पंडित अपने जीवन में कोई एक सुंदर रचना के लिये लिखते थे। इस प्रकार लिखना सीमित था। आज तो लिखने का भी व्यभिचार हो रहा है। बी० ए०, एम० ए० वालों को सुंदर लिखना नहीं आता। पुराने लिखित ताड़ पत्रों, ताम्र पत्रों अथवा तो पत्थरों पर अंकित होते थे। ताम्र और पत्थर सदियों तक टिक सकते हैं, इसलिये उन का केवल राजकीय लेखों में उपयोग होता था। बाकी ताड़-पत्र विद्वानों की रचनाओं का साधन था, जो भी सदियों तक सुरक्षित रहते थे। इस लिये सदियों के पश्चात ही लिखावट में फर्क आता था। आज के बिगाड़ को तो प्रेस पकड़ बैठी है, पहले ऐसा नहीं होता था। यद्यपि हाथ से लिखने का फर्क किसी भी समान लिपि अथवा बोली में अवश्य और हर स्थान पर होता है। इस प्रकार थोड़ा फर्क होकर सदियों के पश्चात उसका रूप विकृत हो जाता है और वह नई लिपि नाम भी धारण कर लेती है। यह सब पुराने लेखों से स्पष्ट है। यहां तक कि एक वर्ण का रूप बदलकर और हो जाता है। इस प्रकार उनके शुद्ध पढ़ने में बड़ा फर्क आ जात है। इसका कारण लिपि का बदलना नहीं किन्तु भिन्न भिन्न हाथों की लिखावट का बिगड़ा रुप है, जो अंततः बिगड़ते बदल जाता है। इतिहास के लेलक इन लेखों-लिपियों (लिखावटों) के आधार पर कुछ राजघरानों की आयु (काल) भी निश्चित कर लेते हैं जिन से प्रायः धोखा हो जाता है। क्यों कि अक्सर हालतों में उसी काल के भिन्न भिन्न स्थानों की लिखावट बिलकुल भिन्न भिन्न रुपों में मिलती

है, क्यों कि हरएक के लिखने का ढंग निराला होता है। इस लिये उनके आधार पर कौमों की आयु (काल) की पक्की राय निश्चित करना विश्वास के योग्य नहीं है। यूरोप वालों ने प्राचीन कौमों का काल (Age) प्राय: इस प्रकार निरधारित किया है, क्यों कि यह उनको सरल साधन होकर मिला है। एक उसी लिपि के पांच लेखकों को बिठाकर कुछ लिखवाया जाय तो पांचों की लिखावट भिन्न भिन्न होगी। ५-१० वर्ष पश्चात उन्ही लेखकों को फिर वही लेख लिखाया जाएगा तो उस तथा पहली लिखावट में फर्क देखने में आएगा। इस के सिवाय मूल (Text) लिख कर देने वाले तो विशेष पढ़े लिखे होते थे तो लिखने वाले (कातिब) अनपढ़ होते थे। अङ्कित (Inscribe) करेगा तो अपने ढंग से। अनपढ़ स्वर्णकार सोने के आभूशणों पर जो शब्द अङ्कित करते हैं वे भी इसी प्रकार का फर्क रखते हैं क्यों कि यह सब स्वभाविक है। वही चित्रकार दुबारा अपना चित्र बिलकुल ठीक ठीक वैसा चित्रित नहीं कर सकता। वही संगीतज्ञ वही राग फिर उसी प्रकार नहीं गा सकता। फर्क अवशय होगा। तो फिर यह हाथ लिखावट का खेल तो बिलकुल सरल बात है। इसलिये किसी लिपि के ५००-१००० वर्षों वाली अवधि में होने वाली फेरफार सीधा किसी राजवंश आदि के काल का शुद्ध साधन समझना ग़लत है। उसी राज वंश के उसी लिखावट के लिखने वाले, लिखने में बड़ा भेद रखते हैं। स्वयं परमात्मा ने ही सब मनुष्यों की आकृति एक समान नहीं बनाई है तो मनुष्य का कोई कार्य एक समान किस प्रकार हो सकता है। किसी भी एक मनुष की शक्ल दूसरे से नहीं मिलती। इसलिये लिपिकों के रूप को आधार बनाकर इतिहास का विश्वास कर चलना कठिन है, यद्यपि ग़लत भी नहीं है। श्री डोब्रेल के लिखे तथा पं० भग्वद्दत के उद्धृत किये प्रमाण से यह स्पष्ट हो जाता है। :-

"The alphabets differ much according to the scribes who have engraved the plates; and the doucments of the same reign do not sometimes resemble one another." (Ancient History of the Deccan, P. 65)

"That palaeography was generally a bad auxilary to the chronology of dynasties. Very often two documents dated in the same reign differ much from each other." (Ibid, P. 9)

इसलिये हाथ लिखावट पर क्या भरोसा! कभी कभी सिन्धी-सिन्धी की, गुजराती-गुजराती की लिखावट भी पूरी तरह नहीं पढ़-समझ सकता। अत: भाषा के समान प्राचीन ब्राह्मी भी हजारों वर्षों के दौर पूरे करती आज की नागरी अथवा हिन्दी रूप में विद्यमान है। इसके मध्यवर्ती दौर (काल) देखने के लिये श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का ग्रन्थ "भारतीय प्राचीन लिपिमाला" देखें अथवा श्री बुहलर (G. Buhler) की पुस्तक "Indian Palaeography" देखें।

इस प्रकार किसी ज़माने में स्थर किये लिपि के रूप को लेकर कुछ भारतवासी यूरोप गए, अमेरीका गये, आस्ट्रेल्या और आफ्रीका भी गये तो सदियों के पश्चात उन सब में फिर विभिन्न रूप से फर्क आता गया। न इंगलेंड की न आफ्रीका, आस्ट्रेल्या और अमेरीका की लिपि आपस में मिलेगी न स्वयं अपने देश भारत से। बावजूद इस के कि मूल सब का एक ही था। परिस्थितियां ऐसी भी बनी कि स्वयं वाली मूल लिपि लोप हो गई और समय आने पर एक बिलकुल नई का आविष्कार हो गया, जिसका रूप-रंग, ढंग सब निराला होता परन्तु उसके मूल में प्राचीन का आभास अवश्य होगा। मूल शुद्ध रूप स्थिर रहना कठिन है, क्यों कि संसार ही परिवर्तनशील है। इसलिये विकार और बिगाड़ होना अनिवार्य है। ईजिप्ट की लिपि इतना परेशान करने वाली है (चाहे चीन की भी) कि प्रत्येक शब्द अनेक चित्रों के मेल से बनता है। कौन ऐसा परिश्रम करेगा? एक तो आवश्यक्ता नहीं। शासक अपने राज कारोबार के लेख कुछ विशेष कलाकारों से लिखवाते तथा अङ्कित करवाते थे, जो इतने सुंदर हैं कि देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। यदि यही ईजिप्शन लिपि है तो स्पष्ट है कि वह सर्व-साधारण की किसी प्रकार भी नहीं हो सकती। यह केवल राज परिवार तथा राजकीय कारोबार तक सीमित होगी। मजा यह कि वह भी सदियों की चपेट नहीं झेल सकी और बिलकुल विकृत होकर लोप हो गई। कारण स्पष्ट है कि मनुष हर बात में उतावला होता है। लिखने में तो हम भी यही चाहते हैं कि जितना शीघ्र हो सके कुछ न कुछ लिख डालें, रगड़ डालें। अक्षर शुद्ध हैं अथवा विकृत, यह दूसरे दरजे की बात है (इसलिये तो आजकल लिखावट सुंदर न होने के कारण टाईपराईटर का सहारा लिया जा रहा है)। वही बात हर लिपि के साथ है। ईजिप्शन जैसी रंगारंगी और सुंदर चित्रों से सुशोभित लिपि, समय का शासक अपने लेखक को जो कुछ लिखवाता था जो कुछ वह कहता जाता था तो उसके चित्र निकालने में ही उस लेखक को परेशानी होती थी, वह राजा के आज्ञा (Dictate) से कैसे पहुंचेगा? उतावल में वह भी रगड़ता (Rough) जाता फिर जाकर सुधारकर (Fair) लिखता। इस प्रकार शीघ्रता से लिखने के कारण बाद में एक ऐसी लिपि का जन्म हुआ जिसका एक चित्र भी मूल ईजिप्शन लिपि से नहीं मिलता, यद्यपि है ईजिप्शन। ईजिप्शन इतिहास (Egyptology) के विद्वान श्री बज (Sir E. A. Wallis Budge) ने इस बात का उल्लेख करते ठीक ही लिखा है कि:-

"...it is also evident that the increased speed at which government orders and letters would have to be written would cause the scribe, unconciously at first to abbreviate and modify the picture signs, until at length only the most salient characteristics of each remained. And this is exactly what happened. Little by little the heiroglyphs lost much of

their pictorial character, and degenrated into a series of signs which went to form the cursive writing called Hieratic"।[1]

और परिणाम स्वरूप बाद में वही ईजिप्शन Hieroglyphic से बिगड़ कर Hieratic हुई वही ईजिप्शन चित्रलिपि ब्राह्मणों के व्यवहार की लिपि बन गई, जिस में वे ग्रन्थों का अनुवाद करते रहे। यद्यपि मूल से वह दूसरे दर्जे पर समझी जाती थी, क्यों कि उस में मूल धर्म-ग्रन्थ लिखे हुए होते थे, परन्तु अंत में वह भी मूल के श्रेणी की हो गई। श्री बज ने उस बिगड़ी हुई का भी नमूना अपनी पुस्तक में दिया है, और अब उस रूप में वह लिपि (Script) सी लग रही है। परन्तु यदि वह इसके साथ उसकी व्याख्या भी न लिखता तो उसका एक अक्षर भी समझने जैसा नहीं है, यद्यपि वह है भी वही ईजिप्शन लिपि, और यह लगभग २६०० वर्ष ई० पू० की बात है। बाद में तो उसका रूप भी इतना विकृत हो गया कि उस के समझने के लिये पुरानी लिखावट का भी साथ में होना अनिवार्य हो गया, नहीं तो समझना ही कठिन था। उस लिपि का नाम भी बिगड़ कर Enchorial अथवा Demotic हो गया (जिस प्रकार ब्राह्मी से बिगड़ कर हिन्दू-सिन्धी बनी)। उस लिपि का प्रयोग प्रथम व्यापारिक अथवा सर्व-साधारण में हुआ, फिर तो वह विशेष लिखितों में प्रयोग होने लगी। टालमी काल में यही मुख्य लिपि सर्वसाधारण की लिपि थी। टालमी (Ptolemy V. Epiphanes) जिसका (१८२-२०५ ई० पू०) रोज़ेटा (Rosetta) लेख मिला है, जिस के सहारे और दूसरे साधनों से प्राचीन ईजिप्शन लिपि को पढ़ा गया है, वह प्राचीन और ग्रीक में लिखा हुआ (Engraved) है। इस बाद के डेमोटिक की छाया ही बाद की 'कबत' लिपि पर है, जिसे आजकल Coptic कहा जाता है। इस प्रकार ईजिप्शन के ये मुख्य तीन दौर (काल) हैं- हाइरोगिल्फ, हाइरेटिक और डेमोटिक अथवा एंकोरियल। इनमें अंतिम मध्य का और मध्यवर्ती प्रथम का सरल रूप है।[2]

इस प्रकार जब शासक वर्ग की लिपि का भी बाद में ऐसा रूप बना जो उसका पढ़ना-समझना कठिन हो गया तो बाकी दूसरी लिपियों का क्या हाल हुआ होगा तथा मूल प्राचीन ब्राह्मी के हज़ारों लाखों वर्षों के काल में कितना न स्वभाविक फ़र्क आया होगा यह समझा जा सकता है। और यही हाल भाषा का भी होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा। यहां यह भी ध्यान में रहे कि हाइरोगिल्फ, क्यूनीफार्म, चीनी और माया (अमीरीका के प्राचीन आर्य लोग) की लिपि में बड़ी समानता है।[3]

(1) Egyptian Language, P. 7 (2) Dringer-The Alphabet, P. 58
(3) Encyclopaedea Britannica [9th. ed.], Vol XI, P. 794

जिस प्रकार ईजिप्शन का पुराना रूप एक सुंदर चित्र-लिपि है, उसी प्रकार चीनी का प्राचीन रूप भी बिलकुल चित्र लिपि है। और आश्चर्य यह कि उस के चित्र भी प्राय: ईजिप्शन के समान हैं। जैसे कि सूर्य के लिये गोल और उस में एक बिंदु, मछली के लिये मछी, घोड़े के लिये घोड़ा तो चन्द्रमा के लिये बिलकुल अर्ध-चन्द्र है, जिस जैसा ईजिप्शन में भी है। इसी प्रकार वर्षा और पहाड़ आदि। परन्तु आश्चर्य यह है कि जिस समय ये रूप ईजिप्शन में २६०० वर्ष ई० पू० में बिगड़ कर हाइरेटिक रूप ले चुके थे तो चीनी में १५००-१६०० वर्ष ई० पू० में वे मूल रूप में विद्यमान थे। यही बात माया लिपि में भी है। यद्यपि माया से अज़टेक (Aztec) की चित्र-लिपि अधिक सुंदर और स्पष्ट है। परन्तु आश्चर्य वाले तो हैं उस के अंक, जिनको यदि रोमन अंकों का जन्म-दाता कहा जाए तो भी स्वभाविक है। फ़र्क यह है कि अज़टेक में वैज्ञानिक ढंग अपनाया गया है जब कि रोमन में गंवार लोगों जैसा ढंग अपनाया हुआ है, भाव वही है।[1] आज इन सब के रूप विभिन्न प्रकार से (जैसा कि हमने ऊपर लिखा है) ऐसे बदल बिगड़ गये हैं कि यदि उनका प्राचीन रूप सामने न हो तो वर्तमान में उनका एक अक्षर भी पहचानना असंभव हो जाए। और यही बात मोहनजो दड़ो लिपि के लिये भी है। वह भी स्पष्ट चित्र-लिपि है, परन्तु जैसी सुंदरता ईजिप्शन चित्रों में है वह मोहनजो दड़ो में नहीं है। कारण भगवान जाने। परन्तु जब हम यह सिद्ध कर चुके हैं कि सिन्धु के किनारे से ही प्राचीन सिन्धी ईजिप्ट, आफ्रीका और एथ्योप्या में गए हैं अर्थात एक ही परिवार के हैं तो फिर यदि यह कहा जाए कि ईजिप्शन लिपि का ही व्यवहार मोहनजो दरो में होता था तो कोई आपति नहीं। किन्तु ऐसा भी नहीं है। क्यों कि इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है। प्रवाह भारती केन्द्र पूर्व से पश्चिम को गया है न कि पश्चिम से पूर्व की ओर। स्वयं श्री वालिस बज्ज का कहना है कि :-

"It is hardly probable that the hieroglyphic system of writing was invented in Egypt, and the evidence on this point now accumulating indicates that it has brought there by certain invaders...". (Egyptian Language, P. 1)

हम अंतिम शब्द 'Invaders' से सहमत नहीं हैं। ये यूरोप के विद्वान और लेखक हर कदम पर Invaders के स्वप्न देखा करते हैं। यह नही लिखेंगे कि कौमें देशान्तर कर भी दूसरे देशों को जाती और आबाद करती हैं। भला, इस इंगलैंड को ही न जाने कितनी कौमों ने आक्रमण कर बसाया है और कितने ही ग्रोहों (Tribes) के मेल मिलाप से अंग्रेज जाति बनी है। इसलिये दूसरों को भी इस प्रकार केवल आक्रमणकारी समझते हैं। मगर भारत की विजय

(1) National Geographic Magazine, February 1922, PP. 116-124

केवल सांस्कृतिक रही है। इसी से ही सारे संसार में फैले हैं, यही कारण है कि संसार में शांति फैली हुई थी। श्री वाडेल (L. A. Waddell) के शब्दों में :-

"And we discover that the hitherto inexplicable unity in the essentials of all the Ancient Civilizations is owing to the original Unity of the Higher Civilization, and its diffusion throughout the world by its originators, the ruling race of Aryans, and especially of their sea-going branch, the Phoenicians"[1]

यद्यपि मोहन-जो-दरो में भी वही ईजिप्शन चित्र हैं, परन्तु थोड़े प्रमाण में। इसका कारण यह भी हो सकता है कि सब मिल भी नहीं पाए हैं, क्यों कि ऐसा कोई भी लिखित अथवा लेख मोहनजो-दरो से मिला ही नहीं हैं; केवल विभिन्न टुकड़े मिले हैं, जिन में यह आवश्यक नहीं कि लिपि के सब वर्ण हों। परन्तु यह आश्चर्य की बात नहीं हैं कि हज़ारों मील दूर पूर्व ईस्टर-आइलंड में हज़ारों वर्ष पूर्व की लिपि के अक्षर मिले हैं जिन के लिये भारत सरकार के लिपि विशेषज्ञ श्री बहादुर चन्द छाबड़ा की राय है कि ये अक्षर ठीक मोहनजो-दरो जैसे हैं। इस पर जब आगे खोज हुई तो यह ऐसा ही सिद्ध हुआ है। श्री हेवसी (G. De Hevesy) ने मोहनजो दरो और ईस्टर-आइलंड के अक्षर मिलाकर यह बिलकुल सत्य सिद्ध करके दिखाया है, जिन में से श्री ड्रिन्जर ने ४८ अक्षर चुनकर हम-मुकाबिल (Comparison) कर दिखाये हैं।[2] श्री ड्रिन्जर ने भी मोहनजो दरो लिपि के मूल के लिये किसी परिणाम पर पहुंचने के सिवाय यह अनुमानिक राय दी है कि :-

"The Indus Valley script was perhaps derived from an, at present unknown, early script, which may have been the common ancestor also of the Cuneiform and early Elamite writings."[3]

श्री गैड (C. F. Gadd) ने अपने "Sign List of Early Indus Script" (चैप्टर २२) में लिखा है कि "यह (सिन्धु) लिपि, चित्र-लिपि मालूम पड़ती है। मोहरों पर इस लिपि में खुदे हुए लेख विशेष व्यक्तियों के नाम हो सकते हैं। ये किसी आर्य भाषा के नाम हैं"।[4] इसके पश्चात (चैप्टर २३) "The Indus Script" के अंत में श्री लैंगडन (S. Langdon) ने लिखा है कि "यह हकीकत है कि जैसा इतिहास बताता है, उसके विरुद्ध आर्य लोक भारत में अति प्राचीन काल से रह रहे हैं। १७०० वर्ष ई० पू० उनका एशिया माइनर वाला देशान्तर

(1) Phoenician Origin of the Britons, Scots and Anglo-Saxons, Preface, P. X
(2) The Alphabet, P. 86 (3) Ibid, P. 85
(4) Mohenjo-Daro and the Indus Civilization, Vol. II, P. 414

करके कहीं भी आना जाना केवल अनुमान और गप्प (मिथ्या) है, क्यों कि मोहनजो दरो में मिले अवशेष इसके विपरीत हैं" । :-

"In any way we may look at the problem, the Aryans in India are far more ancient than history admits. Their migration across Antolia (in Asia Minor), where traces of them are found in the inscriptions of the Hittite capital as early as the seventeenth century B.C. is an hypothesis entirely contradictory to the new situation revealed by these discoveries in the Indus Valley. Far more likely is it that the Aryans in India are the oldest representatives of the Indo-Germanic (Aryan) race."[1]

कुछ पच्चास वर्ष पूर्व एक शिलालेख मिला था जिसकी सूचना देते हुए नागरी पत्रिका में छपा था कि :-

"संबलपुर (बिहार) से ३०-३५ मील दूर, विक्रमखोल ग्राम के निकट जंगल में श्री लोचन प्रसाद पांडेय को एक पुराना शिलालेख मिला था। यह लेख ३२ फुट लंबा और ७ फुट चोड़ा है। लोग इसे ब्राह्मी अक्षरों का समझते थे। परंतु इतिहासकार श्री काशीप्रसाद जायसवाल का मत था कि वह लेख मोहनजो दरो की लिपि और ब्राह्मी लिपि के बीच का है। पुरातत्व वेताओं का मत था कि ब्राह्मी लिपि फिनीशियन लोगों की लिपि से निकली है। इस शिलालेख से सिद्ध हो गया कि यह मत सही नहीं है। श्री जायसवाल का मत था कि यह लेख २००० वर्ष ई०पू० से कम पुराना नहीं हो सकता।[2]

हमारे उपरोक्त विवरण से यह बात स्पष्ट है कि संसार की किसी भी प्राचीन लिपि के इतिहास का ज्ञान इस समय किसी को भी नहीं हैं। केवल उनके भिन्न भिन्न रूप मिल सके हैं, जिन पर विवाद होकर, केवल विभिन्न अनुमान व्यक्त किए गए हैं, किसी के भी जन्म तथा मूल का ज्ञान बिलकुल नहीं है। दूसरी बात यह कि भारती परिवार की सब लिपियां एक ही मूल ब्राह्मी में से विभिन्न कालों में विभिन्न परिस्थित्यों में विभिन्न रूप बदल कर वर्तमान रूप में आई हैं। तथा ससार में लिपि नाम के केवल दो ही रूप हैं- एक वर्णमाला जिसमें केवल ब्राह्मी का शुमार है- दूसरी चित्र-लिपि जिसमें संकेत-Ideography का भी समावेश है। क्यों कि ब्राह्मी को मूल और प्राचीन नहीं समझा-स्वीकार किया गया है इसलिये इस दृष्टि से ऐसी खोज भी नहीं की गई है। यदि ऐसा किया जाए तो अवश्य फलदायक होगा। बृटिश म्यूज़यम लण्डन में एक मोहर है जिसकी प्रतिलिपि श्री पिंचिस (Theo. G. Pinches) ने सन् १८८२-३ में प्रकाशित की थी। सन् १९३६ में इसे फिर श्री G. V. Babrinskoy ने

(1) Ibid, P. 432 (2) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १३, अंक २, पृ० २४७

सम्पादित कर "American Oriental Journal", (Vol. 56) में प्रकाशित किया। यह मोहर बेबीलोन्या से प्राप्त हुई थी। यह द्विभाषी (Bilingual) है और श्री वाकन्कर (Prof. V. S. Wakankar) ने इसका उल्लेख अपने एक लेख "Brahmi Inscriptions Discovered Outside India" में किया है। इसके अनुसार श्री बावृन्सकोय ने ऐक स्थान पर लिखा है कि "मुझे लगता है कि कम से कम इस अनजानी लिपि के बहुत अक्षर ब्राह्मी लिपि के अक्षरों से समानता रखते हैं। बहुत प्राचीन होने के कारण थोड़ा फर्क है, तो भी अशोक के लेखों वाली लिपि से मिल आते हैं":-

"It seems to me that at least several characters of this unknown script exhibit striking similarity with the Akshars of Brahmi alphabet, such as we know from the inscriptions of Asoka and others......... in spite of the difficulty here outlined I am convinced that we have here some kind of Brahmi script, even though differing considerably from the type found in Asokan inscriptions. The Difference can be easily accounted for by the early date of our tablet."

और श्री वाकन्कर ने लिखा है कि यह लेख उसके भ्राता और स्वयं ने मिलकर पढ़ लिया है, जो है:-

"अखजेरखनो अहुरन्मभ्य ददतु"

(अर्थात्_ यह अखज़ेरक को दिया जाय)[1]

और यह लगभग छठी शती ई० पू० का लेख है।

एक और मोहर का भी उसने वर्णन किया है। जो सर जान मार्शल के मोहनजो दरो वाले ग्रन्थ (Vol II) में भी है। वह एक लेबल (Label) समझी जाती है जो भेजे गये माल की गठड़ी पर लगाई जाती होगी। उस पर 'मरी' (Mari) शब्द पढ़ा गया है। मरी नामक एक सुमेर्यन खंडहर की खुदाई भी हुई है और सिन्ध में भी 'मरी' नाम का गाव है। कैसे भी श्री वाकन्कर का विचार है कि उस में भी ब्राह्मी अक्षर हैं।[2] इस पर हम अधिक नहीं लिख सकते, विववादास्पद् विषय है, क्यों कि इस मोहर पर मोहनजो दरो जैसी ही लिखावट है, उसे ब्राह्मी से मिलाना बड़े साहस की बात है।

तीसरा लेख जिसका श्री वाकन्कर ने वर्णन किया है वह लेख कैरो (Cairo) की म्यूज़यम में है। जिसके लिये उसने लिखा है कि "मैं जब फेब्रवरी १९६३ में कैरो (ईजिप्ट) में गया तब मैं वहां ११ वें (फरओ) वंश के कमरे (सं० २९) में गया जहां अलमारी सं० ३९ में यह लेख

(1) Hindu Vishva, Souvenir, Jan. 1966, P. 98-99 (2) Ibid, P. 99-100

देखा। वह नकल करके, क्यूरेटर से उसके विषय में पूछा। जिस ने कहा कि "यह लेख पढ़ा ही नहीं गया है, इसलिये प्रकाशित नहीं हो सका है"। उसके कहे अनुसार यह एक ठीकरी पर अङ्कित है और दूसरी अथवा तीसरी शती ई० पू० का है। मैं ने क्यूरेटर श्री अब्दुलकादर सलीम को अपना विचार-अनुमान लिख भेजा। जिसके उतर में उस ने लिखा कि "आपका विचार ठीक जचता है कि लेख ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ है और लगभग दो हजार वर्ष पुराना ही समझा जाता है, जो रक्त सागर (Red Sea) पर पुराने कोसीन नगर से मिला है। यह रोमन काल से भी बहुत पहले भारत और मिस्र के सम्बंधों पर प्रकाश डालता है और यह लेख असाधारण समझना चाहिये"। (Ibid, P. 100)

लेख बाएं से दाएं की ओर लिखा हुआ है और उसका प्रथम शब्द ओ३म है। हमने लेख पढ़ा है, भाषा लग भग सम्राट् अशोक कालीन है, जैसी उसके लेखों में अङ्कित है। यहां यह ध्यान रहे कि सम्राट् अशोक ने अपने धर्म प्रचारक मिस्रमें भी भेजे थे तथा ईजिप्ट से भारतीय व्यापार अति प्राचीन काल में खूब होता था।

और दूसरी चित्रलिपि अथवा विचार लिपि (Ideographic) है जिस में ससार की प्रायः सब लिखावटें समिलित हैं। जब कि संसार के प्रत्येक ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र आर्यावर्त (भारत) है तो लिपियों का क्यों नहीं? इसलिये इस बात पर जिद न होते हुए भी हम यह कह सकते हैं कि इस चित्र-लिपि का अविष्कार भी भारत में हुआ। उसका अंतिम रूप मोहनजो दरो में है। विशेष बात यह कि उसकी लिखावट चित्र लिपि होते हुए भी बाएं से दाएं की ओर है। सर जान मार्शल ने मोहर (Seal) का लेख पढ़ते, उनकी लिखावट तथा ढंग के आधार पर लिखा है कि "लिखावट बाएं से दाएं है":-

"The legend consists of two lines of pictographs, of which the second or lower line contains only one sign, viz. the double-key shaped symbol which is so frequently met with both at the beginning and the end of this inscription. This circumtance is interesting as it will help in determining the direction in which such inscriptions were written, i.e., presumbly left to right direction."[1]

फिर दूसरे स्थान पर दूसरी मोहर का उल्लेख करते लिखता है:-

"In both cases there is a blank space at the left end suggesting that script was written from left to right" (Ibid, P. 106)

ब्राह्मी भी बाएं से दाएं की ओर लिखी जाती है, क्यों कि यह प्राकृतिक नियम भी ऐसा है कि अंधकार से प्रकाश की ओर जाना चाहिये। बाएं (पश्चिम) की ओर अंधकार है। प्रकाश

(1) Archaeological Survey of India, Annual Report, 1926-27, P. 81

केवल दाएं (पूर्व) की ओर से आता है, उस ओर लिखने से बाईं ओर छोड़े हुए अक्षर की भूल शीघ्र ज्ञात होगी। इसलिये यह वैज्ञानिक ढंग भी है। लेकिन दाएं की ओर से लिखने को हम बुरा भी नहीं मानते। किन कारणों से ऐसा कोई अकस्मात हो गया होगा फिर नियम हो गया, लेकिन सही नहीं है। जैसे कि हिन्दी में १, २, ३, ४ लिखें, फिर इन्हें उल्टा करके देखें तो वे बिलकुल अरबी के ١, ٢, ٣, ٤, हो जाएंगे, ठीक है न? परन्तु यह कोई नियम नहीं है, न ही मूलतः अन्वेषण दाएं से हुआ है। मूल बाएं से है उसे उल्टा समझ नई लिपि घड़ी गई है, और वह व्यवहार में आ गई। एक वार हुई ग़लत बात भी रिवाज का शिकार हो जाती है। मोहनजो दड़ो के कुछ अक्षर हिट्टी (Hittite) लेखों से भी मिल आते हैं तो चीनी तथा मिस्री से भी। श्री ह्राज्नी ने इस पर अच्छा प्रकाश डाला है।[1] अक्षर मिलते हैं ध्वनी समानता चाहे न हो। यदि इसका विकास ईजिप्ट में जाकर हुआ तो ग़लत नहीं कहा जायगा। परन्तु श्री वाडेल का यह विचार है कि ईजिप्शन चित्र-लिपि का मूल सुमेर्यन लिपि है। लिखता है "कि मेरी खोज के अनुसार फिनीश्यन ही सुमेर्यन लोग हैं, जो समुद्र यात्रा करने वाले प्राचीन आर्य हैं। ...... सुमेर्यन भाषा मूलतः आर्य भाषा है, जो अंग्रेजी तथा दूसरे परिवारों (यूरोप आदि) की जननी है। यहां तक कि ईजिप्शन की भी, जैसा कि मेरी सुमेर-आर्यन कोश आदि में सिद्ध किया गया है। फिर मैं ने देखा कि फिनीश्यन अक्षर तथा सुमेर्यन लकीरों वाले चित्र भी समान रूप और ध्वनी वाले हैं"।[2]

(1) Ancient History of Western Asia, India and Crete, P. 171

(2) "On finding, by my new Aryan keys, that the Phoenicians were 'Sumerians', and the leading seafaring branch of the early Aryans, and that the Early 'Sumerian dynasty of Uruas'—the—Khod ("Ur Nina") was the First Dynasty of the Phoenicians in the fourth millennium B.C, as detailed in my previous works, and the Sumerian Language was radically Aryan in its vocabulary and structure and was disclosed as the parent of the English and of all the Aryan Family of Languages, ancient and modern, including also the Ancient Egyptian, as shown in my Sumer-Aryan-Dictionary and former works. I then observed, many years ago, that most of the alphabetic Cadmean Phoenician letters, as well as the late retrograde Phoenician letters, were of substantially the same form as the Sumerian linear pictographs bearing the values of sounds." (Aryan Origin of the Alphabet, P. 9)

फिर लिखता है "कि बाद की विस्तार पूर्वक जांच ने यह विचार पक्का कर दिया कि हमारी अल्फाबेट (Roman-English) और सब मुख्य लिपियां, प्राचीन चाहे वर्तमान, उनके उच्चारों का आशय (Sound-Value) आदि सब की जन्मदात्री सुमेर्यन चित्र-लिपि है, जैसा कि मैं इस के बाद दिखाऊंगा"।[1]

उपरोक्त बात उसने सन् १९२७ में कही थी। फिर सन् १९३० में लिखा "कि एशिया माइनर और सीर्या के हिट्टी हाइरोग्लिफ, अपने चित्र-आकारों में मूल सुमेर्यन चित्र-आकार थे। यह मेसोपोटाम्या के सुमेर्यन आकारों (Signs) वाली सरकारी मोहरों और मोहनजो-दड़ो अथवा ईजिप्शन लिखावटों में स्पष्ट है और सब हिट्टी हाइरोग्लिफ से समानता रखते हैं।"[2]

और इस बात को आने वाले पृष्ठों में सिद्ध कर दिखाया है। (पृ० १६०)

हम ने ऊपर मोहनजो दड़ो वाले अध्याय में यह सिद्ध करते प्रमाणों से दिखाया है कि ये सुमेर्यन लोग मूलत: सिन्धी थे। फिर उन्हें सिन्धी कहें अथवा भारती, बात एक ही है।

हम कह चुके हैं कि जिस प्रकार भारत में संस्कृत से प्राकृत होकर अपभ्रंष रूप किसी शब्द का हो गया तो वह स्थिर रूप जब किसी दूसरे दूर देश में पलायन कर गया तो वहां उस परिस्थति में नए सिरे से उस उपभ्रंश का फिर प्राकृत रूप बनेगा और बाद में और अपभ्रंष। अवस्था यह होगी कि अर्थ तो रहेगा लेकिन रूप बिलकुल बदल-बिगड़ जाएगा। केवल जलवायु और भौगोलिक स्थति की बात है। एक संस्कृत शब्द पश्चिम में एक रूप धारण करेगा तो वही शब्द पूर्व में दूसरा

---

(1) "Further detailed examination fully confirmed this observation and disclosed thal our Alphabetic Letters and all the chief Alphabets, ancient and modern, together with their sound-values, had their parent in the Sumerian picture-writing, as announced in my recent works and now detailed in the following pages." (Ibid)

(2) And I suggested that the Hittite hieroglyphs of Asia Minor and Syria, with their elaborately drawn realistic and naturalistic pictorial sign, represented probably the original or earlier form of writing the chief Sumerian pictographic signs. This is confirmed by the fuller and naturalistic form given to many of the Sumerian signs in the Official Sumerian seals in Mesopotamaia and the Indus Valley Colony, and in most of the pre-dynastic and first Dynasty inscriptions in Egypt, being in general agreement with the Hittite hieroglyphs." (Egyptian Civilization its Sumerian Origin of Real Chronology, Pp. 159-160)

तो उत्तर में तीसरा। वहां भी इन्हीं नियमों के अनुसार फिर रूप बदलेगा, जैसा कि हमने पिछले अध्याय में माता, पिता, कन्या, पुत्र आदि के प्रमाण देकर दिखाया है। इसी प्रकार मोहनजो दड़ो लिपि में मनुष का चित्र है तथा पशु का चित्र है तो वहां से देशांतर करके दूर पूर्व में Easter Island में गये सिन्धियों ने उनका रूप एक तरह बिगाड़ा है तो चीन की ओर जाने वालों ने उसे किसी दूसरी तरह बिगाड़ा अथवा दोनों ने स्थिर रखा और बाद में बिगाड़ा परन्तु उनका ढंग अलग था। लेकिन जो चित्र ईजिप्ट में गया वह वहां से और बिगड़ा। इस बिगड़े हुए से वह बिगाड़ फैला तो अधिक बिगड़ कर न जाने क्या बना। बिल्कुल लकीरें लकीरें बन गया। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रदेशों में जैसे "बारह कोस पर बोली और" तो ये लिपियां भी "बारह सौ कोस पर और" हो गईं। क्योंकि मनुष को विशेषकर ब्राह्मण और राजा को इस (लिपि) की आवश्यक्ता होती है। इसलिये ये ब्राह्मण और शासक जहां भी एक दूसरे से अलग अलग हुए तो मूल लिपि को ध्यान में रखकर बिलकुल अलग क्या बिलकुल बिगड़ी हुई लिपि अपना ली। लिपि की, हर राज्य को जो एक दूसरे के आक्रमण की आशंका में रहते थे, खास जरूरत नहीं होती थी, इस लिये उनके केवल १-२ लेख मिले हैं, बाकी अधिक उन्नत और शांत राज्यों के अनेक भी मिले हैं। जिस प्रकार मिस्र, बेबीलोन्या, सुमेर, अक्काद, मेसोपोटाम्या आदि और बाद के ग्रीक और रोम आदि। स्वयं मोहनजो दड़ो लिपि भी कोई स्वतंत्र लिपि नहीं है, उसके मूल में सिद्धांत रूप से ब्राह्मी अथवा भारत का कोई दूसरा रूप अवश्य था, नहीं तो उसका बनना असंभव होता। ऐसी कलात्मिक लिपि बनाने के लिये मूल का आश्रय अवश्य था।

परन्तु क्यों कि यह कटु-सत्य मानकर खोज नहीं की गई है. उल्टा उस सत्य को गुमराह किया गया है इस लिये किसी भी लिपि का मूल मिलना असंभव है। यह कैसे संभव हो सकता है कि ईजिप्ट की ऐसी सुंदर-रंगीन, पुख्ता लिपि ऐसे ही बरसाती मेंढक की तरह बुलबुला कर निकल आए? यदि उसका किसी मूल से बिगाड़ हुआ तो वह मूल बिगाड़ कहां? इसका उतर कहीं भी नहीं है। क्यों कि समझा यूं जाता है कि बिगाड़ से सुधार हुआ, लेकिन बात है इसके बिलकुल विपरीत। नहीं तो आश्चर्य की बात नहीं है कि अरबी लिपि जो है भी नई, वह कुछ के विचार से इसलाम के जन्म समय की है। परन्तु विद्वानों का विचार है कि इसलाम से ३-४ शती पूर्व इसके अवशेष मिलते हैं, तो उसके जन्म का भी पूरा ज्ञान नहीं है। कहा जाता है कि इसका वंश प्राचीन Nabataean अथवा यहूदी से है, और आगे चलकर कूफी (Kufic) से नस्ख बनी, जिसे ख्वाजा अलाउदीन ने रूप दिया, जो केवल कुछ टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें थीं। न नुख्ते न ज़ेर-ज़बर, जैसे चाहो उचार करो। ज्ञान के अभाव में इसकी अधिक आवश्यक्ता भी नहीं थी। मूल कुरान इसी में लिखा हुआ था। बाद में तैमोरलंग के दरबारी मीर अली तब्रेजी ने

उन टेढ़े मेढ़े अक्षरों को तोड़ कर कुछ सीधा करके नस्तग्रलीकको जन्म दिया, जो फारसी और उर्दू के लिये प्रयोग में आती है। सिन्धी के लिये भी यही काम में लाई जाती है न कि अरबी। यद्यपि मूल अरबी का रूप है। सिन्धी का अरबी-सिन्धी नाम भी ग़लत है। उस में ज़ेर-ज़बर आदि (मात्राएं) बाद की चीज़ है। कैसे भी लेकिन स्वयं मूल अरबी के जन्म का ज्ञान किसी को नहीं है। कम से कम इसलाम के जन्म तक अरब में लिपि (रस्मुलख़त) का प्रयोग नहीं मिलता। हां प्राचीन काल के कुछ लेख अवश्य मिले हैं, परन्तु उनका सम्बंध शैबा की महारानी के प्रदेश से है। इन में से बहुत दाएं से बाएं की ओर हैं। परन्तु कुछ हल के बैल के समान Boustrophedon हैं अर्थात एक पंक्ति दाएं से बाएं की ओर, तथा दूसरी पंक्ति बाएं से दाएं की ओर फिर इसी प्रकार। ये लेख पढ़े गये हैं जिस से अरबी के प्राचीन रूपों का ज्ञान होता है।

लेकिन वर्तमान की अंतराष्ट्रीय स्तर वाली अंग्रेजी के मूल का भी ज्ञान नहीं है। प्रायः यह मान्यता है कि यूरोप आदि की सब लिपियां फिनीश्यन लिपि से बनी हैं तथा लिपि के आविशकारक ही फिनीश्यन लोग समझे जाते हैं, जिन के लिये ही श्री वाडेल का मत है कि यह मूल आर्यों की शाखा है। हीराडोटस ने दो कौमों के झगड़े का वर्णन करते स्पष्ट लिखा है कि फिनीश्यन लोग सिन्ध से आए। लिखता है "फिनीश्यन लोग मूलतः भारती समुद्र किनारे से आए, और वे जैसे ही मेड़ीटरेन्यन समुद्र में घुसे और बसे जहां वे इस समय हैं, वैसे ही उन्हों ने बड़ी बड़ी सामुद्रक यात्राएं करनी आरंभ कीं। ईजिप्ट और सीर्या का माल लेकर वे विभिन्न बंदरों पर लंगड़ डालते थे और आर्गस तक, जो उस समय बड़े महत्व का बदर था जिसे अब हेलास कहा जाता है"।[1]

ऐसा भी कहा जाता है कि रोमन लिपि का जन्म ग्रीक पर से हुआ। परन्तु ग्रीक नई ईजाद की हुई नहीं है, केवल सुधरा हुआ रूप है। परन्तु वे स्वयं आए कहां से उसका भी ज्ञान नहीं है। श्री ड्रिन्जर को ही लिखना पड़ा "कि लैटिन सीधी ग्रीक से नहीं अपितु Etruscan रूप से बनी है"।:-

"Although the Greeks did not invent the alphabet, they improved it...... Nothing is known about the cradle-land of the composite Greek people."[2]

और हम ऊपर इनका मूल सिन्ध लिख चुके हैं। और उनके लिये मान्यता भी यही है कि वे पूर्व से आए। लगभग ५०० वर्ष ई० पू० रोम (इटली) पर इस वंश का राज्य था। इटली के निवासी स्वयं भारतीय हैं। हम एक प्रमाण देते हैं। प्राचीन आर्यों के विवाह का नियम है कि "जल और अग्नी (यज्ञ) आदि क्रयाओं से पिता के कन्या के देने और पति के स्वीकार करने से विवाह सम्पन होता है। विवाह में पति पत्नी दोनों मधु अथवा मिष्ठान खाते हैं"।

(1) The Histories, Book One, P. 13

(2) The Alphabet, P. 449

रोमन (जस्टीन्यन) नियम अनुसार "वाटिका में लाई गई कन्या (Virgini) को...... विवाह के दिन, उस कन्या के उस पुरुष (वर) के पास जाने से पूर्व और उस वर का उस (कन्या) को अग्नी (Igni) और जल (Aqua) की क्रिया द्वारा ग्रहण करने अर्थात विवाह संस्कार होने से पूर्व वह दस (Decena-दशम्) सोनी मोहरें भेट (Dono-दान) करें"। :-

"Virgini in hort as deductoe......Die Nuptiarum priusquam ad eum transiret, et prius quam aqua et igne acciperetur, id est nuptioe celebrarentur......obtulit decena aureas dono."(Digest of Justinian, Leg. 66, i.)

बाद में यह दूसरा भारती नस्ल वहां गया और कुछ समय राज्य किया। यवन (Ionion) लोग भारती नस्ल के हैं, जिन्हें आजकल यूनानी कहा जाता है। श्री पोकाक (Poecocke) ने इस विषय पर "यूनान में भारत" नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखी है जिसमें उसने एक स्थान पर लिखा है कि "ग्रीक लोगों की भाषा, रीति-रिवाज, नदियों और पहाड़ों के नाम, यहां तक कि उनका इतिहास भी भारतीय है"। (India in Greece, P. 129)

इस प्राचीन ग्रीक लिपि को एट्रोस्कन लोगों ने अपनाया। उसका जो रूप थोड़ा बदल कर बना वह रोमन (लैटिन) हुआ और यह रोमन रूप ही यूरोप के भाषाओं के लिये प्रयुक्त हुआ जो बदलता-बिगड़ता, सुधरता, स्थाई होता आज इस रूप अंग्रेजी को पहुंचा है। पर जान हापकिन्स विश्वविद्यालय के श्री अलब्राईट (Prof. W. F. Albright) को कुछ नए लेख साइनाई (Sinai) पर्वत की पुरानी खानों (Mines) से मिले हैं (जिन खानों से ईजिप्ट के सम्राट् पेरोज: (Turquoise) प्राप्त करते थे), उन के आधार पर उसका विचार है कि मूल साइनाई चित्र-लिपि से प्राचीन हिब्रू (इबरानी-यहूदी) लिपि बनी, उस पर से ही ग्रीक रूप होकर बादमें वर्तमान अंग्रेज़ी बनी है। प्रथम शती की इस ग्रीक लिपि में सुक्रात (Socrates) का नाम इस प्रकार 'CWKPATHC' लिखा मिलता है।

अब तो उचार, आकार, अर्थ सब बदल गए हैं। श्री अलब्राईट ने तो सब चित्र ही नए दिये हैं। A के लिये बैल का सिर और दो सींग, B के लिये चौरस (जब कि बेटा में Beth [घर] की शक्ल तीन ओर से बंद और चौथी दरवाज़े के समान खुला है) और D के लिये डेल्टा के स्थान पर मछली तो E के लिये एस्पीलान के स्थान पर मनुष्य का चित्र है जिस के दोनों हाथ ऊपर उठाए हुए हैं, इत्यादि।[1] यह बात अल्फाबेट के इतिहास में नया मोड़ लाएगी और इस से भी सिद्ध होता है कि विद्वानों के विचार प्राय: कच्चे और अनुमानों पर आधारित हैं। कुछ वर्ष पूर्व रास जेलीडोन्या (सीर्या और तुर्की के समीप) से ३००० वर्षों से भी पुराना डूबा हुआ एक जहाज़ समुद्र के तल में से मिला है, जिस में से कुछ मोहरें भी मिली हैं

(1) National Geographic Magazine, December 1948

जिन पर ईजिप्ट के हाइरोगिल्फ चित्रित हैं।[1] अब इस पर से ऐसा तो नहीं कहा जा सकेगा कि सीर्या और तुर्की ईजिप्ट के अधीन थे और वहां भी इस लिपि का व्यवहार होता था।

चीनी लिपि मूल चित्र-लिपि होते हुए भी उसके मूल का ज्ञान नहीं है। यद्यपि अब बिगड़ कर सूरत ऐसी परेशान करने वाली हो गई है कि देखने में जैसे कीड़े-मकोड़े आते हैं परन्तु छान बीन करने पर वे चित्र स्पष्ट हो जाते हैं। तो भी उसकी क्लिष्टता के कारण जपान ने, जो भी चीनी लिपि का प्रयोग करता था उसे छोड़कर अपनी कान लिपि का प्रयोग किया है जिस की बुनियाद भारती ध्वनि ढंग पर है। कोरिया वालों ने भी चीनी लिपि को हटाकर अपनी हांगुली का प्रयोग आरंभ कर दिया है।

परन्तु सब से विचित्र बात यह है कि संसार की किसी भी लिपि का नाम किसी शुद्ध अर्थ वाला तो क्या बिलकुल नाम भी नहीं है, जैसा कि हमने ऊपर लिखा है। यद्यपि कहा ऐसा भी जाता है कि वर्तमान अल्फाबेट का मूल फिनीश्यन के अबजद, हौवज़, क्लमन, कुरसत में है; अबजद अर्थात A B.C.D; हौवज़ अर्थात H.O.W.Z; क्लमन K. L. M. N.; कुरशत अर्थात Q. R. S. T.। मूल अरबी का सिलसिला भी अबजद ही है। इधर ग्रीक में भी ऐसा ही हैं। फर्क यह है कि अबजद में A. B. G. D. के स्थान पर A. B. C. D. है। परन्तु यह 'C' एट्रोस्कन में क (काफ) का काम देता है। और काफ तथा गाफ (क-ग) एक ही कार्य करते हैं तथा गाफ (ग) जीम (ज) का काम देता है। इसलिये ही संस्कृत क्रमेल का Camel होकर अरबी का जमल (ऊंट) बन गया है। अर्थात यह आरंभ में C का G ही था परन्तु एट्रोस्कन में यह C का रूप धारण कर गया और उच्चार भी बदल गया। यद्यपि अभी तक इस C को G कहा जाता है अर्थात अल्फा (A), बेटा (B), गामा (G), आदि। परन्तु उसके उचार और अर्थ में भी अनर्थ है। जैसे कि ए (A) प्रथम अक्षर तो उसका (ए=a) अर्थात एक, तो ए (Aey) अर्थात सदैव; बी (B) दूसरा अक्षर तो बी (Be) अर्थात 'होना' तो बी (Bee) अर्थात मधुमखी; सी (C) तीसरा अक्षर और सी (See) अर्थात देखना तो सी (Sea) अर्थात समुद्र; टी (T) अक्षर तो उसी का टी (Tea) अर्थात चाय तो टी (Tee) बिजली की तीन मुखवाली Pin। इस प्रकार स्पष्ट है कि लिखावट को लिपि क्यों कहा जाय, उसकी परिभाषा क्या है और क्यों? लिपि क्या है? इसका उतर सिवाय संस्कृत के कहीं नहीं है। लिपि में चार वर्ण ि ल ि प हैं। प्रत्येक की शक्ल अलग, उस अनुसार वैज्ञानिक नाम अलग तथा सब के जोड़ से उसका अर्थ है 'वाणी (स्वर-भाषा) की रक्षा करना'। भाषा लिपि में रक्षित हो जाती है, जिस प्रकार व्याकरण में सुदृढ हो जाती है, बाकी परिभाषा तो लिख चुके हैं। यदि उचार सिखाया न जाय तो अंग्रेजी लिपि जानते हुए भी Hardinge का शुद्ध उचार कोई स्वयं नहीं कर सकेगा जब हिन्दी में न

(1) Ibid, May, 1962

बताने पर भी 'ईजिप्ट' शुद्ध लिख और पढ़ा जा सकेगा।

सिन्धी लिपि! इस प्रकार हमने ऊपर यह सिद्ध किया है कि भारत की मूल लिपि ब्राह्मी (देवनागरी) है, उसका निर्माण बिलकुल वैज्ञानिक ढंग पर हुआ है। उस में से ही बिगड़ कर भारत और संसार की (केवल) लिपियां (न कि चित्र लिपियां अथवा लकीरें) बनी हैं. उसी में से विकृत होकर सिन्ध की मूल हिन्दु-सिन्धी अथवा वाणकी लिपि बनी है। उसी का ही ऐसा रूप 'केवला' लिपि है। राजस्थान में महाजन (बनिए) इसी लिपि का प्रयोग करते थे। उस में जुड़े अक्षरों तथा मात्राओं का अभाव है। किसी भी व्यंजन (Consonant) को बिना मात्रा के अथवा जहां आए वहां देते थे। मात्राएं छोड़ केवल व्यंजन लिखने के कारण उस लिपि का नाम केवला पड़ गया। उसी में ही "काका जी अजमेर गया" का "काका जी आज मर गया" पढ़ा जाता था। उस लिपि की १००० वर्ष पुरानी बही-खाते अभी हैं, जिन्हे पढ़ कर ठीक अर्थ निकालना कठिन है। सिन्धी लिपि में भी भाईबद (वाणिये-बनिये) मात्राएं नहीं देते थे, इसलिये व्यवहारी बनिए के सिवाय दूसरा कोई शुद्ध पढ़ नहीं सकता था अथवा तो अर्थ का अनर्थ भी होता था। ऐसे तो लाखों रूपए का व्यवहार-व्यापार इसी लिपि में होता था। पाठशालाओं में इस लिपि को हिन्दी वाली पूरी मात्राएं देकर पढ़ाया जाता था तथा इस में पाठ्य पुस्तकें (Text Books) भी छपती थीं। यह शुद्ध तरीका था और इस से धोखा नहीं होता था। किन्तु दूसरा व्यहार शुद्ध हिन्दी (देवनागरी) में होता था। सिन्ध से सातवीं-आठवीं शती में सिन्ध से पलायन कर आने वाले सैंधव वंशी राजाओं के लेख घुमली (सौराष्ट्र) से मिले हैं जो सब संस्कृत में ही लिखे हुए हैं। राज-कारोबार संस्कृत जैसी भाषा में होता था। केवल व्यापारी इस हिन्दू-सिन्धी का उपपोग करते थे। उनके देशांतरों, तुर्किस्तान और रशिया तक हुंडियां (Demand Drafts) इसी हिन्दुसिन्धी में ही चलती थीं।

जैन ग्रन्थों में प्रचलित १८ लिपियों का वर्णन है। समवायांग सूत्र के १८वें समवाय में १८ लिपयों का वर्णन है जिन में से प्रथम का नाम ब्रह्मी है। बाद के "विशेष्याविशयक" भाष्य की कथा ४६४ की टीका में १८ लिपियों के नाम हैं, परन्तु दोनों में बड़ा भेद है। प्रथम में ब्रह्मी का नाम है तो सिन्धी का नहीं है, जब कि दूसरे में ब्राह्मी का नाम नहीं है तो सिंधविया (सिन्धी) का है। भग्वती सूत्र में तो आरंभ में ही ब्राह्मी लिपि को नमस्कार कर आरंभ किया गया है "नमो बंभीए लिवीए"। परन्तु विशेषाविष्यक में उसका नाम न होने का कारण यह हो सकता है कि उसके अनेक रूप अथवा नाम हो गये थे। स्वयं दूसरों में समाकर स्वयं का नाम भी लोप हो गया। इसलिये 'समवायांग सूत्र' के टीकाकार अभयदेव ने लिखा है कि "एतत् स्वरूपं न दृष्टमिति न दर्शितम्"। अर्थात उसका रूप देखने में नहीं आता न ही बताया जा सकता है।

खरोष्ठी का व्यवहार वैसे ही सीमित था इसलिये वह तो ऐसे ही लुप्त हो गई, परन्तु उस के स्थान पर दूसरे नाम आ गए। जैसे कि : पारसी, जवनी(यूनानी), तुर्की, चाणिकी, मूलदेवी, इत्यादि।

बौध ग्रन्थ "ललित विस्तार" में लिपियों की बड़ी सूची दी गई है, मगर वह २-३ को छोड़ बाकी विश्वसनीय नहीं है। जैन विद्वानों के कुछ एक पुस्तकें 'इच्छा' लिपि में भी हैं। इस लिपि के रहस्य को समझना विशेष बात है। फूल को ा (❀ा) की मात्र, स्वास्तिक को ि (ि卐) की मात्रा, आदि कुछ रूप विशेष अर्थ वाले हैं। प्राचीन न पढ़ी जाने वाली लिपियों में सहायक हो सकती है। मूलदेवी तो केवल एक वर्ग के स्थान पर दूसरे वर्ग के वर्ण (अक्षर) प्रयुक्त करने से वह एक गुप्त लिपि बन जाती है अर्थात एक वर्ण के स्थान पर निश्चित दूसरा वर्ण रखना है। जैसे कि कुमार के लिये उनाष लिखना पड़ेगा। केवल वर्ण बदलने से एक रहस्य भरा पत्र लिखा जा सकता है। यद्यपि ऐसी लिपियों की आयु लंबी नहीं होती। परन्तु यदि ऐसा लेख प्राचीन रूप में किसी के हाथ लग जाए तो एक नई परेशानी खड़ी हो सकती है, जैसा कि आजकल पुरानी लिपियों के कारण होता है। ऐसी भी कुछ छोटी आयु वाली लिपियां होती हैं। असम्या (आसाम) में ही पहले कितनी लिपियां और नाम थे जैसे कि गर्गया, बामन्या, लखारी, कैथली आदि, परन्तु इस समय कोई भी प्रयोग में नहीं है।

सातवीं शती के जैन साहित्य में सैन्धवी लिपि का उल्लेख है। दसवीं शती के अंत में अरब लेखक 'इब्न नदीम' ने लिखा है कि "मुझे एक यात्री ने बताया कि भारत में लगभग दो सौ लिपियां हैं। सिन्ध के लिये उसने बताया कि वहां नौ लिपियां प्रचलित हैं"।[1] इसी काल का अलबेरूनी लिखता है कि "अर्धनागरी लिपि, सिद्ध मात्रिका और नागर लिपियों के मेल से बनी थी, वह भाटिया तथा सिन्ध के कुछ भागों में व्यवहृत थी। मलवाड़ी (Malwadi-मारवाडी?) दक्षिण सिन्ध के समुद्र किनारे पर मालवशउ (Malwashau) में प्रचलित थी और सैन्धव लिपि बमहन्वा (अलमन्सूर:?) में तथा लारी लार में प्रचलित थी"।[2]

इस प्रकार यह सब हमने संक्षेप में सिन्धी लिपि की केवल प्राचीन्ता की रूपरेखा दिखाई है, जो उसका इतिहास भी है। बाकी सिन्धी, हिन्दू सिन्धी, अरबी सिन्धी, देवनागरी नामी लिपियों पर हम आगे विस्तार से लिखेंगे।

इति सिन्धु-सौवीर अध्याय दसवां

इति सिन्धु-सौवीर नामक इतिहास-प्रकाश ग्रन्थ

ओ३म शांति:! शांति:!! शांति:!!!

(1) हिन्दुस्तान अरबों की नज़र में, भाग २, पृ० ३

(2) Sachau-Alberuni's India, Pt. I, P. 173

अमेरीका को आर्य हिन्दुओं ने बसाया!

● Bhikhsu Chamanlal, author of "Hindu America", writes :

"The story of the Indian Buddhist monk Hwui Shan who went from Kabul to Mexico via China in the 5th. century is more thrilling than the story of the South Indian Pioneer who introduced cotton in Jopan in the eighth century. Kabul was then part of India. His reportion Mexico has been translated and edited by Edward P. Vining under the title of "Inglorious Columbus." He says :

"Nearly fourteen centuries have passed since Hwui Shan—led by his religious faith to carry the feeble light that shone upon his path to illuminate the lives of those who lay in darkness-pressed on from one unknown land to another, preaching the faith by which his life was guided of the toils and dangers he underwent, we can catch but a glimpse, through the mists of these fourteen hundred years but we have reason to believe that, of the company of five that started, he alone returned to Asia; that he was an old man when he reached China, and that he probably never saw his native land (India) again. The Chinese believed his story, but knew nothing more of the land which was visited by him. European and American scholars have for many years known something in regard to his statements; but for lack of sufficient careful investigation many have been inclined to discredit them.

"It is the hope of the author that the proof herein presented, that Hwui Shan discovered America a thousand years before it was known to Europeans, will be found sufficient to induce the world to give to the faithful missionary of the Buddhist faith the honour to which he is entitled so that he may no longer remain an Inglorious Columbus."

(INDIA, Mother of Us All, Pp. 117-118)

"Those who first arrived on the continent later to be known as America were the people of India." (Official History of Mexico")

अनुक्रमणिका

Printed and published by Gangaram Samrat, at the KAPIL Printing Press, Sahijpur Bogha, Ahmedabad-382345.

हमारा, आपका, सबका इतिहास!

सिन्धू-सौवीर, सिन्ध का प्राचीन इतिहास क्यों पढ़ें ?

आप इतिहासकार हैं, इतिहास लेखक हैं, इतिहास प्रेमी हैं? प्रत्येक अवस्था में आप प्राचीन इतिहास विषय में न तो अपनी लेखनी से संतुष्ट हैं न ही किसी विद्वान से सहमत हैं। आपके अनेक प्रश्न हैं जिन के सामने आप केवल नमालूम, हो सकता है, कदाचित्, अथवा तो...? देकर आप रुक जाते हैं! हमने इन सब के लिये केवल अछूते प्रमाण और तर्क उपस्थित किये हैं। प्रत्येक १० पृष्ठों के पश्चात आप की किसी न किसी समस्या के लिये आपको उसका समाधान करने का साधन मिलेगा। विशेष कर वेद में इतिहास, वेद क्या है, वेद की आयु, तथा आर्य-द्रावड़ झमेला, भाषा की उत्पत्ति, लिपि का आविष्कार: मनुष्य की उत्पत्ति, मनुष्य तथा सृष्टि की आयु, विकास वाद, इत्यादि अनेक विषय हैं जिन पर संसार के बड़े बड़े विद्वान सहमत नहीं हो सके हैं न ही हो सकते हैं। क्यों ? इस क्यों का उत्तर आपको इस पुस्तक में मिलेगा, क्यों कि इस सब बातों का वेद के सप्त-सिन्धु तथा सिन्ध के इतिहास से घनिष्ठ सम्बंध है। और उपरोक्त सब बातों का समावेश इस सम्बंध को सिद्ध करने के लिये हर अध्याय में मिलेगा। आप सिन्ध की आत्मा मोहनजो-दरो को जानते हैं वह भी संकुचित तथा संकोचमय। किन्तु इसके शरीर 'सिन्ध' को नहीं. जिस के निवासियों ने संसार के महान साम्राज्यों की स्थापना की, और यह शरीर (सिंध) फिर भारत का आत्मा है। सिन्ध का इतिहास हमारा और आपका ही नहीं अपितु संसार का भी इतिहास है, उस की अवहलेना करने से ही हम उपरोक्त सब उलझनों का समाधान नहीं कर पाए हैं।

इस पुस्तक को केवल सांगोपांग पढ़ने से ही इन सब प्रश्नों का उत्तर आप पा सकेंगे और वही उत्तर आपको किसी ठीक निर्णय पर पहुंचने पर सहायक बनेगा। नहीं तो वर्षों से विवाद करते आ रहे हैं, करते रहेंगे फिर भी ये विवाद और भी विवादास्पद बनते जाएंगे, निर्णय हो नहीं सकता। ये सब बातें बड़े बड़े विद्वानों के हाथों से निकल चुकी हैं वे असमर्थ हो चुके हैं। यह ग्रन्थ आप का सहायक बनेगा। आप इतिहास में किसी भी विषय के विशेषज्ञ हों, केवल यह पुस्तक आप को सब और विषयों का स्वयं विशेषज्ञ बनने तथा सोचने के लिये बाध्य करेगा।

केवल एक शर्त! अभिमान और दुराग्रह को छोड़, सरल स्वभाव से इसको पढ़ें, आप के लिये ऐतिहासिक स्वर्ग के द्वार खुल जाएंगे। हमारा भी दुराग्रह नहीं है, क्यों कि चालीस वर्ष के स्वाध्याय से हमने जिस झोली को ईश्वर कृपा से भरा है वह आप के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

हमने सृष्टि उत्पति का इतिहास नहीं अपितु सिन्ध का इतिहास ही लिखा है इसलिये उपरोक्त सब बातों का केवल संक्षिप्त वर्णन ही किया है।